महाभारत

शल्यपर्व

[मूल संस्कृत श्लोक और हिन्दी अर्थ सहित]

प्रधान सम्पादक

डॉ. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

शिक्षामंत्रालय भारत सरकारके द्वारा दिए
गए आर्थिक अनुदानसे मुद्रित

पारडी [जि. बलसाड]

सवत् २०२९, शक १८९५, सन् १९७२

❊

प्रथम आवृत्ति

❊

प्रकाशक और मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर,
स्वाध्याय मण्डल, भारत-मुद्रणालय,
पोस्ट- ' स्वाध्याय मण्डल (पारडी) '
पारडी [जि. वलसाड]

शल्यपर्व

महाभारत

शल्यपर्व

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

ॐ गणोंके ईशके लिए नमस्कार हो ।

ॐ नरोत्तम नारायण, नर और देवी सरस्वतीको प्रणाम करके जयकी घोषणा करनी चाहिए।

: १ :

जनमेजय उवाच

एवं निपातिते कर्णे समरे सव्यसाचिना ।
अल्पावशिष्टाः कुरवः किमकुर्वत वै द्विज ॥ १ ॥

वैशम्पायनसे महाराज जनमेजयने पूछा– हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वैशम्पायन मुने ! जब समरमें सव्यसाची अर्जुनने कर्णको इस प्रकार मार डाला, तब थोडेसे बचे हुए कौरवोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

उदीर्यमाणं च बलं दृष्ट्वा राजा सुयोधनः ।
पाण्डवैः प्राप्तकालं च किं प्रापद्यत कौरवः ॥ २ ॥

कुरुवंशी राजा दुर्योधनने पाण्डवोंकी सेनाको बढते हुए देख, समयानुसार क्या उपाय किया ? ॥ २ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तदाचक्ष्व द्विजोत्तम ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥ ३ ॥

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मैं अपने पूर्व पुरुषोंका महान् चरित्र सुनकर तृप्त नहीं होता, इसलिये इस कथाको सुनना चाहता हूं; आप मुझसे कहिये ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः कर्णे हते राजन्धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ।
भृशं शोकार्णवे मग्नो निराशः सर्वतोऽभवत् ॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले– हे महाराज ! कर्णके मरनेके पश्चात् धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन शोक समुद्रमें डूब गये और सब ओरसे विजयसे निराश हो गये ॥ ४ ॥

हा कर्ण हा कर्ण इति शोचमानः पुनः पुनः ।
कृच्छ्रात्स्वशिबिरं प्रायाद्धतशेषैर्नृपैः सह ॥ ५ ॥

बार बार हा कर्ण ! हा कर्ण ! ऐसा कहकर रोने लगे, इस प्रकार रोते हुए मरनेसे बचे हुए राजाओंके सहित वह बहुत कठिनतासे अपने शिबिरको गये ॥ ५ ॥

स समाश्वास्यमानोऽपि हेतुभिः शास्त्रनिश्चितैः ।
राजभिर्नालभच्छर्म सूतपुत्रवधं स्मरन् ॥ ६ ॥

यद्यपि अनेक राजाओंने शास्त्रमें लिखे अनेक उपाय कर राजा दुर्योधनको बहुत समझाया, तो भी उन्हें सूतपुत्र कर्णके वधके शोकसे शान्ति न हुई ॥ ६ ॥

स दैवं बलवन्मत्वा भवितव्यं च पार्थिवः ।
संग्रामे निश्चयं कृत्वा पुनर्युद्धाय निर्ययौ ॥ ७ ॥

परन्तु प्रारब्ध और होनहारको बलवान् समझकर राजा दुर्योधन संग्राम जारी रखनेका निश्चय करके फिर युद्धको चले ॥ ७ ॥

शल्यं सेनापतिं कृत्वा विधिवद्राजपुंगवः ।
रणाय निर्ययौ राजा हतशेषैर्नृपैः सह ॥ ८ ॥

उसी समय राजा दुर्योधनने शल्यको विधिपूर्वक सेनापति बनाया और मरनेसे बचे हुए राजाओंके समेत युद्धको चले ॥ ८ ॥

ततः सुतुमुलं युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।
बभूव भरतश्रेष्ठ देवासुररणोपमम् ॥ ९ ॥

हे भरतकुलश्रेष्ठ ! तब कौरव और पाण्डवोंकी सेनाका देवासुर संग्रामके समान घोर युद्ध हुआ ॥ ९ ॥

ततः शल्यो महाराज कृत्वा कदनमाहवे ।
पाण्डुसैन्यस्य मध्याह्ने धर्मराजेन पातितः ॥ १० ॥

हे महाराज ! तदनंतर सेनासहित शल्यने युद्धमें पाण्डवोंकी सेनाका बहुत नाश किया, परन्तु दो प्रहर समयके पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिरके हाथसे मारे गये ॥ १० ॥

ततो दुर्योधनो राजा हतबन्धू रणाजिरात् ।
अपसृत्य ह्रदं घोरं विवेश रिपुजाद्भयात् ॥ ११ ॥

तब राजा दुर्योधन अपने सब बन्धुओंको मरा देख, युद्ध छोडकर भाग गये, और शत्रुओंके भयसे एक भयानक तालाबमें घुसकर रहने लगे ॥ ११ ॥

अथापराह्णे तस्याह्नः परिवार्य महारथैः ।
ह्रदादाहूय योगेन भीमसेनेन पातितः ॥ १२ ॥

अनन्तर उसी दिन दो पहरके पश्चात् भीमसेनने अपने महारथियोंके सहित राजा दुर्योधनको घेरा डालकर तालाबमेंसे पुकारकर उनको उद्यमसे मार डाला ॥ १२ ॥

तस्मिन्हते महेष्वासे हतशिष्टास्त्रयो रथाः ।
संरभान्निशि राजेन्द्र जघ्नुः पाञ्चालसैनिकान् ॥ १३ ॥

हे राजन् ! जब महा धनुषधारी राजा दुर्योधन मारे गये, तब मरनेसे बचे हुए तीन महारथियोंने क्रोध करके रात्रिमें सोते समय पाञ्चाल वंशी सैनिकोंका नाश कर दिया ॥ १३ ॥

ततः पूर्वाह्णसमये शिबिरादेत्य संजयः ।
प्रविवेश पुरीं दीनो दुःखशोकसमन्वितः ॥ १४ ॥

तब युद्धके डेरोंसे चलकर दिनके पहले प्रहरमें दुःख और शोकसे व्याकुल होकर सञ्जय दीनभावसे हस्तिनापुरमें आये ॥ १४ ॥

प्रविश्य च पुरं तूर्णं भुजावुच्छ्रित्य दुःखितः ।
वेपमानस्ततो राज्ञः प्रविवेश निवेशनम् ॥ १५ ॥

शीघ्र ही पुरीमें प्रवेश करके सञ्जय शोकसे व्याकुल हो दोनों हाथ ऊपर उठाये काँपते हुए राजभवनमें पहुंचे ॥ १५ ॥

+

रुरोद च नरव्याघ्र हा राजन्निति दुःखितः ।
अहो बल विविग्नाः स्म निधनेन महात्मनः ॥ १६ ॥

और हाय नरव्याघ्र दुर्योधन, हाय राजा, कहकर रोने लगे और दुःखी होकर कहने लगे। हाय, उस महात्मा कुरुराजाके मरनेसे हम सब नष्ट हो गये ॥ १६ ॥

अहो सुबलवान्कालो गतिश्च परमा तथा ।
शक्रतुल्यबलाः सर्वे यत्रावध्यन्त पार्थिवाः ॥ १७ ॥

प्रारब्ध और कालगति ही अत्यंत बलवान् है, देखो इन्द्रके समान महापराक्रमी बलवान् सब वीर राजाओंको पाण्डवोंने मार डाला ॥ १७ ॥

दृष्ट्वैव च पुरो राजञ्जनः सर्वः स संजयम् ।
प्ररुरोद भृशोद्विग्नो हा राजन्निति सस्वरम् ॥ १८ ॥

हे राजन् जनमेजय ! जिस समय सञ्जयने नगरमें प्रवेश किया, उनको देखते ही अत्यन्त उद्विग्न हो सब नगरनिवासी हा महाराज ! हा महाराज ! कहकर फूट फूटकर रोने लगे ॥ १८ ॥

आकुमारं नरव्याघ्र तत्पुरं वै समन्ततः ।
आर्तनादं महच्चक्रे श्रुत्वा विनिहतं नृपम् ॥ १९ ॥

नरव्याघ्र ! उस पुरीमें चारों ओर बालक, बूढे सब लोग राजाको मारा गया सुनकर बडा आर्तनाद करने लगे ॥ १९ ॥

धावतश्चाप्यपश्यच्च तत्र त्रीन्पुरुषर्षभान् ।
नष्टचित्तानिवोन्मत्ताञ्शोकेन भृशपीडितान् ॥ २० ॥

जिस समय सञ्जयके मुखसे सुना कि महाराज दुर्योधन मर गये, तब नगरके श्रेष्ठ निवासी घबडाकर इधर उधर छटपटाने लगे । उस समय हमने उन नगर निवासियोंको चेतनारहित और पागलके समान होकर शोकसे अत्यन्त पीडित हुए हैं ऐसे देखा ॥ २० ॥

तथा स विह्वलः सूतः प्रविश्य नृपतिक्षयम् ।
ददर्श नृपतिश्रेष्ठं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ॥ २१ ॥

इसी प्रकार व्याकुल हुए सञ्जय भी घबडाते और रोते हुए राजभवनमें पहुंचे । और वहां जाकर सब जगत्के स्वामी बुद्धिरूपी नेत्रवाले, नृपश्रेष्ठ धृतराष्ट्रका उन्होंने दर्शन किया ॥ २१ ॥

दृष्ट्वा चासीनमनघं समन्तात्परिवारितम् ।
स्नुषाभिर्भरतश्रेष्ठ गान्धार्या विदुरेण च ॥ २२ ॥
तथान्यैश्च सुहृद्भिश्च ज्ञातिभिश्च हितैषिभिः ।
तमेव चार्थं ध्यायन्तं कर्णस्य निधनं प्रति ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे पापरहित महाराज अपने बेटोंकी बहू, गान्धारी, विदुर, मन्त्री तथा हित चाहनेवाले बन्धुबान्धवोंके सहित सब ओरसे घिरे हुए बैठे थे और सूतपुत्र कर्णके मरनेके पश्चात् युद्धमें क्या हुआ, यह शोच रहे थे, ऐसा देखा ॥ २२-२३ ॥

रुदन्नेवाब्रवीद्वाक्यं राजानं जनमेजय ।
नातिहृष्टमनाः सूतो बाष्पसंदिग्धया गिरा ॥ २४ ॥

हे जनमेजय ! उस समय संजयने रोकर तथा दुःखी होकर संदिग्ध वाणीमें राजा धृतराष्ट्रको ऐसे बचन कहे ॥ २४ ॥

संजयोऽहं नरव्याघ्र नमस्ते भरतर्षभ ।
मद्राधिपो हतः शल्यः शकुनिः सौबलस्तथा ।
उलूकः पुरुषव्याघ्र कैतव्यो दृढविक्रमः ॥ २५ ॥

हे पुरुषसिंह भरतकुलश्रेष्ठ ! मैं सञ्जय आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूं । हे महाराज ! महाराज मद्रराज शल्य, सुबलपुत्र शकुनि, पुरुषसिंह महाछली महावीर उलूक ये सब मारे गये ॥ २५ ॥

संशप्तका हताः सर्वे काम्बोजाश्च शकैः सह ।
म्लेच्छाश्च पार्वतीयाश्च यवनाश्च निपातिताः ॥ २६ ॥

सब संसप्तक, सब काम्बोज, शक, म्लेच्छ, पर्वतीय योद्धा और यवन सैनिक मारे गये ॥ २६ ॥

प्राच्या हता महाराज दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ।
उदीच्या निहताः सर्वे प्रतीच्याश्च नराधिप ।
राजानो राजपुत्राश्च सर्वतो निहता नृप ॥ २७ ॥

महाराज ! नराधिप ! पूर्वदेशके सब योद्धा और सर्व दाक्षिणात्योंका संहार हुआ । उत्तर और पश्चिमके सब वीर मार डाले गये । राजन् ! सब राजा और राजपुत्र और आपकी ओरके सब क्षत्रिय मारे गये ॥ २७ ॥

दुर्योधनो हतो राजन्यथोक्तं पाण्डवेन च ।
भग्नसक्थो महाराज शेते पांसुषु रूषितः ॥ २८ ॥

महाराज ! इसके पश्चात् पाण्डुपुत्र भीमसेनने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अर्थात् जङ्घा तोडकर राजा दुर्योधनको मार डाला । हे महाराज ! आज राजा दुर्योधन जङ्घाहीन होकर धूलमें लपटे हुए पृथ्वीमें सो रहे हैं ॥ २८ ॥

धृष्टद्युम्नो हतो राजञ्शिखण्डी चापराजितः ।
उत्तमौजा युधामन्युस्तथा राजन्प्रभद्रकाः ॥ २९ ॥

राजन् ! धृष्टद्युम्न मारा गया, अपराजित वीर शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, प्रभद्रक ॥२९॥

पाञ्चालाश्च नरव्याघ्राश्चेदयश्च निषूदिताः ।
तव पुत्रा हताः सर्वे द्रौपदेयाश्च भारत ।
कर्णपुत्रो हतः शूरो वृषसेनो महाबलः ॥ ३० ॥

सब पाञ्चाल, चेदिवंशीय योद्धाओंके समेत मारे गये, भारत ! आपके सब पुत्र तथा द्रौपदीके पांचो पुत्र मारे गये और वीर महा बलवान् कर्णपुत्र वृषसेन भी मारा गया ॥ ३० ॥

नरा विनिहताः सर्वे गजाश्च विनिपातिताः ।
रथिनश्च नरव्याघ्र हयाश्च निहिता युधि ॥ ३१ ॥

नरव्याघ्र ! युद्धभूमिमें सब पैदल मनुष्य, हाथियोंपर चढनेवाले वीर, सब रथी और घोडे मारे गये ॥ ३१ ॥

किञ्चिच्छेषं च शिबिरं तावकानां कृतं विभो ।
पाण्डवानां च शूराणां समासाद्य परस्परम् ॥ ३२ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! आपके पुत्रों तथा पाण्डवोंके डेरोंमें अब बहुत थोडे मनुष्य रह गये है। पाण्डव और कौरव सब परस्पर लडकर मर गये ॥ ३२ ॥

प्रायः स्त्रीशेषमभवज्जगत्कालेन मोहितम् ।
सप्त पाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास्तथा त्रयः ॥ ३३ ॥

इस समय कालसे मोहित हुए जगत्में केवल स्त्री ही बच गयीं हैं । पाण्डवोंकी ओरसे सात और दुर्योधनकी ओरसे केवल तीन वीर बचे हैं ॥ ३३ ॥

ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्च जयतां वरः ॥ ३४ ॥

उधर पांचों भाई पाण्डव, वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और सात्यकि और इधर कृपाचार्य, कृतवर्मा और विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा बचे हैं ॥ ३४ ॥

तवाप्येते महाराज रथिनो नृपसत्तम ।
अक्षौहिणीनां सर्वासां समेतानां जनेश्वर ।
एते शेषा महाराज सर्वेऽन्ये निधनं गताः ॥ ३५ ॥

हे महाराज ! नृपश्रेष्ठ ! उन सब एकत्र हुई अठारह अक्षौहिणि सेनामें केवल ये दस रथी वीर बचे रहे हैं । जनेश्वर ! और अन्य सब मारे गये ॥ ३५ ॥

कालेन निहतं सर्वं जगद्वै भरतर्षभ ।
दुर्योधनं वै पुरतः कृत्वा वैरस्य भारत ॥ ३६ ॥

हे भरतकुलश्रेष्ठ! यह ऐसा समय आया कि सब जगत् मर गया, इस समय केवल दुर्योधनका वैर हेतु मात्र होगया और सब समयके अनुसार ही हुआ ॥ ३६ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
निपपात महाराज गतसत्त्वो महीतले ॥ ३७ ॥

हे महाराज! राजा धृतराष्ट्र इस कठोर वचनको सुनते ही मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर गये ॥ ३७ ॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ विदुरोऽपि महायशाः ।
निपपात महाराज राजव्यसनकर्शितः ॥ ३८ ॥

महाराज! उनके गिरते ही महायशस्वी विदुर भी राजाके शोकसे व्याकुल होकर गिर गये ॥ ३८ ॥

गान्धारी च नृपश्रेष्ठ सर्वाश्च कुरुयोषितः ।
पतिताः सहसा भूमौ श्रुत्वा क्रूरं वचश्च ताः ॥ ३९ ॥

नृपश्रेष्ठ! इसी प्रकार उस समय वह कठोर वचन सुनकर गान्धारी आदि सब कुरुकुलकी स्त्रियां मूर्छित हो सहसा पृथ्वीपर गिर गईं ॥ ३९ ॥

निःसंज्ञं पतितं भूमौ तदासीद्राजमण्डलम् ।
प्रलापयुक्ता महती कथा न्यस्ता पटे यथा ॥ ४० ॥

उस समय समस्त राजसभा मूर्छित होकर धरतीपर गिर पडी और शोक करने लगी, और कागजपर लिखे हुए चित्रके समान दीखने लगी ॥ ४० ॥

कृच्छ्रेण तु ततो राजा धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
शनैरलभत प्राणान्पुत्रव्यसनकर्शितः ॥ ४१ ॥

थोडे समयके पश्चात् पुत्र शोकसे व्याकुल हुए महाराज धृतराष्ट्रमें बहुत प्रयत्नसे चैतन्य उत्पन्न हुआ ॥ ४१ ॥

लब्ध्वा तु स नृपः संज्ञां वेपमानः सुदुःखितः ।
उदीक्ष्य च दिशः सर्वाः क्षत्तारं वाक्यमब्रवीत् ॥ ४२ ॥

चैतन्ययुक्त होकर, अत्यंत दुःखित राजा धृतराष्ट्र कांपने लगे और चारों ओर देखकर धीरे धीरे विदुरसे बोले ॥ ४२ ॥

विदुरन्क्षत्तर्महाप्राज्ञ त्वं गतिर्भरतर्षभ ।
ममानाथस्य सुभृशं पुत्रैर्हीनस्य सर्वशः ।
एवमुक्त्वा ततो भूयो विसंज्ञो निपपात ह ॥ ४३ ॥

हे भरतकुलश्रेष्ठ ! महाबुद्धिमान् ! इस समय तुम ही हमारी गति हो, इस समय मेरे सब पुत्र मारे गये, मैं अनाथ होगया; ऐसा कह फिर मूर्छित होकर भूमिपर गिर गये ॥ ४३ ॥

तं तथा पतितं दृष्ट्वा बान्धवा येऽस्य केचन ।
शीतैस्ते सिषिचुस्तोयैर्विव्यजुर्व्यजनैरपि ॥ ४४ ॥

इस प्रकार महाराजको मूर्च्छित होकर गिरा देख उनके जो सब बान्धव वहां थे, वे उनपर शीतल जल छिडकने लगे, और पङ्खोंसे हवा करने लगे ॥ ४४ ॥

स तु दीर्घेण कालेन प्रत्याश्वस्तो महीपतिः ।
तूष्णीं दध्यौ महीपालः पुत्रव्यसनकर्शितः ।
निःश्वसञ्जिह्मग इव कुम्भक्षिप्तो विशां पते ॥ ४५ ॥

बहुत समयके पश्चात् राजा धृतराष्ट्र सावधान हुए और पुत्रशोकसे व्याकुल होकर शीघ्रही चिन्तामग्न हुए । प्रजानाथ ! उस समय जैसे घडेमें बन्द सांप ऊंचे श्वास लेता है, ऐसे ही राजा धृतराष्ट्र भी ऊंचे स्वांस लेने लगे ॥ ४५ ॥

संजयोऽप्यरुदत्तत्र दृष्ट्वा राजानमातुरम् ।
तथा सर्वाः स्त्रियश्चैव गान्धारी च यशस्विनी ॥ ४६ ॥

राजाको व्याकुल देखकर सञ्जय भी रोने लगे, इसी प्रकार सब स्त्रियोंके समेत यशस्विनी गान्धारी भी रोने लगीं ॥ ४६ ॥

ततो दीर्घेण कालेन विदुरं वाक्यमब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रो नरव्याघ्रो मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥

फिर बहुत देरके बाद बार बार मूर्च्छित होते हुए राजा धृतराष्ट्रने विदुरसे कहा ॥ ४७ ॥

गच्छन्तु योषितः सर्वा गान्धारी च यशस्विनी ।
तथेमे सुहृदः सर्वे भ्रश्यते मे मनो भृशम् ॥ ४८ ॥

ये सब स्त्रियाँ और यशस्विनी गान्धारीको विदा करो, मेरा मन इस समय बहुत भ्रान्त हो रहा है, घबडा रहा है, इसलिये ये सब सुहृद् सभासद अपने अपने घरको जांय ॥ ४८ ॥

एवमुक्तस्ततः क्षत्ता ताः स्त्रियो भरतर्षभ ।
विसर्जयामास शनैर्वेपमानः पुनः पुनः ॥ ४९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! विदुरने ऐसी आज्ञा सुनकर सब सुहृद सभासद और स्त्रियोंको धीरे धीरे विदा कर दिया, उस समय विदुरका शरीर भी दुःखसे कांप रहा था, मुखसे वचन नहीं निकलता था ॥ ४९ ॥

निश्चक्रमुस्ततः सर्वास्ताः स्त्रियो भरतर्षभ ।
सुहृदश्च ततः सर्वे दृष्ट्वा राजानमातुरम् ॥ ५० ॥

भरतर्षभ ! तदनंतर राजाको व्याकुल देख सब स्त्रियाँ और सुहृद सभासद वहांसे चले गये ॥ ५० ॥

ततो नरपतिं तत्र लब्धसंज्ञं परंतप ।
अवेक्षत संजयो दीनो रोदमानं भृशातुरम् ॥ ५१ ॥

परंतप ! तत्पश्चात् सावधान होकर अत्यंत आतुर हो विलाप करते हुए राजा धृतराष्ट्रको दीनवदन संजयने देखा ॥ ५१ ॥

प्राञ्जलिर्निःश्वसन्तं च तं नरेन्द्रं मुहुर्मुहुः ।
समाश्वासयत क्षत्ता वचसा मधुरेण ह ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ५२ ॥

उस समय विदुर हाथ जोड कर अपने मीठे मीठे वचनोंसे लंबी स्वांस लेते हुए और रोते हुए राजाको समझाने लगे ॥ ५२ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें पहला अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ ५२ ॥

: २ :

वैशम्पायन उवाच

विसृष्टास्वथ नारीषु धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
विललाप महाराज दुःखाद्दुःखतरं गतः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् ! जब सब स्त्रियां चली गईं तब अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र अत्यन्त दुःखसे व्याकुल होकर रोने लगे ॥ १ ॥

सधूममिव निःश्वस्य करौ धुन्वन्पुनः पुनः ।
विचिन्त्य च महाराज ततो वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

थोडे समयके पश्चात् गरम ऊंची स्वांस लेकर और बार बार दोनों हाथ पटकते हुए चिन्ता- मग्न रहकर ऐसे वचन बोले ॥ २ ॥

अहो बत महद्दुःखं यदहं पाण्डवान्रणे ।
क्षेमिणश्चाव्ययांश्चैव त्वत्तः सूत शृणोमि वै ॥ ३ ॥

हे सञ्जय ! हाय, मेरे लिये बडे दुःखकी बात है, कि मैं तुम्हारे मुखसे समरमें पाण्डवोंको कुशल सहित जीता सुनता हूं ॥ ३ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
यच्छ्रुत्वा निहतान्पुत्रान्दीर्यते न सहस्रधा ॥ ४ ॥

निश्चय ही मेरा सुदृढ हृदय वज्रसे भी अधिक कठोर है, जो अपने पुत्रोंकी मृत्यु सुनकर भी नहीं फटता ॥ ४ ॥

चिन्तयित्वा वचस्तेषां बालक्रीडां च संजय ।
अद्य श्रुत्वा हतान्पुत्रान्भृशं मे दीर्यते मनः ॥ ५ ॥

हे सञ्जय ! अपने पुत्रोंकी अवस्था और शिशुक्रीडाका विचार करके, जब आज उनके मृत्युको सुनता हूं, तब मेरा मन अत्यंत व्याकुल हुआ जाता है ॥ ५ ॥

अन्धत्वाद्यदि तेषां तु न मे रूपनिदर्शनम् ।
पुत्रस्नेहकृता प्रीतिर्नित्यमेतेषु धारिता ॥ ६ ॥

मैंने अन्धा होनेके कारण यद्यपि उनका रूप नहीं देखा था, तोभी पुत्रोंका मुझे बहुत प्रेम था ॥ ६ ॥

बालभावमतिक्रान्तान्यौवनस्थांश्च तानहम् ।
मध्यप्राप्तांस्तथा श्रुत्वा हृष्ट आसं तथानघ ॥ ७ ॥

हे पापरहित ! मेरे पुत्र बालक अवस्थासे युवा अवस्थाको प्राप्त हुए हैं और धीरे धीरे मध्या-वस्थातक पहुंच गये हैं, यह सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ था ॥ ७ ॥

तानद्य निहताञ्श्रुत्वा हृतैश्वर्यान्हृतौजसः ।
न लभे वै क्वचिच्छान्तिं पुत्राधिभिरभिप्लुतः ॥ ८ ॥

आज उनका धन और तेज नष्ट हो गया, और वे भी मर गये, यह सुनकर उनकी चिन्तासे व्यथित हो मुझे कहीं शांति नहीं होती ॥ ८ ॥

एह्येहि पुत्र राजेन्द्र ममानाथस्य सांप्रतम् ।
त्वया हीनो महाबाहो कां नु यास्याम्यहं गतिम् ॥ ९ ॥

मैं अपने पुत्रोंके दुःखसे व्याकुल हो गया हूं । हे महाबाहो राजेन्द्र ! हे पुत्र दुर्योधन ! तुम मुझ अनाथके पास आओ, आओ । अब तुम्हारे बिना मेरी कौन रक्षा करेगा ? तुम्हारे बिना मैं किस अवस्थाको पहुंच जाऊंगा ? ॥ ९ ॥

गतिर्भूत्वा महाराज ज्ञातीनां सुहृदां तथा ।
अन्धं वृद्धं च मां वीर विहाय क्व नु गच्छसि ॥ १० ॥

हे महाराज ! हे वीर ! तुम सब राजा, सब बन्धु और सुहृदोंकी गति थे, आज मुझ अन्धे और बूढेको छोडकर कहां चले जाते हो ? ॥ १० ॥

सा कृपा सा च ते प्रीतिः सा च राजन्सुमानिता ।
कथं विनिहतः पार्थैः संयुगेष्वपराजितः ॥ ११ ॥

राजन् ! तुम्हें युद्धमें कोई नहीं जीत सकता था, फिर आज कुन्तीपुत्र पाण्डवोंने युद्धमें कैसे मारा ? तुम्हारी वह प्रीति, आदर और कृपा आदि तुम्हारे गुण कैसे नष्ट हुए ? ॥ ११ ॥

कथं त्वं पृथिवीपालान्भुक्त्वा तात समागतान् ।
शेषे विनिहतो भूमौ प्राकृतः कुनृपो यथा ॥ १२ ॥

हे तात ! आज तुम आये हुए सब राजाओंको छोडकर किस साधारण और दुष्ट राजाके समान मारे जाकर पृथ्वीपर क्यों सो रहे हो ? ॥१२ ॥

को नु मामुत्थितं काल्ये तात तातेति वक्ष्यति ।
महाराजेति सततं लोकनाथेति चासकृत् ॥ १३ ॥

हे वीर ! अब मेरे उठनेके समयपर तुम्हारे विना मुझे प्रतिदिन पिता, महाराज और लोकनाथ आदि वार वार कौन कहेगा ? ॥ १३ ॥

परिष्वज्य च मां कण्ठे स्नेहेनाक्लिन्नलोचनः ।
अनुशाधीति कौरव तत्साधु वद मे वचः ॥ १४ ॥

हे पुत्र ! तुम पहले प्रेमसे नेत्रोंमें आंसू भरकर और कण्ठमें लेकर मीठे वचनोंसे कहो कि, हे कुरुराज ! मुझे कुछ आज्ञा दीजिये, वही मधुर वचन फिर मुझसे कहो ॥ १४ ॥

ननु नामाहमश्रौषं वचनं तव पुत्रक ।
भूयसी मम पृथ्वीयं यथा पार्थस्य नो तथा ॥ १५ ॥

हे पुत्र ! तुमने पहले हमसे कहा था कि इस समस्त पृथ्वीपर जैसा हमारा अधिकार है ऐसा कुन्तीपुत्र पाण्डवोंका नहीं ॥ १५ ॥

भगदत्तः कृपः शल्य आवन्त्योऽथ जयद्रथः ।
भूरिश्रवाः सोमदत्तो महाराजोऽथ बाह्लिकः ॥ १६ ॥

हमारी और भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, अवन्तीके राजकुमार विन्द अनुविन्द, जयद्रथ, भूरिश्रवा, सोमदत्त, महाराज बाह्लीक ॥ १६ ॥

अश्वत्थामा च भोजश्च मागधश्च महाबलः ।
बृहद्बलश्च काशीशः शकुनिश्चापि सौबलः ॥ १७ ॥

अश्वत्थामा, कृतवर्मा, महाबलवान् मगधराज, बृहद्बल, काशिराज, सुबलपुत्र शकुनि, ॥१७॥

+

म्लेच्छाश्च बहुसाहस्राः शकाश्च यवनैः सह ।
सुदक्षिणश्च काम्बोजस्त्रिगर्ताधिपतिस्तथा ॥ १८ ॥
लाखों म्लेच्छ, शक और यवन, काम्बोजदेशी सुदक्षिण, त्रिगर्तदेशी सुशर्मा, ॥ १८ ॥

भीष्मः पितामहश्चैव भारद्वाजोऽथ गौतमः ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च शतायुश्चापि वीर्यवान् ॥ १९ ॥
पितामह भीष्म, भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य, गौतमगोत्रीय कृपाचार्य, श्रुतायु, अयुतायु, वीर्यवान् शतायु, ॥ १९ ॥

जलसंधोऽथार्श्यशृङ्गी राक्षसश्चाप्यलायुधः ।
अलंबुसो महाबाहुः सुबाहुश्च महारथः ॥ २० ॥
जलसन्ध, ऋष्य शृङ्गी, अलायुध राक्षस, महाबाहु अलम्बुस और महारथी सुबाहु, ॥ २० ॥

एते चान्ये च बहवो राजानो राजसत्तम ।
मदर्थमुद्यताः सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा रणे प्रभो ॥ २१ ॥
हे नृपश्रेष्ठ ! प्रभो ! इनको आदि लेकर और भी अनेक राजा लोग मेरे लिये प्राण और धनका मोह छोडकर युद्ध करनेको उपस्थित हैं ॥ २१ ॥

येषां मध्ये स्थितो युद्धे भ्रातृभिः परिवारितः ।
योधयिष्याम्यहं पार्थान्पाञ्चालांश्चैव सर्वशः ॥ २२ ॥
मैं इन सबके बीचमें खडा होकर अपने भाइयोंके सहित घिरा हुआ समरमें समस्त पाञ्चाल, सृञ्जय और पाण्डवोंसे युद्ध करूंगा ॥ २२ ॥

चेदींश्च नृपशार्दूल द्रौपदेयांश्च संयुगे ।
सात्यकिं कुन्तिभोजं च राक्षसं च घटोत्कचम् ॥ २३ ॥
हे राजसिंह ! मैं अकेलाही चेदियों, द्रौपदीके पांचों पुत्र, सात्यकि, कुन्तिभोज और घटोत्कच राक्षसको युद्धमें निवारण करूंगा ॥ २३ ॥

एकोऽप्येषां महाराज समर्थः संनिवारणे ।
समरे पाण्डवेयानां संक्रुद्धो ह्यभिधावताम् ।
किं पुनः सहिता वीराः कृतवैराश्च पाण्डवैः ॥ २४ ॥
महाराज ! मेरे इन सहायकोंमेंसे एक एक वीर भी युद्धमें क्रोधित होकर मेरे ऊपर आक्रमण करनेवाले पाण्डवोंका निवारण करनेके लिये समर्थ हैं । फिर पाण्डवोंके साथ शत्रुता रखनेवाले इन वीरोंके सहित युद्ध करनेकी तो कथा ही क्या है ? ॥ २४ ॥

अथ वा सर्व एवैते पाण्डवस्यानुयायिभिः ।
योत्स्यन्ति सह राजेन्द्र हनिष्यन्ति च तान्मृधे ॥ २५ ॥
राजेन्द्र ! अथवा ये सब राजा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके सहायकोंसे युद्ध करेंगे, तथा उन्हें रण-भूमिमें मारेंगे ॥ २५ ॥

कर्णस्त्वेको मया सार्धं निहनिष्यति पाण्डवान् ।
ततो नृपतयो वीराः स्थास्यन्ति मम शासने ॥ २६ ॥
और अकेले कर्ण ही मेरी सहायतासे पांचों पाण्डवोंको मार डालेंगे । पाण्डवोंके मरनेके पश्चात् सब राजा और वीर मेरी आज्ञामें चलेंगे ॥ २६ ॥

यश्च तेषां प्रणेता वै वासुदेवो महाबलः ।
न स संनह्यते राजन्निति मामब्रवीद्वचः ॥ २७ ॥
हे राजन् ! जो महाबलवान् वसुदेव पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंके प्रधान हैं, सो कदापि युद्ध करनेको खडे नहीं होंगे, इत्यादि अनेक वचन तुमने कर्णके आगे मुझसे कहे थे ॥ २७ ॥

तस्याहं वदतः सूत बहुशो मम संनिधौ ।
युक्तितो ह्यनुपश्यामि निहतान्पाण्डवान्मृधे ॥ २८ ॥
सूत ! मेरे सन्निध जब दुर्योधन ऐसी बातें कहता था, तब मुझे लगता था कि हमारी युक्तिसे सब पाण्डव युद्धमें मारे जायेंगे ॥ २८ ॥

तेषां मध्ये स्थिता यत्र हन्यन्ते मम पुत्रकाः ।
व्यायच्छमानाः समरे किमन्यद्भागधेयतः ॥ २९ ॥
ऐसे वीरोंके बीचमें रहनेपर भी जब प्रयत्नपूर्वक लडनेवाले मेरे पुत्र युद्धमें मारे गये, तब इसको प्रारब्धके सिवाय और क्या कहा जायगा ? ॥ २९ ॥

भीष्मश्च निहतो यत्र लोकनाथः प्रतापवान् ।
शिखण्डिनं समासाद्य मृगेन्द्र इव जम्बुकम् ॥ ३० ॥
हे संजय ! देखो, जैसे सिंह सियारसे लडकर मारा जाता है, ऐसे शिखण्डीसे भिडकर लोकनाथ महाप्रतापी भीष्म युद्धमें मारे गये, यहां प्रारब्धके सिवाय और कौन बलवान् कहा जा सकता है ? ॥ ३० ॥

द्रोणश्च ब्राह्मणो यत्र सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ।
निहतः पाण्डवैः संख्ये किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३१ ॥
जहां ब्राह्मणश्रेष्ठ सब शत्रुनाशन अस्त्रविद्या जाननेवाले द्रोणाचार्यको पाण्डवोंने रणभूमिमें मार डाला, कहो इसमें प्रारब्धके सिवाय किसको दोष दें ? ॥ ३१ ॥

भूरिश्रवा हतो यत्र सोमदत्तश्च संयुगे ।
बाह्लीकश्च महाराज किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३२ ॥
देखो, भूरिश्रवा, सोमदत्त और महाराज बाह्लीक भी युद्धमें मारे गये, इसमें प्रारब्धके सिवाय और किसको दोष दें ? ॥ ३२ ॥

सुदक्षिणो हतो यत्र जलसंधश्च कौरवः ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३३ ॥
देखो, काम्बोजराज सुदक्षिण, कुरुवंशी जलसन्ध, श्रुतायु और अच्युतायु मारे गये, वहां प्रारब्धके सिवाय और क्या कारण हो सकता है ? ॥ ३३ ॥

बृहद्बलो हतो यत्र मागधश्च महाबलः ।
आवन्त्यो निहतो यत्र त्रिगर्तश्च जनाधिपः ।
संशप्तकाश्च बहवः किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३४ ॥
बृहद्बल, महाबलवान् मगधदेशका राजा, अवन्तीके राजकुमार विन्द अनुविन्द, त्रिगर्तदेशीय राजा सुशर्मा, तथा बहुत संशप्तक योद्धा मारे गये, वहां प्रारब्धके सिवाय दूसरा क्या कारण होगा ? ॥ ३४ ॥

अलंबुसस्तथा राजन्राक्षसश्चाप्यलायुधः ।
आर्ष्यशृङ्गश्च निहतः किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३५ ॥
अलम्बुस राक्षस, अलायुध और ऋषीशृङ्गी मारे गये, वहां प्रारब्धके सिवाय दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥ ३५ ॥

नारायणा हता यत्र गोपाला युद्धदुर्मदाः ।
म्लेच्छाश्च बहुसाहस्राः किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३६ ॥
नारायण नामके रणदुर्मद गोपाल और कई हजार म्लेच्छ वीर रणभूमिमें मारे गये, वहां प्रारब्धके सिवाय और क्या कहा जा सकता है ? ॥ ३६ ॥

शकुनिः सौबलो यत्र कैतव्यश्च महाबलः ।
निहतः सबलो वीरः किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३७ ॥
सुबलपुत्र महावीर शकुनि और उस जुवारीका पुत्र महाबलवान् उलूक दोनों ही सैनिकोंके सहित मारे गये, वहां प्रारब्धके सिवाय और क्या कहा जायगा ? ॥ ३७ ॥

राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघबाहवः ।
निहता बहवो यत्र किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३८ ॥
शूरवीर और परिघके समान हाथवाले राजा और राजपुत्र युद्धमें बहुत ही मारे गये, यहां प्रारब्धको छोड किसे बली कहें ॥ ३८ ॥

नानादेशसमावृत्ताः क्षत्रिया यत्र संजय ।
निहताः समरे सर्वे किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३९ ॥

हे सूतपुत्र संजय ! ये सब अनेक देशोंसे आये हुए क्षत्रिय शूरवीर थे, सो सबके सब मारे गये, यहां प्रारब्धके सिवाय किसको बलवान् कहे ? ॥ ३९ ॥

पुत्राश्च मे विनिहताः पौत्राश्चैव महाबलाः ।
वयस्या भ्रातरश्चैव किमन्यद्भागधेयतः ॥ ४० ॥

मेरी ही प्रारब्धसे मेरे महाबलवान् बेटे और पौत्र, मेरे सब भाई-बन्धु और मित्र मारे गये, इसे प्रारब्धके सिवाय और क्या कहूं ? ॥ ४० ॥

भागधेयसमायुक्तो ध्रुवमुत्पद्यते नरः ।
यश्च भाग्यसमायुक्तः स शुभं प्राप्नुयान्नरः ॥ ४१ ॥

निश्चय ही मनुष्य प्रारब्धहीके वशमें होकर जन्म लेता है । जो भाग्यसे समृद्ध होता है, उसे सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ४१ ॥

अहं वियुक्तः स्वैर्भाग्यैः पुत्रैश्चैवेह सञ्जय ।
कथमद्य भविष्यामि वृद्धः शत्रुवशं गतः ॥ ४२ ॥

हे संजय ! मैं अत्यन्त मन्द भाग्य हूं, और मेरे सब पुत्र मारे जानेसे पुत्रहीन भी हूं । अब मैं बूढा होकर शत्रुओंके वशमें कैसे रहूंगा ? ॥ ४२ ॥

नान्यदत्र परं मन्ये वनवासादृते प्रभो ।
सोऽहं वनं गमिष्यामि निर्बन्धुर्ज्ञातिसंक्षये ॥ ४३ ॥

हे प्रभो ! इसलिये वनवास करना ही मेरे लिये अच्छा है, अब बन्धुहीन और कुटुम्बीजनोंका बिनाश हो जानेपर, मैं इसलिये वनहीको चला जाऊंगा ॥ ४३ ॥

न हि मेऽन्यद्भवेच्छ्रेयो वनाभ्युपगमादृते ।
इमामवस्थां प्राप्तस्य लूनपक्षस्य सञ्जय ॥ ४४ ॥

हे संजय ! मैं इस समय पङ्खरहित पक्षीके समान होगया हूं । इसी अवस्थामें मुझे वनको जानेके सिवाय और किसी बातमें कल्याण नहीं होगा ॥ ४४ ॥

दुर्योधनो हतो यत्र शल्यश्च निहतो युधि ।
दुःशासनो विशस्तश्च विकर्णश्च महाबलः ॥ ४५ ॥

देखो, दुर्योधन मारा गया और शल्य भी युद्धमें नष्ट हो गये । दुःशासन, विशस्त और महाबलवान् विकर्ण ॥ ४५ ॥

कथं हि भीमसेनस्य श्रोष्येऽहं शब्दमुत्तमम् ।
एकेन समरे येन हतं पुत्रशतं मम ॥ ४६ ॥

आदि मेरे सौ पुत्रोंको जिस भीमसेनने मार डाला, उसके उच्च स्वरके वचन मैं कैसे सुनूंगा? जिस अकेलेने ही मेरे दुर्योधन आदि सौ पुत्रोंको समरमें मारा उस भीमसेनके कठोर वचनोंको मैं कैसे सुनूंगा? ॥ ४६ ॥

असकृद्वदतस्तस्य दुर्योधनवधेन च ।
दुःखशोकाभिसंतप्तो न श्रोष्ये परुषा गिरः ॥ ४७ ॥

दुर्योधनके मारे जानेसे दुःख और शोक संतप्त हुआ मैं, बार बार बोलनेवाले भीमसेनके कठोर वचनोंको नहीं सुन सकूंगा ॥ ४७ ॥

एवं स शोकसंतप्तः पार्थिवो हतबान्धवः ।
मुहुर्मुहुर्मुह्यमानः पुत्राधिभिरभिप्लुतः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार बूढे राजा धृतराष्ट्र जिनके बन्धु–बान्धव मार डाले गये थे, पुत्रोंके शोकसे व्याकुल होकर बार बार मूर्च्छित होने और रोने लगे ॥ ४८ ॥

विलप्य सुचिरं कालं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य चिन्तयित्वा पराभवम् ॥ ४९ ॥

इस प्रकार अम्बिका सुत धृतराष्ट्र बहुत समयतक विलाप करके उष्ण सांस खींचते और अपने पराभवको स्मरण करने लगे ॥ ४९ ॥

दुःखेन महता राजा संतप्तो भरतर्षभ ।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद्यथातथम् ॥ ५० ॥

और महान् दुःखसे व्याकुल होकर, फिर गवल्गणपुत्र सञ्जयसे पुनः युद्धका यथावत् वृत्तान्त पूछने लगे ॥ ५० ॥

भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा सूतपुत्रं च पातितम् ।
सेनापतिं प्रणेतारं किमकुर्वत मामकाः ॥ ५१ ॥

हे सञ्जय ! भीष्म, द्रोण और युद्ध संचालक सेनापति सूतपुत्र कर्णको मरा हुआ सुनकर मेरे पुत्रोंने किसको सेनापति बनाया ? ॥ ५१ ॥

यं यं सेनाप्रणेतारं युधि कुर्वन्ति मामकाः ।
अचिरेणैव कालेन तं तं निघ्नन्ति पाण्डवाः ॥ ५२ ॥

हाय ! मेरे पुत्र युद्धमें जिसको सेनापति बनाते थे, उसीको पाण्डव शीघ्रही चटपट मार डालते थे ॥ ५२ ॥

रणमूर्ध्नि हतो भीष्मः पश्यतां वः किरीटिना ।
एवमेव हतो द्रोणः सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ ५३ ॥

देखो, तुम्हारे देखते देखते किरीटधारी अर्जुनने युद्धके पुरोभागमें भीष्मको मार डाला, इसी प्रकार द्रोणाचार्यका भी तुम सब लोगोंके देखते ही नाश हो गया ॥ ५३ ॥

एवमेव हतः कर्णः सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
स राजकानां सर्वेषां पश्यतां वः किरीटिना ॥ ५४ ॥

और इसी तरह प्रतापी सूतपुत्र कर्ण भी राजाओंके साथ तुम सब लोगोंके देखते ही किरीट-धारी अर्जुनसे मारे गये ॥ ५४ ॥

पूर्वमेवाहमुक्तो वै विदुरेण महात्मना ।
दुर्योधनापराधेन प्रजेयं विनशिष्यति ॥ ५५ ॥

देखो, महात्मा विदुरने हमसे जो पहलेही कहा था, कि दुर्योधनके दोषसे सब प्रजाका नाश हो जायगा ॥ ५५ ॥

केचिन्न सम्यक्पश्यन्ति मूढाः सम्यक्तथापरे ।
तदिदं मम मूढस्य तथाभूतं वचः स्म ह ॥ ५६ ॥

जगत्में कई मूर्ख मनुष्य ऐसे होते हैं, जो कुछ नहीं समझते और समझकर भी उपाय नहीं करते, मैं वैसा ही मूढ हूं । मेरे बारेमें यह वचन वैसा ही हुआ ॥ ५६ ॥

यदब्रवीन्मे धर्मात्मा विदुरो दीर्घदर्शिवान् ।
तत्तथा समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥ ५७ ॥

सोही दीर्घदर्शी धर्मात्मा विदुरका वचन जो पहले कहा था आज मुझ मूर्खके आगे आ गया, सत्यवादी विदुरने जो कुछ कहा था सो सभी सत्य हुआ ॥ ५७ ॥

दैवोपहतचित्तेन यन्मयापकृतं पुरा ।
अनयस्य फलं तस्य ब्रूहि गावल्गणे पुनः ॥ ५८ ॥

हे संजय ! मैंने जो पहले प्रारब्धके वशमें होकर मेरी बुद्धि नष्ट होनेके कारण, विदुरकी बात मानी नहीं, मेरे उस अन्यायका यह फल हुआ, उसका फिर वर्णन करो ॥ ५८ ॥

को वा मुखमनीकानामासीत्कर्णे निपातिते ।
अर्जुनं वासुदेवं च को वा प्रत्युद्ययौ रथी ॥ ५९ ॥

अब तुम शल्य और दुर्योधनके युद्ध करनेका वृत्तान्त हमसे कहो; कर्णके मरनेके पश्चात् कौन सेनापति हुआ ? अर्जुन और श्रीकृष्णसे कौन महारथी युद्ध करनेको आगे गया ? ॥ ५९ ॥

केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं मद्रराजस्य संयुगे ।
वामं च योद्धुकामस्य के वा वीरस्य पृष्ठतः ॥ ६० ॥

और युद्धमें लडाईकी इच्छा करनेवाले मद्रराज शल्यके दहिने पहियेकी रक्षा किसने की और बांये पहियेकी किसने की और उन वीरके रथकी रक्षा हेतु पीछे कौन रहा ? ॥ ६० ॥

कथं च वः समेतानां मद्रराजो महाबलः ।
निहतः पाण्डवैः संख्ये पुत्रो वा मम संजय ॥ ६१ ॥

संजय ! कहो, हमारे सब वीरोंके बीचमें रहते हुए भी पाण्डवोंने बलवान् मद्रराज शल्य और मेरा पुत्र दुर्योधनको कैसे मार डाला ? ॥ ६१ ॥

ब्रूहि सर्वं यथातत्त्वं भरतानां महाक्षयम् ।
यथा च निहतः संख्ये पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ६२ ॥

जिस प्रकार हमारा पुत्र दुर्योधन युद्धमें मारा गया और भरतवंशियोंका महान् नाश हुआ सो सब कथा यथार्थ रूपसे हमसे कहो ॥ ६२ ॥

पाञ्चालाश्च यथा सर्वे निहताः सपदानुगाः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ॥ ६३ ॥

कहो, सब पाञ्चाल सैनिक अपने अनुयायियोंके साथ कैसे मारे गये ? धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदीके पांचों पुत्र कैसे मारे गये ? ॥ ६३ ॥

पाण्डवाश्च यथा मुक्तास्तथोभौ सात्वतौ युधि ।
कृपश्च कृतवर्मा च भारद्वाजस्य चात्मजः ॥ ६४ ॥

कहो; पांचों पाण्डव, दोनों सात्वतवीर श्रीकृष्ण और सात्यकि, कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा ये युद्धमें कैसे जीते बचे ? ॥ ६४ ॥

यद्यथा यादृशं चैव युद्धं वृत्तं च सांप्रतम् ।
अखिलं श्रोतुमिच्छामि कुशलो ह्यसि संजय ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ११७ ॥

संजय ! युद्धका जो वृत्तान्त जिस प्रकार और जैसे हुआ, वह सब मैं अभी सुनना चाहता हूं । तुम वह सब कहनेमें चतुर हो ॥ ६५ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें दूसरा अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ ११७ ॥

: ३ :

सञ्जय उवाच

शृणु राजन्नवहितो यथा वृत्तो महान्क्षयः ।
कुरूणां पाण्डवानां च समासाद्य परस्परम् ॥ १ ॥

संजय बोले– हे राजन् ! अब आप सावधान होकर कौरव और पाण्डवोंका जिस प्रकार परस्पर युद्ध हुआ और महान् जनसंहार हुआ, सो कथा हम कहते हैं, सुनो ॥ १ ॥

निहते सूतपुत्रे तु पाण्डवेन महात्मना ।
विद्रुतेषु च सैन्येषु समानीतेषु चासकृत् ॥ २ ॥

हे राजेन्द्र ! जिस समय महात्मा पाण्डुकुमार अर्जुनने सूतपुत्र कर्णको मार डाला तब तुम्हारी सब सेना बार बार इधर उधरको भागने और लौटाने लगी ॥ २ ॥

विमुखे तव पुत्रे तु शोकोपहतचेतसि ।
भृशोद्विग्नेषु सैन्येषु दृष्ट्वा पार्थस्य विक्रमम् ॥ ३ ॥

यह सब देखकर आपके पुत्र राजा दुर्योधन मनसे कर्णके शोकसे व्याकुल होकर, युद्ध छोडकर चले गये, तब तुम्हारी सेना भी कुन्तीपुत्र अर्जुनके पराक्रमको देखकर भयसे अत्यंत व्याकुल हो इधर उधरको भागने लगी ॥ ३ ॥

ध्यायमानेषु सैन्येषु दुःखं प्राप्तेषु भारत ।
बलानां मथ्यमानानां श्रुत्वा निनदमुत्तमम् ॥ ४ ॥

हे भारत ! जब तुम्हारी सेना दुःखसे व्याकुल होकर चिन्तामग्न होकर इधर उधर भागने लगी तब मरते हुए वीरोंका जोर जोरका आर्त शब्द सुनकर ॥ ४ ॥

अभिज्ञानं नरेन्द्राणां विकृतं प्रेक्ष्य संयुगे ।
पतितान्रथनीडांश्च रथांश्चापि महात्मनाम् ॥ ५ ॥

और राजाओंके चिन्हस्वरूप ध्वज आदिको युद्धस्थलमें क्षत–विक्षत हुआ देखकर और महात्मा वीरोंके रथ और उनकी बैठकें टूटी पडी देख ॥ ५ ॥

रणे विनिहतान्नागान्दृष्ट्वा पत्तींश्च मारिष ।
आयोधनं चातिघोरं रुद्रस्याक्रीडसंनिभम् ॥ ६ ॥

युद्धभूमिमें सवारों सहित हाथी और पैदल सैनिक मारे गये थे । उस समय यह युद्धभूमि रुद्रदेवकी क्रीडाभूमि श्मशानके समान अत्यन्त भयानक दीखती थी ॥ ६ ॥

अप्रख्यातिं गतानां तु राज्ञां शतसहस्रशः ।
कृपाविष्टः कृपो राजन्वयःशीलसमन्वितः ॥ ७ ॥

वहां सैकडों सहस्रों राजाओंका नाश हुआ था । राजन् ! प्रौढ और उत्तम स्वभाववाले कृपाचार्यके मनमें बडी दया आयी ॥ ७ ॥

अब्रवीत्तत्र तेजस्वी सोऽभिसृत्य जनाधिपम् ।
दुर्योधनं मन्युवशाद्वचनं वचनक्षमः ॥ ८ ॥

और प्रधान वीरोंकी इच्छा जानकर सब वचनोंका अर्थ जाननेवाले, बातें करनेमें अत्यन्त कुशल, तेजस्वी कृपाचार्य क्रोधमें भरकर दुर्योधनके पास जाकर कहने लगे ॥ ८ ॥

दुर्योधन निबोधेदं यत्त्वा वक्ष्यामि कौरव ।
श्रुत्वा कुरु महाराज यदि ते रोचतेऽनघ ॥ ९ ॥

हे पापरहित महाराज कुरुवंशी दुर्योधन ! हम जो इस समय तुमसे कहते हैं, सो ध्यान देकर सुनो और यदि मेरी बात अच्छी जान पडे तो वैसा ही करो ॥ ९ ॥

न युद्धधर्माच्छ्रेयान्वै पन्था राजेन्द्र विद्यते ।
यं समाश्रित्य युध्यन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ १० ॥

हे क्षत्रिय श्रेष्ठ महाराज ! यह बात ठीक है कि, क्षत्रियको युद्धके समान दूसरा सुखका श्रेयस्कर मार्ग नहीं है, इसीलिये क्षत्रिय इसका आश्रय लेकर युद्ध करते हैं ॥ १० ॥

पुत्रो भ्राता पिता चैव स्वस्रेयो मातुलस्तथा ।
संबन्धिबान्धवाश्चैव योध्या वै क्षत्रजीविना ॥ ११ ॥

इसीलिए क्षत्रियलोग युद्धमें बेटे, भाई, बाप, भानजा, मामा और श्वसुर आदि सम्बन्धी तथा बन्धुओंको भी नहीं मानते हैं । इन सबके साथ युद्ध करते हैं ॥ ११ ॥

वधे चैव परो धर्मस्तथाधर्मः पलायने ।
ते स्म घोरां समापन्ना जीविकां जीवितार्थिनः ॥ १२ ॥

युद्धमें शत्रुओंको मारना वा उसके हाथसे मारा जाना ही धर्म और युद्धको छोडना ही अधर्म है । हाय ! आज हम सब क्षत्रिय लोग इसी जीविकाके लिये इस घोर आपत्तिमें पडे हैं ॥ १२ ॥

तत्र त्वां प्रतिवक्ष्यामि किंचिदेव हितं वचः ।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णे चैव महारथे ॥ १३ ॥

तो भी हम तुमसे यहां कुछ हितके वचन कहते हैं । अब पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य और महारथी कर्ण नहीं हैं ॥ १३ ॥

जयद्रथे च निहते तव भ्रातृषु चानघ ।
लक्ष्मणे तव पुत्रे च किं शेषं पर्युपास्महे ॥ १४ ॥

देखो, तुम्हारे बहनोई जयद्रथ, दुःशासन आदि सब भाई और तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण भी मारे गये, अब दूसरा कौन बचा है, कि जिसके आश्रयसे हमलोग रहें ? ॥ १४ ॥

येषु भारं समासज्य राज्ये मतिमकुर्महि ।
ते संत्यज्य तनूर्याताः शूरा ब्रह्मविदां गतिम् ॥ १५ ॥

जिनके आश्रयसे जिनपर युद्धका भार रखकर और जिनके लिये, हम लोग राज्यकी इच्छा करते थे, वे सब शूरवीर शरीर छोड स्वर्गको चले गये ॥ १५ ॥

वयं त्विह विनाभूता गुणवद्भिर्महारथैः ।
कृपणं वर्तयिष्याम पातयित्वा नृपान्बहून् ॥ १६ ॥

हम लोग भी अब यहां उन भीष्म आदि गुणवान् महारथी वीरोंके सहयोगके विना दुःखसे दिन काट रहे हैं । और बहुतसे राजाओंका नाश करके शोचनीय स्थिति प्रत आ गये हैं ॥१६॥

सर्वैरपि च जीवद्भिर्बीभत्सुरपराजितः ।
कृष्णनेत्रो महाबाहुर्देवैरपि दुरासदः ॥ १७ ॥

जितने जीते हैं, यदि सब मिलकर अर्जुनसे लडे तो भी उसे जीत नहीं सकेंगे, क्योंकि स्वयं श्रीकृष्ण जैसे नेताके रहते हुए महाबाहु अर्जुन देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं ॥ १७ ॥

इन्द्रकार्मुकवज्राभमिन्द्रकेतुमिवोच्छ्रितम् ।
वानरं केतुमासाद्य संचचाल महाचमूः ॥ १८ ॥

उनकी इन्द्रके धनुष–वज्रके समान तेजस्वी और ऊंची वानरकी ध्वजा देखते ही और उसके पास पहुंचतेही तुम्हारी विशाल सेना भयसे विचलित होने लगती है ॥ १८ ॥

सिंहनादेन भीमस्य पाञ्चजन्यस्वनेन च ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषात्संहृष्यन्ति मनांसि नः ॥ १९ ॥

भीमसेनके सिंहनाद, श्रीकृष्णके पाञ्चजन्य शंखकी ध्वनि और गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनकर हम लोगोंके रोएं खडे होजाते हैं, मन कांप उठता है ॥ १९ ॥

चरन्तीव महाविद्युन्मुष्णन्ती नयनप्रभाम् ।
अलातमिव चाविद्धं गाण्डीवं समदृश्यत ॥ २० ॥

अर्जुनका धनुष चमकती हुई बिजली, जलती हुई आग जैसे नेत्रोंकी प्रभा हरण करता सा मालूम होता है और जैसे अलात चक्र घूमता हुआ देखा जाता है, उसी प्रकार चारों ओर युद्धमें दीखता है ॥ २० ॥

जाम्बूनदविचित्रं च धूयमानं महद्धनुः ।
दृश्यते दिक्षु सर्वासु विद्युदभ्रघनेष्विव ॥ २१ ॥

जैसे बादलमें बिजली दीखती है, ऐसे ही हम लोगोंको सोनेके तारोंसे खिचा हुआ अर्जुनका महान् धनुष चारों ओर दिखाई दे रहा है ॥ २१ ॥

उह्यमानश्च कृष्णेन वायुनेव बलाहकः ।
तावकं तद्बलं राजन्नर्जुनोऽस्त्रविदां वरः ।
गहनं शिशिरे कक्षं ददाहाग्निरिवोत्थितः ॥ २२ ॥

हमें चारों ओर ऐसा दिखाई देता है, मानो कृष्ण सोनेके जालवाले अर्जुन युक्त रथको इस प्रकार उडाये आते हैं, जैसे मेघोंको वायु । हे राजन् ! अस्त्र–शस्त्रविद्या जाननेवालोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने तुम्हारी सेनाका इस प्रकार नाश कर दिया जैसे ग्रीष्मऋतुमें घोर बढी हुई अग्नि सूखे काठको जलाती है ॥ २२ ॥

गाहमानमनीकानि महेन्द्रसदृशप्रभम् ।
धनंजयमपश्याम चतुर्दन्तमिव द्विपम् ॥ २३ ॥

हमें चारों ओरसे देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी तेजस्वी अर्जुन ही सेनामें आता दीखता है, और हम उसे देखकर ऐसे डरते हैं, जैसे चार दांतवाले हाथीको देखकर साधारण मनुष्य ॥ २३ ॥

विक्षोभयन्तं सेनां ते त्रासयन्तं च पार्थिवान् ।
धनंजयमपश्याम नलिनीमिव कुञ्जरम् ॥ २४ ॥

जैसे दुर्बल कमलको हाथी उखाडकर फेंक देता है ऐसे ही सेनाको मारते और राजाओंको डराते अर्जुनहीको हम चारों ओर देख रहे हैं ॥ २४ ॥

त्रासयन्तं तथा योधान्धनुर्घोषेण पाण्डवम् ।
भूय एनमपश्याम सिंहं मृगगणा इव ॥ २५ ॥

जैसे सिंहको देख हरिण घबडाते हैं, वैसे ही अपने सब वीरोंको मारते और धनुष टङ्कारते पाण्डुकुमार अर्जुनको देखकर डरते हैं, ऐसा हम देखते हैं ॥ २५ ॥

सर्वलोकमहेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम् ।
आमुक्तकवचौ कृष्णौ लोकमध्ये विरेजतुः ॥ २६ ॥

सब जगत्‌के वीरोंमें श्रेष्ठ धनुषधारी कृष्ण और अर्जुन अपने अंगोंमें कवच धारण करके योद्धाओंके समूहमें शोभायमान् होते हैं ॥ २६ ॥

अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत ।
संग्रामस्यातिघोरस्य वध्यतां चाभितो युधि ॥ २७ ॥

हे भारत राजन् ! आज सत्रह दिन हुए कि, परस्पर घोर युद्ध हो रहा है, और लाखों वीरोंका युद्धमें नाश हो चुका है ॥ २७ ॥

वायुनेव विधूतानि तवानीकानि सर्वशः ।
शरदम्भोदजालानि व्यशीर्यन्त समन्ततः ॥ २८ ॥

जैसे शरदकालके मेघ वायु लगनेसे फट जाते हैं, ऐसे ही अर्जुनकी मारसे तुम्हारी सेना सब ओर भागी जाती है ॥ २८ ॥

तां नावमिव पर्यस्तां भ्रान्तवातां महार्णवे ।
तव सेनां महाराज सव्यसाची व्यकम्पयत् ॥ २९ ॥

महाराज ! जैसे महा समुद्रमें पडी नावको वायु हिला देता है, ऐसे ही सव्यसाची अर्जुनने तुम्हारी सेनाको कंपा दिया है ॥ २९ ॥

क नु ते सूतपुत्रोऽभूत्क नु द्रोणः सहानुगः ।
अहं क च क चात्मा ते हार्दिक्यश्च तथा क नु
दुःशासनश्च भ्राता ते भ्रातृभिः सहितः क नु ॥ ३० ॥

अर्जुनके आगे सूतपुत्र कर्ण, सहायकों सहित द्रोणाचार्य क्या थे ? हम, तुम, कृतवर्मा, भाईयोंके सहित तुम्हारे भाई दुःशासन, अर्जुनके बाणोंके आगे क्या वस्तु हैं ? ॥ ३० ॥

बाणगोचरसंप्राप्तं प्रेक्ष्य चैव जयद्रथम् ।
संबन्धिनस्ते भ्रातृंश्च सहायान्मातुलांस्तथा ॥ ३१ ॥

देखो, जयद्रथको अर्जुनके बाणोंका निशाना बनते ये सभी वीर देखते थे, परन्तु तुम्हारे सम्बन्धी, भाई, सहायक और मामा ॥ ३१ ॥

सर्वान्विक्रम्य मिषतो लोकांश्चाक्रम्य मूर्धनि ।
जयद्रथो हतो राजन्किं नु शेषमुपास्महे ॥ ३२ ॥

सबको अपने पराक्रमसे जीतकर और सबके शिरपर होकर सबके देखते देखते जयद्रथको मार डाला । राजन् ! अब कौन ऐसा वीर बचा है जिसका हम विश्वास करें ? ॥ ३२ ॥

को वेह स पुमानस्ति यो विजेष्यति पाण्डवम् ।
तस्य चास्त्राणि दिव्यानि विविधानि महात्मनः ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषो वीर्याणि हरते हि नः ॥ ३३ ॥

कौन यहां ऐसा पुरुष है जो पाण्डुपुत्र अर्जुनको जीतेगा ? महात्मा अर्जुन नाना प्रकारके दिव्य अस्त्रशस्त्रोंको जानते हैं । उनके गाण्डीव धनुषका टङ्कार सुनते ही हमारा धीर जाता रहता है ॥ ३३ ॥

नष्टचन्द्रा यथा रात्रिः सेनेयं हतनायका।
नागभग्नद्रुमा शुष्का नदीवाकुलतां गता ॥ ३४ ॥

जैसे चन्द्रमाके विना रात्रि अन्धकारमयी हो जाती है, ऐसे ही हमारी सेना भी सेनापतिके मरनेसे शून्य हो गयी है, जैसे तटके वृक्षोंको हाथी तोडकर नदीमें गिरा देता है, और वह सूखी नदी इधर उधरको बहने लगती है, ऐसे ही हमारी सेना व्याकुल हो गयी है ॥ ३४ ॥

ध्वजिन्यां हतनेत्रायां यथेष्टं श्वेतवाहनः।
चरिष्यति महाबाहुः कक्षेऽग्निरिव संज्वलन् ॥ ३५ ॥

जैसे जलती हुई अग्नि तृणके ढेरमें घूमती है, ऐसे ही श्वेतवाहन महाबाहु अर्जुन भी इस विशाल सेनाके नेता नष्ट होनेके कारण तुम्हारी सेनामें इच्छानुसार घूम रहे हैं ॥ ३५ ॥

सात्यकेश्चैव यो वेगो भीमसेनस्य चोभयोः।
दारयेत गिरीन्सर्वाञ्शोषयेत च सागरान् ॥ ३६ ॥

सात्यकि और भीमसेन इन दोनों वीरोंका वेग ऐसा भारी है, जिससे पर्वत फट सकते हैं। समुद्र सूख सकते हैं ॥ ३६ ॥

उवाच वाक्यं यद्भीमः सभामध्ये विशां पते।
कृतं तत्सकलं तेन भूयश्चैव करिष्यति ॥ ३७ ॥

हे राजन्! भीमसेनने जो द्यूतसभामें प्रतिज्ञा की थी, उसको उन्होंने सत्य कर दिखाया और जो रही है, उसे भी वे अवश्य ही पूर्ण करेंगे ॥ ३७ ॥

प्रमुखस्थे तदा कर्णे बलं पाण्डवरक्षितम्।
दुरासदं तथा गुप्तं गूढं गाण्डीवधन्वना ॥ ३८ ॥

हे राजन्! जिस समय कर्णके साथ युद्ध हो रहा था, तब कर्ण सन्मुख थाही, तो भी पाण्डवोंसे रक्षित सेना उसके लिये दुर्जय थी, कारण गाण्डीव धनुपधारी अर्जुन घोर व्यूहके द्वारा उसकी रक्षा करते थे ॥ ३८ ॥

युष्माभिस्तानि चीर्णानि यान्यसाधूनि साधुषु।
अकारणकृतान्येव तेषां वः फलमागतम् ॥ ३९ ॥

तुम लोगोंने महात्मा पाण्डवोंके सङ्ग वैसाही अकारण अधर्म किया है जैसा अधर्म साधुओंके सङ्ग नहीं करना चाहिये, उसीका यह फल हो रहा है ॥ ३९ ॥

आत्मनोऽर्थे त्वया लोको यत्नतः सर्व आहृतः।
स ते संशयितस्तात आत्मा च भरतर्षभ ॥ ४० ॥

हे भरतकुलसिंह पुत्र दुर्योधन! तुमने अपने सुखके लिये यत्न करके सब जगत्के क्षत्रियोंका एकत्र करके नाश कराया और अपनी भी रक्षा न कर सके, तुम्हारा ही जीवन संशयमें पड गया है ॥ ४० ॥

रक्ष दुर्योधनात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम् ।
भिन्ने हि भाजने तात दिशो गच्छति तद्गतम् ॥ ४१ ॥

हे पुत्र ! तुम अपनी रक्षा करो क्योंकि अपनी रक्षासे सब सुख होते हैं। अपना शरीर ही सब सुखोंका पात्र है। पात्र टूटनेसे उसमें रक्खी सब वस्तु गिर जाती हैं ॥ ४१ ॥

हीयमानेन वै संधिः पर्येष्टव्यः समेन च ।
विग्रहो वर्धमानेन नीतिरेषा बृहस्पतेः ॥ ४२ ॥

बृहस्पतिने कहा है कि, जब अपना पक्ष दुर्बल हो, या कुछ हानि हो गई हो, तब शत्रुसे मेलकर लेना चाहिये और जब अपनी बढती हो तब फिर लडना उचित है ॥ ४२ ॥

ते वयं पाण्डुपुत्रेभ्यो हीनाः स्वबलशक्तितः ।
अत्र ते पाण्डवैः सार्धं संधिं मन्ये क्षमं प्रभो ॥ ४३ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! इस समय हम लोगोंका पक्ष पाण्डवोंसे बहुत ही शक्ति और बलमें दुर्बल है, इसलिये अब उनसे सन्धि कर लेनी चाहिये यही मैं उचित समझता हूं ॥ ४३ ॥

न जानीते हि यः श्रेयः श्रेयसश्चावमन्यते ।
स क्षिप्रं भ्रश्यते राज्यान्न च श्रेयोऽनुविन्दति ॥ ४४ ॥

जो राजा कल्याणको कल्याण नहीं समझता, दुःखके मार्गमें चलता है और श्रेष्ठ जनोंका अपमान करता है, उसका राज्य शीघ्र ही नाश हो जाता है। और उसे कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती, वह महा दुःख भोगता है ॥ ४४ ॥

प्रणिपत्य हि राजानं राज्यं यदि लभेमहि ।
श्रेयः स्यान्न तु मौढ्येन राजन्गन्तुं पराभवम् ॥ ४५ ॥

हे राजन् ! यदि आज हमको राजा युधिष्ठिरको दण्डवत् करनेसे भी राज्य मिले, तो भी अच्छा है। परन्तु मूर्खतासे पराजय स्वीकार करके कभी भला नहीं होगा ॥ ४५ ॥

वैचित्रवीर्यवचनात्कृपाशीलो युधिष्ठिरः ।
विनियुञ्जीत राज्ये त्वां गोविन्दवचनेन च ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिर कृपाशील हैं। वे महाराज धृतराष्ट्र और श्रीकृष्णके कहनेसे तुम्हें अवश्य राज्य देंगे ॥ ४६ ॥

यद्ब्रूयाद्धि हृषीकेशो राजानमपराजितम् ।
अर्जुनं भीमसेनं च सर्वं कुर्युरसंशयम् ॥ ४७ ॥

श्रीकृष्ण अपराजित राजा युधिष्ठिर, अर्जुन और भीमसेन आदि पाण्डवोंसे जो कुछ कहेंगे, वे सब लोग निःसंदेह वैसा ही करेंगे ॥ ४७ ॥

नातिक्रमिष्यते कृष्णो वचनं कौरवस्य ह ।
धृतराष्ट्रस्य मन्येऽहं नापि कृष्णस्य पाण्डवः ॥ ४८ ॥

हमें यह निश्चय है कि, महाराज धृतराष्ट्रके वचनको परमात्मा श्री कृष्णचन्द्र मानेंगे और श्रीकृष्णचन्द्रके वचनको युधिष्ठिर अवश्य मानेंगे ॥ ४८ ॥

एतत्क्षममहं मन्ये तव पार्थैरविग्रहम् ।
न त्वा ब्रवीमि कार्पण्यान्न प्राणपरिरक्षणात् ।
पथ्यं राजन्ब्रवीमि त्वां तत्परासुः स्मरिष्यसि ॥ ४९ ॥

हम पाण्डवोंसे डरकर अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये तुमसे कुछ नहीं कहते, वरन सब जगत्के कल्याणके ही लिये कहते हैं कि पाण्डवोंसे मेल करना अच्छा है, पाण्डवोंके साथ युद्ध करना अच्छा नहीं मानता हूं । हे राजन् ! हम ये तुमसे ऐसे हितकर वचन कहते हैं, जैसे वैद्य रोगीको पथ्य देता है, यदि अब भी न मानोगे तो बहुत पछताओगे और मरणासन्न अवस्थामें यह मेरी बात याद करोगे ॥ ४९ ॥

इति वृद्धो विलप्यैतत्कृपः शारद्वतो वचः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य शुशोच च मुमोह च ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ १६७ ॥

ऐसा कहकर शरद्वान्के पुत्र बूढे कृपाचार्य ऊंची लंबी गरम श्वास लेकर विलाप करने लगे और शोकसे मूर्छित हो गये ॥ ५० ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ १६७ ॥

: ४ :

सञ्जय उवाच

एवमुक्तस्ततो राजा गौतमेन यशस्विना ।
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च तूष्णीमासीद्विशां पते ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे पृथ्वीनाथ ! यशस्वी गौतमवंशी कृपाचार्यके ऐसे वचन सुन, राजा दुर्योधन ऊंचा गरम स्वांस लेकर कुछ देरतक चुप रह गये ॥ १ ॥

ततो मुहूर्तं स ध्यात्वा धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
कृपं शारद्वतं वाक्यमित्युवाच परंतपः ॥ २ ॥

थोडे समयतक विचार करनेके पश्चात् शत्रुनाशन आपके महामना पुत्र दुर्योधन शरद्वतपुत्र कृपाचार्यसे ऐसे वचन बोले ॥ २ ॥

यत्किंचित्सुहृदा वाच्यं तत्सर्वं श्रावितो ह्यहम् ।
कृतं च भवता सर्वं प्राणान्संत्यज्य युध्यता ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! हितैषी मित्रोंको जो कुछ कहना चाहिये, आपने वैसा ही हमसे कहा और इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि आपने हमारे लिये प्राणोंका भी मोह छोडकर सब कुछ किया ॥ ३ ॥

गाहमानमनीकानि युध्यमानं महारथैः ।
पाण्डवैरतितेजोभिर्लोकस्त्वामनुदृष्टवान् ॥ ४ ॥

सब वीरोंने देखा कि आप शत्रुओंकी सेनामें घुसकर, अत्यन्त तेजस्वी महारथी पाण्डवोंके सङ्ग आपने घोर युद्ध किया ॥ ४ ॥

सुहृदा यदिदं वाच्यं भवता श्रावितो ह्यहम् ।
न मां प्रीणाति तत्सर्वं मुमूर्षोरिव भेषजम् ॥ ५ ॥

यद्यपि आप मेरे हितचिंतक हैं और आपने सब वचन हमारे कल्याणहीके कहे तो भी मुझे इस प्रकार अच्छे नहीं लगे, जैसे मरनेवाले रोगीको औषधि ॥ ५ ॥

हेतुकारणसंयुक्तं हितं वचनमुत्तमम् ।
उच्यमानं महाबाहो न मे विप्राग्र्य रोचते ॥ ६ ॥

हे महाबाहो ! ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मैं क्या करूं, आपके हितकारक उत्तम वचन कारण और अर्थोंसे भरे हैं, तो भी मुझे अच्छे नहीं लगे ॥ ६ ॥

राज्याद्विनिकृतोऽस्माभिः कथं सोऽस्मासु विश्वसेत् ।
अक्षद्यूते च नृपतिर्जितोऽस्माभिर्महाधनः ।
स कथं मम वाक्यानि श्रद्दध्याद्भूय एव तु ॥ ७ ॥

हमें यह संदेश है कि जिस महाधनवाले राजा युधिष्ठिरको अधर्मसे जुएमें जीतकर राज्यसे निकालकर निर्धन बना दिया था, वे अब हमारा विश्वास किस लिये करेंगे ? वह युधिष्ठिर अब मेरी बातोंका कैसे विश्वास करेंगे ? ॥ ७ ॥

तथा दौत्येन संप्राप्तः कृष्णः पार्थहिते रतः ।
प्रलब्धश्च हृषीकेशस्तच्च कर्म विरोधितम् ।
स च मे वचनं ब्रह्मन्कथमेवाभिमंस्यते ॥ ८ ॥

और यह भी आप जानते हैं कि सदा पाण्डवोंहीका कल्याण चाहनेवाले श्रीकृष्ण हमारे यहां दूत बनकर आये थे । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! हमने विना विचारे श्रीकृष्णका निरादर किया था, सो अब वो हमारी बात कैसे मानेंगे ? ॥ ८ ॥

+

विललाप हि यत्कृष्णा सभामध्ये समेयुषी ।
न तन्मर्षयते कृष्णो न राज्यहरणं तथा ॥ ९ ॥

सभामें जो बलपूर्वक लायी हुई द्रौपदी रोई थी और हमने पाण्डवोंको राज्यसे निकाल दिया था, भला श्रीकृष्ण इन बातोंको कब क्षमा करेंगे ? ॥ ९ ॥

एकप्राणावुभौ कृष्णावन्योन्यं प्रति संहतौ ।
पुरा यच्छ्रुतमेवासीदद्य पश्यामि तत्प्रभो ॥ १० ॥

हे गुरुजी ! हमने जो पहले सुना था, कि श्रीकृष्ण और अर्जुनका एक ही प्राण है, सो अब प्रत्यक्ष देख लिया ॥ १० ॥

स्वस्रीयं च हतं श्रुत्वा दुःखं स्वपिति केशवः ।
कृतागसो वयं तस्य स मदर्थं कथं क्षमेत् ॥ ११ ॥

अपने भानजे अभिमन्युको मरा सुनकर क्या कृष्ण सुखसे सोते हैं ? कदापि नहीं । हम लोगोंने उनके बहुत अपराध किये हैं, इसलिये वे हमारे ऊपर कैसे क्षमा करेंगे ? ॥ ११ ॥

अभिमन्योर्विनाशेन न शर्म लभतेऽर्जुनः ।
स कथं मद्धिते यत्नं प्रकरिष्यति याचितः ॥ १२ ॥

अभिमन्युके मरनेसे अर्जुनको बहुत दुःख हुआ है सो वे प्रार्थना करनेपर भी हमारे कल्याणका यत्न क्यों करेंगे ? ॥ १२ ॥

मध्यमः पाण्डवस्तीक्ष्णो भीमसेनो महाबलः ।
प्रतिज्ञातं च तेनोग्रं स भज्येत न संनमेत् ॥ १३ ॥

फिर मझले पाण्डव महाबलवान् भीमसेन महाक्रोधी हैं, उन्होंने उग्र प्रतिज्ञा की है । वे शरीरके टुकडे होनेपर भी हमसे मेल न करेंगे ॥ १३ ॥

उभौ तौ बद्धनिस्त्रिंशावुभौ चाबद्धकङ्कटौ ।
कृतवैरावुभौ वीरौ यमावपि यमोपमौ ॥ १४ ॥

आप जानते हैं कि दोनों भाई नकुल और सहदेव यम और मृत्युके समान वीर तथा मेरी ओरसे मनमें भारी वैर रखते हैं । इसीलिये, रातदिन तलवार बांधे और कवच पहने ही रहते हैं, भला वे कैसे क्षमा करेंगे ? ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च कृतवैरौ मया सह ।
तौ कथं मद्धिते यत्नं प्रकुर्यातां द्विजोत्तम ॥ १५ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! धृष्टद्युम्न और शिखण्डीके मनमें मेरी ओरसे कितना वैर है सो आप जानते ही हैं, भला वे मेरे हितके लिये कैसे यत्न करेंगे ? ॥ १५ ॥

दुःशासनेन यत्कृष्णा एकवस्त्रा रजस्वला ।
परिक्लिष्टा सभामध्ये सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ १६ ॥

दुःशासनने रजस्वला और एक वस्त्रधारिणी द्रौपदीको भरी सभामें लाकर जो सब लोगोंके आगे उसे महान् दुःख दिया था ॥ १६ ॥

तथा विवसनां दीनां स्मरन्त्यद्यापि पाण्डवाः ।
न निवारयितुं शक्याः संग्रामात्ते परन्तपाः ॥ १७ ॥

और उसका वस्त्र उतारकर, जो उसकी दयनीय दशा की गई, पाण्डवोंको अभीतक द्रौपदीकी वही दशा याद देती है, इसलिये उन शत्रुनाशन वीरोंको युद्धसे कोई नहीं रोक सकता ॥१७॥

यदा च द्रौपदी कृष्णा मद्विनाशाय दुःखिता ।
उग्रं तेपे तपः कृष्णा भर्तृणामर्थसिद्धये ।
स्थण्डिले नित्यदा शेते यावद्वैरस्य यातना ॥ १८ ॥

जिस दिनसे मैंने अपने नाशके लिये द्रौपदीको दुःख दिया है, तभीसे वह मेरे विनाशका संकल्प लेकर द्रौपदी अपने पतियोंके इच्छित मनोरथकी सिद्धिके लिये घोर तपस्या कर रही है और पृथ्वीपर सोती है और जबतक वैरका बदला न हो चुकेगा तबतक सोवेगी ॥१८॥

निक्षिप्य मानं दर्पं च वासुदेवसहोदरा ।
कृष्णायाः प्रेष्यवद्भूत्वा शुश्रूषां कुरुते सदा ॥ १९ ॥

और वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णकी सगी बहन सुभद्रा मान और अभिमान छोडकर दासीके समान सदा उनकी सेवा कर रहीं है ॥ १९ ॥

इति सर्वं समुन्नद्धं न निर्वाति कथंचन ।
अभिमन्योर्विनाशेन स संधेयः कथं मया ॥ २० ॥

इस प्रकार इन कार्योंसे वैरकी आग प्रज्वलित हो गई है, वह किसी प्रकार बुझ नहीं सकती। पाण्डव लोग इन बातोंको कैसे भूलेंगे ? अभिमन्युके मरनेके पश्चात् अब वह मुझसे कैसे सन्धि करेंगे ? ॥ २० ॥

कथं च नाम भुक्त्वेमां पृथिवीं सागराम्बराम् ।
पाण्डवानां प्रसादेन भुञ्जीयां राज्यमल्पकम् ॥ २१ ॥

मैंने समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीके राज्यका उपभोग किया है सो मैं अब पाण्डवोंने कृपासे दिया हुआ राज्य कैसे भोगूंगा ? ॥ २१ ॥

उपर्युपरि राज्ञां वै ज्वलितो भास्करो यथा ।
युधिष्ठिरं कथं पश्चादनुयास्यामि दासवत् ॥ २२ ॥

और सब राजाओंके शिरपर अपना तेज सूर्यके समान प्रकाशित किया है, अब सब राज्यका भोग करके युधिष्ठिरके पीछे दासके समान कैसे चलूंगा ? ॥ २२ ॥

कथं भुक्त्वा स्वयं भोगान्दत्त्वा दायांश्च पुष्कलान् ।
कृपणं वर्तयिष्यामि कृपणैः सह जीविकाम्　　॥ २३ ॥
अनेक भारी भारी धन दान देकर और स्वयं सब भोगोंको भोगकर, अब दरिद्री पुरुषोंके सङ्ग दीनतापूर्ण जीविकाका आश्रय ले दरिद्र कैसे भोगूंगा ॥ २३ ॥

नाभ्यसूयामि ते वाक्यमुक्तं स्निग्धं हितं त्वया ।
न तु संधिमहं मन्ये प्राप्तकालं कथंचन　　॥ २४ ॥
मैं आपके वचनोंकी निन्दा नहीं करता, क्योंकि आपने हमारे हितके लिये स्नेहवश अच्छे वचन कहे हैं । परन्तु अब सन्धि करनेके लिये, किसी प्रकार समय भी नहीं रहा है, ऐसा मैं मानता हूं ॥ २४ ॥

सुनीतमनुपश्यामि सुयुद्धेन परंतप ।
नायं क्लीबयितुं कालः संयोद्धुं काल एव नः　　॥ २५ ॥
हे शत्रुतापन ! इस समय केवल अच्छी तरह युद्धहीसे पाण्डवोंका जीतना अच्छा जानता हूं । अब कायर बनकर युद्ध छोडना अच्छा नहीं । इस समय हमें अपने पराक्रमसे घोर युद्ध करना ही उचित है, ॥ २५ ॥

इष्टं मे बहुभिर्यज्ञैर्दत्ता विप्रेषु दक्षिणाः ।
प्राप्ताः क्रमश्रुता वेदाः शत्रूणां मूर्ध्नि च स्थितम्　　॥ २६ ॥
हम अनेक यज्ञ कर चुके और ब्राह्मणको मन भरके दक्षिणा भी दे चुके, हे भगवन् ! हमें अब क्या करना शेष है । देखिये सब भोग भोग चुके, वेदोंका श्रवण किया, शत्रुओंके माथे पर बैठे ॥ २६ ॥

भृत्या मे सुभृतास्तात दीनश्चाभ्युद्धृतो जनः ।
यातानि परराष्ट्राणि स्वराष्ट्रमनुपालितम्　　॥ २७ ॥
तात ! दासोंका योग्य रीतिसे पालन करा, दुखियोंको दुःखसे छुडाया, शत्रुओंके राज्य छीन लिये और अपने राज्यकी रक्षा की ॥ २७ ॥

भुक्ताश्च विविधा भोगास्त्रिवर्गः सेवितो मया ।
पितृणां गतमानृण्यं क्षत्रधर्मस्य चोभयोः　　॥ २८ ॥
मैंने सब भोग भोगे, धन, धर्म और सब काम प्राप्त किये, पितरोंसे भी अनृण हो गया, और क्षत्रिय धर्मका भी पालन हो गया । इसी प्रकार दोनों ऋणोंसे उऋण हो गया ॥ २८ ॥

न ध्रुवं सुखमस्तीह कुतो राज्यं कुतो यशः ।
इह कीर्तिर्विधातव्या सा च युद्धेन नान्यथा　　॥ २९ ॥
जगत्में कोई भी सुख नित्य नहीं है, तो राज्य और यश कैसे स्थिर रहेंगे ? यहां तो कीर्तिका ही अनुष्ठान करना है, और कीर्ति युद्धके विना किसी दूसरे उपायसे नहीं मिलती । ॥२९॥

गृहे यत्क्षत्रियस्यापि निधनं तद्विगर्हितम् ।
अधर्मः सुमहानेष यच्छय्यामरणं गृहे ॥ ३० ॥

क्षत्रियोंको भी घरमें मरना बहुत लज्जाकी बात है, घरमें खाटपर सोकर मरना क्षत्रियके लिये बडा पाप है ॥ ३० ॥

अरण्ये यो विमुञ्चेत संग्रामे वा तनुं नरः ।
क्रतूनाहृत्य महतो महिमानं स गच्छति ॥ ३१ ॥

जो क्षत्रिय जन्ममें अनेक यज्ञ करके वनमें तपस्यासे या युद्धमें लडकर शरीर छोडता है, उसे धन्य है और वही श्रेष्ठ कहाता है ॥ ३१ ॥

कृपणं विलपन्नार्तो जरयाभिपरिप्लुतः ।
म्रियते रुदतां मध्ये ज्ञातीनां न स पूरुषः ॥ ३२ ॥

जो मूर्ख क्षत्रिय बुढापेसे कांपता हुआ, जो रोग के दुःखसे पीडित, रोता हुआ, रोते हुए स्वजनोंके बीचमें शरीर छोडता है उसे धिकार है और वह नपुंसक है वह पुरुष कहलाने योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥

त्यक्त्वा तु विविधान्भोगान्प्राप्तानां परमां गतिम् ।
अपीदानीं सुयुद्धेन गच्छेयं सत्सलोकताम् ॥ ३३ ॥

जो महात्मा हमारे लिये उत्तम उत्तम कर्म करके नाना प्रकारके भोगोंका परित्याग करके स्वर्गको चले गये, हम भी अब घोर युद्ध करके उन्होंके पास जाना चाहते हैं ॥ ३३ ॥

शूराणामार्यवृत्तानां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।
धीमतां सत्यसंधानां सर्वेषां क्रतुयाजिनाम् ॥ ३४ ॥

जो महात्मा वीर अपने जन्ममें उत्तम कर्म करते हैं तथा युद्धसे कभी पीछे नहीं लौटते और जो बुद्धिमान् अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करते हैं और बडे यज्ञ करते हैं ॥ ३४ ॥

शस्त्रावभृथमाप्तानां ध्रुवं वासस्त्रिविष्टपे ।
मुदा नूनं प्रपश्यन्ति शुभ्रा ह्यप्सरसां गणाः ॥ ३५ ॥

युद्धमें शस्त्रकी धारामें अवभृत स्नान करके मरते हैं । उन सबको अवश्य ही स्वर्गमें वास मिलता है, अनेक अप्सराएं प्रसन्नतासे उनकी ओर देखा करती हैं । ॥ ३५ ॥

पश्यन्ति नूनं पितरः पूजिताञ्शक्रसंसदि ।
अप्सरोभिः परिवृतान्मोदमानांस्त्रिविष्टपे ॥ ३६ ॥

स्वर्गमें इन्द्रराजकी सभामें वीरोंके सङ्ग अनेक अप्सरा रहती हैं, और उनके पितर अथवा देवता उनको सम्मानित देखकर प्रसन्न होते हैं ॥ ३६ ॥

पन्थानममरैर्यातं शूरैश्चैवानिवर्तिभिः ।
अपि तैः सङ्गतं मार्गं वयमप्यारुहेमहि ॥ ३७ ॥
जिस मार्गपर देवता और युद्धसे न लौटनेवाले शूरवीर जाते हैं, हमलोग भी उसीसे स्वर्गमें जाना चाहते हैं ॥ ३७ ॥

पितामहेन वृद्धेन तथाचार्येण धीमता ।
जयद्रथेन कर्णेन तथा दुःशासनेन च । ॥ ३८ ॥
बूढे पितामह भीष्म, बुद्धिमान् गुरु द्रोणाचार्य, जयद्रथ, कर्ण और दुःशासन आदि ॥३८॥

घटमाना मदर्थेऽस्मिन्हताः शूरा जनाधिपाः ।
शेरते लोहिताक्ताङ्गाः पृथिव्यां शरविक्षताः ॥ ३९ ॥
अनेक प्रधान क्षत्रिय और वीर राजालोग हमारी विजयके लिये बाणोंसे क्षतविक्षत हो रुधिरमें भीगे शरीरसे मरे हुए संग्राममें पडे हैं ॥ ३९ ॥

उत्तमास्त्रविदः शूरा यथोक्तक्रतुयाजिनः ।
त्यक्त्वा प्राणान्यथान्यायमिन्द्रसद्मसु धिष्ठिताः ॥ ४० ॥
ये सब बुद्धिमान् बलवान् और घोर योद्धा थे, ये सब शास्त्रोक्त विधिसे यज्ञ करनेवाले, शस्त्र विद्याके पण्डित और वीर थे, अब युद्धमें युक्त रीतिसे प्राणोंको छोडकर इन्द्र लोकमें विहार करते हैं । ॥ ४० ॥

तैस्त्वयं रचितः पन्था दुर्गमो हि पुनर्भवेत् ।
सम्पतद्भिर्महावेगैरितो याद्भिश्च सद्गतिम् ॥ ४१ ॥
उन सब वीर महात्माओंने कठिनतासे जाने योग्य स्वर्गका मार्ग सीधा करके निर्माण किया है, वह पुनः महान् वेगसे सद्गतिको जानेवाले वीरोंसे कठिन किया जाय ॥ ४१ ॥

ये मदर्थे हताः शूरास्तेषां कृतमनुस्मरन् ।
ऋणं तत्प्रतिमुञ्चानो न राज्ये मन आदधे ॥ ४२ ॥
जो शूर योद्धा मेरे लिये मर गये हैं, उनका कर्म देखकर मुझे ऐसा जान पडता है कि मैं उनका बहुत ऋणी हूं । इसीसे अब राज्य करनेकी इच्छा नहीं करता । ॥ ४२ ॥

पातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितामहान् ।
जीवितं यदि रक्षेयं लोको मां गर्हयेद्ध्रुवम् ॥ ४३ ॥
मित्र, भाई, पितामह और गुरु आदि महात्माओंको मरवाकर यदि मैं अब अपने प्राणोंकी रक्षा करूं तो निश्चय ही लोग मुझे धिक्कार देंगे ॥ ४३ ॥

कीदृशं च भवेद्राज्यं मम हीनस्य बन्धुभिः ।
सखिभिश्च सुहृद्भिश्च प्रणिपत्य च पाण्डवम् ॥ ४४ ॥

भाई और मित्रोंके विना अब मैं क्या राज्य करूंगा ? और विशेष कर युधिष्ठिरको प्रणाम करके जो राज्य मुझे मिलेगा, वह कैसा होगा ? ॥ ४४ ॥

सोऽहमेतादृशं कृत्वा जगतोऽस्य पराभवम् ।
सुयुद्धेन ततः स्वर्गं प्राप्स्यामि न तदन्यथा ॥ ४५ ॥

सो अब हमने दृढ सङ्कल्प यही किया है, कि जगत्का विनाश करके उत्तम युद्धसे ही स्वर्गको जांय । मेरे लिये इससे दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥ ४५ ॥

एवं दुर्योधनेनोक्तं सर्वे सम्पूज्य तद्वचः ।
साधु साध्विति राजानं क्षत्रियाः सम्बभाषिरे ॥ ४६ ॥

राजा दुर्योधनके ऐसे वचन सुन सब क्षत्रियोंने प्रसन्न होकर धन्य धन्य कहकर उसका सन्मान किया ॥ ४६ ॥

पराजयमशोचन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे ।
सर्वे सुनिश्चिता योद्धुमुदग्रमनसोऽभवन् ॥ ४७ ॥

और सबने पराजयका दुःख छोडकर अपनी विजयकी इच्छा करके, पराक्रमयुक्त युद्ध करनेका निश्चय किया । युद्ध करनेके लिये पक्का विचार करके सबके हृदयमें तीव्र उत्साह उत्पन्न हुआ ॥ ४७ ॥

ततो वाहान्समाश्वास्य सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
ऊने द्वियोजने गत्वा प्रत्यतिष्ठन्त कौरवाः ॥ ४८ ॥

तब सब योद्धाओंने अपने वाहनोंको विश्वास देकर, युद्धका स्वागत किया । सब क्षत्रिय योद्धाओंने अपने डेरे आठ कोसतक दूर जाकर लगाये ॥ ४८ ॥

आकाशे विद्रुमे पुण्ये प्रस्थे हिमवतः शुभे ।
अरुणां सरस्वतीं प्राप्य पपुः सस्नुश्च तज्जलम् ॥ ४९ ॥

आकाशके नीचे पवित्र, वृक्ष रहित सुंदर हिमाचलकी तरहटीमें जाकर सबने पवित्र अरुणा सरस्वतीका स्नान और जलपान किया ॥ ४९ ॥

तव पुत्राः कृतोत्साहाः पर्यवर्तन्त ते ततः ।
पर्यवस्थाप्य चात्मानमन्योन्येन पुनस्तदा ।
सर्वे राजन्न्यवर्तन्त क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते- शल्यपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ २१७ ॥

राजन् ! फिर राजा दुर्योधनका उत्साह देखकर, सब क्षत्रिय अपने अपने डेरोंसे एक दूसरेको धीरज देते हुए राजाके पासको चले, हमने उसी समय निश्चय कर लिया कि इन सबका भी काल आ गया ॥ ५० ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ २१७ ॥

: ५ :

सञ्जय उवाच—

अथ हैमवते प्रस्थे स्थित्वा युद्धाभिनन्दिनः ।
सर्व एव महाराज योधास्तत्र समागताः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! अनन्तर सब युद्धका अभिनंदन करनेवाले क्षत्रिय योद्धा निर्मल हिमाचलके भूमिमें डेरा डालकर वहां एकत्र हुए ॥ १ ॥

शल्यश्च चित्रसेनश्च शकुनिश्च महारथः ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ २ ॥

वहां शल्य, चित्रसेन, महारथी शकुनि, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, सात्वतवंशी कृतवर्मा, ॥ २ ॥

सुषेणोऽरिष्टसेनश्च धृतसेनश्च वीर्यवान् ।
जयत्सेनश्च राजानस्ते रात्रिमुषितास्ततः ॥ ३ ॥

सुषेण, अरिष्टसेन, पराक्रमी धृतसेन, जयत्सेन और राजा दुर्योधन इकट्ठे हुए और सब लोगोंने वहीं रात्रिको बिताया ॥ ३ ॥

रणे कर्णे हते वीरे त्रासिता जितकाशिभिः ।
नालभञ्शर्म ते पुत्रा हिमवन्तमृते गिरिम् ॥ ४ ॥

हे राजन् ! युद्धमें वीर कर्णके मारे जानेके पश्चात् विजयी पाण्डवोंसे डरे हुए तुम्हारे पुत्रोंको हिमाचलके सिवाय और कहीं शान्ति नहीं मिली ॥ ४ ॥

तेऽब्रुवन्सहितास्तत्र राजानं सैन्यसंनिधौ ।
कृतयत्ना रणे राजन्संपूज्य विधिवत्तदा ॥ ५ ॥

हे राजन् ! उन सब विजयके लिए प्रयत्न करनेवाले क्षत्रियोंने वहां एकत्र होकर राजा दुर्योधनका सैन्यके समीप बिधिपूर्वक सम्मान करके उससे ऐसे वचन कहे ॥ ५ ॥

कृत्वा सेनाप्रणेतारं परांस्त्वं योद्‌धुमर्हसि ।
येनाभिगुप्ताः संग्रामे जयेमासुहृदो वयम् ॥ ६ ॥

हे राजन् दुर्योधन! आप ऐसे वीरको सेनापति बनाकर शत्रुके साथ युद्ध करो, कि जिससे रक्षित होकर हमलोग अमित्रोंको जीत सकें ॥ ६ ॥

ततो दुर्योधनः स्थित्वा रथे रथवरोत्तमम् ।
सर्वयुद्धविभागज्ञमन्तकप्रतिमं युधि ॥ ७ ॥

तब आपका पुत्र राजा दुर्योधन अपने रथमें बैठकर महारथियोंमें श्रेष्ठ, सब युद्ध विद्याओंके जाननेवाले, युद्धमें यमराजके समान भयंकर वीर, ॥ ७ ॥

स्वङ्गं प्रच्छन्नशिरसं कम्बुग्रीवं प्रियंवदम् ।
व्याकोशपद्माभिमुखं व्याघ्रास्यं मेरुगौरवम् ॥ ८ ॥

सुन्दर शरीरवाले, मस्तकपर टोप पहने, शङ्खके समान सुशोभित गलेवाले, मीठे वचन बोलनेवाले, फूले कमलके समान नेत्रवाले, व्याघ्रके समान मुखवाले, मेरुके समान भारी ॥ ८ ॥

स्थाणोर्वृषस्य सदृशं स्कन्धनेत्रगतिस्वरैः ।
पुष्टश्लिष्टायतभुजं सुविस्तीर्णघनोरसम् ॥ ९ ॥

शिवके वाहन वृषभके समान महात्मा, ऊंचे कंधे, गंभीर वाणी और बडे नेत्रवाले, मन्द चलनेवाले, पुष्ट मोटे और लंबे हाथवाले, ऊंची एंडी छाती युक्त ॥ ९ ॥

जवे बले च सदृशमरुणानुजवातयोः ।
आदित्यस्य त्विषा तुल्यं बुद्ध्या चोशनसा समम् ॥ १० ॥

बल और बेगमें गरुड और वायुके, तेजमें सूर्यके, बुद्धिमें शुक्राचार्यके समान है ॥ १० ॥

कान्तिरूपमुखैश्वर्यैस्त्रिभिश्चन्द्रमसोपमम् ।
काञ्चनोपलसंघातैः सदृशं श्लिष्टसंधिकम् ॥ ११ ॥

कान्ति, रूप और मुखकी शोभा इन तीन गुणोंमें चन्द्रमाके समान, उनका शरीर सोनेके टुकडोंके समान दृढ सन्धिवाला है ॥ ११ ॥

सुवृत्तोरुकटीजङ्घं सुपादं स्वङ्गुलीनखम् ।
स्मृत्वा स्मृत्वैव च गुणान्धात्रा यत्नाद्विनिर्मितम् ॥ १२ ॥

सुन्दर गोल जङ्घा, कमर और पिंडलीवाले, सुन्दर चरण और अंगुली नखनवाले, मानो जिनको ब्रह्माने उत्तम गुणोंका वार वार स्मरण करके बहुत यत्नसे उनको निर्माण किया ॥ १२ ॥

सर्वलक्षणसंपन्नं निपुणं श्रुतिसागरम् ।
जेतारं तरसारीणामजेयं शत्रुभिर्बलात् ॥ १३ ॥

वह सब शुभ लक्षणोंसे भरे, कार्यमें कुशल, विद्याके समुद्र है। शीघ्रता सहित शत्रुओंको जीतनेवाले परंतु शत्रुओंको उनके ऊपर बलपूर्वक विजय पाना अशक्य है ॥ १३ ॥

दशाङ्गं यश्चतुष्पादमिष्वस्त्रं वेद तत्त्वतः ।
साङ्गांश्च चतुरो वेदान्सम्यगाख्यानपञ्चमान् ॥ १४ ॥

(आप किसीसे न हारनेवाले, व्रत, सीखन, धारण करना, अभ्यास करना, स्मरण रखना, छोडना, शत्रुको मारना, औषधि करना, शस्त्रको तेज करना, खींचना,) इन दसों अङ्ग और (उपदेश, सेनाकी शिक्षा, अपनी रक्षा और लडाईकी सब सामग्रीको ठीक रखना) इन चारों चरणोंके सहित धनुर्वेदको उत्तम रीतिसे जाननेवाले, छह अङ्गोंके सहित चारों वेद और इतिहास–पुराण स्वरूप पंचम वेदके पण्डित है ॥ १४ ॥

आराध्य त्र्यम्बकं यत्नाद्व्रतैरुग्रैर्महातपाः ।
अयोनिजायामुत्पन्नो द्रोणेनायोनिजेन यः ॥ १५ ॥

यहा तपस्वी अश्वत्थामा उसके पिता अयोनिज द्रोणाचार्यने वडे यत्नसे कठोर व्रतसे भगवान् शिवको प्रसन्न करके अयोनिजा कृपीके गर्भसे उत्पन्न किया था ॥ १५ ॥

तमप्रतिमकर्माणं रूपेणासदृशं भुवि ।
पारगं सर्वविद्यानां गुणार्णवमनिन्दितम् ।
तमभ्येत्यात्मजस्तुभ्यमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ १६ ॥

सब विद्याओंके पार जानेवाले, गुणोंके समुद्र, निन्दारहित, अप्रतिम कर्म करनेवाले, इस पृथ्वीपर अनुपम रूपसे युक्त, गुण और रूपसे भरे अश्वत्थामाके पास गये, और आपके पुत्र दुर्योधन इस प्रकार बोले ॥ १६ ॥

यं पुरस्कृत्य सहिता युधि जेष्याम पाण्डवान् ।
गुरुपुत्रोऽद्य सर्वेषामस्माकं परमा गतिः ।
भवांस्तस्मान्नियोगात्ते कोऽस्तु सेनापतिर्मम ॥ १७ ॥

हे गुरुपुत्र ! हम आपकी शरण हैं। आप हमारे सबके स्वामी हैं, आश्रय हैं। अतः मैं आपकी आज्ञासे हमारा सेनापति नियुक्त करना चाहता हूं, परन्तु वह ऐसा सेनापति होना चाहिये जिसके आश्रयसे हम सब लोग एकत्र होकर युद्धमें पाण्डवोंको जीत लें ॥ १७ ॥

द्रोणिरुवाच—

अयं कुलेन वीर्येण तेजसा यशसा श्रिया ।
सर्वैर्गुणैः समुदितः शल्यो नोऽस्तु चमूपतिः ॥ १८ ॥

अश्वत्थामा बोले, हे महाराज! राजा शल्य कुल, रूप, तेज, यश, बल और कीर्ति आदि सब गुणोंसे भरे हैं। इसलिए ये ही हमारे सेनापति हों ॥ १८ ॥

भागिनेयान्निजांस्त्यक्त्वा कृतज्ञोऽस्मानुपागतः ।
महासेनो महाबाहुर्महासेन इवापरः ॥ १९ ॥

हम और सब राजाओंकी अपेक्षा इनके अधिक कृतज्ञ हैं, क्योंकि ये अपने सगे भानजोंको छोडकर हमारी ओर आये हैं। इनके बडे हाथ और बडी सेना हैं, और ये बलमें भी दूसरे महासेनके तुल्य हैं ॥ १९ ॥

एनं सेनापतिं कृत्वा नृपतिं नृपसत्तम ।
शक्यः प्राप्तुं जयोऽस्माभिर्देवैः स्कन्दमिवाजितम् ॥ २० ॥

नृपश्रेष्ठ! इन महाराज शल्यको सेनापति बनाकर हम लोगोंकी शत्रुओंपर विजय हो सकती है। जैसे अपराजित स्वामि कार्तिकेय देवताओंकी सेनाकी रक्षा करते हैं, ऐसे ही ये हमारी सेनाकी रक्षा करेंगे ॥ २० ॥

तथोक्ते द्रोणपुत्रेण सर्व एव नराधिपाः ।
परिवार्य स्थिताः शल्यं जयशब्दांश्च चक्रिरे ।
युद्धाय च मतिं चक्रुरावेशं च परं ययुः ॥ २१ ॥

गुरुपुत्र अश्वत्थामाके ऐसे वचन सुन सब नरेश राजा शल्यको घेरकर 'सेनापति शल्यकी जय हो' ऐसा पुकारने लगे, और प्रसन्न होकर युद्ध करनेको उद्यत हो अत्यंत आवेशमें भर गए ॥ २१ ॥

ततो दुर्योधनः शल्यं भूमौ स्थित्वा रथे स्थितम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा रामभीष्मसमं रणे ॥ २२ ॥

तब राजा दुर्योधन पृथ्वीपर खडे होकर और हाथ जोडकर, उत्तम रथमें बैठे हुए राम और भीष्मके समान योद्धा राजा शल्यसे बोले ॥ २२ ॥

अयं स कालः संप्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।
यत्र मित्रममित्रं वा परीक्षन्ते बुधा जनाः ॥ २३ ॥

हे महावीर! जब पण्डित लोग मित्र और शत्रुको पहचानते हैं; अब आपके मित्रोंके सामने वही समय आ गया है ॥ २३ ॥

स भवानस्तु नः शूरः प्रणेता वाहिनीमुखे ।
रणं च याते भवति पाण्डवा मन्दचेतसः ।
भविष्यन्ति सहामात्याः पाञ्चालाश्च निरुद्यमाः ॥ २४ ॥

इसलिये, आप हमारे शूरवीर सेनापति होकर सेनाके अग्रभागमें स्थित होकर, हम लोगोंको अपनी आज्ञामें चलाइये । हे वीर ! आपको युद्धमें खडा देख मन्दबुद्धि पाण्डव अपने मन्त्री और पाञ्चालोंके सहित प्रयत्नहीन हो जांयगे ॥ २४ ॥

शल्य उवाच—

यत्तु मां मन्यसे राजन्कुरुराज करोमि तत् ।
त्वत्प्रियार्थं हि मे सर्वं प्राणा राज्यं धनानि च ॥ २५ ॥

शल्य बोले, हे राजन् ! कुरुराज ! तुम मुझसे जो कुछ चाहते हो, मैं वही करूंगा, क्योंकि मेरे राज्य, धन और प्राण भी तुम्हारा प्रिय करनेके ही लिये हैं ॥ २५ ॥

दुर्योधन उवाच—

सेनापत्येन वरये त्वामहं मातुलातुलम् ।
सोऽस्मान्पाहि युधां श्रेष्ठ स्कन्दो देवानिवाहवे ॥ २६ ॥

दुर्योधन बोले, हे मामा ! योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! आप महापराक्रमी और राजाओंमें श्रेष्ठ हैं, इसलिये हम आपसे यही वरदान मांगते हैं कि आप सेनापति होकर हमारी इस प्रकार रक्षा कीजिए जैसे स्वामि कार्त्तिकने देवताओंकी की थी ॥ २६ ॥

अभिषिच्यस्व राजेन्द्र देवानामिव पावकिः ।
जहि शत्रुन्रणे वीर महेन्द्रो दानवानिव ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ २४४ ॥

हे राजेन्द्र ! वीर ! जैसे स्कन्दने देवताओंके सेनापतित्वका स्वीकार किया था, उसी प्रकार आप अपना अभिषेक कीजिये और जैसे इन्द्र दानवोंको मारते हैं, ऐसे शत्रु–पाण्डवोंको मारिये ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें पांचवां अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ २४४ ॥

: ६ :

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञो मद्रराजः प्रतापवान् ।
दुर्योधनं तदा राजन्वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

सञ्जय बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! राजा दुर्योधनके वचन सुन प्रतापी मद्रराज शल्य ऐसा बोले ॥ १ ॥

दुर्योधन महाबाहो शृणु वाक्यविदां वर।
यावेतौ मन्यसे कृष्णौ रथस्थौ रथिनां वरौ।
न मे तुल्यावुभावेतौ बाहुवीर्ये कथञ्चन ॥ २॥

हे राजा दुर्योधन! हे महाबाहो! हे अर्थ जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! तुम हमारे वचन सुनो, तुम रथपर बैठे हुए जो श्रीकृष्ण और अर्जुनको रथियोंमें श्रेष्ठ समझते हो, सो ये दोनों ही बाहुबलमें किसी प्रकार हमारे तुल्य नहीं हैं ॥ २॥

उद्यतां पृथिवीं सर्वां ससुरासुरमानवाम्।
योधयेयं रणमुखे संक्रुद्धः किमु पाण्डवान्।
विजेष्ये च रणे पार्थान्सोमकांश्च समागतान् ॥ ३॥

मैं युद्धके अग्रभागमें क्रुद्ध होकर समस्त देवता, राक्षस और मनुष्योंके सहित सारे जगत् भरके वीरोंसे युद्ध कर सकता हूं। तब पाण्डव क्या हैं? अब हम सब पाण्डव और सामने आये हुए सोमकोंको युद्धमें जीतेंगे ॥ ३॥

अहं सेनाप्रणेता ते भविष्यामि न संशयः।
तं च व्यूहं विधास्यामि न तरिष्यन्ति यं परे।
इति सत्यं ब्रवीम्येष दुर्योधन न संशयः ॥ ४॥

अब हम निःसन्देह तुम्हारे सेनापति बनकर, ऐसा व्यूह बनावेंगे जिसको पाण्डव कभी न तोड सकें। हे दुर्योधन! हम तुमसे जो कहते हैं सब सत्य मानो, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४॥

एवमुक्तस्ततो राजा मद्राधिपतिमञ्जसा।
अभ्यषिञ्चत सेनाया मध्ये भरतसत्तम।
विधिना शास्त्रदृष्टेन हृष्टरूपो विशां पते ॥ ५॥

भरतसत्तम! प्रजापते! राजा शल्यके ये वचन सुन, आनंदित हुए राजा दुर्योधनने शास्त्रमें लिखी विधिके अनुसार सेनाके मध्यभागमें मद्रराज शल्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया ॥ ५॥

अभिषिक्ते ततस्तस्मिन्सिंहनादो महानभूत्।
तव सैन्येष्ववाद्यन्त वादित्राणि च भारत ॥ ६॥

हे भारत! जब शल्यका अभिषेक होने लगा तब तुम्हारी सेनामें अनेक बाजे बजने लगे, और बडे जोरसे सिंहनाद होने लगा ॥ ६॥

हृष्टाश्चासंस्तदा योधा मद्रकाश्च महारथाः ।
तुष्टुवुश्चैव राजानं शल्यमाहवशोभिनम् ॥ ७ ॥

सब मद्रदेशी वीर बहुत प्रसन्न हुए और सब क्षत्रिय वीर संग्राममें शोभा पानेवाले राजा शल्यकी प्रशंसा करने लगे ॥ ७ ॥

जय राजंश्चिरं जीव जहि शत्रून्समागतान् ।
तव बाहुबलं प्राप्य धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।
निखिलां पृथिवीं सर्वां प्रशासन्तु हतद्विषः ॥ ८ ॥

हे राजन् ! आपकी जय हो, आप चिरंजीवी हों । सामने आये हुए शत्रुओंको मार दीजिए । तुम्हारे बाहुबलसे धृतराष्ट्रके बलवान् पुत्र शत्रुओंको मारकर सब जगत्का राज्य पावें ॥ ८ ॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं ससुरासुरमानवान् ।
मर्त्यधर्माण इह तु किमु सोमकसृञ्जयान् ॥ ९ ॥

आप देवता, राक्षसों और मनुष्योंको भी युद्धमें जीत सकते हैं, फिर मरणधर्मा सोमक और पाञ्चालोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ९ ॥

एवं संस्तूयमानस्तु मद्राणामधिपो बली ।
हर्षं प्राप तदा वीरो दुरापमकृतात्मभिः ॥ १० ॥

इस प्रकारकी स्तुति सुनकर बलवान् वीर मद्रराज शल्य ऐसे प्रसन्न हुए जैसे अकृतात्मा लोग नहीं हो सकते ॥ १० ॥

शल्य उवाच—

अद्यैवाहं रणे सर्वान्पाञ्चालान्सह पाण्डवैः ।
निहनिष्यामि राजेन्द्र स्वर्गं यास्यामि वा हतः ॥ ११ ॥

शल्य बोले, राजेन्द्र ! आज युद्धमें पाण्डवोंके सहित सब पाञ्चालोंको मार डालेंगे, या हम ही मर जाकर स्वर्गलोकमें पहुंचेंगे ॥ ११ ॥

अद्य पश्यन्तु मां लोका विचरन्तमभीतवत् ।
अद्य पाण्डुसुताः सर्वे वासुदेवः ससात्यकिः ॥ १२ ॥

आज हम कैसे निडर हो युद्ध करते हैं सो सब लोग देखो, आज सब पांचों पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, ॥ १२ ॥

पाञ्चालाश्चेदयश्चैव द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सर्वे चापि प्रभद्रकाः ॥ १३ ॥

पाञ्चाल, चेदिदेशके योद्धा, द्रौपदीके पांचों पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सब प्रभद्रक क्षत्रिय ॥ १३ ॥

विक्रमं मम पश्यन्तु धनुषश्च महद्बलम् ।
लाघवं चास्त्रवीर्यं च भुजयोश्च बलं युधि ॥ १४ ॥

हमारे पराक्रम और धनुषविद्याके महान् बलको देखें, वैसे ही हमारा हस्तलाघव, अस्त्रबल और बाहुबलके भी देखें ॥ १४ ॥

अद्य पश्यन्तु मे पार्थाः सिद्धाश्च सह चारणैः ।
यादृशं मे बलं बाह्वोः संपदस्त्रेषु या च मे ॥ १५ ॥

आज कुन्तीपुत्र सब पाण्डव और चारणोंके सहित सिद्धगण देखें कि मेरी दोनों भुजाओंमें कितना बल है और मैं कितनी अस्त्रविद्या जानता हूं ॥ १५ ॥

अद्य मे विक्रमं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथाः ।
प्रतीकारपरा भूत्वा चेष्टन्तां विविधाः क्रियाः ॥ १६ ॥

आज मेरे शीघ्र वाण चलाने, हाथोंके बल और शस्त्रविद्याको सब पाण्डवोंके महारथी देखकर, वे उसके प्रतिकारमें नाना प्रकारके कार्योंमें तत्पर हो जायेंगे ॥ १६ ॥

अद्य सैन्यानि पाण्डूनां द्रावयिष्ये समन्ततः ।
द्रोणभीष्मावति विभो सूतपुत्रं च संयुगे ।
विचरिष्ये रणे युध्यन्प्रियार्थं तव कौरव ॥ १७ ॥

हे प्रभो ! आज पाण्डवोंकी सेनाके प्रधान योद्धा हमारे बाणोंके काटनेका यत्न करें, आज हम पाण्डवोंकी सब सेनाको चारों ओर भगा देंगे । हे दुर्योधन ! आज तुम्हारा प्रिय करनेके लिये वह काम मैं समरमें करूंगा, जो द्रोणाचार्य, भीष्म और सूतपुत्र कर्णने भी नहीं किया था और समरभूमिमें लडता हुआ सब ओर घूमूंगा ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच—

अभिषिक्ते तदा शल्ये तव सैन्येषु मानद ।
न कर्णव्यसनं किंचिन्मेनिरे तत्र भारत ॥ १८ ॥

सञ्जय बोले, हे राजन् ! भारत ! शल्यका तुम्हारी सेनाओंमें इस प्रकार अभिषेक होते ही, तुम्हारी सेनाके सब योद्धाओंको कर्णके मृत्युका थोडासा भी दुःख नहीं रहा ॥ १८ ॥

हृष्टाः सुमनसश्चैव बभूवुस्तत्र सैनिकाः ।
मेनिरे निहतान्पार्थान्मद्रराजवशं गतान् ॥ १९ ॥

सब सैनिक लोग बहुत प्रसन्नचित्त हुए और उन्होंने मनमें यह निश्चय कर लिया कि, मद्रराज शल्यने कुन्तिपुत्र सब पाण्डवोंको मार डाला ॥ १९ ॥

प्रहर्षं प्राप्य सेना तु तावकी भरतर्षभ।
तां रात्रिं सुखिनी सुप्ता स्वस्थचित्तेव साभवत् ॥ २० ॥

हे राजन्! तुम्हारी सब सेनाने हर्षित होकर वह रात बडे आनन्द और सुखसे बिताई। वह स्वस्थचित्त हो गई ॥ २० ॥

सैन्यस्य तव तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः।
वार्ष्णेयमब्रवीद्वाक्यं सर्वक्षत्रस्य शृण्वतः ॥ २१ ॥

उस समय तुम्हारी सेनाका ऐसा प्रसन्न शब्द सुनकर, राजा युधिष्ठिर सब क्षत्रियोंके सुनते ही श्रीकृष्णसे यों बोले ॥ २१ ॥

मद्रराजः कृतः शल्यो धार्तराष्ट्रेण माधव।
सेनापतिर्महेष्वासः सर्वसैन्येषु पूजितः ॥ २२ ॥

हे माधव! धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनने सब सेनासे पूजित, सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, महापराक्रमी मद्रराज शल्यको सेनापति बनाया ॥ २२ ॥

एतच्छ्रुत्वा यथाभूतं कुरु माधव यत्क्षमम्।
भवान्नेता च गोप्ता च विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ २३ ॥

माधव! आप इस सबका विचार कर जो कुछ करने योग्य काम हो सो कीजिये; क्योंकि आप ही हमारे आज्ञा देनेवाले और बहुत अच्छे मार्गमें चलानेवाले हैं। इसलिये अब जो योग्य है वह कीजिये ॥ २३ ॥

तमब्रवीन्महाराज वासुदेवो जनाधिपम्।
आर्तायनिमहं जाने यथातत्त्वेन भारत ॥ २४ ॥

महाराज! ऐसे वचन सुन श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरसे बोले, हे पृथ्वीनाथ! हे भारत! मैं अच्छी प्रकारसे राजा शल्यके बलको जानता हूं ॥ २४ ॥

वीर्यवांश्च महातेजा महात्मा च विशेषतः।
कृती च चित्रयोधी च संयुक्तो लाघवेन च ॥ २५ ॥

राजा शल्य बलवान्, महा तेजस्वी, विद्वान्, शीघ्रतासे अस्त्रशस्त्र चलानेवाले विचित्र योद्धा और विशेषकर धर्मात्मा हैं ॥ २५ ॥

यादृग्भीष्मस्तथा द्रोणो यादृक्कर्णश्च संयुगे।
तादृशस्तद्विशिष्टो वा मद्रराजो मतो मम ॥ २६ ॥

मेरी बुद्धिमें भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण जैसे युद्धमें बलवान् और पराक्रमी थे, मद्रराज शल्य वैसे ही या उनसे कुछ अधिक हैं ॥ २६ ॥

युध्यमानस्य तस्याजौ चिन्तयन्नेव भारत ।
योद्धारं नाधिगच्छामि तुल्यरूपं जनाधिप ॥ २७ ॥

हे भारत ! पृथ्वीनाथ ! मैं इस समय यही विचार कर रहा हूं कि हमारी ओर ऐसा कौन युद्धपरायण शल्यके तुल्य वीर है जो उनसे लड सके ? परन्तु अभीतक मेरी बुद्धिमें कोई स्थिर नहीं हुआ ॥ २७ ॥

शिखण्डयर्जुनभीमानां सात्वतस्य च भारत ।
धृष्टद्युम्नस्य च तथा बलेनाभ्यधिको रणे ॥ २८ ॥

भारत ! शिखण्डी, अर्जुन, भीमसेन, सात्यकि और धृष्टद्युम्नसे भी शल्य समरमें अधिक बलवान् हैं ॥ २८ ॥

मद्रराजो महाराज सिंहद्विरदविक्रमः ।
विचरिष्यत्यभीः काले कालः क्रुद्धः प्रजास्विव ॥ २९ ॥

हे महाराज ! सिंह और मतवाले हाथीके समान पराक्रमी महाराज शल्य हमारी सेनामें निर्भय होकर इस प्रकार घूमेंगे जैसे प्रलयकालमें यमराज क्रोध करके जगत्में घूमते हैं ॥ २९ ॥

तस्याद्य न प्रपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र शार्दूलसमविक्रमम् ॥ ३० ॥

हे पुरुषसिंह ! आपका पराक्रम शार्दूलके समान है ! हम अपनी ओर शल्यसे युद्धमें लडने योग्य आपके सिवाय और किसीको नहीं पाते ॥ ३० ॥

सदेवलोके कृत्स्नेऽस्मिन्नान्यस्त्वत्तः पुमान्भवेत् ।
मद्रराजं रणे क्रुद्धं यो हन्यात्कुरुनन्दन ।
अहन्यहनि युध्यन्तं क्षोभयन्तं बलं तव ॥ ३१ ॥

हे कुरुनन्दन ! देवलोक और मनुष्यलोकमें आपके सिवाय दूसरा ऐसा कोई वीर नहीं है, जो क्रोध भरे मद्रराज शल्यको युद्धमें मार सके। यही शल्य प्रतिदिन जूझेंगे और आपकी सेनाका नाश करेंगे ॥ ३१ ॥

तस्माज्जहि रणे शल्यं मघवानिव शम्बरम् ।
अतिपश्चादसौ वीरो धार्तराष्ट्रेण सत्कृतः ॥ ३२ ॥

इसलिए आप इस शल्यको युद्धमें इस प्रकार मारिये जैसे इन्द्रने शम्बरको मारा था । हे पृथ्वीनाथ ! अकेले शल्यको ही कोई नहीं जीत सकता, जिसका पहलेसेही धृतराष्ट्रके पुत्रने बहुत सम्मान किया है ॥ ३२ ॥

तवैष हि जयो नूनं हते मद्रेश्वरे युधि ।
तस्मिन्हते हतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत् ॥ ३३ ॥
हमें यह निश्चय है कि मद्रराज शल्यके मरनेहीसे आपकी विजय होगी। शल्यके मरनेहीसे धृतराष्ट्रके पुत्रकी सारी विशाल सेना ही मारी जायगी ॥ ३३ ॥

एतच्छ्रुत्वा महाराज वचनं मम सांप्रतम् ।
प्रत्युद्याहि रणे पार्थ मद्रराजं महाबलम् ।
जहि चैनं महाबाहो वासवो नमुचिं यथा ॥ ३४ ॥
हे महाराज ! आप हमारे वचनोंको स्वीकार करके महाबलवान् शल्यसे युद्ध करनेको जाइये और महाबाहो ! जैसे इन्द्रने नमुचिको मारा था वैसे शल्यको आप भी मारें ॥ ३४ ॥

न चैवात्र दया कार्या मातुलोऽयं ममेति वै ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य जहि मद्रजनेश्वरम् ॥ ३५ ॥
हे महाराज ! यह हमारा मामा है ऐसा विचार कर आप उसपर दया मत कीजिये, क्यों कि क्षत्रियोंका ऐसा ही धर्म है। वह सामने रखकर मद्रराज शल्यको मार डालें ॥ ३५ ॥

भीष्मद्रोणार्णवं तीर्त्वा कर्णपातालसंभवम् ।
मा निमज्जस्व सगणः शल्यमासाद्य गोष्पदम् ॥ ३६ ॥
आपने भीष्म और द्रोणाचार्यरूपी समुद्र और कर्णरूपी तालावको भी पार किया है, अब आप शल्यरूपी गायके पैरमें भाइयोंके सहित मत डूब जाइये ॥ ३६ ॥

यच्च ते तपसो वीर्यं यच्च क्षात्रं बलं तव ।
तद्दर्शय रणे सर्वं जहि चैनं महारथम् ॥ ३७ ॥
आज आपका तपोबल और क्षात्रबल है, वह सब युद्धमें दिखाइये और आप क्षत्रियोंके अनुसार इस महारथी शल्यको मारिये ॥ ३७ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं केशवः परवीरहा ।
जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः ॥ ३८ ॥
राजा युधिष्ठिरसे शत्रुनाशन श्रीकृष्ण ऐसा वचन कहकर और सायंकालमें पाण्डवोंसे पूजित होकर, सोनेके लिए अपने डेरेमें चले गये ॥ ३८ ॥

केशवे तु तदा याते धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
विसृज्य सर्वान्भ्रातॄंश्च पाञ्चालानथ सोमकान् ।
सुष्वाप रजनीं तां तु विशल्य इव कुञ्जरः ॥ ३९ ॥
श्रीकृष्णके जानेके पश्चात् उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने अपने सब भाई, पाञ्चाल और सोमकवंशी क्षत्रियोंको भी विदा कर दिया, फिर आप भी अंकुशरहित मतवाले हाथीके समान सुखसे सो रहे ॥ ३९ ॥

ते च सर्वे महेष्वासाः पाञ्चालाः पाण्डवास्तथा ।
कर्णस्य निधने हृष्टाः सुषुपुस्तां निशां तदा ॥ ४० ॥

अनन्तर अपने अपने डेरोंमें जाकर वे सब महाधनुर्धर पाञ्चाल और पाण्डव कर्णके मरनेसे प्रसन्न होकर रात्रिमें सुखसे सोये ॥ ४० ॥

गतज्वरं महेष्वासं तीर्णपारं महारथम् ।
बभूव पाण्डवेयानां सैन्यं प्रमुदितं निशि ।
सूतपुत्रस्य निधने जयं लब्ध्वा च मारिष ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ २८५ ॥

मारिष ! सूतपुत्र कर्णके मरनेसे विजय पाकर बडे बडे धनुष और विशाल रथोंसे युक्त राजा युधिष्ठिरकी सब सेना आनन्दित हुई थी और वह युद्धसे पार होकर विजयी हो गयी है, ऐसा मानने लगी ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ २८५ ॥

: ७ :

सञ्जय उवाच—

व्यतीतायां रजन्यां तु राजा दुर्योधनस्तदा ।
अब्रवीत्तावकान्सर्वान्संनह्यन्तां महारथाः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले, हे राजन् ! जब रात बीत चुकी, तब राजा दुर्योधनने तुम्हारे सब सैनिकोंसे कहा कि सब महारथीजन कवच बांधकर युद्धके लिए तैयार हो जांय ॥ १ ॥

राज्ञस्तु मतमाज्ञाय समनह्यत सा चमूः ।
अयोजयन्रथांस्तूर्णं पर्यधावंस्तथापरे ॥ २ ॥

राजाकी आज्ञा सुनते ही सब योद्धा तैयार होने लगे, कोई तुरंत ही रथ जोतने लगे, कोई दूसरे चारों ओर दौडने लगे ॥ २ ॥

अकल्पयन्त च मातङ्गाः समनह्यन्त पत्तयः ।
हयानास्तरणोपेतांश्चक्रुरन्ये सहस्रशः ॥ ३ ॥

कोई हाथी कसने लगे, पैदल सैनिक कवच बांधने लगे और अन्य सहस्रों सैनिकोंने घोडों पर आवरण डाल दिए ॥ ३ ॥

वादित्राणां च निनदः प्रादुरासीद्विशां पते ।
बोधनार्थं हि योधानां सैन्यानां चाप्युदीर्यताम् ॥ ४ ॥

हे राजन् ! उस समय सेनाको ठीक उद्यत करनेके लिए और वीर सैनिकोंका उत्साह बढानेके लिए तुम्हारी सेनामें अनेक प्रकारके चारों ओरसे बाजे बजने लगे ॥ ४ ॥

ततो बलानि सर्वाणि सेनाशिष्टानि भारत ।
संनद्धान्येव ददृशुर्मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ५ ॥

हे भारत ! तब सब बची हुई सेना एक दिन अवश्य ही मरना होगा यह विचार कर युद्धको उपस्थित हो गई ॥ ५ ॥

शल्यं सेनापतिं कृत्वा मद्रराजं महारथाः ।
प्रविभज्य बलं सर्वमनीकेषु व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥

तब सब महारथी सैनिक महापराक्रमी मद्रराज शल्यको सेनापति बनाकर, सब सेनाको अनेक भागोंमें विभक्त करके व्यवस्थित खडे हुए ॥ ६ ॥

ततः सर्वे समागम्य पुत्रेण तव सैनिकाः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिः शल्योऽथ सौबलः ॥ ७ ॥

तदनन्तर तुम्हारे सब प्रधान वीर राजा दुर्योधनके पास आए और कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शल्य और सुबलपुत्र शकुनि ॥ ७ ॥

अन्ये च पार्थिवाः शेषाः समयं चक्रिरे तदा ।
न न एकेन योद्धव्यं कथंचिदपि पाण्डवैः ॥ ८ ॥

उनसे सत्कार पाकर ऐसा नियम बनाया कि हम लोगोंमेंसे कोई अकेला ही किसी भी तरह पाण्डवोंके साथ युद्ध न करे ॥ ८ ॥

यो ह्येकः पाण्डवैर्युध्येद्यो वा युध्यन्तमुत्सृजेत् ।
स पञ्चभिर्भवेद्युक्तः पातकैः सोपपातकैः ।
अन्योन्यं परिरक्षद्भिर्योद्धव्यं सहितैश्च नः ॥ ९ ॥

मद्रराज शल्यने यह आज्ञा दी कि जो हमारी ओरका वीर अकेला ही पाण्डवोंसे युद्ध करेगा, या पाण्डवोंके साथ लडते हुए वीरको अकेला छोड देगा, उसे पांच महापाप और सब छोटे छोटे पाप लगेंगे। आज हम सब महारथी एक स्थानपर खडे होकर एक दूसरेकी रक्षा करते हुए युद्ध करेंगे ॥ ९ ॥

एवं ते समयं कृत्वा सर्वे तत्र महारथाः ।
मद्रराजं पुरस्कृत्य तूर्णमभ्यद्रवन्परान् ॥ १० ॥

ऐसा नियम बनाकर, उन सब महारथियोंने मद्रराज शल्यको आगे करके शीघ्र ही शत्रुओंपर धावा किया ॥ १० ॥

तथैव पाण्डवा राजन्व्यूह्य सैन्यं महारणे ।
अभ्ययुः कौरवान्सर्वान्योत्स्यमानाः समन्ततः ॥ ११ ॥

हे राजन् ! उधर पाण्डवोंने भी युद्ध करनेके लिए अपनी सेनाका व्यूह बनाया और सब ओरसे युद्धके लिए तैयार होकर कौरवोंके साथ युद्ध करनेको चले ॥ ११ ॥

तद्बलं भरतश्रेष्ठ क्षुब्धार्णवसमस्वनम् ।
समुद्धूतार्णवाकारमुद्धूतरथकुञ्जरम् ॥ १२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! वह सेना प्रक्षुब्ध महासागरके समान शब्द करती थी । वह रथोंसे और हाथियोंसे भरी सेना इस प्रकार वेगसे चली जैसे शुक्ल पक्षमें समुद्र बढता है ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—

द्रोणस्य भीष्मस्य च वै राधेयस्य च मे श्रुतम् ।
पातनं शंस मे भूयः शल्यस्याथ सुतस्य मे ॥ १३ ॥

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! हमने द्रोणाचार्य, भीष्म और राधापुत्र कर्णके वधका वृत्तान्त सुना; अब शल्य और मेरा पुत्र दुर्योधनके मरनेका सारा वर्णन करो ॥ १३ ॥

कथं रणे हतः शल्यो धर्मराजेन सञ्जय ।
भीमेन च महाबाहुः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ १४ ॥

सञ्जय ! युद्धमें धर्मराज युधिष्ठिरने शल्यको और भीमसेनने मेरे महाबाहु पुत्र दुर्योधनको कैसे मारा ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच—

क्षयं मनुष्यदेहानां रथनागाश्वसंक्षयम् ।
शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा संग्रामं शंसतो मम ॥ १५ ॥

सञ्जय बोले, हे राजन् ! आप स्थिर होकर हमसे मनुष्य, हाथी और घोडोंके नाश होने और घोर संग्रामका वर्णन सुनो ॥ १५ ॥

आशा बलवती राजन्पुत्राणां तेऽभवत्तदा ।
हते भीष्मे च द्रोणे च सूतपुत्रे च पातिते ।
शल्यः पार्थान्रणे सर्वान्निहनिष्यति मारिष ॥ १६ ॥

हे मारिष ! भीष्म, द्रोणाचार्य और सूतपुत्र कर्णके मरनेके पश्चात् तुम्हारे पुत्रोंको यह ठीक निश्चय हो गया कि राजा शल्य रणभूमिमें सब कुन्तीकुमार पाण्डवोंको मार डालेंगे ॥ १६ ॥

तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वास्य च भारत।
मद्रराजं च समरे समाश्रित्य महारथम्।
नाथवन्तमथात्मानममन्यत सुतस्तव ॥ १७ ॥

हे महाराज! इस आशाको हृदयमें रखकर तुम्हारे सब पुत्र आश्वासित हो महारथी महाराज शल्यको आगे करके और उनकी प्रशंसा करके युद्ध करनेको चले और अपनेको स्वामी सहित माना ॥ १७ ॥

यदा कर्णे हते पार्थाः सिंहनादं प्रचक्रिरे।
तदा राजन्धार्तराष्ट्रानाविवेश महद्भयम् ॥ १८ ॥

राजन्! कर्णके मारे जानेसे हर्षित हुए कुन्तीपुत्र पाण्डव जब सिंहनाद करने लगे, तब तुम्हारे पुत्रोंके मनमें बहुत भय उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥

तान्समाश्वास्य तु तदा मद्रराजः प्रतापवान्।
व्यूह्य व्यूहं महाराज सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ॥ १९ ॥

हे महाराज! जब कर्ण मरे थे, तब तुम्हारे सब वीरोंको अपनी जीतकी आशा नहीं थी, परन्तु प्रतापी महारथी मद्रराज शल्यने उन सबको आश्वासन दिया और स्वयं आप भी युद्ध करनेको चले, उन्होंने समृद्धिशाली सर्वतोभद्र व्यूह बनाया ॥ १९ ॥

प्रत्युद्यातो रणे पार्थान्मद्रराजः प्रतापवान्।
विधुन्वन्कार्मुकं चित्रं भारघ्नं वेगवत्तरम् ॥ २० ॥

भारनाशक, वेगवान्, घोर और विचित्र धनुषको घुमाते हुए समरभूमिमें प्रतापी मद्रराज पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेको चले ॥ २० ॥

रथप्रवरमास्थाय सैन्धवाश्वं महारथः।
तस्य सीता महाराज रथस्थाशोभयद्रथम् ॥ २१ ॥

हे महाराज! महारथी शल्य सिंधु देशके घोडोंसे युक्त श्रेष्ठ रथपर विराजमान हुए थे। राजा शल्यके रथमें बैठते ही उनका सारथी भी बैठ गया तब शत्रुनाशन वीर शल्यकी बहुत शोभा बढी ॥ २१ ॥

स तेन संवृतो वीरो रथेनामित्रकर्शनः।
तस्थौ शूरो महाराज पुत्राणां ते भयप्रणुत् ॥ २२ ॥

हे राजन्! उस रथसे घिरे हुए शत्रुनाशन वीर शल्य आपके पुत्रोंका भय दूर करते हुए युद्धके लिए तैयार हुए ॥ २२ ॥

प्रयाणे मद्रराजोऽभून्मुखं व्यूहस्य दंशितः ।
मद्रकैः सहितो वीरैः कर्णपुत्रैश्च दुर्जयैः ॥ २३ ॥

प्रयाणके समय राजा शल्य, महायोद्धा कर्णके दुर्जय बेटे और मद्रदेशके प्रधान क्षत्रियोंके सहित सावधान होकर व्यूहके मुखमें कवच धारण करके खडे हो गये ॥ २३ ॥

सव्येऽभूत्कृतवर्मा च त्रिगर्तैः परिवारितः ।
गौतमो दक्षिणे पार्श्वे शकैश्च यवनैः सह ॥ २४ ॥

व्यूहके बाईं ओर त्रिगर्त्त देशके क्षत्रियोंके सहित कृतवर्मा खडा था । कृपाचार्य शक और यवन वीरोंके सहित दहिनी ओर थे ॥ २४ ॥

अश्वत्थामा पृष्ठतोऽभूत्काम्बोजैः परिवारितः ।
दुर्योधनोऽभवन्मध्ये रक्षितः कुरुपुंगवैः ॥ २५ ॥

और अश्वत्थामा काम्बोजदेशी वीरोंके सहित पृष्ठभागमें खडा था और राजा दुर्योधन प्रधान कुरुवंशी क्षत्रियोंसे रक्षित होकर व्यूहके बीचमें खडे हुए ॥ २५ ॥

हयानीकेन महता सौबलश्चापि संवृतः ।
प्रययौ सर्वसैन्येन कैतव्यश्च महारथः ॥ २६ ॥

सुबलपुत्र जुआरी शकुनि घुडसवारोंकी विशाल सेनासे घिरा हुआ था । उसके साथ महारथी उलूक भी सब सेनाके साथ युद्धके लिए आगे बढता था ॥ २६ ॥

पाण्डवाश्च महेष्वासा व्यूह्य सैन्यमरिंदमाः ।
त्रिधा भूत्वा महाराज तव सैन्यमुपाद्रवन् ॥ २७ ॥

महाराज ! शत्रुदमन महाधनुर्धर पाण्डवोंने भी अपनी सेनाका व्यूह बनाकर, सेनाके तीन टुकडे किए, और आपकी सेनापर धावा किया ॥ २७ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः ।
शल्यस्य वाहिनीं तूर्णमभिदुद्रुवुराहवे ॥ २८ ॥

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और महारथी सात्यकिने युद्धमें शल्यकी सेनाका वध करनेके लिए उसपर आक्रमण किया ॥ २८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वेनानीकेन संवृतः ।
शल्यमेवाभिदुद्राव जिघांसुर्भरतर्षभ ॥ २९ ॥

तदनंतर अपने सब प्रधान वीरोंके सहित घिरे हुए भरतश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर शल्यको मारनेकी इच्छासे उसपर ही दौडे ॥ २९ ॥

हार्दिक्यं तु महेष्वासमर्जुनः शत्रुपूगहा ।
संशप्तकगणांश्चैव वेगतोऽभिविदुद्रुवे　　॥ ३० ॥

शत्रुओंका संहार करनेवाले अर्जुन महाधनुषधारी कृतवर्मा और संशप्तकोंसे बडे वेगसे युद्ध करनेको गये ॥ ३० ॥

गौतमं भीमसेनो वै सोमकाश्च महारथाः ।
अभ्यद्रवन्त राजेन्द्र जिघांसन्तः परान्युधि　　॥ ३१ ॥

राजेन्द्र ! गौतमवंशी कृपाचार्यसे शत्रुओंका नाश करनेकी इच्छासे लडनेको महारथी सोमक-गणोंके सहित भीमसेन चले ॥ ३१ ॥

माद्रीपुत्रौ तु शकुनिमुलूकं च महारथौ ।
ससैन्यौ सहसेनौ तावुपतस्थतुराहवे　　॥ ३२ ॥

नकुल शकुनिको मारनेको और सहदेव उलूकको मारनेको चले। इन दोनोंके सङ्ग भारी सेना शकुनि और उलूककी सेनासे युद्ध करनेको चली ॥ ३२ ॥

तथैवायुतशो योधास्तावकाः पाण्डवान्रणे ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः　　॥ ३३ ॥

इसी प्रकार रणभूमिमें नानाप्रकारके अस्त्रशस्त्र लिए क्रोधित हुए तुम्हारे पक्षके दस हजार वीर पाण्डवोंके सैनिकोंके साथ युद्धके लिए भिड गये ॥ ३३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—

हते भीष्मे महेष्वासे द्रोणे कर्णे महारथे ।
कुरुष्वल्पावशिष्टेषु पाण्डवेषु च संयुगे　　॥ ३४ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! हमें ऐसा जान पडता है कि भीष्म, द्रोणाचार्य और महारथी कर्णके मारे जानेपर युद्धस्थलमें कौरव और पाण्डवोंके ओर थोडे ही वीर बचे होंगे ॥ ३४ ॥

सुसंरब्धेषु पार्थेषु पराक्रान्तेषु संजय ।
मामकानां परेषां च किं शिष्टमभवद्बलम्　　॥ ३५ ॥

जिस समय कुन्तीपुत्र पाण्डवोंने अत्यन्त कुपित होकर आजके युद्धमें चढाई की तब मेरे और शत्रुओंके पक्षमें कितने वीर शेष रहे ? ॥ ३५ ॥

संजय उवाच

यथा वयं परे राजन्युद्धाय समवस्थिताः ।
यावच्चासीद्बलं शिष्टं संग्रामे तन्निबोध मे　　॥ ३६ ॥

संजय बोले, हे राजन् ! जिस समय हमलोग और हमारे शत्रु पाण्डव युद्ध करनेको खडे हुए, उस समय युद्धमें जितनी सेना बची थी, उसकी गिन्ती सुनो ॥ ३६ ॥

एकादश सहस्राणि रथानां भरतर्षभ ।
दश दन्तिसहस्राणि सप्त चैव शतानि च ॥ ३७ ॥
पूर्णे शतसहस्रे द्वे हयानां भरतर्षभ ।
नरकोटयस्तथा तिस्रो बलमेतत्तवाभवत् ॥ ३८ ॥

भरतर्षभ ! हमारी ओर ग्यारह हजार रथ, दस हजार सातसौ हाथी, दो लाख घोडे और तीन करोड पैदल थे। इतनी सेना शेष रही थी ॥ ३७-३८ ॥

रथानां षट्सहस्राणि षट्सहस्राश्च कुञ्जराः ।
दश चाश्वसहस्राणि पत्तिकोटी च भारत ॥ ३९ ॥
एतद्बलं पाण्डवानामभवच्छेषमाहवे ।
एत एव समाजग्मुर्युद्धाय भरतर्षभ ॥ ४० ॥

और भारत ! पाण्डवोंकी ओर छः सहस्र रथ, छः सहस्र हाथी, दस हजार घोडे और केवल एक करोड पैदल इतनी सेना शेष थी। भरतर्षभ ! ये सब योद्धा ही युद्धके लिये उपस्थित हो गये ॥ ३९-४० ॥

एवं विभज्य राजेन्द्र मद्रराजमते स्थिताः ।
पाण्डवान्प्रत्युदीयाम जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र ! सेनाका विभाग करके विजयकी अभिलाषासे क्रोधित होकर तुम्हारी सेना मद्रराज शल्यके आधीन हो पाण्डवोंपर चढ आयी ॥ ४१ ॥

तथैव पाण्डवाः शूराः समरे जितकाशिनः ।
उपयाता नरव्याघ्राः पाञ्चालाश्च यशस्विनः ॥ ४२ ॥

इसी प्रकार समरमें विजयी शूरवीर पुरुषव्याघ्र पाण्डवोंने भी यशस्वी पाञ्चालोंके सहित अपनी सेनाको युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥ ४२ ॥

एवमेते बलौघेन परस्परवधैषिणः ।
उपयाता नरव्याघ्राः पूर्वां संध्यां प्रति प्रभो ॥ ४३ ॥

तब ये दोनों सेनाके पुरुषव्याघ्र योद्धा परस्पर वधकी इच्छा करके, लडनेके लिए भिड गये। हे पृथ्वीनाथ ! उस ही समय सूर्य भी आकाशमें उदय हुए ॥ ४३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ३२९ ॥

तब तुम्हारे और शत्रुओंके– दोनों ओरके वीर एक दूसरेको मारनेके लिए घोर युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें सातवां अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ ३२९ ॥

+

: ८ :

सञ्जय उवाच—

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां भयवर्धनम् ।
सृञ्जयैः सह राजेन्द्र घोरं देवासुरोपमम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! तब कुरुवंशका नाश करनेवाला सृञ्जय और कौरवोंका घोर युद्ध होने लगा, जो देवासुरसंग्रामके समान था ॥ १ ॥

नरा रथा गजौघाश्च सादिनश्च सहस्रशः ।
वाजिनश्च पराक्रान्ताः समाजग्मुः परस्परम् ॥ २ ॥

पैदल, रथी, हाथीसवार और घोडोंपर चढे सहस्रों वीर पराक्रम करते हुए, एक दूसरेको मारने लगे ॥ २ ॥

नागानां भीमरूपाणां द्रवतां निस्वनो महान् ।
अश्रूयत यथा काले जलदानां नभस्तले ॥ ३ ॥

जैसे वर्षाकालके आकाशमें मेघ गर्जते हैं, वैसे ही दौडते हुए भारी हाथियोंका महान् शब्द सुनाई देने लगा ॥ ३ ॥

नागैरभ्याहताः केचित्सरथा रथिनोऽपतन् ।
व्यद्रवन्त रणे वीरा द्राव्यमाणा मदोत्कटैः ॥ ४ ॥

कोई रथ वीरोंके समेत हाथियोंके आघात पिस गए । कहीं मदोन्मत्त हाथियोंसे खदेडे जानेपर पैदल इधर उधर भागने लगे ॥ ४ ॥

हयौघान्पादरक्षांश्च रथिनस्तत्र शिक्षिताः ।
शरैः संप्रेषयामासुः परलोकाय भारत ॥ ५ ॥

भारत ! उस युद्धमें शिक्षा प्राप्त रथियोंने अनेक हाथियोंकी रक्षा करनेवाले, घुडसवारों और पैदल वीरोंको अपने बाणोंसे मारकर परलोकको भेज दिया ॥ ५ ॥

सादिनः शिक्षिता राजन्परिवार्य महारथान् ।
विचरन्तो रणेऽभ्यघ्नन्प्रासशक्त्यृष्टिभिस्तथा ॥ ६ ॥

हे राजन् ! रणभूमिमें घूमते हुए घोडोंपर चढे अनेक उत्तम शिक्षित वीर बडे बडे रथोंको घेरकर उनमें बैठे वीरोंपर प्रास, शक्ति और ऋष्टियोंसे प्रहार करने लगे ॥ ६ ॥

धन्विनः पुरुषाः केचित्संनिवार्य महारथान् ।
एकं बहव आसाद्य प्रेषयेयुर्यमक्षयम् ॥ ७ ॥

कहीं अनेक धनुर्धर पैदल अपने बाणोंसे रथमें बैठे महारथी वीरोंको घेरकर एकपर अनेक योद्धा आक्रमण करके उसे परलोकको भेजने लगे ॥ ७ ॥

नागं रथवरांश्चान्ये परिवार्य महारथाः ।
सोत्तरायुधिनं जघ्नुर्द्रवमाणा महारवम् ॥ ८ ॥

कोई महारथी हाथी और श्रेष्ठ रथियोंको घेरकर, और किसीसे संरक्षित होकर युद्ध करनेवाले भागते हुए महारथीको जोरसे शब्द करके मारकर गिराने लगे ॥ ८ ॥

तथा च रथिनं क्रुद्धं विकिरन्तं शरान्बहून् ।
नागा जघ्नुर्महाराज परिवार्य समन्ततः ॥ ९ ॥

हे महाराज! कहीं क्रोधित होकर अनेक बाण चलाते हुए रथमें बैठे वीरोंको हाथियोंने सब ओरसे घेरकर मार डाला ॥ ९ ॥

नागो नागमभिद्रुत्य रथी च रथिनं रणे ।
शक्तितोमरनाराचैर्निजघ्नुस्तत्र तत्र ह ॥ १० ॥

हे भारत! उस युद्धमें कहीं हाथी हाथीकी ओर और रथी रथीकी ओर दौडकर, शक्ति, तोमर और नाराच आदि शस्त्र चलाकर उसे मार डालता था ॥ १० ॥

पादातानवमृद्गन्तो रथवारणवाजिनः ।
रणमध्ये व्यदृश्यन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥ ११ ॥

युद्धमें कहीं हाथी, घोडे और रथोंकी झपेटमें आकर अनेक पदाति मर गये, उस समय वे सबको अत्यन्त व्याकुल करते हुए दिखाई देते थे ॥ ११ ॥

हयाश्च पर्यधावन्त चामरैरुपशोभिताः ।
हंसा हिमवतः प्रस्थे पिबन्त इव मेदिनीम् ॥ १२ ॥

कहीं चामरोंसे सुशोभित घोडे इस प्रकार दौडने लगे, मानो सब पृथ्वीमें घूम आवेंगे। उनकी शोभा ऐसी दीखती थी, जैसे हिमाचल पर रहनेवाले हंस नीचे पृथ्वीपर पानी पीनेके लिये तीव्र गतिसे उडकर आते हैं ॥ १२ ॥

तेषां तु वाजिनां भूमिः खुरैश्चित्रा विशां पते ।
अशोभत यथा नारी करजक्षतविक्षता ॥ १३ ॥

हे पृथ्वीनाथ! उन घोडोंके खुरोंसे खुदी हुई पृथ्वी ऐसी दीखती थी, जैसे प्रियतमके नखूनोंके लगनेसे क्षतविक्षत हुई स्त्री ॥ १३ ॥

वाजिनां खुरशब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
पत्तीनां चापि शब्देन नागानां बृंहितेन च ॥ १४ ॥

घोडोंके खुरके शब्द, रथके पहियोंकी आवाज, पदातियोंके गर्जने, हाथियोंके चिंघाडनेसे ॥ १४ ॥

वादित्राणां च घोषेण शंखानां निस्वनेन च ।
अभवन्नादिता भूमिर्निर्घातैरिव भारत ॥ १५ ॥
भारत ! सेनाके बाजे और वीरोंके शंख शब्दसे प्रतिध्वनित हुई पृथ्वी ऐसी जान पडती थी, मानों आज ही प्रलय होगी ॥ १५ ॥

धनुषां कूजमानानां निस्त्रिंशानां च दीप्यताम् ।
कवचानां प्रभाभिश्च न प्राज्ञायत किंचन ॥ १६ ॥
खिचती हुई धनुषकी टङ्कार, चमकते हुए शस्त्र और कवचोंकी प्रभासे कुछ भी जान नहीं पडता था ॥ १६ ॥

बहवो बाहवश्छिन्ना नागराजकरोपमाः ।
उद्वेष्टन्ते विवेष्टन्ते वेगं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १७ ॥
कहीं हाथीके सुंडके समान कटे हुए हाथ तडफ रहे थे। कभी उठते थे, कभी भयंकर वेग प्रकट करके गिर जाते थे ॥ १७ ॥

शिरसां च महाराज पततां वसुधातले ।
च्युतानामिव तालेभ्यः फलानां श्रूयते स्वनः ॥ १८ ॥
महाराज ! कहीं वीरोंके शिर कटकर इस प्रकार शब्द करके पृथ्वीमें गिरते थे, जैसे ताडके वृक्षसे गिरते हुए फल आवाज करते हैं ॥ १८ ॥

शिरोभिः पतितैर्भाति रुधिरार्द्रैर्वसुंधरा ।
तपनीयनिभैः काले नलिनैरिव भारत ॥ १९ ॥
कटे हुए रुधिरमें भीगे शिरोंसे पृथ्वी ऐसी सुन्दर दीखने लगी जैसे सुवर्णमय कमलोंसे भरा तलाव ॥ १९ ॥

उद्वृत्तनयनैस्तैस्तु गतसत्त्वैः सुविक्षतैः ।
व्यभ्राजत महाराज पुण्डरीकैरिवावृता ॥ २० ॥
हे महाराज ! खुले नेत्रोंवाले वलहीन घायल शिरोंसे ढकी हुई पृथ्वी लाल कमलोंसे आच्छादित हुई है, ऐसी शोभित हुई ॥ २० ॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः सकेयूरैर्महाधनैः ।
पतितैर्भाति राजेन्द्र मही शक्रध्वजैरिव ॥ २१ ॥
हे पृथ्वीनाथ ! जैसे अनेक इन्द्र धनुषोंसे भरा हुआ आकाश सुन्दर दीखता है, ऐसे ही बाजूबन्द तथा दूसरे बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषित चन्दनचर्चित कटे हाथोंसे भरी पृथ्वी दीखने लगी ॥ २१ ॥

ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां विनिकृत्तैर्महाहवे ।
हस्तिहस्तोपमैरन्यैः संवृतं तद्रणाङ्गणम् ॥ २२ ॥

हे राजन् ! इसी प्रकार उस महायुद्धमें अनेक राजाओंकी कटी हुई जाँघें हाथीकी सूंडोंके समान प्रतीत होती थीं । उससे वह रणांगण भरा हुआ था ॥ २२ ॥

कबन्धशतसंकीर्णं छत्रचामरशोभितम् ।
सेनावनं तच्छुशुभे वनं पुष्पाचितं यथा ॥ २३ ॥

जैसे अनेक रङ्गोंके फूलोंसे भरा हुआ वन शोभित होता है, ऐसे ही कटे हुए शिर और कटे छत्र, चमर आदिसे भरी हुई सेना दिखाई देने लगी ॥ २३ ॥

तत्र योधा महाराज विचरन्तो ह्यभीतवत् ।
दृश्यन्ते रुधिराक्ताङ्गाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ २४ ॥

हे राजन् ! वहां रुधिरमें भीगे शरीर लेकर घूमते हुए योद्धा फूले हुए टेसुओंके समान दिखाई देने लगे और बेडर होके घूमने लगे ॥ २४ ॥

मातङ्गाश्चाप्यदृश्यन्त शरतोमरपीडिताः ।
पतन्तस्तत्र तत्रैव छिन्नाभ्रसदृशा रणे ॥ २५ ॥

रणभूमिमें अनेक मतवाले हाथी, तोमर और बाण लगनेसे पीडित होकर इधर उधर गिरते हुए, कटे हुए मेघके समान दिखाई देते थे ॥ २५ ॥

गजानीकं महाराज वध्यमानं महात्मभिः ।
व्यदीर्यत दिशः सर्वा वातनुन्ना घना इव ॥ २६ ॥

जैसे वायु चलनेसे मेघ फट जाते हैं वैसे ही महात्मा वीरोंके बाण लगनेसे घायल हुए हाथि-योंके झुण्ड चारों ओरको भागने लगे ॥ २६ ॥

ते गजा घनसंकाशाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः ।
वज्ररुग्णा इव बभुः पर्वता युगसंक्षये ॥ २७ ॥

जैसे प्रलयकालमें वज्रके आघातसे पर्वत पृथ्वीमें गिरते हैं वैसे ही बाणोंके लगनेसे मेघोंकी घटाके समान दिखनेवाले हाथी पृथ्वीमें चारों ओर गिर गये ॥ २७ ॥

हयानां सादिभिः सार्धं पतितानां महीतले ।
राशयः संप्रदृश्यन्ते गिरिमात्रास्ततस्ततः ॥ २८ ॥

चारों ओर चढे हुए वीरोंके सहित पृथ्वीपर मरे हुए घोडोंके पहाडोंके समान ढेर यत्रतत्र दिखायी देते थे ॥ २८ ॥

संजज्ञे रणभूमौ तु परलोकवहा नदी ।
शोणितोदा रथावर्ता ध्वजवृक्षास्थिशर्करा ॥ २९ ॥
तब उस समय युद्धभूमिमें परलोकको जानेवाली रुधिरकी एक नदी वहने लगी, उसमें रक्त ही उसका पानी, रथ भौंरे, पताका तटवर्ती टूटे हुए वृक्ष, हड्डियोंका चूरा बालूके समान जान पडता था ॥ २९ ॥

भुजनक्रा धनुःस्रोता हस्तिशैला हयोपला ।
मेदोमज्जाकर्दमिनी छत्रहंसा गदोडुपा ॥ ३० ॥
कटे हुए हाथ नाक, धनुष उसके स्रोते, तटपर पडे हुए हाथी पर्वत, घोडे पत्थरके समान थे, मेदा और मज्जा उसके कीचड, छत्र हंस, गदा नौका जान पडती थीं ॥ ३० ॥

कवचोष्णीषसंछन्ना पताकारुचिरद्रुमा ।
चक्रचक्रावलीजुष्टा त्रिवेणूदण्डकावृता ॥ ३१ ॥
पगडी और कवच आदि वस्तुएँ सिवारके समान उस नदीके पानीको आच्छादित करती थीं पताका सुंदर वृक्ष जैसी लगती थी । रथके चक्र चकवी चकवाके समान दीखने लगे और त्रिवेणुरूपी सर्प उसमें भरे हुए थे ॥ ३१ ॥

शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धिनी ।
प्रावर्त्तत नदी रौद्रा कुरुसृञ्जयसंकुला ॥ ३२ ॥
उस भयंकर नदीको देखकर शूरवीर प्रसन्न और कायर डरने लगे । कौरव और सृञ्जयवंशी क्षत्रियोंसे वह व्याप्त हो गयी थी ॥ ३२ ॥

तां नदीं पितृलोकाय वहन्तीमतिभैरवाम् ।
तेरुर्वाहननौभिस्ते शूराः परिघबाहवः ॥ ३३ ॥
इस वैतरणीके समान घोर परलोकको ले जानेवाली नदीको मोटी भुजावाले बलवान् वीर वाहनरूपी नावोंपर बैठकर पार करने लगे ॥ ३३ ॥

वर्तमाने तदा युद्धे निर्मर्यादे विशां पते ।
चतुरङ्गक्षये घोरे पूर्वं देवासुरोपमे ॥ ३४ ॥
हे पृथ्वीनाथ ! इस समय यह चतुरङ्गिणी सेनाके नाश करनेवाला मर्यादारहित प्राचीन देवता और राक्षसोंके समान घोर युद्ध होने लगा ॥ ३४ ॥

अक्रोशन्बान्धवानन्ये तत्र तत्र परन्तप ।
क्रोशद्भिर्बान्धवैश्चान्ये भयार्ता न निवर्तिरे ॥ ३५ ॥
परन्तप ! कोई अपने बन्धुओंको पुकारने लगे, कोई प्रिय बन्धुओंका पुकार सुनकर ही डरके मारे युद्धको न लौटे ॥ ३५ ॥

निर्मर्यादे तथा युद्धे वर्तमाने भयानके ।
अर्जुनो भीमसेनश्च मोहयांचक्रतुः परान् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार वह भयानक युद्ध निर्मर्याद हो रहा था । उस घोर युद्धमें अर्जुन और भीमसेनने शत्रुओंकी सेनाको मोहित कर दिया ॥ ३६ ॥

सा वध्यमाना महती सेना तव जनाधिप ।
अमुह्यत्तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥ ३७ ॥

जनाधिप ! जैसे मतवाली स्त्री कामदेवसे व्याकुल हो जाती है ऐसेही तुम्हारी विशाल सेना पाण्डवोंके बाणोंसे व्याकुल हो गई ॥ ३७ ॥

मोहयित्वा च तां सेनां भीमसेनधनंजयौ ।
दध्मतुर्वारिजौ तत्र सिंहनादं च नेदतुः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार उस सेनाको व्याकुल करके, भीमसेन और अर्जुन सिंहके समान गर्जने और शङ्ख बजाने लगे ॥ ३८ ॥

श्रुत्वैव तु महाशब्दं धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
धर्मराजं पुरस्कृत्य मद्रराजमभिद्रुतौ ॥ ३९ ॥

उनके महान् शब्दको सुनकर धृष्टद्युम्न और शिखण्डी धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षा करते हुए मद्रराज शल्यसे युद्ध करनेको चले ॥ ३९ ॥

तत्राश्चर्यमपश्याम घोररूपं विशां पते ।
शल्येन संगताः शूरा यदयुध्यन्त भागशः ॥ ४० ॥

हे महाराज ! पृथक् दल बनाकर आये हुए अनेक वीर अकेले शल्यसे ही युद्ध करने लगे । शल्य भी अकेले ही सबसे लडते रहे, यह देखकर हमको बडा आश्चर्य हुआ ॥ ४० ॥

माद्रीपुत्रौ सरभसौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ।
अभ्ययातां त्वरायुक्तौ जिगीषन्तौ बलं तव ॥ ४१ ॥

इसी प्रकार महापराक्रमी महाशस्त्रधारी वेगशाली वीर माद्रीकुमार नकुल और सहदेव भी विजयकी अभिलाषा करके शीघ्र ही शल्यपर धावा करने लगे ॥ ४१ ॥

ततो न्यवर्तत बलं तावकं भरतर्षभ ।
शरैः प्रणुन्नं बहुधा पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ ४२ ॥

हे राजन् ! तव विजयी पाण्डवोंने अपने बाणोंसे तुम्हारी सेनाको बारबार व्याकुल किया ॥ ४२ ॥

वध्यमाना चमूः सा तु पुत्राणां प्रेक्षतां तव ।
भेजे दिशो महाराज प्रणुन्ना दृढधन्विभिः ।
हाहाकारो महाञ्जज्ञे योधानां तव भारत ॥ ४३ ॥

महाराज ! इस प्रकार चोटसे व्याकुल और धनुर्धारियोंकी बाणोंकी वर्षासे क्षतविक्षत हुई तुम्हारी सेना तुम्हारे पुत्रोंके देखते देखते ही चारों ओरको भागने लगी। हे राजन् ! तुम्हारे योद्धाओंमें महान् हाहाकार मच गया ॥ ४३ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति वागासीद्द्रावितानां महात्मनाम् ।
क्षत्रियाणां तदान्योन्यं संयुगे जयमिच्छताम् ।
आद्रवन्नेव भग्नास्ते पाण्डवैस्तव सैनिकाः ॥ ४४ ॥

खडा रह, खडा रह ऐसा महात्मा पाण्डव भागनेवालेको पुकारते थे। युद्धमें परस्पर विजयकी इच्छा करनेवालोंमेंसे तुम्हारी ओरके अनेक क्षत्रिय जय चाहनेवाले पाण्डवोंके वीरसे पराजित होकर भागने लगे ॥ ४४ ॥

त्यक्त्वा युद्धे प्रियान्पुत्रान्भ्रातॄनथ पितामहान् ।
मातुलान्भागिनेयांश्च तथा संबन्धिबान्धवान् ॥ ४५ ॥

हे भारत ! तुम्हारे वीर सैनिक अपने प्यारे बेटे, भाई, दादा, मामा, भानजे और बन्धु-बान्धव–मित्रोंको भी छोडकर युद्धसे भागे ॥ ४५ ॥

हयान्द्विपांस्त्वरयन्तो योधा जग्मुः समन्ततः ।
आत्मत्राणकृतोत्साहास्तावका भरतर्षभ ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ३७१ ॥

हे भरतकुलसिंह ! केवल अपने प्राण बचानेके लिये उत्साहित तुम्हारे सैनिक लोग हाथी और घोडोंको तीव्र गतिसे दौडाते हुए युद्धसे सब ओर भागे ॥ ४६ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें आठवां अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ ३७५ ॥

: ९ :

सञ्जय उवाच—

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा मद्रराजः प्रतापवान् ।
उवाच सारथिं तूर्णं चोदयाश्वान्महाजवान् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले, हे राजन् ! अपनी सेनाको उस तरह भागते देख महाप्रतापी मद्रराज शल्यने अपने सारथिसे कहा– मेरे महावेगशाली घोडोंको बहुत तेज हांको ॥ १ ॥

एष तिष्ठति वै राजा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ।
छत्रेण ध्रियमाणेन पाण्डुरेण विराजता ॥ २ ॥

यह देखो, ये मस्तकपर शोभायमान सफेद छत्र लगाये हुए पाण्डुपुत्र महाराज युधिष्ठिर खडे हैं ॥ २ ॥

अत्र मां प्रापय क्षिप्रं पश्य मे सारथे बलम् ।
न समर्था हि मे पार्थाः स्थातुमद्य पुरो युधि ॥ ३ ॥

सारथे ! तुम हमारे रथको ठीक उन्हींके सामने शीघ्र ले चलो और हमारा बल देखो । आज युद्धमें कुन्तीकुमार पाण्डव हमारे सामने कदापि नहीं ठहर सकते ॥ ३ ॥

एवमुक्तस्ततः प्रायान्मद्रराजस्य सारथिः ।
यत्र राजा सत्यसंधो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

राजाके ये वचन सुन मद्रराजके सारथिने सत्यवादी महाराज युधिष्ठिर जहां खडे थे, वहीं रथ हांका ॥ ४ ॥

आपतन्तं च सहसा पाण्डवानां महद्बलम् ।
दधारैको रणे शल्यो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥ ५ ॥

शल्यको आते देख पाण्डवोंकी विशाल सेना सहसा राजाकी रक्षा और उनसे युद्ध करनेको आ पहुंची, परन्तु अकेले राजा शल्यने उन सबको इस प्रकार रोक दिया जैसे समुद्रके तटके पर्वत समुद्रकी तरङ्गको ॥ ५ ॥

पाण्डवानां बलौघस्तु शल्यमासाद्य मारिष ।
व्यतिष्ठत तदा युद्धे सिन्धोर्वेग इवाचलम् ॥ ६ ॥

मारिष ! जैसे पर्वत तक जाकर नदीका वेग आगे नहीं बढ सकता, ऐसे ही पाण्डवोंके वीर शल्यके पास जाकर आगे न चल सके, वहीं खडे हो गये ॥ ६ ॥

मद्रराजं तु समरे दृष्ट्वा युद्धाय विष्ठितम् ।
कुरवः संन्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ७ ॥

समरमें मद्रराज शल्यको घोर युद्धके लिये डटा हुआ देख तुम्हारे कौरव वीर मृत्युका निश्चय करके युद्धको लौटे ॥ ७ ॥

तेषु राजन्निवृत्तेषु व्यूढानीकेषु भागशः ।
प्रावर्तत महारौद्रः संग्रामः शोणितोदकः ।
समार्छच्चित्रसेनेन नकुलो युद्धदुर्मदः ॥ ८ ॥

हे राजन् ! अलग अलग सेनाओंकी व्यूहरचना करके सभी सेनाके लौटने पर, फिर दोनों दलोंमें घोर युद्ध होने लगा, जहां पानीकी तरह रक्त बहता था । उसी समय युद्ध दुर्मद नकुल कर्णपुत्र चित्रसेनके ऊपर बाण वर्षाने लगे ॥ ८ ॥

तौ परस्परमासाद्य चित्रकार्मुकधारिणौ ।
मेघाविव यथोद्वृत्तौ दक्षिणोत्तरवर्षिणौ ॥ ९ ॥

दोनों महापराक्रमी वीर विचित्र धनुष लेकर एक दूसरेसे भिडकर घोर युद्धको उपस्थित हुए, जैसे दक्षिण और उत्तरको वर्षा करनेवाले दो मेघ जल बर्षाते हैं ॥ ९ ॥

शरतोयैः सिषिचतुस्तौ परस्परमाहवे ।
नान्तरं तत्र पश्यामि पाण्डवस्येतरस्य वा ॥ १० ॥

वैसे ही ये दोनों भी परस्पर बाण रूपी जलकी वर्षा करने लगे, पाण्डुपुत्र नकुल और कर्ण-पुत्र चित्रसेनकी शस्त्रविद्यामें हमें कुछ भेद नहीं दिखाई देता था ॥ १० ॥

उभौ कृतास्त्रौ बलिनौ रथचर्याविशारदौ ।
परस्परवधे यत्तौ छिद्रान्वेषणतत्परौ ॥ ११ ॥

क्यों कि दोनों ही अस्त्रशस्त्रविद्यामें निपुण, महावीर और रथयुद्धमें कुशल थे । ये दोनों एक दूसरेके मारनेका यत्न करने लगे और एक दूसरेका छिद्र शोधने लगे ॥ ११ ॥

चित्रसेनस्तु भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
नकुलस्य महाराज मुष्टिदेशेऽच्छिनद्धनुः ॥ १२ ॥

महाराज ! तब चित्रसेनने एक पानीदार तेज भल्ल बाणसे नकुलका धनुष बीचसे काट दिया ॥ १२ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
त्रिभिः शरैरसम्भ्रान्तो ललाटे वै समर्पयत् ॥ १३ ॥

और धनुष कट जानेपर उनके ललाटमें सोनेके पङ्खवाले तीन तेज बाण स्थिर चित्तसे मारे ॥ १३ ॥

हयांश्चास्य शरैस्तीक्ष्णैः प्रेषयामास मृत्यवे ।
तथा ध्वजं सारथिं च त्रिभिस्त्रिभिरपातयत् ॥ १४ ॥

और तीक्ष्ण बाणोंसे घोडोंको मार डाला, फिर तीन तीन बाणोंसे ध्वजा और सारथिको भी काट डाला ॥ १४ ॥

स शत्रुभुजनिर्मुक्तैर्ललाटस्थैस्त्रिभिः शरैः ।
नकुलः शुशुभे राजंस्त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ १५ ॥

हे राजन् ! शत्रुकी भुजाओंसे छूटकर माथेमें लगे उन तीन बाणोंसे नकुल तीन शिखरवाले पर्वतके समान शोभित होने लगे ॥ १५ ॥

स छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च ।
रथादवातरद्वीरः शैलाग्रादिव केसरी ॥ १६ ॥

धनुष कट जानेपर रथहीन हुए वीर नकुल फिर खड्ग और ढाल लेकर इस प्रकार रथसे कूदे जैसे पर्वतकी चोटीसे सिंह ॥ १६ ॥

पद्भ्यामापततस्तस्य शरवृष्टिमवासृजत् ।
नकुलोऽप्यग्रसत्तां वै चर्मणा लघुविक्रमः ॥ १७ ॥

उन्हें कूदते और पैदल आते हुए देख चित्रसेन नकुलके ऊपर बाण वर्षाने लगे । शीघ्रता-पूर्वक पराक्रम करनेवाले नकुलने भी उन सब बाणोंको ढालसे रोककर नष्ट कर दिया ॥१७॥

चित्रसेनरथं प्राप्य चित्रयोधी जितश्रमः ।
आरुरोह महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ १८ ॥

और विचित्र युद्ध करते हुए महाबाहु नकुल परिश्रमको जीतकर चित्रसेनके रथतक पहुंच गये और सब वीरोंके देखते देखते रथपर चढ गये ॥ १८ ॥

सकुण्डलं समुकुटं सुनसं स्वायतेक्षणम् ।
चित्रसेनशिरः कायादपाहरत पाण्डवः ।
स पपात रथोपस्थाद्दिवाकरसमप्रभः ॥ १९ ॥

फिर शीघ्रता सहित पाण्डुकुमार नकुलने चित्रसेनके कुण्डल, मुकुट, सुन्दर नाक और बडी बडी आंखोंके सहित शिर धडसे काट लिया । सूर्यके समान प्रभावाले चित्रसेन शिर कटकर रथसे गिर गये ॥ १९ ॥

चित्रसेनं विशस्तं तु दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
साधुवादस्वनांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥ २० ॥

चित्रसेनको मारा गया देख पाण्डव और पाञ्चाल महारथी नकुलकी प्रशंसा करके, बहुत सिंहनाद करने लगे ॥ २० ॥

विशस्तं भ्रातरं दृष्ट्वा कर्णपुत्रौ महारथौ ।
सुषेणः सत्यसेनश्च मुञ्चन्तौ निशिताञ्शरान् ॥ २१ ॥

तब अपने भाईको मारा गया देख कर्णके दो महारथी पुत्र सुषेण और सत्यसेन तीक्ष्ण बाण वर्षाते हुए ॥ २१ ॥

ततोऽभ्यधावतां तूर्णं पाण्डवं रथिनां वरम् ।
जिघांसन्तौ यथा नागं व्याघ्रौ राजन्महावने ॥ २२ ॥

राजन् ! रथियोंमें श्रेष्ठ पांडुपुत्र नकुलकी ओर शीघ्रही इस प्रकार दौडे जैसे महावनमें एक हाथीके मारनेको दो व्याघ्र दौडते हैं ॥ २२ ॥

तावभ्यधावतां तीक्ष्णौ द्वावप्येनं महारथम् ।
शरौघान्सम्यगस्यन्तौ जीमूतौ सलिलं यथा ॥ २३ ॥

जैसे दो मेघ पानी वर्षाते हुए दौडते हैं, ऐसे ही कर्णके तीखे स्वभाववाले दोनों पुत्र महारथी नकुलकी ओर बाण समूहोंको चलाते दौडे ॥ २३ ॥

स शरैः सर्वतो विद्धः प्रहृष्ट इव पाण्डवः ।
अन्यत्कार्मुकमादाय रथमारुह्य वीर्यवान् ।
अतिष्ठत रणे वीरः क्रुद्धरूप इवान्तकः ॥ २४ ॥

सब ओरसे उन बाणोंके लगनेपर भी पांडुपुत्र नकुल, बहुत प्रसन्न हुए वीर योद्धाके समान दूसरा धनुष धारण करके, बडे वेगसे दूसरे रथपर चढ गये। उस समय क्रोधमें भरे समरमें स्थित नकुलका रूप ऐसा दीखता था, मानो साक्षात् यमराज प्रलय करनेको आये हैं ॥ २४ ॥

तस्य तौ भ्रातरौ राजञ्शरैः संनतपर्वभिः ।
रथं विशकलीकर्तुं समारब्धौ विशां पते ॥ २५ ॥

राजन् ! पृथ्वीपते ! तब कर्णके दोनों पुत्र भी अपने तेज बाणोंसे नकुलका रथ काटनेका यत्न करने लगे ॥ २५ ॥

ततः प्रहस्य नकुलश्चतुर्भिश्चतुरो रणे ।
जघान निशितैस्तीक्ष्णैः सत्यसेनस्य वाजिनः ॥ २६ ॥

तब नकुलने हंसकर युद्धमें चार तीक्ष्ण बाणोंसे सत्यसेनके चारों घोडोंको मार डाला ॥२६॥

ततः संधाय नाराचं रुक्मपुङ्खं शिलाशितम् ।
धनुश्चिच्छेद राजेन्द्र सत्यसेनस्य पाण्डवः ॥ २७ ॥

राजेन्द्र ! फिर शिलापर घिसकर तेज किये हुए सोनेके पङ्खवाले एक नाराच बाणसे पाण्डुपुत्र नकुलने सत्यसेनका धनुष भी काट दिया ॥ २७ ॥

अथान्यं रथमास्थाय धनुरादाय चापरम् ।
सत्यसेनः सुषेणश्च पाण्डवं पर्यधावताम् ॥ २८ ॥

तब सत्यसेनने दूसरे रथपर बैठ दूसरा धनुष लिया, तब फिर दोनों भाई सत्यसेन और सुषेण सावधान होकर पाण्डुपुत्र नकुलसे घोर युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥

अविध्यत्तावसंभ्रान्तौ माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां महाराज शराभ्यां रणमूर्धनि ॥ २९ ॥

महाराज ! माद्रीपुत्र प्रतापी नकुल भी अकेले ही दोनोंसे निर्भय चित्तसे लडने लगे, और उन्होंने दो दो बाणोंसे उन दोनों भाईयोंको विद्ध किया ॥ २९ ॥

सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य महद्धनुः ।
चिच्छेद प्रहसन्युद्धे क्षुरप्रेण महारथः ॥ ३० ॥

तब महारथी सुषेणने क्रोधित होकर, हंसकर युद्धमें एक क्षुरप्र बाणसे पाण्डुपुत्र नकुलका बडा धनुष काट दिया ॥ ३० ॥

अथान्यद्धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्छितः ।
सुषेणं पञ्चभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ॥ ३१ ॥

तब नकुलने क्रोधसे व्याकुल होकर दूसरा धनुष लेकर, पांच बाण सुषेणके शरीरमें मारकर उसको घायल किया और एकसे उसके रथकी ध्वजा काट दी ॥ ३१ ॥

सत्यसेनस्य स धनुर्हस्तावापं च मारिष ।
चिच्छेद तरसा युद्धे तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३२ ॥

मारिष ! युद्धमें फिर दो बाणोंसे सत्यसेनका धनुष और तलहत्थी भी वेगपूर्वक काट दी, नकुलकी इस शीघ्रताको देख पाण्डवोंके सब लोग गर्जने लगे ॥ ३२ ॥

अथान्यद्धनुरादाय वेगघ्नं भारसाधनम् ।
शरैः संछादयामास समन्तात्पाण्डुनन्दनम् ॥ ३३ ॥

इतने ही समयमें सत्यसेनने शत्रुका वेग नष्ट करनेवाला दूसरा दृढ धनुष धारण किया और बाणोंसे पाण्डुनन्दन नकुलको छिपा दिया ॥ ३३ ॥

संनिवार्य तु तान्बाणान्नकुलः परवीरहा ।
सत्यसेनं सुषेणं च द्वाभ्यां द्वाभ्यामविध्यत ॥ ३४ ॥

परन्तु शत्रुवीरनाशन नकुलने क्षणमात्रमें सब बाणोंको काटकर सत्यसेन और सुषेण इन दोनोंके शरीरमें दो दो बाण मारे ॥ ३४ ॥

तावेनं प्रत्यविध्येतां पृथक्पृथगजिह्मगैः ।
सारथिं चास्य राजेन्द्र शरैर्विव्यधतुः शितैः ॥ ३५ ॥

राजेन्द्र ! उन दोनोंने भी अनेक तेज बाण नकुलके शरीरमें मारे, फिर दोनोंने मिलकर नकुलके सारथीको पैने बाणोंसे घायल किया ॥ ३५ ॥

सत्यसेनो रथेषां तु नकुलस्य धनुस्तथा ।
पृथक्शराभ्यां चिच्छेद कृतहस्तः प्रतापवान् ॥ ३६ ॥

फिर सिद्धहस्त और प्रतापी सत्यसेनने पृथक् दो दो बाणोंसे नकुलका धनुष और रथके ईषाको काट दिया ॥ ३६ ॥

स रथेऽतिरथस्तिष्ठन्रथशक्तिं परामृशत् ।
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां तैलधौतां सुनिर्मलाम् ॥ ३७ ॥

तब रथपर खडे हुए प्रतापवान् महारथी नकुलने सोनेके दंडवाली, अकुण्ठित अग्रभागवाली, तेलमें धोकर साफ की हुई निर्मल ऐसी एक रथशक्ति हाथमें ली ॥ ३७ ॥

लेलिहानामिव विभो नागकन्यां महाविषाम् ।
समुद्यम्य च चिक्षेप सत्यसेनस्य संयुगे ॥ ३८ ॥

हे प्रभो ! वह शक्ति विषमें बुझाई चमकती हुई, तेज धारेवाली, सांपकी जीभके समान लपकती, विषभरी नागकन्याके समान भयानक प्रतीत होती थी। नकुलने युद्धमें वह रथशक्ति ऊपर उठाकर, सत्यसेनकी ओर चलाई ॥ ३८ ॥

सा तस्य हृदयं संख्ये बिभेद शतधा नृप ।
स पपात रथाद्भूमौ गतसत्त्वोऽल्पचेतनः ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! उस शक्तिसे युद्धमें उसकी छाती फट गई, सत्यसेनकी चेतना जाती रही और वह मरकर रथसे पृथ्वीमें गिर गये ॥ ३९ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा सुषेणः क्रोधमूर्छितः ।
अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं पदातिं पाण्डुनन्दनम् ॥ ४० ॥

अपने भाईको मरा देख, सुषेणको महा क्रोध हुआ, और वह शीघ्रही पैदल हुए पाण्डुनन्दन नकुलपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४० ॥

नकुलं विरथं दृष्ट्वा द्रौपदेयो महाबलः ।
सुतसोमोऽभिदुद्राव परीप्सन्पितरं रणे ॥ ४१ ॥

नकुलको रथहीन हुआ देख, द्रौपदीपुत्र महाबलवान् सुतसोम अपने चाचाकी रक्षाके लिये वहाँ वेगसे दौडे ॥ ४१ ॥

ततोऽधिरुह्य नकुलः सुतसोमस्य तं रथम् ।
शुशुभे भरतश्रेष्ठो गिरिस्थ इव केसरी ।
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सुषेणं समयोधयत् ॥ ४२ ॥

तब नकुल भी दौडकर सुतसोमके रथपर चढ गये। उस समय रथपर बैठे भरतश्रेष्ठ नकुलकी ऐसी शोभा बढी, जैसे पर्वतके शिखर पर चढनेसे सिंहकी, तब उन्होंने दूसरा धनुष लेकर सुषेणसे युद्ध करना शुरु किया ॥ ४२ ॥

तावुभौ शरवर्षाभ्यां समासाद्य परस्परम् ।
परस्परवधे यत्नं चक्रतुः सुमहारथौ ॥ ४३ ॥

वे दोनों महारथी परस्पर घोर बाण वर्षाते हुए एक दूसरेको मारनेका यत्न करने लगे ॥ ४३ ॥

सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः ।
सुतसोमं च विंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ४४ ॥

तब सुषेणने क्रोध करके, पाण्डुपुत्र नकुलको तीन बाणोंसे वींध डाला और सुतसोमकी दोनों भुजाओं और छातीमें वीस बाण मारे ॥ ४४ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा ।
शरैस्तस्य दिशः सर्वाश्छादयामास वीर्यवान् ॥ ४५ ॥

हे महाराज ! तब शत्रुवीरनाशन महापराक्रमी नकुलने महाक्रोध करके अपने बाणोंसे सुषेणको सब ओरसे छिपा दिया ॥ ४५ ॥

ततो गृहीत्वा तीक्ष्णाग्रमर्धचन्द्रं सुतेजनम् ।
स वेगयुक्तं चिक्षेप कर्णपुत्रस्य संयुगे ॥ ४६ ॥

तब एक तीक्ष्ण महातेज वेगवान् अर्द्धचन्द्र बाण धनुषपर चढाकर उसे युद्धमें कर्ण पुत्रकी ओर चलाया ॥ ४६ ॥

तस्य तेन शिरः कायाज्जहार नृपसत्तम ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४७ ॥

नृपश्रेष्ठ ! उस बाणसे नकुलने सब सेनाओंके देखते देखते सुषेणका शिर धडसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया । नकुलके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर हम सब लोग आश्चर्य करने लगे ॥ ४७ ॥

स हतः प्रापतद्राजन्नकुलेन महात्मना ।
नदीवेगादिवारुग्णस्तीरजः पादपो महान् ॥ ४८ ॥

जैसे नदीके वेगसे टूटकर तटपरका महान् वृक्ष गिर पडता है, ऐसे ही महात्मा नकुलके बाणोंसे कटकर सुषेण पृथ्वीमें गिरे ॥ ४८ ॥

कर्णपुत्रवधं दृष्ट्वा नकुलस्य च विक्रमम् ।
प्रदुद्राव भयात्सेना तावकी भरतर्षभ ॥ ४९ ॥

हे भरतकुलश्रेष्ठ ! नकुलके इस पराक्रमको देखकर और कर्णके वेटोंको मरा हुआ जानकर, तुम्हारी सेना चारों ओरको भागने लगी ॥ ४९ ॥

तां तु सेनां महाराज मद्रराजः प्रतापवान् ।
अपालयद्रणे शूरः सेनापतिररिन्दमः ॥ ५० ॥

हे महाराज ! अपनी सेनाको भागते देखा शत्रुदमन, वीर सेनापति प्रतापी मद्रराज शल्यने उस सेनाको युद्धमें स्थिर किया ॥ ५० ॥

विभीस्तस्थौ महाराज व्यवस्थाप्य च वाहिनीम् ।
सिंहनादं भृशं कृत्वा धनुःशब्दं च दारुणम् ॥ ५१ ॥

राजन् ! अपनी सेनाको स्थिर करके, प्रतापी शल्य वेडर होकर, जोर जोरसे सिंहके समान गर्जने और धनुषको भयंकर रीतिसे टङ्कारने लगे ॥ ५१ ॥

तावकाः समरे राजन्नरक्षिता दृढधन्वना ।
प्रत्युद्ययुररातींस्ते समन्ताद्विगतव्यथाः ॥ ५२ ॥

महाराज ! सुदृढ धनुषधारी शल्यसे रक्षित और व्यथारहित हुए तुम्हारे सैनिक युद्धमें चारों ओरसे शत्रुओंकी ओर धावा करने लगे ॥ ५२ ॥

मद्रराजं महेष्वासं परिवार्य समन्ततः ।
स्थिता राजन्महासेना योद्धुकामाः समन्ततः ॥ ५३ ॥

हे महाराज ! तुम्हारे सब प्रधान योद्धा महाधनुर्धर मद्रराज शल्यको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करने लगे । और शत्रुओंके साथ युद्धके लिए उपस्थित हुए ॥ ५३ ॥

सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य ह्रीनिषेधमरिन्दमम् ॥ ५४ ॥

इसी प्रकार सात्यकि, भीमसेन, माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल और सहदेव शत्रुदमन और मर्यादाशील युधिष्ठिरकी रक्षा करने लगे और युद्धको उपस्थित हो गये ॥ ५४ ॥

परिवार्य रणे वीराः सिंहनादं प्रचक्रिरे ।
बाणशङ्खरवांश्चोग्रान्क्ष्वेडांश्च विविधान्दधुः ॥ ५५ ॥

पाण्डवोंके सब वीर युद्धमें युधिष्ठिरको घेरकर, सिंहनाद, बाण—शंखोंके तीव्र शब्द और नाना प्रकारकी गर्जना करने लगे ॥ ५५ ॥

तथैव तावकाः सर्वे मद्राधिपतिमञ्जसा ।
परिवार्य सुसंरब्धाः पुनर्युद्धमरोचयन् ॥ ५६ ॥

इसी प्रकार तुम्हारे सब प्रधान वीर मद्रराज शल्यको चारों ओरसे घेरकर संतप्त होकर पुनः युद्ध करने लगे ॥ ५६ ॥

ततः प्रववृते युद्धं भीरूणां भयवर्धनम् ।
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ५७ ॥

हे महाराज ! तब तुम्हारे और पाण्डवोंके वीरोंका घोर युद्ध होने लगा, सबने मृत्युको अवश्य होनेवाली समझ लिया । इस युद्धको देख कायर भयसे भागने लगे ॥ ५७ ॥

यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीद्विशां पते ।
अभीतानां तथा राजन्यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ५८ ॥

प्रजापते ! राजन् ! जैसे पहले देवता और राक्षसोंका युद्ध हुआ था, ऐसे ही भयरहित दोनों पक्षोंका यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला भयंकर युद्ध हुआ ॥ ५८ ॥

ततः कपिध्वजो राजन्हत्वा संशप्तकान्रणे ।
अभ्यद्रवत तां सेनां कौरवीं पाण्डुनन्दनः ॥ ५९ ॥

राजन् ! उसी समय संशप्तक सेनाका नाश करके पाण्डुनन्दन कपिध्वज अर्जुन भी उसी कौरव सेनाकी ओर युद्धमें दौडे ॥ ५९ ॥

तथैव पाण्डवाः शेषा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
अभ्यधावन्त तां सेनां विसृजन्तः शिताञ्शरान् ॥ ६० ॥

तभी धृष्टद्युम्न आदि शेष पाण्डवोंके प्रधान वीर भी तुम्हारी उस ही सेनाकी ओर दौडे और घोर बाण वर्षाने लगे ॥ ६० ॥

पाण्डवैरवकीर्णानां संमोहः समजायत ।
न च जज्ञुरनीकानि दिशो वा प्रदिशस्तथा ॥ ६१ ॥

पाण्डवोंके वीरोंके बाणोंसे आच्छादित हुई कौरव सेना मोहित हो गई । किसीको दिशाओं-प्रदिशाओंका भी ज्ञान न रहा ॥ ६१ ॥

आपूर्यमाणा निशितैः शरैः पाण्डवचोदितैः ।
हतप्रवीरा विध्वस्ता कीर्यमाणा समन्ततः ।
कौरव्यवध्यत चमूः पाण्डुपुत्रैर्महारथैः ॥ ६२ ॥

पाण्डवोंके वीरोंने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हारी सेनाको व्याप्त करके मुख्य वीर मारे । इससे वह सेना नष्ट होने लगी और चारों ओरसे उसकी चाल रुक गयी । महारथी पाण्डुपुत्र कौरवसेनाका वध करने लगे ॥ ६२ ॥

तथैव पाण्डवी सेना शरै राजन्समन्ततः ।
रणेऽहन्यत पुत्रैस्ते शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६३ ॥

राजन् ! जिस प्रकार उन वीरोंने तुम्हारी सेनाको व्याकुल किया, ऐसे ही तुम्हारे वीर पुत्रोंने भी पाण्डवोंकी सेनाको व्याकुल कर दिया, तुम्हारे पुत्रोंने सैकडों सहस्रों पाण्डवोंके वीरोंको युद्धमें अपने बाणोंसे मार डाला ॥ ६३ ॥

ते सेने भृशसंतप्ते वध्यमाने परस्परम् ।
व्याकुले समपद्येतां वर्षासु सरिताविव ॥ ६४ ॥

तब दोनों सेना व्याकुल हो गई; जैसे वर्षाऋतुमें दो नदियां एक दूसरीके जलसे भरकर अपनी मर्यादा छोडकर बहने लगती हैं, वैसे ही ये दोनों सेनाएं टुकडे टुकडे होकर संतप्त होकर युद्ध करने लगीं ॥ ६४ ॥

आविवेश ततस्तीव्रं तावकानां महद्भयम् ।
पाण्डवानां च राजेन्द्र तथाभूते महाहवे ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ४४० ॥

ऐसा होनेसे उस महायुद्धमें तुम्हारी ओरके प्रधान वीर और उधर पाण्डवोंके भी सब वीर मनमें दुःसह भयसे डरने और घबडाने लगे ॥ ६५ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें नववां अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ ४४० ॥

: १0 :

संजय उवाच—

तस्मिन्विकुलिते सैन्ये वध्यमाने परस्परम् ।
द्रवमाणेषु योधेषु निनदत्सु च दन्तिषु ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! ऐसा घोर युद्ध होनेसे दोनों ओरकी सेना परस्पर घायल होकर भयभीत हुई, किसीको व्यूहका ध्यान न रहा, दोनों पक्षोंके वीर इधर उधर भागने लगे, हाथी चिंघाडने लगे ॥ १ ॥

कूजतां स्तनतां चैव पदातीनां महाहवे ।
विद्रुतेषु महाराज हयेषु बहुधा तदा ॥ २ ॥

महाराज ! पदाति उस महायुद्धमें कण्ठसे दुःखयुक्त शब्द करके चिल्लाने लगे, तब बहुतसे घोडे भाग गये ॥ २ ॥

प्रक्षये दारुणे जाते संहारे सर्वदेहिनाम् ।
नानाशस्त्रसमावापे व्यतिषक्तरथद्विपे ॥ ३ ॥

सब देहधारी मनुष्योंका भयंकर संहार होने लगा, अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्र चलने लगे, रथ और हाथी एक दूसरेसे कट गये ॥ ३ ॥

हर्षणे युद्धशौण्डानां भीरूणां भयवर्धने ।
गाहमानेषु योधेषु परस्परवधैषिषु ॥ ४ ॥

युद्धप्रवीण वीरोंका हर्ष और कायरोंका भय बढानेवाला युद्ध होने लगा, एक वीर दूसरेके मारनेको घात देखने लगा ॥ ४ ॥

प्राणादाने महाघोरे वर्तमाने दुरोदरे ।
संग्रामे घोररूपे तु यमराष्ट्रविवर्धने ॥ ५ ॥
प्राणोंका दांव लगाकर महाभयंकर युद्धका जूआ शुरु हुआ, यमराजके राज्यको वृद्धिंगत करनेवाला घोर युद्ध होने लगा ॥ ५ ॥

पाण्डवास्तावकं सैन्यं व्यधमन्निशितैः शरैः ।
तथैव तावका योधा जघ्नुः पाण्डवसैनिकान् ॥ ६ ॥
तब पाण्डवोंके प्रधान वीर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हारी और तुम्हारे वीर पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगे ॥ ६ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने युद्धे भीरुभयावहे ।
पूर्वाह्णे चैव संप्राप्ते भास्करोदयनं प्रति ॥ ७ ॥
इस प्रकार कायरोंका भय बढानेवाला युद्ध होते होते दिनका पहला प्रहर प्राप्त हुआ और सूर्योदयका समय आ गया ॥ ७ ॥

लब्धलक्षाः परे राजन्रक्षिताश्च महात्मना ।
अयोधयंस्तव बलं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ८ ॥
हे राजन् ! उस समयमें महात्मा अर्जुनसे रक्षित होकर पाण्डवोंके योद्धा जो लक्ष्यवेधनेमें कुशल थे, मृत्युसेही निवृत्त होनेका निश्चय करके तुम्हारी सेनासे युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥

बलिभिः पाण्डवैर्दृप्तैर्लब्धलक्षैः प्रहारिभिः ।
कौरव्यसीदत्पृतना मृगीवाग्निसमाकुला ॥ ९ ॥
जैसे वनमें आग लगनेपर घिरी हुई हरिणी घबडाती है, ऐसे ही चारों ओरसे प्रतापी बलवान् प्रहारकुशल पाण्डवोंके बाण वर्षनेसे तुम्हारी सेना घबडाने लगी ॥ ९ ॥

तां दृष्ट्वा सीदतीं सेनां पङ्के गामिव दुर्बलाम् ।
उज्जिहीर्षुस्तदा शल्यः प्रायात्पाण्डुचमूं प्रति ॥ १० ॥
कीचडमें फंसी हुई दुर्बल गौके समान अपनी सेनाको बहुत कष्ट पाती देख उसको बचानेकी इच्छासे शल्य उस समय पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे ॥ १० ॥

मद्रराजस्तु संक्रुद्धो गृहीत्वा धनुरुत्तमम् ।
अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानाततायिनः ॥ ११ ॥
मद्रराज शल्य अत्यंत क्रोध करके उत्तम धनुष लेकर बाण वर्षाते हुए युद्धमें अपने वधके लिये उद्यत हुए सब पाण्डवोंकी ओर अकेले ही दौडे ॥ ११ ॥

पाण्डवाश्च महाराज समरे जितकाशिनः ।
मद्रराजं समासाद्य विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ १२ ॥

महाराज ! युद्धमें विजयसे शोभित होनेवाले पाण्डव भी शल्यके पास जाकर उसको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारने लगे ॥ १२ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मद्रराजो महाबलः ।
अर्दयामास तां सेनां धर्मराजस्य पश्यतः ॥ १३ ॥

तब महारथी मद्रराज शल्यने अपने सैकडों तीक्ष्ण बाणोंसे युधिष्ठिरके देखते देखते उनकी सेनाको व्याकुल कर दिया ॥ १३ ॥

प्रादुरासंस्ततो राजन्नानारूपाण्यनेकशः ।
चचाल शब्दं कुर्वाणा मही चापि सपर्वता ॥ १४ ॥

राजन् ! उस समय अनेक प्रकारके अपशुकन होने लगे, पर्वत और वनोंके सहित पृथ्वी महान् शब्द करती हुई हिलने लगी ॥ १४ ॥

सदण्डशूला दीप्ताग्राः शीर्यमाणाः समन्ततः ।
उल्का भूमिं दिवः पेतुराहत्य रविमण्डलम् ॥ १५ ॥

सूर्यके मण्डलसे टकराकर भाले और दण्डके समान प्रदीप्त अग्रभागवाली उल्काएं पृथ्वीपर चारों ओर बिखरी हुई गिरी ॥ १५ ॥

मृगाश्च महिषाश्चापि पक्षिणश्च विशां पते ।
अपसव्यं तदा चक्रुः सेनां ते बहुशो नृप ॥ १६ ॥

पृथ्वीपते ! राजन् ! अनेक हरिण, भैंसे और पक्षी तुम्हारी सेनाके दहिनी ओरसे बाईं ओरको जाने लगे, उल्लू आदि पक्षी बोलने लगे ॥ १६ ॥

ततस्तद्युद्धमत्युग्रमभवत्संघचारिणाम् ।
तथा सर्वाण्यनीकानि संनिपत्य जनाधिप ।
अभ्ययुः कौरवा राजन्पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १७ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! तब दोनों ओरके सेनापतिओंने अपनी अपनी सेनाओंको एक साथ संगठित करके घोर युद्ध करनेकी आज्ञा दी और बडा भयानक युद्ध होने लगा । राजन् ! ऐसे ही कौरववीरोंने भी पाण्डवोंकी सेनाको व्याकुल कर दिया ॥ १७ ॥

शल्यस्तु शरवर्षेण वर्षन्निव सहस्रदृक् ।
अभ्यवर्षददीनात्मा कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ १८ ॥

अदीनात्मा राजा शल्यने देवराज इन्द्र जैसे वर्षा करते हैं, उनके समान कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर पर बाणोंकी वर्षा की ॥ १८ ॥

भीमसेनं शरैश्चापि रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
द्रौपदेयांस्तथा सर्वान्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १९ ॥

फिर शिलापर घसकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंख युक्त बाणोंसे भीमसेन, द्रौपदीके पांचो पुत्र, माद्रीपुत्र पाण्डुकुमार नकुल–सहदेव, ॥ १९ ॥

धृष्टद्युम्नं च शैनेयं शिखण्डिनमथापि च ।
एकैकं दशभिर्बाणैर्विव्याध च महाबलः ।
ततोऽसृजद्बाणवर्षं घर्मान्ते मघवानिव ॥ २० ॥

धृष्टद्युम्न, सात्यकि और शिखण्डी इनमेंसे प्रत्येकको दस दस बाणोंसे विद्ध किया। तदनंतर वे वर्षाऋतुमें जल बरसानेवाले देवराज इन्द्रके समान बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ २० ॥

ततः प्रभद्रका राजन्सोमकाश्च सहस्रशः ।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्ते शल्यसायकैः ॥ २१ ॥

राजन् ! उस समय शल्यके बाणोंसे सहस्रों प्रभद्रक और सोमक वंशी क्षत्रिय योद्धा गिरे और गिरते हुए दीखते थे ॥ २१ ॥

भ्रमराणामिव व्राताः शलभानामिव व्रजाः ।
ह्रादिन्य इव मेघेभ्यः शल्यस्य न्यपतञ्शराः ॥ २२ ॥

जैसे भौरोंके झुंड टीडीदल और मेघसे बिजलियां छूटती हैं ऐसे ही शल्यके बाण चारों ओर पृथ्वीपर गिरते हुए दिखाई देने लगे ॥ २२ ॥

द्विरदास्तुरगाश्चार्ताः पत्तयो रथिनस्तथा ।
शल्यस्य बाणैर्न्यपतन्बभ्रमुर्व्यनदंस्तथा ॥ २३ ॥

शल्यके बाणोंसे पीडित हुए हाथी, घोडे, रथी और पैदल सैनिक गिरने, कांपने, घूमने और आर्तनाद करने लगे ॥ २३ ॥

आविष्ट इव मद्रेशो मन्युना पौरुषेण च ।
प्राच्छादयदरीन्संख्ये कालसृष्ट इवान्तकः ।
विनर्दमानो मद्रेशो मेघह्रादो महाबलः ॥ २४ ॥

जैसे प्रलय कालमें यमराज अपना बल दिखाते हैं ऐसे क्रोधित शल्य भी घोर कर्म करके अपना बल दिखाने लगे, और शत्रुओंको युद्धमें बाणोंसे आच्छादित करने लगे। जैसे वर्षाऋतुमें मेघ गर्जकर जल बरसाता है ऐसेही महाबलवान् मद्रराज शल्य भी गर्जते हुए बाण वर्षाने लगे ॥ २४ ॥

सा वध्यमाना शल्येन पाण्डवानामनीकिनी ।
अजातशत्रुं कौन्तेयमभ्यधावद्युधिष्ठिरम् ॥ २५ ॥

उनके बाणोंसे व्याकुल होकर पाण्डवोंकी सेना भागकर अजातशत्रु कुन्तीकुमार महाराज युधिष्ठिरकी शरण गई ॥ २५ ॥

तां समर्प्य ततः संख्ये लघुहस्तः शितैः शरैः ।
शरवर्षेण महता युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ २६ ॥

तब शीघ्र बाण चलानेवाले राजा शल्यने युद्धमें तीक्ष्ण बाणोंसे पाण्डवसेनाको पीडित करके भारी बाणवर्षासे युधिष्ठिरको भी विद्ध किया ॥ २६ ॥

तमापतन्तं पत्त्यश्वैः क्रुद्धो राजा युधिष्ठिरः ।
अवारयच्छरैस्तीक्ष्णैर्मत्तं द्विपमिवाङ्कुशैः ॥ २७ ॥

उनको पैदलों और घुडसवारों सहित अपनी ओर आते देख राजा युधिष्ठिरको महा क्रोध हुआ और अपने तेज बाणोंसे उनको रोक दिया, जैसे महावत् मत्त हाथीको अंकुशसे रोकता है ॥ २७ ॥

तस्य शल्यः शरं घोरं मुमोचाशीविषोपमम् ।
सोऽभ्यविध्यन्महात्मानं वेगेनाभ्यपतच्च गाम् ॥ २८ ॥

अनन्तर शल्यने विषधारी सर्पके समान एक भयङ्कर तेज बाण युधिष्ठिर पर मारा, वह बाण बडे वेगसे महात्मा युधिष्ठिरके शरीरमें लगकर पृथ्वीमें घुस गया ॥ २८ ॥

ततो वृकोदरः क्रुद्धः शल्यं विव्याध सप्तभिः ।
पञ्चभिः सहदेवस्तु नकुलो दशभिः शरैः ॥ २९ ॥

तब भीमसेनने क्रोध करके शल्यको सात बाणोंसे विद्ध किया। फिर सहदेवने पांच, नकुलने दस बाणोंसे ॥ २९ ॥

द्रौपदेयाश्च शत्रुघ्नं शूरमार्तायनिं शरैः ।
अभ्यवर्षन्महाभागं मेघा इव महीधरम् ॥ ३० ॥

और द्रौपदीके पुत्रोंने अनेक बाणोंसे शत्रुसूदन, शूर शल्यको विद्ध कर दिया। महाराज! उन्होंने महाभाग शल्यके ऊपर इस प्रकार बाण वर्षाये जैसे मेघ पर्वत पर जल बरसाते हैं ॥३०॥

ततो दृष्ट्वा तुद्यमानं शल्यं पार्थैः समन्ततः ।
कृतवर्मा कृपश्चैव संक्रुद्धावभ्यधावताम् ॥ ३१ ॥

तब शल्यको चारों ओरसे कुन्तीपुत्र पाण्डवोंसे घिरा देख कृतवर्मा और कृपाचार्य क्रोधित होकर उनकी ओर दौडे ॥ ३१ ॥

उलूकश्च पतत्री च शकुनिश्चापि सौबलः ।
स्मयमानश्च शनकैरश्वत्थामा महारथः ।
तव पुत्राश्च कात्स्न्येन जुगुपुः शल्यमाहवे ॥ ३२ ॥

साथ ही महावीर उलूक, पतत्री, सुबलपुत्र शकुनि, स्मित हास्य करके महारथी अश्वत्थामा और तुम्हारे सब पुत्र धीरे धीरे समरमें शल्यकी रक्षा करने लगे ॥ ३२ ॥

भीमसेनं त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्मा शिलीमुखैः ।
बाणवर्षेण महता क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ३३ ॥

कृतवर्माने क्रुद्ध हुए भीमसेनको तीक्ष्ण तीन बाणोंसे विद्ध करके, अनेक बाणोंकी वर्षा करके उनको रोक दिया ॥ ३३ ॥

धृष्टद्युम्नं कृपः क्रुद्धो बाणवर्षैरपीडयत् ।
द्रौपदेयांश्च शकुनिर्यमौ च द्रौणिरभ्ययात् ॥ ३४ ॥

अनन्तर क्रोधित हुए कृपाचार्यने अपने बाणोंकी वर्षासे धृष्टद्युम्नको पीडित किया । शकुनिने द्रौपदीके पुत्रोंके ऊपर अनेक बाण चलाये और नकुल सहदेवसे अश्वत्थामा युद्ध करनेको दौडे ॥ ३४ ॥

दुर्योधनो युधां श्रेष्ठावाहवे केशवार्जुनौ ।
समभ्ययादुग्रतेजाः शरैश्चाभ्यहनद्बली ॥ ३५ ॥

इसी प्रकार योद्धाओंमें श्रेष्ठ, अत्यंत तेजस्वी, महाबलवान् वीर दुर्योधन युद्धमें श्रीकृष्ण और अर्जुनसे युद्ध करने और अनेक बाण वर्षाने लगे ॥ ३५ ॥

एवं द्वंद्वशतान्यासंस्त्वदीयानां परैः सह ।
घोररूपाणि चित्राणि तत्र तत्र विशां पते ॥ ३६ ॥

हे पृथ्वीनाथ! इस प्रकार सर्वत्र तुम्हारे सैनिक शत्रुओंके साथ सैंकडों घोर और विचित्र द्वंद्व युद्ध करने लगे ॥ ३६ ॥

ऋश्यवर्णाञ्जघानाश्वान्भोजो भीमस्य संयुगे ।
सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वः पाण्डुनन्दनः
कालो दण्डमिवोद्यम्य गदापाणिरयुध्यत ॥ ३७ ॥

कृतवर्माने युद्धमें अपने बाणोंसे भीमसेनके रीछके समान रंगवाले चारों घोडोंको मार डाला, फिर घोडोंके मारे जानेपर पाण्डुनन्दन भीमसेन गदा लेकर रथसे नीचे उतरे और दण्डधारी यमराजके समान घोर युद्ध करने लगे ॥ ३७ ॥

प्रमुखे सहदेवस्य जघानाश्वांश्च मद्रराट् ।
ततः शल्यस्य तनयं सहदेवोऽसिनावधीत् ॥ ३८ ॥

उतने ही समयमें महाराज शल्यने सहदेवके घोडे मार डाले। सहदेव भी खड्ग लेकर रथसे नीचे उतरे और शल्यके बेटेका शिर काट डाला ॥ ३८ ॥

गौतमः पुनराचार्यो धृष्टद्युम्नमयोधयत् ।
असंभ्रान्तमसंभ्रान्तो यत्नवान्यत्नवत्तरम् ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार सावधान और अधिक यत्न करते हुए धृष्टद्युम्नसे निर्भय और विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले कृपाचार्य युद्ध करने लगे ॥ ३९ ॥

द्रौपदेयांस्तथा वीरानेकैकं दशभिः शरैः ।
अविध्यदाचार्यसुतो नातिक्रुद्धः स्मयन्निव ॥ ४० ॥

हंसते हुए अति क्रुद्ध न होकर आचार्य द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भी द्रौपदीके पांचों पुत्रोंमेंसे प्रत्येकको दस दस बाण मारकर विद्ध किया ॥ ४० ॥

शल्योऽपि राजन्संक्रुद्धो निघ्नन्सोमकपाण्डवान् ।
पुनरेव शितैर्बाणैर्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ ४१ ॥

राजन् ! शल्य भी अत्यन्त क्रोधित होकर अनेक सोमक और पाण्डव वीरोंका नाश कर फिर युधिष्ठिरकी ओर तीक्ष्ण बाण चलाने लगे और उनको पीडित करने लगे ॥ ४१ ॥

तस्य भीमो रणे क्रुद्धः संदष्टदशनच्छदः ।
विनाशायाभिसंधाय गदामादत्त वीर्यवान् ॥ ४२ ॥

तब पराक्रमी भीमसेनने युधिष्ठिरको व्याकुल देखकर स्वयं क्रुद्ध होकर दांतोंसे ओठ चबाये और हम इसी समय युद्धमें शल्यको मारेंगे ऐसा विचार कर गदा लेकर शल्यपर धावा किया ॥ ४२ ॥

यमदण्डप्रतीकाशां कालरात्रिमिवोद्यताम् ।
गजवाजिमनुष्याणां प्राणान्तकरणीमपि ॥ ४३ ॥

वह गदा यमराजके दण्डके समान ऊंची कालरात्रिके समान संहारके लिये उद्यत हाथी, घोडे और मनुष्योंके भी शरीरोंका नाश करनेवाली जान पडती थी ॥ ४३ ॥

हेमपट्टपरिक्षिप्तामुल्कां प्रज्वालितामिव ।
शैक्यां व्यालीमिवात्युग्रां वज्रकल्पामयस्मयीम् ॥ ४४ ॥

वह लोहेकी बनी हुई इन्द्रके वज्रतुल्य गदा सोनेके तारोंसे मढी, जलती हुई उल्काके समान चमकती, विष भरी भयंकर नागिनके समान लहराती प्रतीत होती थी ॥ ४४ ॥

चन्दनागुरुपङ्काक्तां प्रमदामीप्सितामिव ।
वसामेदोसृगादिग्धां जिह्वां वैवस्वतीमिव ॥ ४५ ॥

अंगोंमें चन्दन और अगर लगी, अपनी प्रियतमा स्त्रीके समान भीमसेनकी प्यारी, चर्वी और मेदसे भरी, यमराजकी जिव्हाके समान घोर ॥ ४५ ॥

पटुघण्टारवशतां वासवीमशनीमिव ।
निर्मुक्ताशीविषाकारां पृक्तां गजमदैरपि ॥ ४६ ॥

सैकडों मधुर कलरव करनेवाली घण्टा लगी, इन्द्रके वज्रके समान सुन्दर, केंचुलसे छुटे हुए क्रोध भरे सांपके समान भयानक, हस्तिमदसे भरी ॥ ४६ ॥

त्रासनीं रिपुसैन्यानां स्वसैन्यपरिहर्षिणीम् ।
मनुष्यलोके विख्यातां गिरिशृङ्गविदारिणीम् ॥ ४७ ॥

शत्रुओंके सैन्यको डरानेवाली, अपनी सेनाको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाली, मनुष्य लोकमें प्रसिद्ध, पर्वतोंको तोडनेवाली, वह गदा थी ॥ ४७ ॥

यया कैलासभवने महेश्वरसखं बली ।
आह्वयामास कौन्तेयः संक्रुद्धमलकाधिपम् ॥ ४८ ॥

इस गदाको लेकर ही बलवान् कुन्तीपुत्र भीमसेनने कैलासभवनपर भगवान् शङ्करके सखा अलकाधिपति क्रोधित कुबेरको युद्ध करनेको पुकारा था ॥ ४८ ॥

यया मायाविनो दृप्तान्सुबहून्धनदालये ।
जघान गुह्यकान्क्रुद्धो मन्दारार्थे महाबलः ।
निवार्यमाणो बहुभिर्द्रौपद्याः प्रियमास्थितः ॥ ४९ ॥

जिसकी सहायतासे क्रोधित होकर, महाबलवान् भीमसेनने बहुतोंके मना करनेपर भी द्रौपदीकी प्रसन्नताके लिये मन्दारके लिये कुबेरके स्थानमें अनेक मायावि अभिमानी गुह्यकोंको मारा था ॥ ४९ ॥

तां वज्रमणिरत्नौघामष्टाश्रिं वज्रगौरवाम् ।
समुद्यम्य महाबाहुः शल्यमभ्यद्रवद्रणे ॥ ५० ॥

उसही मणि और रत्न जटित होनेके कारण शोभित, वज्रके समान दृढ गदाको हाथमें उठाकर महाबाहु भीमसेन समरमें शल्यपर टूट पडे ॥ ५० ॥

गदया युद्धकुशलस्तया दारुणनादया ।
पोथयामास शल्यस्य चतुरोऽश्वान्महाजवान् ॥ ५१ ॥

गदायुद्धको जाननेवाले भीमसेनने दारुण शब्द करनेवाली उस गदासे शल्यके महान् वेगशाली चारों घोडोंको मार डाला ॥ ५१ ॥

*

ततः शल्यो रणे क्रुद्धः पीने वक्षसि तोमरम् ।
निचखान नदन्वीरो वर्म भित्त्वा च सोऽभ्यगात् ॥ ५२ ॥

तब युद्धभूमिमें वीर शल्य सिंहके समान गर्जने लगे और उन्होंने क्रोध करके एक तोमर भीमसेनकी विशाल छातीमें मारा, उसके लगनेसे भीमसेनकी छातीमें घाव हो गया ॥५२॥

वृकोदरस्त्वसंभ्रान्तस्तमेवोद्धृत्य तोमरम् ।
यन्तारं मद्रराजस्य निर्बिभेद ततो हृदि ॥ ५३ ॥

परन्तु भीमसेन कुछ न घबडाये और उसही तोमरको छातीसे निकालकर उससे मद्रराज शल्यके सारथिकी छातीमें मारा ॥ ५३ ॥

स भिन्नवर्मा रुधिरं वमन्वित्रस्तमानसः ।
पपाताभिमुखो दीनो मद्रराजस्त्वपाक्रमत् ॥ ५४ ॥

उसके लगनेसे शल्यके सारथिका मर्मस्थल विदीर्ण हुआ और वह मुंहसे रक्त वमन करके, दीन और भयचित्त होकर शल्यके सन्मुखही रथसे नीचे गिर गया । तब मद्रराज शल्य वहांसे दूर गये ॥ ५४ ॥

कृतप्रतिकृतं दृष्ट्वा शल्यो विस्मितमानसः ।
गदामाश्रित्य धीरात्मा प्रत्यमित्रमवैक्षत ॥ ५५ ॥

अपने प्रहारका जवाब देखकर और भीमसेनका पराक्रम देख शल्य आश्चर्य करने लगे । तब धीरात्मा शल्य भी गदा लेकर रथसे कूदे और अपने शत्रु भीमसेनकी ओर क्रोध करके देखने लगे ॥ ५५ ॥

ततः सुमनसः पार्था भीमसेनमपूजयन् ।
तद्दृष्ट्वा कर्म संग्रामे घोरमक्लिष्टकर्मणः ॥ ५६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते- शल्यपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ४९६ ॥

युद्धमें अनायास महान् कर्म करनेवाले भीमसेनका वह अद्भुत पराक्रम देखकर कुन्तीपुत्र सब पाण्डव आनन्दित होकर उनकी बहुत प्रशंसा करने लगे ॥ ५६ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें दशवां अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ ४९६ ॥

: ११ :

संजय उवाच

पतितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम् ।
आदाय तरसा राजंस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! अपने सारथीको मरा देख मद्रराज शल्य वेगपूर्वक लोहेकी गदा लेकर पर्वतके समान खडे हो गये ॥ १ ॥

तं दीप्तमिव कालाग्निं पाशहस्तमिवान्तकम् ।
सशृङ्गमिव कैलासं सवज्रमिव वासवम् ॥ २ ॥

उनको प्रलयकालकी जलती हुई अग्नि, पाश लिये काल, शिखरधारी कैलास पर्वत, वज्रधारी इन्द्र ॥ २ ॥

सशूलमिव हर्यक्षं वने मत्तमिव द्विपम् ।
जवेनाभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ३ ॥

शूलधारी शिवके समान और अरण्यमें मत्त हाथीके समान खडा देख, भीमसेन बडी गदा लेकर वेगपूर्वक उनके ऊपर दौडे ॥ ३ ॥

ततः शंखप्रणादश्च तूर्याणां च सहस्रशः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणां हर्षवर्धनः ॥ ४ ॥

तब दोनों ओरसे शङ्ख और सहस्रों बाजे बजने लगे तथा दोनों ओरके वीरोंका हर्ष बढाने-वाला सिंहनाद होने लगा ॥ ४ ॥

प्रेक्षन्तः सर्वतस्तौ हि योधा योधमहाद्विपौ ।
तावकाश्च परे चैव साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ५ ॥

योद्धाओंमें महान् गजराजके समान पराक्रम करनेवाले उन दोनोंका गदायुद्ध देखकर तुम्हारे और शत्रुओंके–दोनों ओरके वीर वाह वाह कहकर प्रशंसा करने लगे और युद्ध देखने लगे ॥ ५ ॥

न हि मद्राधिपादन्यो रामाद्वा यदुनन्दनात् ।
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे ॥ ६ ॥

तब कहने लगे कि युद्धमें भीमसेनकी गदाके वेगको यदुकुल श्रेष्ठ बलराम और मद्रराज शल्यके सिवाय दूसरा कोई योद्धा नहीं सह सकता ॥ ६ ॥

तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः ।
सोढुमुत्सहते नान्यो योधो युधि वृकोदरात् ॥ ७ ॥

इसी प्रकार युद्धमें भीमसेनके सिवाय महात्मा मद्रराज शल्यकी गदाके वेगको भी कोई दूसरा योद्धा नहीं सह सकता ॥ ७ ॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः ।
आवल्गितौ गदाहस्तौ मद्रराजवृकोदरौ ॥ ८ ॥

वे शल्य और भीमसेन दोनों वीर हाथमें गदा लिये, मतवाले बैलके समान गर्जने और अनेक गतियोंसे चक्कर लगाकर लडने लगे ॥ ८ ॥

मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च ।
निर्विशेषमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ ९ ॥

मण्डलाकार गतिसे घूमनेमें, अनेक प्रकारसे गदाको चलाने और चलनेमें और प्रहार करनेमें वे दोनों पुरुषसिंह भीमसेन और शल्य एक दूसरेसे समान ही दीखते थे ॥ ९ ॥

तप्तहेममयैः शुभ्रैर्बभूव भयवर्धनी ।
अग्निज्वालैरिवाविद्धा पट्टैः शल्यस्य सा गदा ॥ १० ॥

उस समय तपे हुए चमकदार सोनेसे मढी हुई शल्यकी वह भय वृद्धिंगत करनेवाली गदा जलती मसालके समान दीखने लगी ॥ १० ॥

तथैव चरतो मार्गान्मण्डलेषु महात्मनः ।
विद्युदभ्रप्रतीकाशा भीमस्य शुशुभे गदा ॥ ११ ॥

इसी प्रकार अनेक मण्डलाकार गतियोंसे घूमते हुए महात्मा भीमसेनकी गदा भी बिजली-सहित मेघके समान चमकने लगी ॥ ११ ॥

ताडिता मद्रराजेन भीमस्य गदया गदा ।
दीप्यमानेव वै राजन्ससृजे पावकार्चिषः ॥ १२ ॥

राजन् ! मद्रराज शल्यने जब अपनी गदासे भीमसेनकी गदापर प्रहार किया, तब वह प्रज्वलितसी हो गयी और उससे अग्निके पतङ्गे गिरने लगे ॥ १२ ॥

तथा भीमेन शल्यस्य ताडिता गदया गदा ।
अंगारवर्षं मुमुचे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १३ ॥

इसी प्रकार भीमसेनकी गदासे ताडित हुई शल्यकी गदा भी अग्नि बरसाने लगी । वह एक अद्भुत दृश्य हुआ ॥ १३ ॥

दन्तैरिव महानागौ शृङ्गैरिव महर्षभौ ।
तोत्त्रैरिव तदान्योन्यं गदाग्राभ्यां निजघ्नतुः ॥ १४ ॥

जैसे दांतोंसे दो बडे मतवारे हाथी, और सींगोंसे दो महान् बैल लडते हैं ऐसे ही अंकुशों जैसी उन श्रेष्ठ गदाओंसे भीमसेन और शल्य गदायुद्ध करने लगे और एक दूसरेपर आघात करने लगे ॥ १४ ॥

तौ गदानिहतैर्गात्रैः क्षणेन रुधिरोक्षितौ ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १५ ॥

उन दोनोंके अंगोंमें गदाकी गाढ चोटोंसे घाव हो गये और थोडे समयमें दोनों रुधिरसे भीग गये और फूले हुए टेसूके समान वे दोनों वीर सुन्दर दीखने लगे ॥ १५ ॥

गदया मद्रराजेन सव्यदक्षिणमाहतः ।
भीमसेनो महाबाहुर्न चचालाचलो यथा ॥ १६ ॥

मद्रराज शल्यकी अनेक गदा दायें—बायें अच्छी तरह लगनेपर भी महाबाहु भीमसेन पर्वतके समान इधर उधरको न हटे । अविचल खडे रहे ॥ १६ ॥

तथा भीमगदावेगैस्ताडयमानो मुहुर्मुहुः ।
शल्यो न विव्यथे राजन्दन्तिनेववाहतो गिरिः ॥ १७ ॥

इसी प्रकार भीमसेनकी अनेक गदा बार बार वेगसे लगनेपर शल्य भी न घबडाये । राजन् ! भीमसेनकी गदा शल्यके शरीरमें ऐसी लगती थी जैसे पहाडमें हाथीके दांत ॥ १७ ॥

शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
गदानिपातसंह्रादो वज्रयोरिव निःस्वनः ॥ १८ ॥

जैसे दो बज्रोंके आघातका शब्द होता है ऐसे ही उन दोनों पुरुषसिंहकी गदाओंके टकरानेका शब्द चारों ओर सुनायी देने लगा ॥ १८ ॥

निवृत्य तु महावीर्यौ समुच्छ्रितगदावुभौ ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ १९ ॥

महापराक्रमी दोनों वीर अपनी बडी गदाओंको ऊपर उठाये कभी पीछेको हटकर और पैंतरे बदलकर मध्यम मार्गमें स्थित होकर, मण्डलाकार घूमकर फिर परस्पर भिड जाते थे ॥१९॥

अथाभ्येत्य पदान्यष्टौ संनिपातोऽभवत्तयोः ।
उद्यम्य लोहदण्डाभ्यामतिमानुषकर्मणोः ॥ २० ॥

वे युद्धमें आठ पैर आगे बढकर लोहेकी गदा उठाकर एक दूसरेको मारने लगे। इन दोनोंका यह कर्म मनुष्योंकी शक्तिसे अधिक था, उस समय उन दोनोंमें भयंकर संघर्ष हुआ ॥२०॥

प्रार्थयानौ तदान्योऽन्यं मण्डलानि विचेरतुः ।
क्रियाविशेषं कृतिनौ दर्शयामासतुस्तदा ॥ २१ ॥

वे दोनों वीर एक दूसरेका शिर फोडनेका विचार कर रहे थे, दोनों अपनी अपनी घात देखते थे, और मण्डलाकार घूमते थे और स्वयंकी कार्यकुशलता प्रदर्शित करते थे ॥ २१ ॥

अथोद्यम्य गदे घोरे सशृङ्गाविव पर्वतौ ।
तावाजघ्नतुरन्योन्यं यथा भूमिचलेऽचलौ ॥ २२ ॥

वे कभी अपनी भयंकर गदा उठाकर शिखर सहित पर्वतके समान दौडते थे, और एक दूसरे को मारते थे, उस समय वे दोनों भूकंपके समयके दो पर्वतोंके समान दीखाई देने लगे ॥२२॥

तौ परस्परवेगाच्च गदाभ्यां च भृशाहतौ ।
युगपत्पेततुर्वीरावुभाविन्द्रध्वजाविव ॥ २३ ॥

कभी एक दूसरेको क्रोधपूर्वक बलसे गदा मारता था, इससे वे दोनों अत्यन्त घायल हो गये। तब दोनों एक ही साथ इन्द्रकी दो पताकाके समान मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर गये ॥ २३ ॥

उभयोः सेनयोर्वीरास्तदा हाहाकृतोऽभवन् ।
भृशं मर्मण्यभिहतावुभावास्तां सुविह्वलौ ॥ २४ ॥

तब दोनों सेनाओंके वीर हाहाकार करने लगे। दोनोंके मर्मस्थानोंमें गदाओंसे गहरी चोटें लगी थीं; इसलिये दोनों ही पीडासे अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥ २४ ॥

ततः सगदमारोप्य मद्राणामृषभं रथे ।
अपोवाह कृपः शल्यं तूर्णमायोधनादपि ॥ २५ ॥

तब कृपाचार्यने शल्यको उठाकर अपने रथमें डाल दिया, और उनको तुरंतही युद्धसे दूर हटा दिया ॥ २५ ॥

क्षीबवद्विह्वलत्वात्तु निमेषात्पुनरुत्थितः ।
भीमसेनो गदापाणिः समाह्वयत मद्रपम् ॥ २६ ॥

उतने ही समयमें गदाधारी भीमसेन चैतन्य हुए और फिर उठ खडे हो गये और विह्वलताके कारण मत्त पुरुषके समान शल्यको युद्धके लिये पुकारने लगे ॥ २६ ॥

ततस्तु तावकाः शूरा नानाशस्त्रसमायुताः ।
नानावादित्रशब्देन पाण्डुसेनामयोधयन् ॥ २७ ॥

तब इस शब्दको शल्य न सुनें और तुम्हारी सेनाके वीर नानाप्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर अनेक बाजे बजाने लगे, और गर्जने लगे। फिर वे पाण्डवसेनासे घोर युद्ध करने लगे ॥ २७ ॥

भुजावुच्छ्रित्य शस्त्रं च शब्देन महता ततः ।
अभ्यद्रवन्महाराज दुर्योधनपुरोगमाः ॥ २८ ॥

महाराज ! तब दुर्योधन आदि वीर दोनों हाथ और शस्त्र उठाकर सिंहनाद करते हुए पाण्डवोंसे युद्ध करनेको दौडे ॥ २८ ॥

तदनीकमभिप्रेक्ष्य ततस्ते पाण्डुनन्दनाः ।
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनवधेप्सया ॥ २९ ॥

उस सेनाको आते देख पाण्डव भी सिंहके समान गर्जते हुए दुर्योधनका वध करनेकी इच्छासे दौडे ॥ २९ ॥

तेषामापततां तूर्णं पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
प्रासेन चेकितानं वै विव्याध हृदये भृशम् ॥ ३० ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने तुरंतही आक्रमण करनेवाले योद्धाओंमेंसे चेकतानकी छातीमें एक प्रास मारकर, उसको गहरी चोट पहुंचायी ॥ ३० ॥

स पपात रथोपस्थे तव पुत्रेण ताडितः ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नः प्रविश्य विपुलं तमः ॥ ३१ ॥

तुम्हारे पुत्रसे पीडित होकर चेकितान रथमें गिर पडा । उस समय उसका सब शरीर रक्तसे भीगा गया था ॥ ३१ ॥

चेकितानं हतं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथाः ।
प्रसक्तमभ्यवर्षन्त शरवर्षाणि भागशः ॥ ३२ ॥

तब चेकितानको मारा गया देख, पाण्डवोंकी ओरके सब महारथी तुम्हारी सेनापर पृथक् पृथक् लगातार बाण वर्षाने लगे ॥ ३२ ॥

तावकानामनीकेषु पाण्डवा जितकाशिनः ।
व्यचरन्त महाराज प्रेक्षणीयाः समन्ततः ॥ ३३ ॥

महाराज ! विजयसे गर्वित पाण्डव तुम्हारी सेनाओंमें सब ओर घूमते थे । उस समय वे प्रेक्षणीय थे ॥ ३३ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च सौबलश्च महाबलः ।
अयोधयन्धर्मराजं मद्रराजपुरस्कृताः ॥ ३४ ॥

अनन्तर इधरसे भी कृपाचार्य, कृतवर्मा और सुबलपुत्र महारथी शकुनि आदि वीर शल्यको आगे करके फिर धर्मराज युधिष्ठिरसे युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥

भारद्वाजस्य हन्तारं भूरिवीर्यपराक्रमम् ।
दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ ३५ ॥

राजन् ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन महापराक्रमी द्रोणाचार्यके मारनेवाले, धृष्टद्युम्नसे युद्ध करने लगे ॥ ३५ ॥

त्रिसाहस्रा रथा राजंस्तव पुत्रेण चोदिताः ।
अयोधयन्त विजयं द्रोणपुत्रपुरस्कृताः ॥ ३६ ॥

हे नृप ! इसी प्रकार तुम्हारे पुत्रसे प्रेरित तीन सहस्र वीर अश्वत्थामाको आगे करके अर्जुनसे युद्ध करने लगे ॥ ३६ ॥

विजये धृतसंकल्पाः सम्यक्त्यक्तजीविताः ।
प्राविशंस्तावका राजन्हंसा इव महत्सरः ॥ ३७ ॥

तुम्हारे वीर इस प्रकार प्राणोंकी आशा छोडकर अपनी विजयके लिये दृढ संकल्प करके पाण्डवोंकी सेनामें घुसे जैसे महान् तालावमें हंस ॥ ३७ ॥

ततो युद्धमभूद्घोरं परस्परवधैषिणाम् ।
अन्योन्यवधसंयुक्तमन्योन्यप्रीतिवर्धनम् ॥ ३८ ॥

तब एक दूसरेके वधकी इच्छा करनेवाले दोनों ओरके सैनिकोंमे घोर युद्ध होने लगा । दोनों ओरके वीर अपने अपने शत्रुओंको मारने लगे, और प्रसन्न होकर युद्ध करने लगे ॥ ३८ ॥

तस्मिन्प्रवृत्ते संग्रामे राजन्वीरवरक्षये ।
अनिलेनेरितं घोरमुत्तस्थौ पार्थिवं रजः ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! श्रेष्ठवीरोंका नाश करनेवाले उस घोर युद्धके प्रारंभ होतेही वायुकी प्रेरणासे पृथ्वीपरकी भयंकर धुल ऊपरको उठने लगी ॥ ३९ ॥

श्रवणान्नामधेयानां पाण्डवानां च कीर्तनात् ।
परस्परं विजानीमो ये चायुध्यन्नभीतवत् ॥ ४० ॥

हे महाराज ! पहले एक वार बडी धूल उठी उससे किसीको कुछ नहीं दीखने लगा । उस अन्धकारमें सब वीर निर्भय होकर युद्ध कर रहे थे । उस समय केवल पाण्डव तथा कौरव योद्धा अपना नाम लेकर ही परिचय देते थे, उसको सुनकर ही शत्रु और मित्रोंका ज्ञान होता था ॥ ४० ॥

तद्रजः पुरुषव्याघ्र शोणितेन प्रशामितम् ।
दिशश्च विमला जज्ञुस्तस्मिन्रजसि शामिते ॥ ४१ ॥

पुरुषव्याघ्र ! परन्तु फिर बहुत रुधिर बहनेसे वहां छायी हुई धूल पृथ्वीमें जम गई और धूलके कारण निर्माण हुए अन्धकार नष्ट होनेपर सब जगह प्रकाश हो गया ॥ ४१ ॥

तथा प्रवृत्ते संग्रामे घोररूपे भयानके ।
तावकानां परेषां च नासीत्कश्चित्पराङ्मुखः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वह घोर और भयप्रद युद्ध शुरू हुआ । उस समय तुम्हारे और शत्रुके—दोनों ओरसे कोई भी वीर युद्धसे नहीं भागे ॥ ४२ ॥

ब्रह्मलोकपरा भूत्वा प्रार्थयन्तो जयं युधि ।
सुयुद्धेन पराक्रान्ता नराः स्वर्गमभीप्सवः ॥ ४३ ॥

और सबने स्वर्ग—ब्रह्मलोककी प्राप्ति और युद्धमें विजयकी निश्चय कर ली थी, और उत्तम युद्ध करके उसमें पराक्रम दिखाकर स्वर्गलोक पानेकी इच्छा रखते थे ॥ ४३ ॥

भर्तृपिण्डविमोक्षार्थं भर्तृकार्यविनिश्चिताः ।
स्वर्गसंसक्तमनसो योधा युयुधिरे तदा ॥ ४४ ॥

सब वीरोंने स्वामीके दिये हुए अन्नके ऋण चुकानेका यही समय पाया और प्राणोंका मोह छोड उनके कार्यको सिद्ध करनेका दृढ निश्चय करके, मनमें स्वर्ग जानेका निश्चय करके घोर युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥

नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तः प्रहरन्तः परस्परम् ॥ ४५ ॥

अनेक प्रकारके शस्त्र चलाकर, परस्पर प्रहार करनेवाले महारथी एक दूसरेका बध करके गर्जने लगे ॥ ४५ ॥

हत विध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत ।
इति स्म वाचः श्रूयन्ते तव तेषां च वै बले ॥ ४६ ॥

चारों ओर तुम्हारे और पांडवोंकी सेनामें वीरोंको काटते हुए वीरोंका यही शब्द सुनाई देने लगा, कि मारो, काटो, पकडो, प्रहार करो और टुकडे कर डालो ॥ ४६ ॥

ततः शल्यो महाराज धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
विव्याध निशितैर्बाणैर्हन्तुकामो महारथम् ॥ ४७ ॥

महाराज ! तब राजा शल्यने महारथी धर्मराज युधिष्ठिरकी ओर उन्हें मारनेके लिये अनेक तेज बाण चलाये ॥ ४७ ॥

तस्य पार्थो महाराज नाराचान्वै चतुर्दश ।
मर्माण्युद्दिश्य मर्मज्ञो निचखान हसन्निव ॥ ४८ ॥

महाराज ! तब मर्मज्ञ कुन्तीकुमार महारथी युधिष्ठिरने हंसते हुए चौदह तेज नाराच बाण शल्यके मर्मस्थानको लक्ष्य करके मारे ॥ ४८ ॥

तं वार्य पाण्डवं बाणैर्हन्तुकामो महायशाः ।
विव्याध समरे क्रुद्धो बहुभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ ४९ ॥

तब महायशस्वी शल्यने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके सब बाणोंको काटकर उन्हें मार डालनेकी इच्छासे समरमें क्रोधित होकर उनके शरीरमें कंकपत्र युक्त अनेक बाण मारे ॥ ४९ ॥

अथ भूयो महाराज शरेण नतपर्वणा ।
युधिष्ठिरं समाजघ्ने सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ५० ॥

महाराज ! फिर सारी सेनाके देखतेही झुकी हुई गांठवाला एक तेज बाण महायशस्वी युधिष्ठिरके शरीरमें मारा ॥ ५० ॥

+

धर्मराजोऽपि संक्रुद्धो मद्रराजं महायशाः ।
विव्याध निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ ५१ ॥

तब महायशस्वी राजा धर्मराजको महाक्रोध हुआ और उन्होंने कङ्क और मोरकी पंखवाले तीक्ष्ण बाणोंसे मद्रराज शल्यको घायल किया ॥ ५१ ॥

चन्द्रसेनं च सप्तत्या सूतं च नवभिः शरैः ।
द्रुमसेनं चतुःषष्ट्या निजघान महारथः ॥ ५२ ॥

फिर महारथी युधिष्ठिरने सत्तर बाणोंसे चन्द्रसेनको, नौ बाणोंसे शल्यके सारथिको और इसी प्रकार द्रुमसेनको चौंसठ बाणोंसे मार डाला ॥ ५२ ॥

चक्ररक्षे हते शल्यः पाण्डवेन महात्मना ।
निजघान ततो राजंश्चेदीन्वै पञ्चविंशतिम् ॥ ५३ ॥

पहियेकी रक्षा करनेवाले द्रुमसेनको महात्मा पाण्डवके द्वारा मारा हुआ देख राजा शल्यने पचीस प्रधान क्षत्रिय चेदिओंको मार डाला ॥ ५३ ॥

सात्यकिं पञ्चविंशत्या भीमसेनं च पञ्चभिः ।
माद्रीपुत्रौ शतेनाजौ विव्याध निशितैः शरैः ॥ ५४ ॥

फिर सात्यकिके शरीरमें पचीस, भीमसेनके पांच और माद्रीपुत्र नकुलके सौ और सहदेवके सौ तेज बाण मारे और घायल कर दिया ॥ ५४ ॥

एवं विचरतस्तस्य संग्रामे राजसत्तम ।
संप्रेषयच्छितान्पार्थः शरानाशीविषोपमान् ॥ ५५ ॥

हे नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार युद्धमें घूमते हुए राजा शल्यके कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने विषधर सर्पके समान भयंकर और तीक्ष्ण अनेक बाण मारे ॥ ५५ ॥

ध्वजाग्रं चास्य समरे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापहरद्रथात् ॥ ५६ ॥

फिर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने समरमें सामने खडे हुए शल्यकी ध्वजाके अग्रभागको एक भल्लसे रथसे काट दिया ॥ ५६ ॥

पाण्डुपुत्रेण वै तस्य केतुं छिन्नं महात्मना ।
निपतन्तमपश्याम गिरिश्रृङ्गमिवाहतम् ॥ ५७ ॥

महात्मा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके बाणोंसे कटकर शल्यकी ध्वजाको इस प्रकार गिरते हुए हमने देखा जैसे पर्वतका शिखर वज्रके आघातसे टूटकर गिर पडे ॥ ५७ ॥

ध्वजं निपतितं दृष्ट्वा पाण्डवं च व्यवस्थितम् ।
संक्रुद्धो मद्रराजोऽभूच्छरवर्षं मुमोच ह ॥ ५८ ॥

अपनी ध्वजाको कटकर नीचे गिर पडा और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको युद्धके लिये खडा देख, मद्रराज शल्यने बडा क्रोध करके बाण वर्षाये ॥ ५८ ॥

शल्यः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियं क्षत्रियर्षभः ॥ ५९ ॥

अमेयात्मा क्षत्रियश्रेष्ठ शल्य जैसे वर्षाकालमें मेघ जल वरसाता है, वैसे ही क्षत्रियोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५९ ॥

सात्यकिं भीमसेनं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
एकैकं पंचभिर्विद्ध्वा युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ ६० ॥

सात्यकि, भीमसेन और माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल और सहदेव– प्रत्येकको पांच पांच बाणोंसे व्याकुल कर दिया और क्षत्रियश्रेष्ठ शल्य युधिष्ठिरको पीडा देने लगे ॥ ६० ॥

ततो बाणमयं जालं विततं पाण्डवोरसि ।
अपश्याम महाराज मेघजालमिवोद्गतम् ॥ ६१ ॥

महाराज ! हमने तब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी छातीपर बाणोंका जाल सा देखा, मानों आकाशमें मेघोंकी घटा एकत्र हुई है ॥ ६१ ॥

तस्य शल्यो रणे क्रुद्धो बाणैः संनतपर्वभिः ।
दिशः प्रच्छादयामास प्रदिशश्च महारथः ॥ ६२ ॥

फिर युद्धमें क्रोधित हुए महारथी शल्यने तीक्ष्ण बाणोंसे युधिष्ठिरकी सब दिशाओं और विदिशाओंको छिपा दिया ॥ ६२ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा बाणजालेन पीडितः ।
बभू हृतविक्रान्तो जम्भो वृत्रहणा यथा ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वण्येकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ५५९ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिर शल्यके बाणोंसे व्याकुल होकर ऐसे पराक्रम शून्य हो गये जैसे इन्द्रने जम्भासुरको संतप्त किया था ॥ ६३ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें ग्यारवां अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ ५५९ ॥

: १२ :

सञ्जय उवाच—

पीडिते धर्मराजे तु मद्रराजेन मारिष ।
सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
परिवार्य रथैः शल्यं पीडयामासुराहवे ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे मारिष ! धर्मराज युधिष्ठिरको मद्रराज शल्यके बाणोंसे व्याकुल देख, सात्यकि, भीमसेन और माद्रीपुत्र पाण्डव नकुल और सहदेव युद्धमें शल्यको अपने अपने रथोंसे घेरकर बाणोंसे व्याकुल करने लगे ॥ १ ॥

तमेकं बहुभिर्दृष्ट्वा पीडयमानं महारथैः ।
साधुवादो महाञ्जज्ञे सिद्धाश्चासन्प्रहर्षिताः ।
आश्चर्यमित्यभाषन्त मुनयश्चापि संगताः ॥ २ ॥

अनेक महारथियोंसे अकेले शल्यको पीडित होकर लडते देख, उसको सब ओरसे धन्यता मिली । वहां एकत्र हुए सब सिद्ध और महर्षि भी आनन्दसे आश्चर्य है, ऐसा कहने लगे ॥ २ ॥

भीमसेनो रणे शल्यं शल्यभूतं पराक्रमे ।
एकेन विद्ध्वा बाणेन पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३ ॥

भीमसेनने युद्धमें अपने पराक्रमके लिये कण्टकरूप शल्यको पहले एक बाणसे विद्ध करके, फिर सात बाणोंसे घायल किया ॥ ३ ॥

सात्यकिश्च शतेनैनं धर्मपुत्रपरीप्सया ।
मद्रेश्वरमवाकीर्य सिंहनादमथानदत् ॥ ४ ॥

सात्यकि भी धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके लिये मद्रराज शल्यको सौ बाणोंसे आच्छादित करके सिंहके समान गर्जने लगे ॥ ४ ॥

नकुलः पञ्चभिश्चैनं सहदेवश्च सप्तभिः ।
विद्ध्वा तं तु ततस्तूर्णं पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ५ ॥

सहदेवने पांच और नकुलने धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके लिये सात बाण मारकर विद्ध किया और शीघ्रही फिर सात बाण मारे ॥ ५ ॥

स तु शूरो रणे यत्तः पीडितस्तैर्महारथैः ।
विकृष्य कार्मुकं घोरं वेगघ्नं भारसाधनम् ॥ ६ ॥

युद्धमें इन सब महारथियोंसे पीडित होनेपर भी वीर शल्यने विजयके लिये यत्नशील होते हुए, भार सहन करनेमें समर्थ और वेगवान् अपने घोर धनुषको खींचकर ॥ ६ ॥

सात्यकिं पञ्चविंशत्या शल्यो विव्याध मारिष ।
भीमसेनं त्रिसप्तत्या नकुलं सप्तभिस्तथा ॥ ७ ॥

हे मारिष ! सात्यकिको पच्चीस, भीमसेनको दोसौ दस और नकुलको सात बाण मारकर विद्ध किया ॥ ७ ॥

ततः सविशिखं चापं सहदेवस्य धन्विनः ।
छित्त्वा भल्लेन समरे विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ॥ ८ ॥

फिर एक भल्ल बाणसे समरमें महाधनुषधारी सहदेवका बाणसहित धनुष काटकर, शल्यने उनको इकीस बाण मारकर विद्ध किया ॥ ८ ॥

सहदेवस्तु समरे मातुलं भूरिवर्चसम् ।
सज्यमन्यद्धनुः कृत्वा पञ्चभिः समताडयत् ।
शरैराशीविषाकारैर्ज्वलज्ज्वलनसंनिभैः ॥ ९ ॥

तब सहदेवने भी युद्धमें क्रोध करके दूसरे धनुषपर रोदा चढाकर शीघ्रतासे अपने तेजस्वी मामाको विषधर सर्पोंके समान भयंकर और जलती हुई आगके समान प्रज्वलित पांच बाण मारे ॥ ९ ॥

सारथिं चास्य समरे शरेणानतपर्वणा ।
विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तं च भूयस्त्रिभिः शरैः ॥ १० ॥

फिर अत्यंत कुपित होकर उन्होंने तेज बाणसे शल्यके सारथिको विद्ध करके, उन्हें भी दूसरे तीन बाणोंसे घायल किया ॥ १० ॥

भीमसेनस्त्रिसप्तत्या सात्यकिर्नवभिः शरैः ।
धर्मराजस्तथा षष्ट्या गात्रे शल्यं समर्पयत् ॥ ११ ॥

फिर भीमसेनने दोसौ दस, सात्यकिने नौ और धर्मराज युधिष्ठिरने साठ बाण शल्यके शरीरमें मारे ॥ ११ ॥

ततः शल्यो महाराज निर्विद्धस्तैर्महारथैः ।
सुस्राव रुधिरं गात्रैर्गैरिकं पर्वतो यथा ॥ १२ ॥

महाराज ! उन महारथियोंके बाणोंके लगनेसे शल्यके शरीरसे इस प्रकारसे रुधिर बहने लगा, जैसे पर्वतसे गेरुके झरने ॥ १२ ॥

तांश्च सर्वान्महेष्वासान्पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
विव्याध तरसा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १३ ॥

राजन् ! तब उन्होंने इन सब महाधनुर्धरोंके शरीरमें फिर पांच पांच बाण शीघ्रतासे मारे, और उनको घायल किया। शल्यकी इस अद्भुत शीघ्रताको देख वीर आश्चर्य करने लगे ॥ १३ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन धर्मपुत्रस्य मारिष ।
धनुश्चिच्छेद समरे सज्यं स सुमहारथः ॥ १४ ॥

मारिष ! फिर एक दूसरे भल्ल बाणसे उस श्रेष्ठ महारथी शल्यने समरमें रोदा सहित धर्म-राजका धनुष काट दिया ॥ १४ ॥

अथान्यद्धनुरादाय धर्मपुत्रो महारथः ।
साश्वसूतध्वजरथं शल्यं प्राच्छादयच्छरैः ॥ १५ ॥

तब महारथी धर्मराजने दूसरे धनुषपर रोदा चढाकर घोडे, सारथी, ध्वजा और रथ सहित शल्यको अपने बाणोंसे छिपा दिया ॥ १५ ॥

स च्छाद्यमानः समरे धर्मपुत्रस्य सायकैः ।
युधिष्ठिरमथाविध्यद्दशभिर्निशितैः शरैः ॥ १६ ॥

तब युद्धमें धर्मपुत्रके बाणोंसे आच्छादित होते हुए शल्यने क्रोध करके युधिष्ठिरको दस तीक्ष्ण बाण मारकर विद्ध किया ॥ १६ ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धर्मपुत्रे शरार्दिते ।
मद्राणामधिपं शूरं शरौघैः समवारयत् ॥ १७ ॥

धर्मपुत्र युधिष्ठिरको शल्यके बाणोंसे व्याकुल देख, सात्यकिको महाक्रोध हुआ और उन्होंने शूर मद्रराज शल्यपर बाणोंकी वर्षा करके उनको ढक दिया ॥ १७ ॥

स सात्यकेः प्रचिच्छेद क्षुरप्रेण महद्धनुः ।
भीमसेनमुखांस्तांश्च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ १८ ॥

फिर शल्यने एक क्षुरप्रसे सात्यकिका विशाल धनुष काट डाला और भीमसेन आदि सब क्षत्रियोंको तीन तीन बाण मारे ॥ १८ ॥

तस्य क्रुद्धो महाराज सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
तोमरं प्रेषयामास स्वर्णदण्डं महाधनम् ॥ १९ ॥

महाराज ! तब सत्यपराक्रमी सात्यकिने क्रोध करके एक सोनेके दण्डवाला भारी तोमर शल्यके शरीरपर मारा ॥ १९ ॥

भीमसेनोऽथ नाराचं ज्वलन्तमिव पन्नगम् ।
नकुलः समरे शक्तिं सहदेवो गदां शुभाम् ।
धर्मराजः शतघ्नीं तु जिघांसुः शल्यमाहवे ॥ २० ॥

भीमसेनने प्रज्वलित सर्पके समान एक नाराच बाण चलाया, नकुलने युद्धमें शल्यपर शक्ति, सहदेवने सुंदर गदा और धर्मराजने रणमें शल्यको मार डालनेकी इच्छासे शतघ्नी मारी ॥ २० ॥

तानापतत एवाशु पञ्चानां वै भुजच्युतान् ।
सात्यकिप्रहितं शल्यो भल्लैश्चिच्छेद तोमरम् ॥ २१ ॥

परन्तु शल्यने उन पांचों वीरोंके हाथोंसे छूटे हुए सब शस्त्रोंको शीघ्रही अपने बाणोंसे काट दिया । वीर शल्यने एक भल्ल बाणसे सात्यकिके चलाए हुए तोमरके टुकडे कर डाले ॥२१॥

भीमेन प्रहितं चापि शरं कनकभूषणम् ।
द्विधा चिच्छेद समरे कृतहस्तः प्रतापवान् ॥ २२ ॥

और भीमसेनके छोडे हुए सुवर्णभूषित बाणके सिद्धहस्त और प्रतापी शल्यने दो टुकडे समरमें कर दिये ॥ २२ ॥

नकुलप्रेषितां शक्तिं हेमदण्डां भयावहाम् ।
गदां च सहदेवेन शरौघैः समवारयत् ॥ २३ ॥

इसी प्रकार नकुलकी चलायी हुई सुवर्णदण्ड विभूषित भयानक शक्तिका और सहदेवकी फेंकी हुई गदाका भी बाणोंकी वर्षासे निवारण किया ॥ २३ ॥

शराभ्यां च शतघ्नीं तां राज्ञश्चिच्छेद भारत ।
पश्यतां पाण्डुपुत्राणां सिंहनादं ननाद च ।
नामृष्यत्तं तु शैनेयः शत्रोर्विजयमाहवे ॥ २४ ॥

हे भारत ! राजा युधिष्ठिरकी शतघ्नीको दो बाणोंसे काट दिया । पाण्डवोंके देखते देखते ऐसा घोर कर्म करके शल्य सिंहके समान गर्जने लगे । परन्तु शिनिपौत्र सात्यकि युद्धमें शत्रुकी इस प्रसन्नता और विजयको सहन न कर सकें ॥ २४ ॥

अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिः क्रोधमूर्छितः ।
द्वाभ्यां मद्रेश्वरं विद्ध्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥ २५ ॥

और दूसरा धनुष लाकर, क्रोधित होकर उसपर रोदा चढाकर दो बाणोंसे मद्रराज शल्यको और तीनसे उनके सारथिको विद्ध किया ॥ २५ ॥

ततः शल्यो महाराज सर्वांस्तान्दशभिः शरैः ।
विव्याध सुभृशं क्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपान् ॥ २६ ॥

महाराज ! तब युद्धमें अत्यंत क्रोधित होकर शल्यने इन सब महारथियोंको दस बाणोंसे इस प्रकार घायल कर दिया जैसे महावत बडे हाथियोंको अंकुश मारता है ॥ २६ ॥

ते वार्यमाणाः समरे मद्रराज्ञा महारथाः ।
न शेकुः प्रमुखे स्थातुं तस्य शत्रुनिषूदनाः ॥ २७ ॥

उस समय युद्धमें मद्रराज शल्यसे इस प्रकार रोके जाते हुए किसी शत्रुनाशन पाण्डव महारथीको यह शक्ति न रही कि युद्धमें उनके सामने खडा रहे ॥ २७ ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा शल्यस्य विक्रमम् ।
निहतान्पाण्डवान्मेने पाञ्चालानथ सृञ्जयान् ॥ २८ ॥

फिर शल्यका यह पराक्रम देख राजा दुर्योधन ऐसा समझने लगे कि अब पाण्डव, पाञ्चाल और सब सृञ्जय अवश्य मारे गये ॥ २८ ॥

ततो राजन्महाबाहुर्भीमसेनः प्रतापवान् ।
संत्यज्य मनसा प्राणान्मद्राधिपमयोधयत् ॥ २९ ॥

हे राजन् ! तब महाबाहु प्रतापी भीमसेन मनसे प्राणोंका मोह छोडकर मद्रराज शल्यसे युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
परिवार्य तदा शल्यं समन्ताद्व्यकिरञ्शरैः ॥ ३० ॥

इसी प्रकार नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि भी सब ओरसे शल्यको घेरकर उनके ऊपर बाण वर्षाने लगे ॥ ३० ॥

स चतुर्भिर्महेष्वासैः पाण्डवानां महारथैः ।
वृतस्तान्योधयामास मद्रराजः प्रतापवान् ॥ ३१ ॥

परन्तु इन चारों महाधनुर्धर पाण्डवोंके महारथियोंसे घिरे हुए प्रतापी मद्रराज शल्य उन सब के साथ युद्ध करते थे ॥ ३१ ॥

तस्य धर्मसुतो राजन्क्षुरप्रेण महाहवे ।
चक्ररक्षं जघानाशु मद्रराजस्य पार्थिव ॥ ३२ ॥

राजन् ! तब उस महायुद्धमें धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने एक क्षुरप्र बाणसे मद्रराजके पहियेकी रक्षा करनेवालेको शीघ्रही मार डाला ॥ ३२ ॥

तस्मिंस्तु निहते शूरे चक्ररक्षे महारथे ।
मद्रराजोऽतिबलवान्सैनिकानास्तृणोच्छरैः ॥ ३३ ॥

अपने महारथी शूर चक्ररक्षकको मरा देख अत्यंत बलवान् शल्यको महाक्रोध हुआ और उन्होंने युधिष्ठिरके प्रधान वीरोंको अपने बाणोंसे आच्छादित किया ॥ ३३ ॥

समाच्छन्नांस्ततस्तांस्तु राजन्वीक्ष्य स सैनिकान् ।
चिन्तयामास समरे धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥

राजन् ! युद्धमें अपनी सेनाको बाणोंसे ढकी हुई देख, धर्मराज युधिष्ठिर सोचने लगे ॥ ३४ ॥

कथं नु न भवेत्सत्यं तन्माधववचो महत् ।
न हि क्रुद्धो रणे राजा क्षपयेत बलं मम ॥ ३५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका वह महान् वचन किस प्रकार सत्य होगा ? हम शल्यको कैसे मार सकेंगे ? ऐसा न हो कि युद्धमें क्रुद्ध हुए राजा शल्य मेरी सब सेनाका नाश कर डालें ॥ ३५ ॥

ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
मद्रेश्वरं समासेदुः पीडयन्तः समन्ततः ॥ ३६ ॥

पाण्डुके बडे भाई धृतराष्ट्र! तब युधिष्ठिरने सब रथ, हाथी, घोडे और पैदल सेनाके सहित प्रधान वीरोंको केवल शल्यसे ही युद्ध करनेकी आज्ञा दी और सब ओरसे उनको पीडा देने लगे ॥ ३६॥

नानाशस्त्रौघबहुलां शस्त्रवृष्टिं समुत्थिताम् ।
व्यधमत्समरे राजन्महाभ्राणीव मारुतः ॥ ३७ ॥

तब शल्यके ऊपर इस प्रकार शस्त्र बर्षने लगे जैसे वर्षाकालमें पानीकी धारें। परन्तु शल्य कुछ न घबडाये और जिधरको देखते थे, उधर ही युधिष्ठिरकी सेना इस प्रकार फट जाती थी, जैसे आंधीके चलनेसे मेघ ॥ ३७ ॥

ततः कनकपुङ्खां तां शल्यक्षिप्तां वियद्गताम् ।
शरवृष्टिमपश्याम शलभानामिवाततिम् ॥ ३८ ॥

हमें इस समय सोनेके पङ्खवाले, आकाशमें घूमते हुए शल्यके चलाये हुए बाण टीडी दलके समान दीखते थे ॥ ३८ ॥

ते शरा मद्रराजेन प्रेषिता रणमूर्धनि ।
संपतन्तः स्म दृश्यन्ते शलभानां व्रजा इव ॥ ३९ ॥

इस समय युद्धके अग्रभागपर मद्रराजके छोडे हुए वे बाण शलभ समूहोंके समान गिरते दिखाई देते थे ॥ ३९ ॥

मद्रराजधनुर्मुक्तैः शरैः कनकभूषणैः ।
निरन्तरमिवाकाशं संबभूव जनाधिप ॥ ४० ॥

हे पृथ्वीनाथ! मद्रराज शल्यके धनुषसे छूटे हुए उन सुवर्णभूषित बाणोंसे आकाश संपूर्ण भर गया ॥ ४० ॥

न पाण्डवानां नास्माकं तत्र किञ्चिद्व्यदृश्यत ।
बाणान्धकारे महति कृते तत्र महाभये ॥ ४१ ॥

उस समय बाणोंसे महाभयानक अन्धकार हो गया, इसलिये हमारी और पाण्डवोंके ओरकी कोई भी चीज दिखाई नहीं देती थी ॥ ४१ ॥

मद्रराजेन बलिना लाघवाच्छरवृष्टिभिः ।
लोड्यमानं तथा दृष्ट्वा पाण्डवानां बलार्णवम् ।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवगन्धर्वदानवाः ॥ ४२ ॥

हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि, बलवान् मद्रराज शल्यके शीघ्रतापूर्वक छोडे जानेवाले बाणोंसे पीडित पाण्डवोंकी समुद्र रूपी सेना सब ओर बहती सी दीखती थी, शल्यके इस पराक्रमको देख सब देवता, गन्धर्व और दानव अत्यंत आश्चर्य करने लगे ॥ ४२ ॥

स तु तान्सर्वतो यत्तान्शरैः संपीड्य मारिष ।
धर्मराजमवच्छाद्य सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ॥ ४३ ॥

मारिष ! फिर विजयके लिये प्रयत्नशील उन सब महारथियोंको बाणोंसे आच्छादित करके शल्यने धर्मराज युधिष्ठिरको भी बाणोंसे छिपा दिया और बार बार सिंहके समान गर्जने लगे ॥ ४३ ॥

ते छन्नाः समरे तेन पाण्डवानां महारथाः ।
न शेकुस्तं तदा युद्धे प्रत्युद्यातुं महारथम् ॥ ४४ ॥

समरमें शल्यके बाणोंसे आच्छादित हुए पाण्डवोंके महारथी, महारथी शल्यकी ओर युद्धमें आगे बढ न सके ॥ ४४ ॥

धर्मराजपुरोगास्तु भीमसेनमुखा रथाः ।
न जहुः समरे शूरं शल्यमाहवशोभिनम् ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ६०४ ॥

तब धर्मराज युधिष्ठिरको आगे देखकर भीमसेन आदि रथी वीर युद्धमें शोभायमान शूर शल्यको छोडकर चले नहीं गये ॥ ४५ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें बारहवां अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ ६०४ ॥

: १३ :

संजय उवाच—

अर्जुनो द्रौणिना विद्धो युद्धे बहुभिरायसैः ।
तस्य चानुचरैः शूरैस्त्रिगर्तानां महारथैः ।
द्रौणिं विव्याध समरे त्रिभिरेव शिलीमुखैः । ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और उसके अनुगामी त्रिगर्तदेशीय अनेक शूर महारथियोंने अर्जुनकी ओर लोहेके बने हुए अनेक बाण चलाये और उसको विद्ध किया । तब अर्जुनने समरमें तीन तीक्ष्ण बाणोंसे अश्वत्थामाको वींध डाला ॥ १ ॥

तथेतरान्महेष्वासान्द्वाभ्यां द्वाभ्यां धनंजयः ।
भूयश्चैव महाबाहुः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २ ॥

और दूसरे सब महाधनुर्धरोंको दो दो बाणोंसे विद्ध किया । महाराज ! और फिर अर्जुनने उन सबको बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ २ ॥

शरकण्टकितास्ते तु तावका भरतर्षभ ।
न जहुः समरे पार्थं वध्यमानाः शितैः शरैः ॥ ३ ॥

भरतर्षभ ! अर्जुनके तीक्ष्ण बाणोंसे व्याकुल होनेपर और शर कण्टकयुक्त होनेपर भी तुम्हारे सैनिकोंने इन्हें छोडा नहीं ॥ ३ ॥

तेऽर्जुनं रथवंशेन द्रोणपुत्रपुरोगमाः ।
अयोधयन्त समरे परिवार्य महारथाः ॥ ४ ॥

और समरमें द्रोणपुत्रको आगे करके वे कौरव योद्धा अर्जुनको चारों ओरसे रथसमूहसे घेरकर युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥

तैस्तु क्षिप्ताः शरा राजन्कार्तस्वरविभूषिताः ।
अर्जुनस्य रथोपस्थं पूरयामासुरञ्जसा ॥ ५ ॥

राजन् ! इनके छोडे हुए सोनेके पङ्खवाले बाण अर्जुनके रथकी बैठकपर अनायास चारों ओर दिखाई देने लगे ॥ ५ ॥

तथा कृष्णौ महेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम् ।
शरैर्वीक्ष्य वितुन्नाङ्गौ प्रहृष्टौ युद्धदुर्मदौ ॥ ६ ॥

सब धनुष्यधारियोंमें श्रेष्ठ और महाधनुर्धर, प्रसन्न और युद्धदुर्मद श्रीकृष्ण और अर्जुनके सब शरीरमें बाणोंसे अनेक घाव हो गये ॥ ६ ॥

कूबरं रथचक्राणि ईषा योक्त्राणि चाभिभो ।
युगं चैवानुकर्षं च शरभूतमभूत्तदा ॥ ७ ॥

हे प्रभो ! अर्जुनके रथके पहिये, कूबर, ईषादण्ड, जोते, जुआ और अनुकर्ष–ये सब बाणोंसे भर गये ॥ ७ ॥

नैतादृशं दृष्टपूर्वं राजन्नैव च नः श्रुतम् ।
यादृशं तत्र पार्थस्य तावकाः संप्रचक्रिरे ॥ ८ ॥

तुम्हारे योद्धाओंने अर्जुनकी जैसी अवस्था कर दी थी, और जो उस समय हमने देखी ऐसी पहले कभी न देखी और न सुनी थी ॥ ८ ॥

स रथः सर्वतो भाति चित्रपुङ्खैः शितैः शरैः ।
उल्काशतैः संप्रदीप्तं विमानमिव भूतले ॥ ९ ॥

हे राजन् ! इस समय विचित्र पंखवाले तीक्ष्ण बाणोंसे व्याप्त हुआ अर्जुनका रथ पृथ्वीपर अनेक मसालोंसे प्रकाशयुक्त विमानके समान शोभायमान दीखता था ॥ ९ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज शरैः संनतपर्वभिः ।
अवाकिरत्तां पृतनां मेघो वृष्ट्या यथाचलम् ॥ १० ॥

महाराज ! तब अर्जुनने तुम्हारी इस सेनापर इस प्रकार नतपर्ववाले बाणोंकी वर्षा की और उसको ढक दिया जैसे मेघ पर्वतपर जल बरपाते हैं ॥ १० ॥

ते वध्यमानाः समरे पार्थनामाङ्कितैः शरैः ।
पार्थभूतममन्यन्त प्रेक्षमाणास्तथाविधम् ॥ ११ ॥

युद्धमें अर्जुनके नामसे अंकित बाणोंसे व्याकुल होकर उस सेनाको चारों ओर अर्जुन ही अर्जुन दीखने लगे ॥ ११ ॥

ततोऽद्भुतशरज्वालो धनुःशब्दानिलो महान् ।
सेनेन्धनं ददाहाशु तावकं पार्थपावकः ॥ १२ ॥

इस समय ऐसा जान पडता था, मानो धनुषकी टंकाररूपी वायुसे जलता हुआ बाणरूपी ज्वाला-युक्त अर्जुनरूपी क्रुद्ध अग्नि तुम्हारी सेनारूपी ईंधनको शीघ्रतापूर्वक भस्म कर देती है ॥१२॥

चक्राणां पततां चैव युगानां च धरातले ।
तूणीराणां पताकानां ध्वजानां च रथैः सह ॥ १३ ॥

धरतीपर कहीं बाणोंसे कटकर रथके पहिये, कहीं धुर– तूणीर, कहीं झण्डे, कहीं ध्वजा, कहीं रथ ॥ १३ ॥

ईषाणामनुकर्षाणां त्रिवेणूनां च भारत ।
अक्षाणामथ योक्त्राणां प्रतोदानां च सर्वशः ॥ १४ ॥

भारत ! कहीं जुवा, कहीं अनुकर्ष और कहीं त्रिवेणुनामक काष्ठ, कहीं पहियेकी नाभि, कहीं हाल, कहीं घोडेकी लगाम पडे दीखते थे ॥ १४ ॥

शिरसां पततां चैव कुण्डलोष्णीषधारिणाम् ।
भुजानां च महाराज स्कन्धानां च समन्ततः ॥ १५ ॥

महाराज ! कहीं जोडे, कहीं कुण्डल–पगडी सहित कटे शिर, कहीं हाथ, कहीं कंधे पडे हुए दीखते थे ॥ १५ ॥

छत्राणां व्यजनैः सार्धं मुकुटानां च राशयः ।
समदृश्यन्त पार्थस्य रथमार्गेषु भारत ॥ १६ ॥

कहीं छत्र–व्यजन और कहीं कटे हुए मुकुटोंके ढेर पडे थे। ये सब अर्जुनके रथके मार्गोंमें पृथ्वीपर गिरे हुए थे ॥ १६ ॥

अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ।
बभूव भरतश्रेष्ठ रुद्रस्याक्रीडनं यथा ।
भीरूणां त्रासजननी शूराणां हर्षवर्धनी ॥ १७ ॥

मांस और रुधिरकी कीच पृथ्वीपर हो जानेके कारण वहां चलना–फिरना मुश्कील था । हे भरतश्रेष्ठ ! वह रणभूमि रुद्रदेवके क्रीडास्थल–महास्मशानके समान हो गयी थी । वह भूमि कायरोंको डरानेवाली और वीरोंका उत्साह बढानेवाली थी ॥ १७ ॥

हत्वा तु समरे पार्थः सहस्रे द्वे परंतप ।
रथानां सवरूथानां विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ १८ ॥

समरमें अर्जुन दो सहस्र आवरणसहित रथोंका संहार करके ऐसे प्रकाशित हुए जैसे विना धूंए की प्रज्वलित अग्नि ॥ १८ ॥

यथा हि भगवानग्निर्जगद्दग्ध्वा चराचरम् ।
विधूमो दृश्यते राजंस्तथा पार्थो महारथः ॥ १९ ॥

और हे राजन् ! जैसे चराचर जगत्को जलाकर भगवान् अग्नि धूमरहित दिखाई देते हैं, उसी प्रकार महारथी कुन्तीकुमार अर्जुन भी शोभायमान हो रहे थे ॥ १९ ॥

द्रौणिस्तु समरे दृष्ट्वा पाण्डवस्य पराक्रमम् ।
रथेनातिपताकेन पाण्डवं प्रत्यवारयत् ॥ २० ॥

संग्राममें पाण्डुपुत्र अर्जुनका यह पराक्रम देख द्रोणकुमार अश्वत्थामा अपनी अति ऊंची पताका-वाले रथके साथ आकर युद्ध करनेको दौडे ॥ २० ॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ श्वेताश्वौ धन्विनां वरौ ।
समीयतुस्तदा तूर्णं परस्परवधैषिणौ ॥ २१ ॥

तब इन दोनों पुरुषसिंह श्रेष्ठ महाधनुषधारी वीरोंका परस्पर बधकी इच्छासे एक दूसरेके साथ शीघ्रही घोर युद्ध होने लगा ॥ २१ ॥

तयोरासीन्महाराज बाणवर्षं सुदारुणम् ।
जीमूतानां यथा वृष्टिस्तपान्ते भरतर्षभ ॥ २२ ॥

हे भरतकुलसिंह ! जैसे वर्षाकालमें दो मेघ पानी वर्षते हैं, वैसे ही ये दोनों वीर दारुण रीतिसे बाण बरषाने और युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥

अन्योन्यस्पर्धिनौ तौ तु शरैः संनतपर्वभिः ।
ततक्षतुर्मृधेऽन्योन्यं शृङ्गाभ्यां वृषभाविव ॥ २३ ॥

जैसे दो बैल परस्पर सींगोंसे प्रहार करते हैं, ऐसेही आपसमें डांट रखनेवाले ये दोनों वीर नत गांठवाले बाणोंसे लडते रहे, और क्षतविक्षत करने लगे ॥ २३ ॥

तयोर्युद्धं महाराज चिरं सममिवाभवत् ।
अस्त्राणां संगमश्चैव घोरस्तत्राभवन्महान् ॥ २४ ॥

महाराज ! बहुत समयतक उन दोनोंका युद्ध लगातार चल रहा । फिर उस युद्धमें अनेक प्रकारके दिव्य अस्त्र भी चले और घोर महान् संघर्ष शुरू हुआ ॥ २४ ॥

ततोऽर्जुनं द्वादशभी रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः ।
वासुदेवं च दशभिर्द्रौणिर्विव्याध भारत ॥ २५ ॥

भारत ! तब अश्वत्थामाने अत्यंत तेज सोनेके पङ्खवाले बारह बाण अर्जुनको और दस सायक कृष्णको मारे और विद्ध किया ॥ २५ ॥

ततः प्रहस्य बीभत्सुर्व्याक्षिपद्गाण्डिवं धनुः ।
मानयित्वा मुहूर्तं च गुरुपुत्रं महाहवे ॥ २६ ॥

तब अर्जुनने प्रसन्न होकर गाण्डीव धनुषपर टङ्कार दी । अर्जुनने जो इतने समयतक उस महायुद्धमें अश्वत्थामाको बाणोंसे व्याकुल नहीं किया इसका कारण केवल गुरुपुत्रका आदरही था ॥ २६ ॥

व्यश्वसूतरथं चक्रे सव्यसाची महारथः ।
मृदुपूर्वं ततश्चैनं त्रिभिर्विव्याध सायकैः ॥ २७ ॥

फिर थोडे ही समयमें महारथी सव्यसाचीने अश्वत्थामाके घोडे, सारथी और रथको काट डाला। फिर धीरे धीरे हल्के हाथों बाण चलाकर उनको तीन सायकोंसे घायल कर दिया ॥ २७ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन्द्रोणपुत्रस्त्वयस्मयम् ।
मुसलं पाण्डुपुत्राय चिक्षेप परिघोपमम् ॥ २८ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा भी जिसके घोडे मारे गये हैं उस रथमें बैठे रहे और कुछ न घबडाये, फिर एक परिघके समान भारी लोहेका मूसल पाण्डुकुमार अर्जुनकी ओर चलाया ॥ २८ ॥

तमापतन्तं सहसा हेमपट्टविभूषितम् ।
चिच्छेद सप्तधा वीरः पार्थः शत्रुनिबर्हणः ॥ २९ ॥

तब शत्रुनाशन वीर अर्जुनने सहसा अपना ओर आते हुए उस सुवर्णपत्र विभूपित मुसलके मार्गहीमें बाणोंसे काटकर सात टूकडे कर दिये ॥ २९ ॥

स च्छिन्नं मुसलं दृष्ट्वा द्रौणिः परमकोपनः ।
आददे परिघं घोरं नगेन्द्रशिखरोपमम् ।
चिक्षेप चैव पार्थाय द्रौणिर्युद्धविशारदः ॥ ३० ॥

अपने मूसलको कटा हुआ देख, युद्धके पण्डित अश्वत्थामाने अत्यंत क्रोध करके एक पर्वतके शिखरके समान एक भारी परिघ अर्जुनकी ओर चलाया ॥ ३० ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं परिघं प्रेक्ष्य पाण्डवः ।
अर्जुनस्त्वरितो जघ्ने पञ्चभिः सायकोत्तमैः ॥ ३१ ॥

क्रोधमें भरे यमराजके दण्डके समान उस परिघको आते देख पाण्डुपुत्र अर्जुनने शीघ्रही पांच उत्तम बाणोंसे मार्गहीमें काट डाला ॥ ३१ ॥

स च्छिन्नः पतितो भूमौ पार्थबाणैर्महाहवे ।
दारयन्पृथिवीन्द्राणां मनः शब्देन भारत ॥ ३२ ॥

भारत ! कुन्तीपुत्र अर्जुनके बाणोंसे अश्वत्थामाका वह परिघ कटकर दुर्योधन आदि राजाओंके हृदयोंको अपने शब्दसे विदीर्ण करता हुआ पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ३२ ॥

ततोऽपरैस्त्रिभिर्बाणैर्द्रौणिं विव्याध पाण्डवः ।
सोऽतिविद्धो बलवता पार्थेन सुमहाबलः ।
न संभ्रान्तस्तदा द्रौणिः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः ॥ ३३ ॥

तब फिर पाण्डुकुमार अर्जुनने अश्वत्थामाको दूसरे तीन बाणोंसे विद्ध किया । महाबलवान् अर्जुनके बाणोंसे अत्यंत विद्ध होकर भी अत्यंत बलशाली द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अपने पुरुषार्थमें स्थित होकर कुछ भी नहीं डरे ॥ ३३ ॥

सुधर्मा तु ततो राजन्भारद्वाजं महारथम् ।
अवाकिरच्छरव्रातैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥

राजन् ! अनन्तर उस ही घोडेहीन रथपर बैठे हुए भारद्वाजनन्दन महारथी अश्वत्थामाको सुधर्माने अपने अनेक बाणोंसे सब क्षत्रियोंके देखते देखते आच्छादित कर दिया ॥ ३४ ॥

ततस्तु सुरथोऽप्याजौ पाञ्चालानां महारथः ।
रथेन मेघघोषेण द्रौणिमेवाभ्यधावत ॥ ३५ ॥

तब युद्धमें पाञ्चाल महारथी सुरथ भी अपने मेघके समान शब्दवाले रथको दौडाते हुए अश्वत्थामाके पास आये ॥ ३५ ॥

विकर्षन्वै धनुः श्रेष्ठं सर्वभारसहं दृढम् ।
ज्वलनाशीविषनिभैः शरैश्चैनमवाकिरत् ॥ ३६ ॥

और अत्यन्त दृढ शत्रुओंके नाश करनेवाले धनुषको खींचकर जलती अग्नि और विष भरे सांपके समान भयंकर बाण छोडने लगे और अश्वत्थामाको ढक दिया ॥ ३६ ॥

सुरथं तु ततः क्रुद्धमापतन्तं महारथम् ।
चुकोप समरे द्रौणिर्दण्डाहत इवोरगः ॥ ३७ ॥

उस पाञ्चालवंशी क्रोधित होकर आक्रमण करते हुए देखकर, अश्वत्थामाको समरमें ऐसा क्रोध ज्ञानेसे सांपको ॥ ३७ ॥

त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा सृक्किणी परिलेलिहन् ।
उद्वीक्ष्य सुरथं रोषाद्धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
मुमोच तीक्ष्णं नाराचं यमदण्डसमद्युतिम् ॥ ३८ ॥

तब वह भौहोंको तीन जगहसे टेढी करके मुंह और ओठ चाटने लगे, फिर क्रोधसे सुरथको ओर देखकर और धनुषके रोदेको हाथसे मलकर यमराजके दण्डके समान एक तेजस्वी तीक्ष्ण नाराच बाण उनकी छातीमें मारा ॥ ३८ ॥

स तस्य हृदयं भित्त्वा प्रविवेशातिवेगतः ।
शक्राशनिरिवोत्सृष्टा विदार्य धरणीतलम् ॥ ३९ ॥

वह वेगवान् नाराज उनकी छाती छेदकर इस प्रकार पृथ्वीमें घुस गया जैसे इन्द्रका छोडा हुआ अत्यन्त वेगशाली वज्र पृथ्वीमें ॥ ३९ ॥

ततस्तं पतितं भूमौ नाराचेन समाहतम् ।
वज्रेणेव यथा श्रृङ्गं पर्वतस्य महाधनम् ॥ ४० ॥

जैसे वज्र लगनेसे पर्वतका शिखर गिर जाता है, वैसे ही उस नाराच बाणके लगनेसे सुरथ पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ४० ॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव रथिनां वरः ॥ ४१ ॥

उस बीर सुरथको मारकर रथियोंमें श्रेष्ठ प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा शीघ्रही उस ही रथपर आरूढ हो गये ॥ ४१ ॥

ततः सज्जो महाराज द्रौणिराहवदुर्मदः ।
अर्जुनं योधयामास संशप्तकवृतो रणे ॥ ४२ ॥

महाराज ! और फिर युद्धके लिये सुसज्जित होकर समरमें संशप्तकोंसे घिरा हुआ रणदुर्मद द्रोणपुत्र अर्जुनहीसे घोर युद्ध करने लगा ॥ ४२ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीदर्जुनस्य परैः सह ।
मध्यंदिनगते सूर्ये यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ४३ ॥

जिस समय यह महाप्रतापी अर्जुन, अश्वत्थामा और संशप्तकोंका घोर युद्ध हो रहा था, तब ही भगवान सूर्यने दिनका दूसरा पहर समाप्त किया । यह युद्ध यमराजके राष्ट्रकी वृद्धि करनेवाला था ॥ ४३ ॥

तत्राश्चर्यमपश्याम दृष्ट्वा तेषां पराक्रमम् ।
यदेको युगपद्वीरान्समयोधयदर्जुनः ॥ ४४ ॥

उस समय कौरववीरोंका पराक्रम देखकर और अर्जुन अकेले ही उस समय उन सब वीरोंसे युद्ध करते रहे हैं, यह देखकर हम सबको आश्चर्य हो गया ॥ ४४ ॥

विमर्दस्तु महानासीदर्जुनस्य परैः सह ।
शतक्रतोर्यथा पूर्वं महत्या दैत्यसेनया ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ६४९ ॥

जैसे पहले समयमें इन्द्रने दानवोंके विशाल सेनाके सङ्ग घोर युद्ध किया था वैसे ही अकेले अर्जुन अनेक वीरोंसे लडते रहे ॥ ४५ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ ६४९ ॥

: १४ :

संजय उवाच

दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
चक्रतुः सुमहद्युद्धं शरशक्तिसमाकुलम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! इसी प्रकार राजा दुर्योधन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न भी बाण और शक्तियोंसे महान् घोर युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

तयोरासन्महाराज शरधाराः सहस्रशः ।
अम्बुदानां यथा काले जलधाराः समन्ततः ॥ २ ॥

हे राजन् ! उन दोनोंके धनुषसे छूटे हुए सहस्रों बाण ऐसे दिखाई देते थे, मानो वर्षाकालमें सब ओर मेघ बर्ष रहे हैं ॥ २ ॥

राजा तु पार्षतं विद्ध्वा शरैः पञ्चभिरायसैः ।
द्रोणहन्तारमुग्रेषुः पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३ ॥

भयंकर बाणवाले राजा दुर्योधनने द्रोणाचार्यके मारनेवाले धृष्टद्युम्नको पांच लोहेके बाण मारकर फिर सात बाण मारकर विद्ध किया ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे बलवान्दृढविक्रमः ।
सप्तत्या विशिखानां वै दुर्योधनमपीडयत् ॥ ४ ॥

महापराक्रमी बलवान् धृष्टद्युम्नने भी समरमें एक ही वार दुर्योधनके शरीरमें सत्तर बाण मारे और पीडित किया ॥ ४ ॥

पीडितं प्रेक्ष्य राजानं सोदर्या भरतर्षभ ।
महत्या सेनया सार्धं परिवव्रुः स्म पार्षतम् ॥ ५ ॥

भरतर्षभ ! उन बाणोंके लगनेसे राजा दुर्योधन बहुत व्याकुल हो गये, उनको व्याकुल देख उनके सब भाईयोंने बहुत सेनाके सहित आकर धृष्टद्युम्नको घेर लिया ॥ ५ ॥

+

स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतोऽतिरथैर्भृशम् ।
व्यचरत्समरे राजन्दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ ६ ॥

हे राजन् ! अनेक महारथियोंसे सब ओरसे घिरनेपर भी वीर धृष्टद्युम्न अपनी अस्त्रविद्याको दिखाते हुए युद्धमें घूमने लगे ॥ ६ ॥

शिखण्डी कृतवर्माणं गौतमं च महारथम् ।
प्रभद्रकैः समायुक्तो योधयामास धन्विनौ ॥ ७ ॥

इसी प्रकार शिखण्डी प्रभद्रकोंकी सेना साथ लेकर, कृतवर्मा और महारथी कृपाचार्य इन दोनों धनुर्धरोंसे लडते रहे ॥ ७ ॥

तत्रापि सुमहद्युद्धं घोररूपं विशां पते ।
प्राणान्संत्यजतां युद्धे प्राणद्यूताभिदेवने ॥ ८ ॥

हे राजन् ! उस समय अपने प्राणोंका मोह छोडकर जीवनकी बाजी लगाकर खेले जानेवाले युद्धरूपी जुएमें लगे हुए सब सैनिक घोर युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥

शल्यस्तु शरवर्षाणि विमुञ्चन्सर्वतोदिशम् ।
पाण्डवान्पीडयामासससात्यकिवृकोदरान् ॥ ९ ॥

उधर शल्य भी सब दिशाओंमें अपने बाण बर्षाते हुए सात्यकि और भीमसेन सहित पाण्डवोंको पीडा देने लगे ॥ ९ ॥

तथोभौ च यमौ युद्धे यमतुल्यपराक्रमौ ।
योधयामास राजेन्द्र वीर्येण च बलेन च ॥ १० ॥

राजेन्द्र ! उस समय यमराजके समान पराक्रमी नकुल और सहदेवके साथ अपने शौर्य और अस्त्रबलसे युद्ध करते रहे ॥ १० ॥

शल्यसायकनुन्नानां पाण्डवानां महामृधे ।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त केचित्तत्र महारथाः ॥ ११ ॥

जब अपने बाणोंसे शल्य पाण्डव महारथियोंको विद्ध कर रहे थे, तब उस समय उस महायुद्धमें ऐसा जान पडता था, मानो अब जगत्में पाण्डवोंकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है ॥ ११ ॥

ततस्तु नकुलः शूरो धर्मराजे प्रपीडिते ।
अभिदुद्राव वेगेन मातुलं माद्रिनन्दनः ॥ १२ ॥

अपने बडे भाई धर्मराज युधिष्ठिरको शल्यके बाणोंसे अत्यंत व्याकुल देख, महारथी माद्रिनन्दन नकुल अपने मामा शल्यको मारनेको वेगसे दौडे ॥ १२ ॥

संछाद्य समरे शल्यं नकुलः परवीरहा ।
विव्याध चैनं दशभिः स्मयमानः स्तनान्तरे ॥ १३ ॥

और शत्रुनाशन नकुलने युद्धमें अपने बाणोंसे शल्यको छिपाकर, फिर हंसकर दस बाण उनकी छातीमें मारे ॥ १३ ॥

सर्वपारशवैर्बाणैः कर्मारपरिमार्जितैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैर्धनुर्यन्त्रप्रचोदितैः ॥ १४ ॥

वे सब बाण लोहेके बने कारीगरसे अच्छी तरह निर्मल बनाये हुए, विषमें बुझे, सोनेके पङ्खवाले और तेज किये गये थे। वे नकुलके धनुष और यन्त्र (कलसे) छुटे हुए थे ॥१४॥

शल्यस्तु पीडितस्तेन स्वस्त्रीयेण महात्मना ।
नकुलं पीडयामास पत्रिभिर्नतपर्वभिः ॥ १५ ॥

अपने महात्मा भानजेके बाणोंके लगनेसे शल्य बहुत व्याकुल हो गये, फिर उन्होंने नकुलको अनेक तेज बाणोंसे विद्ध किया ॥ १५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनोऽथ सात्यकिः ।
सहदेवश्च माद्रेयो मद्रराजमुपाद्रवन् ॥ १६ ॥

तब राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, सात्यकि और माद्रीपुत्र सहदेव एक साथ मद्रराज शल्यकी ओर दौडे ॥ १६ ॥

तानापतत एवाशु पूरयानान्रथस्वनैः ।
दिशश्च प्रदिशश्चैव कम्पयानांश्च मेदिनीम् ।
प्रतिजग्राह समरे सेनापतिरमित्रजित् ॥ १७ ॥

उनके रथोंके शब्द और वेगसे सब दिशाओं और प्रदिशाओंको निनादित होकर, पृथ्वी हिलने लगी। तब शत्रुविजयी सेनापति शल्यने सहसा आक्रमण करनेवाले उन सबको रोक दिया ॥१७॥

युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा भीमसेनं च सप्तभिः ।
सात्यकिं च शतेनाजौ सहदेवं त्रिभिः शरैः ॥ १८ ॥

युद्धमें युधिष्ठिरको तीन, भीमसेनको सात, सात्यकिको सौ और सहदेवको तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ १८ ॥

ततस्तु सशरं चापं नकुलस्य महात्मनः ।
मद्रेश्वरः क्षुरप्रेण तदा चिच्छेद मारिष ।
तदशीर्यत विच्छिन्नं धनुः शल्यस्य सायकैः ॥ १९ ॥

हे मारिष ! फिर क्षुरप्र बाणसे महात्मा नकुलका बाणसहित धनुष काटकर मद्रराज शल्यने पृथ्वीमें गिरा दिया। शल्यके बाणोंसे कटा हुआ वह धनुष टुकडे टुकडे होकर बिखर गया ॥ १९ ॥

अथान्यद्धनुरादाय माद्रीपुत्रो महारथः ।
मद्रराजरथं तूर्णं पूरयामास पत्रिभिः ॥ २० ॥
तब महारथी माद्रीपुत्र नकुलने भी शीघ्रतासे दूसरा धनुष लेकर इतने बाण चलाये कि मद्रराज शल्यका रथ भर गया ॥ २० ॥

युधिष्ठिरस्तु मद्रेशं सहदेवश्च मारिष ।
दशभिर्दशभिर्बाणैरुरस्येनमविध्यताम् ॥ २१ ॥
मारिष ! उसी समय युधिष्ठिर और सहदेवने भी शल्यकी छातीमें दस दस बाण मारे और उसको विद्ध किया ॥ २१ ॥

भीमसेनस्ततः षष्ट्या सात्यकिर्नवभिः शरैः ।
मद्रराजमभिद्रुत्य जघ्नतुः कङ्कपत्रिभिः ॥ २२ ॥
फिर भीमसेनने साठ और सात्यकिने भी कङ्कपत्र युक्त नौ बाणोंसे मद्रराजपर वेगपूर्वक प्रहार किया ॥ २२ ॥

मद्रराजस्ततः क्रुद्धः सात्यकिं नवभिः शरैः ।
विव्याध भूयः सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ २३ ॥
तब मद्रराज शल्यने क्रोध करके सात्यकिके शरीरमें नतपर्ववाले नौ बाण मारकर फिर सत्तर बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३३ ॥

अथास्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष ।
हयांश्च चतुरः संख्ये प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २४ ॥
मारिष ! फिर उनके बाण सहित धनुषको मुट्ठी पकडनेकी जगहसे काटकर युद्धमें उनके चारों घोडोंको मार डाला ॥ २४ ॥

विरथं सात्यकिं कृत्वा मद्रराजो महाबलः ।
विशिखानां शतेनैनमाजघान समन्ततः ॥ २५ ॥
इस प्रकार सात्यकिको विरथ करके महाबलवान् मद्रराज शल्यने फिर उनके शरीरमें सब ओरसे सौ बाण मारे ॥ २५ ॥

माद्रीपुत्रौ तु संरब्धौ भीमसेनं च पाण्डवम् ।
युधिष्ठिरं च कौरव्य विव्याध दशभिः शरैः ॥ २६ ॥
फिर हे कौरव ! क्रोधित माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव, पाण्डुपुत्र भीमसेन और युधिष्ठिरके भी शरीरमें दस दस बाण मारे ॥ २६ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम मद्रराजस्य पौरुषम् ।
यदेनं सहिताः पार्था नाभ्यवर्तन्त संयुगे ॥ २७ ॥
चारों पाण्डव और सात्यकि अकेले मद्रराज शल्यको युद्धमें पराजित नहीं कर सके, यह अद्भुत पराक्रम देखकर हम लोगोंको बहुत आश्चर्य हुआ ॥ २७ ॥

अथान्यं रथमास्थाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
पीडितान्पाण्डवान्दृष्ट्वा मद्रराजवशं गतान् ।
अभिदुद्राव वेगेन मद्राणामधिपं बली ॥ २८ ॥
इतने ही समयमें महावीर सात्यकि दूसरे रथपर बैठ गये और पाण्डवोंको शल्यके बाणोंसे व्याकुल और मद्रराजके अधीन हुआ देखकर वेगसे बलपूर्वक उसपर दौडे ॥ २८ ॥

आपतन्तं रथं तस्य शल्यः समितिशोभनः ।
प्रत्युद्ययौ रथेनैव मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ २९ ॥
युद्धमें शोभायमान शल्य उनके रथको अपनी ओर आते देख स्वयं भी रथसे उनकी ओर इस प्रकार दौडे जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीकी ओर ॥ २९ ॥

स संनिपातस्तुमुलो बभूवाद्भुतदर्शनः ।
सात्यकेश्चैव शूरस्य मद्राणामधिपस्य च ।
यादृशो वै पुरा वृत्तः शम्बरामरराजयोः ॥ ३० ॥
उस समय वीर सात्यकि और मद्रराज शल्यका ऐसा घोर और अद्भुत युद्ध हुआ, जैसे पूर्वकालमें शम्बर दैत्य और देवराज इन्द्रका हुआ था ॥ ३० ॥

सात्यकिः प्रेक्ष्य समरे मद्रराजं व्यवस्थितम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३१ ॥
तब सात्यकिने समरमें मद्रराजको खडे हुए देख उनके शरीरमें दस बाण मारे और शल्यसे खडा रह, खडा रह ऐसा कहा ॥ ३१ ॥

मद्रराजस्तु सुभृशं विद्धस्तेन महात्मना ।
सात्यकिं प्रतिविव्याध चित्रपुङ्खैः शितैः शरैः ॥ ३२ ॥
महात्मा सात्यकिसे अत्यन्त घायल हुए मद्रराजने विचित्र पंखवाले तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिको भी विद्ध किया ॥ ३२ ॥

ततः पार्था महेष्वासाः सात्वताभिसृतं नृपम् ।
अभ्यद्रवन्रथैस्तूर्णं मातुलं वधकाङ्क्षया ॥ ३३ ॥
तब महाधनुर्धारी चारों पृथापुत्रोंने सात्यकिके साथ युद्ध करते हुए मामा मद्रराज शल्यको मारनेकी इच्छासे अपने रथोंसे उसपर आक्रमण किया ॥ ३३ ॥

तत्र आसीत्परामर्दस्तुमुलः शोणितोदकः ।
शूराणां युध्यमानानां सिंहानामिव नर्दताम् ॥ ३४ ॥

फिर तो वहां घोर युद्ध होने लगा । उस समय युद्धभूमिमें सिंहके समान गर्जते हुए और लडते हुए वीरोंका रुधिर बहने लगा ॥ ३४ ॥

तेषामासीन्महाराज व्यतिक्षेपः परस्परम् ।
सिंहानामामिषेप्सूनां कूजतामिव संयुगे ॥ ३५ ॥

महाराज ! ये सब वीर एक दूसरेके प्रति भयंकर प्रहार करके इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे मांसके लिये गर्जकर सिंह लडते हैं ॥ ३५ ॥

तेषां बाणसहस्रौघैराकीर्णा वसुधाभवत् ।
अन्तरिक्षं च सहसा बाणभूतमभूत्तदा ॥ ३६ ॥

उस समय उनके सहस्रों बाणसमूहोंसे पृथ्वी आच्छादित हो गयी और आकाश भी केवल बाणमय दीखने लगा ॥ ३६ ॥

शरान्धकारं बहुधा कृतं तत्र समन्ततः ।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे शरैर्मुक्तैर्महात्मभिः ॥ ३७ ॥

उन महात्मा वीरोंसे छोडे हुए बाण आकाशमें ऐसे छागये थे, जैसे वर्षाकालमें मेघ। बाणोंके मारे सब युद्धभूमिमें अन्धेरा हो गया था ॥ ३७ ॥

तत्र राजञ्शरैर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ।
स्वर्णपुङ्खैः प्रकाशद्भिर्व्यरोचन्त दिशस्तथा ॥ ३८ ॥

राजन् ! केंचुल छोडकर निकले हुए सर्पोंके समान उनसे छूटे हुए सोनेके पंखवाले चमकीले बाणोंसे उस समय सब दिशाएं प्रकाशित हो गयी ॥ ३८ ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे शल्यः शत्रुनिबर्हणः ।
यदेकः समरे शूरो योधयामास वै बहून् ॥ ३९ ॥

शत्रुनाशन शूरवीर शल्य रणभूमिमें अकेले ही अनेक वीरोंसे लडते रहे, यह बहुत अद्भुत कर्म हुआ ॥ ३९ ॥

मद्रराजभुजोत्सृष्टैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
सम्पतद्भिः शरैर्घोरैरवाकीर्यत मेदिनी ॥ ४० ॥

मद्रराज शल्यके हाथोंसे छूटे मोर और कौवेके पङ्ख लगे भयंकर बाणोंसे वहांकी सारी पृथ्वी ढक गई ॥ ४० ॥

तत्र शल्यरथं राजन्विचरन्तं महाहवे ।
अपश्याम यथा पूर्वं शक्रस्यासुरसंक्षये ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ६९० ॥

राजन् ! उस समय महायुद्धमें घूमते राजा शल्यका रथ ऐसा दिखाई देता था, जैसे पहले दानवोंके नाश करते समय इन्द्रका ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ ६९० ॥

: १५ :

सञ्जय उवाच—

ततः सैन्यास्तव विभो मद्रराजपुरस्कृताः ।
पुनरभ्यद्रवन्पार्थान्वेगेन महता रणे ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे प्रभो ! तदनन्तर तुम्हारे सब वीर समरमें मद्रराजको आगे करके पुनः बहुत जोरसे पाण्डवोंकी सेनासे युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

पीडितास्तावकाः सर्वे प्रधावन्तो रणोत्कटाः ।
क्षणेनैव च पार्थास्ते बहुत्वात्समलोडयन् ॥ २ ॥

युद्धके लिये मत्त रहनेवाले तुम्हारे सब वीर व्याकुल हो रहे थे, तो भी संख्यामें बहुत होनेके कारण उन्होंने पाण्डवोंकी सेनाको व्याकुल कर दिया ॥ २ ॥

ते वध्यमानाः कुरुभिः पाण्डवा नावतस्थिरे ।
निवार्यमाणा भीमेन पश्यतोः कृष्णपार्थयोः ॥ ३ ॥

यद्यपि भीमसेनने बहुत रोका तो भी कौरवोंकी मार खाकर पाण्डवोंकी सेना खडी न हो सकी और कृष्ण तथा अर्जुनके देखते देखते भागने लगी ॥ ३ ॥

ततो धनंजयः क्रुद्धः कृपं सह पदानुगैः ।
अवाकिरच्छरौघेण कृतवर्माणमेव च ॥ ४ ॥

तब अर्जुनने महाक्रोध करके अनुचरोंसहित कृपाचार्य और कृतवर्माके ऊपर बाण वर्षाकर उनको ढक दिया ॥ ४ ॥

शकुनिं सहदेवस्तु सहसैन्यमवारयत् ।
नकुलः पार्श्वतः स्थित्वा मद्रराजमवैक्षत ॥ ५ ॥

सहदेवने सेना सहित शकुनिको रोक दिया । नकुल मद्रराज शल्यके पास ही खडे होकर क्रोधसे उनकी ओर देख रहे थे ॥ ५ ॥

द्रौपदेया नरेन्द्रांश्च भूयिष्ठं समवारयन् ।
द्रोणपुत्रं च पाञ्चाल्यः शिखण्डी समवारयत् ॥ ६ ॥

द्रौपदीके पांचों बेटोंने अनेक राजाओंको युद्धमें रोक दिया, पाञ्चालकुमार शिखण्डीने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको रोक दिया ॥ ६ ॥

भीमसेनस्तु राजानं गदापाणिरवारयत् ।
शल्यं तु सह सैन्येन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥

भीमसेन भी गदा लेकर रथसे उतरे और राजा दुर्योधनसे लडने लगे, और सेनासहित कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिर शल्यसे घोर युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥

ततः समभवद्युद्धं संसक्तं तत्र तत्र ह ।
तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ८ ॥

तब युद्धमें पीठ न दिखानेवाली तुम्हारी और शत्रुपक्षकी– दोनों ओरकी सेना भी जहां तहां घोर युद्ध करने लगी ॥ ८ ॥

तत्र पश्यामहे कर्म शल्यस्यातिमहद्रणे ।
यदेकः सर्वसैन्यानि पाण्डवानामयुध्यत ॥ ९ ॥

हमने उस समय समरमें राजा शल्यके अद्भुत पराक्रमको देखा कि वे अकेले ही पाण्डवोंकी संपूर्ण सेनाओंके साथ लडते रहे ॥ ९ ॥

व्यदृश्यत तदा शल्यो युधिष्ठिरसमीपतः ।
रणे चन्द्रमसोऽभ्याशे शनैश्चर इव ग्रहः ॥ १० ॥

उस समय युधिष्ठिरके समीप खडे शल्य युद्धमें ऐसे दिखाई देते थे, मानो चन्द्रमाके पास शनैश्चर ग्रह दीखता हो ॥ १० ॥

पीडयित्वा तु राजानं शरैराशीविषोपमैः ।
अभ्यधावत्पुनर्भीमं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ११ ॥

राजा युधिष्ठिरको वे विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंसे व्याकुल करके, फिर शल्य बाण वर्षाते हुए भीमसेनकी ओर दौडे ॥ ११ ॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा तथैव च कृतास्त्रताम् ।
अपूजयन्ननीकानि परेषां तावकानि च ॥ १२ ॥

शल्यकी इस फुर्ति, अस्त्र विद्या और अभ्यासको देख तुम्हारे और शत्रुपक्षके ओरके वीर धन्य धन्य कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १२ ॥

पीडयमानास्तु शल्येन पाण्डवा भृशविक्षताः ।
प्राद्रवन्त रणं हित्वा क्रोशमाने युधिष्ठिरे ॥ १३ ॥

शल्यके बाणोंसे बहुत व्याकुल और अत्यंत बिद्ध हुए पाण्डव सैनिक राजा युधिष्ठिरके पुकारनेपर भी युद्ध छोडकर भागने लगे ॥ १३ ॥

वध्यमानेष्वनीकेषु मद्रराजेन पाण्डवः ।
अमर्षवशमापन्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
ततः पौरुषमास्थाय मद्रराजमपीडयत् ॥ १४ ॥

फिर मद्रराज शल्यसे इस प्रकार पाण्डव-सैनिकोंका नाश होने लगा, तब पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरको शल्यके ऊपर महाक्रोध आया, फिर उन्होंने पुरुषार्थका आश्रय लेकर मद्रराजको पीडा देना शुरू किया ॥ १४ ॥

जयो वास्तु वधो वेति कृतबुद्धिर्महारथः ।
समाहूयाब्रवीत्सर्वान्भ्रातॄन्कृष्णं च माधवम् ॥ १५ ॥

महारथी युधिष्ठिरने यह निश्चय कर लिया कि या तो मेरी विजय हो या स्वयं मर ही जायंगे । फिर अपने सब भाई, सेनापति सात्यकि, मन्त्री और श्रीकृष्ण आदि मित्रोंको बुलाकर कहने लगे ॥ १५ ॥

भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च ये चान्ये पृथिवीक्षितः ।
कौरवार्थे पराक्रान्ताः संग्रामे निधनं गताः ॥ १६ ॥

भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण आदि सब दुर्योधनके लिये पराक्रम करनेवाले राजाओंको युद्धमें मारा ॥ १६ ॥

यथाभागं यथोत्साहं भवन्तः कृतपौरुषाः ।
भागोऽवशिष्ट एकोऽयं मम शल्यो महारथः ॥ १७ ॥

तुम सब लोगोंने अपने अपने भाग और सम्बन्धके अनुसार कार्य पूरा किया । अब केवल हमारा ही भाग शेष रह गया है । उसमें महारथी राजा शल्य ही आ गये ॥ १७ ॥

सोऽहमद्य युधा जेतुमाशंसे मद्रकेश्वरम् ।
तत्र यन्मानसं मह्यं तत्सर्वं निगदामि वः ॥ १८ ॥

इसलिये आज हम मद्रराज शल्यको युद्धमें जीतनेकी आशा करते हैं । इस विषयमें हमारे मनमें जो विचार है, वह अब हम कहते हैं, सो तुम लोग सुनो ॥ १८ ॥

चक्ररक्षाविमौ शूरौ मम माद्रवतीसुतौ ।
अजेयौ वासवेनापि समरे वीरसंमतौ ॥ १९ ॥

हमारी यह मनकी इच्छा है कि माद्रीकुमार वीर नकुल और सहदेव हमारे रथके पहियोंकी रक्षा करें क्यों कि, हमें यह निश्चय है, कि इन दोनोंको युद्धमें साक्षात् इन्द्र भी नहीं जीत सकते और ये वीरोंसे सम्मानित हैं ॥ १९ ॥

साध्विमौ मातुलं युद्धे क्षत्रधर्मपुरस्कृतौ ।
मदर्थं प्रतियुध्येतां मानार्हौ सत्यसंगरौ ॥ २० ॥

इनके बल, पराक्रम, शस्त्रविद्या और क्षत्रिय धर्मको सब कोई जानते हैं, इन दोनोंको जगत्के महायोद्धा पराक्रमी महावीर क्षत्रिय कहते हैं, ये अपने मामा शल्यको जीतनेमें समर्थ हैं । हम इन दोनों आदर पाने योग्य वीरोंको अपना सहायक बनाते हैं ॥ २० ॥

मां वा शल्यो रणे हन्ता तं वाहं भद्रमस्तु वः ।
इति सत्यामिमां वाणीं लोकवीरा निबोधत ॥ २१ ॥

और तुम लोगोंको आशीर्वाद देते हैं कि ईश्वर सबका कल्याण करें। अब या तो हम शल्यको मारेंगे, या वे ही हमें मारेंगे, तुम सब अपने अपने स्थानपर जाओ। हे जगत् प्रसिद्ध वीर! तुम हमारी यह सत्य प्रतिज्ञा सुनो ॥ २१ ॥

योत्स्येऽहं मातुलेनाद्य क्षत्रधर्मेण पार्थिवाः ।
स्वयं समभिसंधाय विजयायेतराय वा ॥ २२ ॥

राजाओ ! आज हम क्षत्रियोंका धर्म धारण करके, अपना कार्य पूर्ण करनेका संकल्प करके अपने मामासे भी युद्ध करेंगे । आज हम मृत्यु या विजयका निश्चय करके मामासे लड़ेंगे ॥ २२ ॥

तस्य मेऽभ्यधिकं शस्त्रं सर्वोपकरणानि च ।
संयुञ्जन्तु रणे क्षिप्रं शास्त्रवद्रथयोजकाः ॥ २३ ॥

परन्तु उनके पास अस्त्र आदि युद्धकी सामग्री हमसे अधिक हैं, अब रथ जोतनेवाले वीर हमारी आज्ञासे शीघ्रही रथपर शास्त्रीय विधिके अनुसार शस्त्र और आवश्यक सामग्री रखें और इस प्रकार हमारे सङ्ग रहो ॥ २३ ॥

शैनेयो दक्षिणं चक्रं धृष्टद्युम्नस्तथोत्तरम् ।
पृष्ठगोपो भवत्वद्य मम पार्थो धनंजयः ॥ २४ ॥

अगाडीके दोनों पहियोंकी रक्षा करनेकी नकुल और सहदेव, पिछले दाहिने पहियेकी रक्षाको सात्यकि, बांयेकी सेनापति धृष्टद्युम्न, आज पीछेसे हमारे रथकी रक्षाके लिये कुन्तीकुमार अर्जुन तत्पर रहें ॥ २४ ॥

पुरःसरो ममाद्यास्तु भीमः शस्त्रभृतां वरः ।
एवमभ्यधिकः शल्याद्भविष्यामि महामृधे ॥ २५ ॥

और मेरे रथके आगे सब अस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन रहे । ऐसा होनेसे हम इस महायुद्धमें शल्यसे अधिक बलवान् हो जायंगे ॥ २५ ॥

एवमुक्तास्तथा चक्रुः सर्वे राज्ञः प्रियैषिणः ।
ततः प्रहर्षः सैन्यानां पुनरासीत्तदा नृप ॥ २६ ॥

उनकी ऐसी आज्ञा सुनकर राजाको प्रिय करनेकी इच्छावाले सब भाईयोंने वैसाही किया । हे नृप ! तब सब सैनिक प्रसन्न चित्त हो गये । पाण्डवोंकी सेनामें फिर अत्यानन्द होने लगा ॥ २६ ॥

पाञ्चालानां सोमकानां मत्स्यानां च विशेषतः ।
प्रतिज्ञां तां च संग्रामे धर्मराजस्य पूरयन् ॥ २७ ॥

विशेषकर पाञ्चाल, सृञ्जय, सोमक और मत्य देशीय क्षत्रिय योद्धा बहुत प्रसन्न हुए । युद्धमें राजा धर्मराजकी उस प्रतिज्ञा पूर्ण करनेका उन्होंने निश्चय किया ॥ २७ ॥

ततः शङ्खांश्च भेरीश्च शतशश्चैव पुष्करान् ।
अवादयन्त पाञ्चालाः सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ २८ ॥

जिस समय राजा युधिष्ठिरने शल्यके मारनेकी प्रतिज्ञा की, तब पाञ्चाल वीर सिंह गर्जना करने लगे और कूदने लगे, शंख, भेरी और सैकडों प्रचुर रणवाद्य बजाने लगे ॥ २८ ॥

तेऽभ्यधावन्त संरब्धा मद्रराजं तरस्विनः ।
महता हर्षजेनाथ नादेन कुरुपुंगवाः ॥ २९ ॥

फिर कुरुश्रेष्ठ वीर क्रोधित होकर महान् हर्षनाद करके बडे वेगसे शल्यपर चढ आये ॥२९॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
तूर्यशब्देन महता नादयन्तश्च मेदिनीम् ॥ ३० ॥

उस समय पाण्डवोंके गर्जने, हाथियोंके घण्टोंकी आवाज, शङ्खोंकी ध्वनि और वाद्योंके महान् शब्दसे पृथ्वीको निनादित करते थे ॥ ३० ॥

तान्प्रत्यगृह्णात्पुत्रस्ते मद्रराजश्च वीर्यवान् ।
महामेघानिव बहूञ्शैलावस्तोदयावुभौ ॥ ३१ ॥

उन सबको आते देख तुम्हारे पुत्र दुर्योधन और वीर मद्रराज शल्यने उनको आगे बढनेसे रोक दिया । जैसे उदयाचल और अस्ताचल बहुत महा मेघोंको सहते हैं ॥ ३१ ॥

शल्यस्तु समरश्लाघी धर्मराजमरिंदमम् ।
ववर्ष शरवर्षेण वर्षेण मघवानिव ॥ ३२ ॥

तब युद्धकी इच्छा रखनेवाले शल्य शत्रुनाशन धर्मराज युधिष्ठिरके ऊपर इस प्रकार बाण वर्षाने लगे जैसे मेघ जलवर्षा करते हैं ॥ ३२ ॥

तथैव कुरुराजोऽपि प्रगृह्य रुचिरं धनुः ।
द्रोणोपदेशान्विविधान्दर्शयानो महामनाः ॥ ३३ ॥

महामना कुरुराज युधिष्ठिरने भी सुंदर धनुष लेकर द्रोणाचार्यके दिये हुए नाना प्रकारके उपदेशोंका प्रदर्शन करके ॥ ३३ ॥

ववर्ष शरवर्षाणि चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
न चास्य विवरं कश्चिद्ददर्श चरतो रणे ॥ ३४ ॥

शीघ्रता सहित सुंदर विचित्र और अद्भुत बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। समरमें घूमते हुए युधिष्ठिरकी कोई भी त्रुटि किसीने नहीं देखी । उस समय यह जान पडता था कि, युधिष्ठिर भी द्रोणाचार्यके एक प्रधान शिष्योंमें हैं ॥ ३४ ॥

तावुभौ विविधैर्बाणैस्ततक्षाते परस्परम् ।
शार्दूलावामिषप्रेप्सू पराक्रान्ताविवाहवे ॥ ३५ ॥

उस समय ये दोनों वीर युद्धमें नाना प्रकारके बाणोंसे एक दूसरेको विद्ध करने लगे, तब ये ऐसे दिखाई देते थे मानों दो शार्दूल मांसके लिये पराक्रम प्रकट कर लड रहे हैं ॥ ३५ ॥

भीमस्तु तव पुत्रेण रणशौण्डेन संगतः ।
पाञ्चाल्यः सात्यकिश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
शकुनिप्रमुखान्वीरान्प्रत्यगृह्णन्समन्ततः ॥ ३६ ॥

तब भीमसेन भी तुम्हारे युद्ध कुशल पुत्र वीर दुर्योधनसे लडने लगे । धृष्टद्युम्न, सात्यकि, तथा पाण्डुपुत्र माद्रीकुमार नकुल और सहदेव आदि वीर सब ओरसे शकुनि आदि क्षत्रियोंसे लडने लगे ॥ ३६ ॥

तदासीत्तुमुलं युद्धं पुनरेव जयैषिणाम् ।
तावकानां परेषां च राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३७ ॥

हे राजन् ! तब फिर तुम्हारे और शत्रुपक्षके—दोनों ओरके वीर अपनी अपनी विजयकी इच्छा रखकर घोर युद्ध करने लगे । यह केवल आपकी उस बुरी सम्मतिहीका फल हुआ ॥३७॥

दुर्योधनस्तु भीमस्य शरेणानतपर्वणा ।
चिच्छेदादिश्य संग्रामे ध्वजं हेमविभूषितम् ॥ ३८ ॥

तब युद्धमें दुर्योधनने घोषणा करके एक तीक्ष्ण बाणसे सोनेके दण्डवाली भीमसेनकी ध्वजा काट दी ॥ ३८ ॥

सकिङ्किणीकजालेन महता चारुदर्शनः ।
पपात रुचिरः सिंहो भीमसेनस्य नादन् ॥ ३९ ॥

वह अनेक घण्टाओंसे युक्त मनोहर एवं सुन्दर ध्वजा पुरुषसिंह भीमसेनके देखते देखते कटकर पृथ्वीपर गिर गई ॥ ३९ ॥

पुनश्चास्य धनुश्चित्रं गजराजकरोपमम् ।
क्षुरेण शितधारेण प्रचकर्त नराधिपः ॥ ४० ॥

फिर राजा दुर्योधनने एक तेज क्षुरप्र बाणसे हाथीके सूंडके समान भीमसेनका विचित्र धनुष काट दिया ॥ ४० ॥

स च्छिन्नधन्वा तेजस्वी रथशक्त्या सुतं तव ।
बिभेदोरसि विक्रम्य स रथोपस्थ आविशत् ॥ ४१ ॥

धनुष कट जानेपर तेजस्वी भीमसेनने एक तेज रथ शक्ति तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके हृदयमें मारी, तब राजा दुर्योधन मूर्च्छा खाकर रथमें गिर पडे ॥ ४१ ॥

तस्मिन्मोहमनुप्राप्ते पुनरेव वृकोदरः ।
यन्तुरेव शिरः कायात्क्षुरप्रेणाहरत्तदा ॥ ४२ ॥

राजाको मूर्च्छित करके फिर भीमसेनने एक तेज क्षुरप्र बाणसे उसके सारथिका शिर धडसे काट लिया ॥ ४२ ॥

हतसूता हयास्तस्य रथमादाय भारत ।
व्यद्रवन्त दिशो राजन्हाहाकारस्तदाभवत् ॥ ४३ ॥

भारत ! सारथिके मरनेसे दुर्योधनके घोडे रथ लेकर इधर उधर चारों दिशाओंमें भागने लगे । राजन् ! तब उनकी सेनामें हाहाकार होने लगा ॥ ४३ ॥

तमभ्यधावत्त्राणार्थं द्रोणपुत्रो महारथः ।
कृपश्च कृतवर्मा च पुत्रं तेऽभिपरीप्सवः ॥ ४४ ॥

उनकी रक्षा करनेको महारथी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा दौडा । कृपाचार्य और कृतवर्मा भी तुम्हारे पुत्रको बचानेके लिये दौडे ॥ ४४ ॥

तस्मिन्विलुलिते सैन्ये त्रस्तास्तस्य पदानुगाः ।
गाण्डीवधन्वा विस्फार्य धनुस्तानहनच्छरैः ॥ ४५ ॥

जब भीमसेनसे डरकर सारी सेनामें हलचल मच गयी, तब उसके पीछे जानेवाले सैनिक भयभीत होगये । तब गाण्डीव धारी अर्जुनने अपने धनुषपर टङ्कार दी और बाणोंसे उन्हें मारने लगे ॥ ४५ ॥

युधिष्ठिरस्तु मद्रेशमभ्यधावदमर्षितः ।
स्वयं संचोदयन्नश्वान्दन्तवर्णान्मनोजवान् ॥ ४६ ॥

तदनंतर युधिष्ठिर भी निर्मल दांतोंके समान सफेद और उनके तुल्य वेगवान् घोडोंको स्वयं शीघ्र दौडाते हुए क्रोधमें भरकर राजा शल्यकी ओर दौडे ॥ ४६ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रे युधिष्ठिरे ।
पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तो यत्तदा दारुणोऽभवत् ॥ ४७ ॥

उस समय कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरका स्वरूप हमने अद्भुत देखा, क्योंकि पहलेसे वे जितेन्द्रिय और परम शान्त स्वभावके होनेपर भी इस समय महातेज होगये थे ॥ ४७ ॥

विवृताक्षश्च कौन्तेयो वेपमानश्च मन्युना ।
चिच्छेद योधान्निशितैः शरैः शतसहस्रशः ॥ ४८ ॥

उस समय कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर क्रोधसे लाल हो रहे थे, शरीर कांप रहा था, और उनकी आंखें विशाल हो गयीं थीं । तब उन्होंने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे सैकडों और सहस्रों वीरोंको मार डाला ॥ ४८ ॥

यां यां प्रत्युद्ययौ सेनां तां तां ज्येष्ठः स पाण्डवः ।
शरैरपातयद्राजन्गिरीन्वज्रैरिवोत्तमैः ॥ ४९ ॥

राजन् ! उस समय वे ज्येष्ठ पाण्डव महाराज जिस सेनाकी ओर चले जाते थे, उसको बाणोंसे इस प्रकार काट डालते थे, जैसे इन्द्र अपने उत्तम वज्रसे पर्वतोंको ॥ ४९ ॥

साश्वसूतध्वजरथान्रथिनः पातयन्बहून् ।
आक्रीडदेको बलवान्पवनस्तोयदानिव ॥ ५० ॥

जैसे प्रबल वायु अनेक मेघोंको छिन्नभिन्न करके उडा देता है, ऐसे ही अकेले बलवान् महाराज युधिष्ठिरने घोडे, सारथि, ध्वजा, पताका और रथों सहित अनेक महारथियोंको मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ५० ॥

साश्वारोहांश्च तुरगान्पत्तींश्चैव सहस्रशः ।
व्यपोथयत संग्रामे क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ५१ ॥

जैसे भगवान् रुद्रदेव शिव प्रलयकालमें क्रोध करके पशुओंका नाश करते हैं, ऐसे ही महाराज युधिष्ठिरने घोडोंके सहित वीर, घोडों और पैदलोंके सहस्रों टुकडे किये ॥ ५१ ॥

शून्यमायोधनं कृत्वा शरवर्षैः समन्ततः ।
अभ्यद्रवत मद्रेशं तिष्ठ शल्येति चाब्रवीत् ॥ ५२ ॥

इस प्रकार वे बाणोंकी वर्षासे सब ओरसे युद्धस्थलको शून्यवत् करके, राजा शल्यकी ओर दौडे और ऊंचे स्वरसे बोले कि, रे शल्य ! खडा रह ॥ ५२ ॥

तस्य तच्चरितं दृष्ट्वा संग्रामे भीमकर्मणः ।
वित्रेसुस्तावकाः सर्वे शल्यस्त्वेनं समभ्ययात् ॥ ५३ ॥

भीमकर्मा महावीर युधिष्ठिरके युद्धमें इस अद्भुत कर्मको देखकर तुम्हारी ओरके सब वीर डरने लगे, परन्तु शल्य बेडर होकर इनसे लडनेको चले ॥ ५३ ॥

ततस्तौ तु सुसंरब्धौ प्रध्माप्य सलिलोद्भवौ ।
समाहूय तदान्योन्यं भर्त्सयन्तौ समीयतुः ॥ ५४ ॥

तब ये दोनों राजा क्रोधमें भरकर अपने अपने शङ्ख बजाने लगे और एक दूसरेको ललकारके डराने और परस्पर युद्ध करनेको पुकारने लगे ॥ ५४ ॥

शल्यस्तु शरवर्षेण युधिष्ठिरमवाकिरत् ।
मद्रराज च कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५५ ॥

शल्यने युधिष्ठिरके ऊपर बाणोंकी वर्षा करके उनको आच्छादित किया और कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने भी मद्रराज शल्यकी ओर सहस्रों बाण चलाये और उसको आच्छादित कर दिया ॥५५॥

व्यदृश्येतां तदा राजन्कङ्कपत्त्रिभिराहवे ।
उद्भिन्नरुधिरौ शूरौ मद्रराजयुधिष्ठिरौ ॥ ५६ ॥

राजन् ! तब शूर मद्रराज और युधिष्ठिर दोनों राजाओंके शरीर कङ्कपत्र युक्त बाणोंसे व्याप्त होकर रुधिर बहाने लगे ॥ ५६ ॥

पुष्पिताविव रेजाते वने शल्मलिकिंशुकौ ।
दीप्यमानौ महामानौ प्राणयोर्युद्धदुर्मदौ ॥ ५७ ॥

उस समय प्राणका मोह छोडनेवाले दोनों महात्मा और तेजस्वी राजाओंकी ऐसी शोभा बढी जैसी वसन्त ऋतुमें फूले हुए शल्मलि और पलाशोंकी ॥ ५७ ॥

दृष्ट्वा सर्वाणि सैन्यानि नाध्यवस्यंस्तयोर्जयम् ।
हत्वा मद्राधिपं पार्थो भोक्ष्यतेऽद्य वसुंधराम् ॥ ५८ ॥

हे भारत ! उस समय दोनों ओरके वीरोंमेंसे कोई यह निश्चय नहीं कर सका कि इन दोनोंमेंसे किसकी विजय होगी ? आज मद्रराज शल्यको मारकर कुन्तीकुमार महाराज युधिष्ठिर इस पृथ्वीका राज्य भोगेंगे ॥ ५८ ॥

शल्यो वा पाण्डवं हत्वा दद्याद्दुर्योधनाय गाम् ।
इतीव निश्चयो नाभूद्योधानां तत्र भारत ॥ ५९ ॥

भारत ! और कोई विचार रहा था, कि आज राजा शल्य ही पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको मारकर दुर्योधनको भूमण्डलका राज्य देंगे । इस बातका निश्चय वहां वीरोंको नहीं होता था ॥५९॥

प्रदक्षिणमभूत्सर्वं धर्मराजस्य युध्यतः ॥ ६० ॥

युद्ध करते समयपर युधिष्ठिरके लिये सब कुछ अनुकूल हो रहा था ॥ ६० ॥

ततः शरशतं शल्यो मुमोचाशु युधिष्ठिरे ।
धनुश्चास्य शिताग्रेण बाणेन निरकृन्तत ॥ ६१ ॥

अनन्तर राजा शल्यने युधिष्ठिरके शरीरमें सौ बाण मारे और फिर एक तेज बाणसे उनका धनुष काट दिया ॥ ६१ ॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय शल्यं शरशतैस्त्रिभिः ।
अविध्यत्कार्मुकं चास्य क्षुरेण निरकृन्तत ॥ ६२ ॥

तब युधिष्ठिरने शीघ्र दूसरा धनुष लेकर शल्यके शरीरमें तीन सौ बाण मारे और उनको विद्ध किया, फिर एक क्षुरप्र बाणसे उनका धनुष काट दिया ॥ ६२ ॥

अथास्य निजघानाश्वांश्चतुरो नतपर्वभिः ।
द्वाभ्यामथ शिताग्राभ्यामुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ६३ ॥

फिर तीक्ष्ण चार बाणोंसे उनके चारों घोडोंको मार डाला । फिर दो तेज बाणोंसे दोनों पार्श्वभागकी रक्षा करनेवालोंको मार डाला ॥ ६३ ॥

ततोऽस्य दीप्यमानेन पीतेन निशितेन च ।
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरद्ध्वजम् ।
ततः प्रभग्नं तत्सैन्यं दौर्योधनमरिंदम ॥ ६४ ॥

फिर एक चमकते हुए महातेज भल्ल बाणसे सामने खडे हुए उनकी ध्वजा भी काट दी । हे अरिन्दम ! तब दुर्योधनकी सेना इधर उधरको भागने लगी ॥ ६४ ॥

ततो मद्राधिपं द्रौणिरभ्यधावत्तथाकृतम् ।
आरोप्य चैनं स्वरथं त्वरमाणः प्रदुद्रुवे ॥ ६५ ॥

तब मद्रराज शल्यकी ऐसी अवस्था हुई देख, इनकी रक्षा करनेको अश्वत्थामा दौडे और उन्हें अपने रथमें बिठाकर शीघ्रही युद्धसे भाग गये ॥ ६५ ॥

मुहूर्तमिव तौ गत्वा नर्दमाने युधिष्ठिरे ।
स्थित्वा ततो मद्रपतिरन्यं स्यन्दनमास्थितः ॥ ६६ ॥

तब राजा युधिष्ठिर थोडी देरतक उनका पीछा करके सिंहके समान गर्जने लगे । थोडी ही दूर जानेपर राजा शल्य दूसरे रथपर जा बैठे ॥ ६६ ॥

विधिवत्कल्पितं शुभ्रं महाम्बुदनिनादिनम्।
सज्जयन्त्रोपकरणं द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ ६७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ७५७ ॥

उनका वह तेजस्वी रथ विधिवत् तैय्यार किया गया था। वह महान् मेघके समान शब्दवाले, शत्रुओंको कंपानेवाले, युद्धकी सब सामग्रीसे भरे, उत्तम घोडे और सारथीसे युक्त रथपर बैठे ॥ ६७ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें पंद्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ ७५७ ॥

: १६ :

संजय उवाच—

अथान्यद्धनुरादाय बलवाद्वेगवत्तरम्।
युधिष्ठिरं मद्रपतिर्विद्ध्वा सिंह इवानदत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! तब दूसरा अत्यंत वेगवान् धनुष लेकर बलवान् शल्यने युधिष्ठिरके शरीरमें बाण मारे, और सिंहके समान गर्जने लगे ॥ १ ॥

ततः स शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान्।
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ॥ २ ॥

तब अमेयात्मा क्षत्रियश्रेष्ठ पराक्रमी शल्य क्षत्रिय वीरोंके ऊपर इस प्रकार बाण वर्षाने लगे, जैसे मेघ जल वर्षाते हैं ॥ २ ॥

सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा भीमसेनं त्रिभिः शरैः।
सहदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ ३ ॥

फिर उन्होंने सात्यकिको दस, भीमसेनको तीन और सहदेवको भी तीन बाण मारकर, युधिष्ठिरको अनेक बाणोंसे विद्ध किया ॥ ३ ॥

तांस्तानन्यान्महेष्वासान्साश्वान्सरथकुञ्जरान्।
कुञ्जरान्कुञ्जरारोहानश्वानश्वप्रयायिनः।
रथांश्च रथिभिः सार्धं जघान रथिनां वरः ॥ ४ ॥

फिर उन्होंने सब अन्य महाधनुर्धर वीरोंको घोडे, सारथी, रथों और हाथियोंके सहित व्याकुल कर दिया। महारथी शल्यने अपने बाणोंसे हाथी और हाथीसवार, घोडे और घुडसवार एवं रथियोंके सहित रथोंको नष्ट कर दिया ॥ ४ ॥

*

बाहूंश्चिच्छेद च तथा सायुधान्केतनानि च ।
चकार च महीं योधैस्तीर्णां वेदीं कुशैरिव ॥ ५ ॥

उन्होंने हथियारों सहित भुजाओं और ध्वजोंको काट डाला और मरे हुए शरीरोंसे पृथ्वी इस प्रकार भर दी, जैसे होम करनेवाले ब्राह्मण वेदीपर कुशा बिछाते हैं ॥ ५ ॥

तथा तमरिसैन्यानि घ्नन्तं मृत्युमिवान्तकम् ।
परिवव्रुर्भृशं क्रुद्धाः पाण्डुपाञ्चालसोमकाः ॥ ६ ॥

मृत्यु और यमराजके समान शत्रुसैनिकोंका संहार करनेवाला राजा शल्यको अत्यंत क्रुद्ध हुए पाण्डव, पाञ्चाल और सोमकवंशी प्रधान वीरोंने चारों ओरसे घेर लिया ॥ ६ ॥

तं भीमसेनश्च शिनेश्च नप्ता माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ ।
समागतं भीमबलेन राज्ञा पर्यापुरन्योन्यमथाह्वयन्तः ॥ ७ ॥

तब महापराक्रमी बलवान् राजा युधिष्ठिरसे लडते हुए शल्यको भीमसेन, शिनिपौत्र सात्यकि और माद्रीपुत्र श्रेष्ठ वीर नकुल–सहदेव अपनी अपनी ओर युद्धके लिये पुकारने लगे ॥ ७ ॥

ततस्तु शूराः समरे नरेन्द्रं मद्रेश्वरं प्राप्य युधां वरिष्ठम् ।
आवार्य चैनं समरे नृवीरा जघ्नुः शरैः पत्रिभिरुग्रवेगैः ॥ ८ ॥

हे महाराज! तब ये सब वीर अपने तेज बाणोंसे योद्धाओंमें श्रेष्ठ वीर मद्रराज शल्यको युद्धमें रोककर अत्यंत वेगवान् बाण चलाने लगे ॥ ८ ॥

संरक्षितो भीमसेनेन राजा माद्रीसुताभ्यामथ माधवेन ।
मद्राधिपं पत्रिभिरुग्रवेगैः स्तनान्तरे धर्मसुतो निजघ्ने ॥ ९ ॥

अनन्तर भीमसेन, नकुल और सहदेव तथा सात्यकि आदि सब वीरोंसे रक्षित होकर, धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने मद्रराज शल्यकी छातीमें अत्यंत वेगशाली बाण मारे ॥ ९ ॥

ततो रणे तावकानां रथौघाः समीक्ष्य मद्राधिपतिं शरार्तम् ।
पर्यावव्रुः प्रवराः सर्वशश्च दुर्योधनस्यानुमते समन्तात् ॥ १० ॥

तब समरमें इनके लगनेसे मद्र राजा शल्य व्याकुल हो गये, तब दुर्योधनकी आज्ञासे अनेक श्रेष्ठ रथी वीर राजा शल्यकी रक्षा करनेको सब ओरसे दौडे ॥ १० ॥

ततो द्रुतं मद्रजनाधिपो रणे युधिष्ठिरं सप्तभिरभ्यविध्यत् ।
तं चापि पार्थो नवभिः पृषत्कैर्विव्याध राजंस्तुमुले महात्मा ॥ ११ ॥

तब मद्रराज शल्यने युद्धमें शीघ्र सात बाण युधिष्ठिरको मारकर विद्ध किया। राजन्! महात्मा युधिष्ठिरने भी उस भीषण युद्धमें नौ बाण मारे और शल्यको विद्ध किया ॥ ११ ॥

आकर्णपूर्णायतसम्प्रयुक्तैः शरैस्तदा संयति तैलधौतैः ।
अन्योन्यमाच्छादयतां महारथौ मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरश्च ॥ १२ ॥
तब ये शल्य और युधिष्ठिर दोनों महारथी राजा एक दूसरेकी ओर अपने धनुष पूर्णतया खींचकर तेलमें धोये हुए तेज बाण चलाने लगे ॥ १२ ॥

ततस्तु तूर्णं समरे महारथौ परस्परस्यान्तरमीक्षमाणौ ।
शरैर्भृशं विव्यधतुर्नृपोत्तमौ महाबलौ शत्रुभिरप्रधृष्यौ ॥ १३ ॥
दोनों महापराक्रमी शत्रुओंके लिये अजेय महाबलवान् और राजाओंमें श्रेष्ठ राजा युद्धमें एक दूसरेके मारनेकी वेला देखने लगे, और शीघ्रही तेज बाण वर्षाने लगे और परस्पर विद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

तयोर्धनुर्ज्यातलनिस्वनो महान्महेन्द्रवज्राशनितुल्यनिस्वनः ।
परस्परं बाणगणैर्महात्मनोः प्रवर्षतोर्मद्रपपाण्डुवीरयोः ॥ १४ ॥
परस्पर बाणोंकी वर्षा करते हुए मद्रदेशके महामना राजा और पाण्डव महावीर महाराज युधिष्ठिरके उस युद्धमें चारों ओर धनुष और तालका ऐसा महान् शब्द सुनाई देता था, जैसे इन्द्रके वज्रकी गडगडाहटका ॥ १४ ॥

तौ चेरतुर्व्याघ्रशिशुप्रकाशौ महावनेष्वामिषगृद्धिनाविव ।
विषाणिनौ नागवराविवोभौ ततक्षतुः संयुगजातदर्पौ ॥ १५ ॥
उस समय ये घमण्ड बढे हुए दोनों वीर युद्धमें परस्पर आघात करते हुए इस प्रकार लड रहे थे, जैसे मांसके लिये महावनमें सिंहके दो बच्चे लडते हैं । जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीके शरीरमें दांत मारता है, ऐसे ही ये दोनों भी बाण चला रहे थे ॥ १५ ॥

ततस्तु मद्राधिपतिर्महात्मा युधिष्ठिरं भीमबलं प्रसह्य ।
विव्याध वीरं हृदयेऽतिवेगं शरेण सूर्याग्निसमप्रभेण ॥ १६ ॥
तब महात्मा मद्रराज शल्यने महा बलवान् वीर युधिष्ठिरके हृदयमें एक अग्नि और सूर्यके समान तेज बाण मारा और उनको विद्ध किया ॥ १६ ॥

ततोऽतिविद्धोऽथ युधिष्ठिरोऽपि सुसम्प्रयुक्तेन शरेण राजन् ।
जघान मद्राधिपतिं महात्मा मुदं च लेभे ऋषभः कुरूणाम् ॥ १७ ॥
तब उससे घायल होनेपर भी कुरुकुलश्रेष्ठ महापराक्रमी महात्मा युधिष्ठिरने भी उनकी छातीमें एक अच्छी तरह चलाया हुआ बाण मारा और इससे वे बहुत प्रसन्न हुए । उसके लगनेसे शल्यको मूर्च्छा हो गई ॥ १७ ॥

ततो मुहूर्तादिव पार्थिवेन्द्रो लब्ध्वा संज्ञां क्रोधसंरक्तनेत्रः ।
शतेन पार्थं त्वरितो जघान सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावः ॥ १८ ॥
तब फिर मुहूर्तभरमें ही चैतन्य होकर इन्द्रके समान प्रभावी वीर शल्यने क्रोधसे लाल नेत्र करके शीघ्रही युधिष्ठिरकी ओर सौ वाण चलाये ॥ १८ ॥

त्वरंस्ततो धर्मसुतो महात्मा शल्यस्य क्रुद्धो नवभिः पृषत्कैः ।
भित्त्वा ह्युरस्तपनीयं च वर्म जघान षड्भिरत्वपरैः पृषत्कैः ॥ १९ ॥
तब धर्मपुत्र महात्मा राजा युधिष्ठिरने क्रोध करके शीघ्रतापूर्वक नौ वाण मारकर राजा शल्यकी छाती और उनके सोनेके बने कवचको विदीर्ण कर दिया। फिर छः तेज वाण उनकी छातीमें और मारे ॥ १९ ॥

ततस्तु मद्राधिपतिः प्रहृष्टो धनुर्विकृष्य व्यसृजत्पृषत्कान् ।
द्वाभ्यां क्षुराभ्यां च तथैव राज्ञश्चिच्छेद चापं कुरुपुङ्गवस्य ॥ २० ॥
तब प्रहृष्ट मद्रराजा शल्यने अपना उत्तम धनुष खींचा और अनेक वाण छोडे और फिर दो वाणोंसे कुरुकुलश्रेष्ठ युधिष्ठिरका धनुष काट दिया ॥ २० ॥

नवं ततोऽन्यत्समरे प्रगृह्य राजा धनुर्घोरतरं महात्मा ।
शल्यं तु विद्ध्वा निशितैः समन्ताद्यथा महेन्द्रो नमुचिं शिताग्रैः ॥ २१ ॥
तब महात्मा राजा युधिष्ठिरने समरमें एक दूसरा नया और घोर धनुष लेकर शल्यको अपने तीक्ष्ण वाणोंसे इस प्रकार सब ओरसे व्याकुल कर दिया, जैसे देवराज इन्द्रने नमुचिको व्याकुल किया था ॥ २१ ॥

ततस्तु शल्यो नवभिः पृषत्कैर्भीमस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।
निकृत्य रौक्मे पटुवर्मणी तयोर्विदारयामास भुजौ महात्मा ॥ २२ ॥
तब महात्मा शल्यने अपने नऊ तेज वाणोंसे भीमसेन और राजा युधिष्ठिरके सोनेके सुदृढ कवचोंको काटकर दोनोंके हाथोंमें अनेक वाण मारे ॥ २२ ॥

ततोऽपरेण ज्वलितार्कतेजसा क्षुरेण राज्ञो धनुरुन्ममाथ ।
कृपश्च तस्यैव जघान सूतं षड्भिः शरैः सोऽभिमुखं पपात ॥ २३ ॥
और फिर अग्नि और सूर्यके समान एक तेज क्षुरप्र वाणसे महाराज युधिष्ठिरका धनुष काट दिया। उसी समय कृपाचार्यने भी छः वाणोंसे उनके सारथिको मारकर उनके सामने ही पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ २३ ॥

मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरस्य शरैश्चतुर्भिर्निजघान वाहान् ।
वाहांश्च हत्वा व्यकरोन्महात्मा योधक्षयं धर्मसुतस्य राज्ञः ॥ २४ ॥
तब मद्रराजा शल्यने चार वाणोंसे युधिष्ठिरके चारों घोडे भी मार डाले और घोडोंको मारकर महात्मा शल्यने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके अनेक वीरोंको भी मार डाला ॥ २४ ॥

तथा कृते राजनि भीमसेनो मद्राधिपस्याशु ततो महात्मा ।
छित्त्वा धनुर्वेगवता शरेण द्वाभ्यामविध्यत्सुभृशं नरेन्द्रम् ॥ २५ ॥
मद्रराज शल्यसे राजा युधिष्ठिरको व्याकुल किया हुआ देख, महात्मा भीमसेनने एक शीघ्र-गामी तेज बाणसे शल्यका धनुष काटकर दो बाण उस नरेशकी छातीमें मार, और अत्यंत विद्ध किया ॥ २५ ॥

अथापरेणास्य जहार यन्तुः कायाच्छिरः संनहनीयमध्यात् ।
जघान चाश्वांश्चतुरः स शीघ्रं तथा भृशं कुपितो भीमसेनः ॥ २६ ॥
फिर अत्यंत क्रोध करके भीमसेनने दूसरे बाणसे शल्यके सारथिका शिर उसके धडसे अलग किया और चारसे चारों घोडोंको शीघ्र मार डाला ॥ २६ ॥

तमग्रणीः सर्वधनुर्धराणामेकं चरन्तं समरेऽतिवेगम् ।
भीमः शतेन व्यकिरच्छराणां माद्रीपुत्रः सहदेवस्तथैव ॥ २७ ॥
तब सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन और माद्रीकुमार सहदेवने समरमें बडे वेगसे अकेले घूमते हुए वीर शल्यके शरीरमें सौ सौ बाण मारे ॥ २७ ॥

तैः सायकैर्मोहितं वीक्ष्य शल्यं भीमः शरैरस्य चकर्त वर्म ।
स भीमसेनेन निकृत्तवर्मा मद्राधिपश्चर्म सहस्रतारम् ॥ २८ ॥
उनसे राजा शल्यको मूर्च्छित हुआ देख, भीमसेनने उनके कवचको भी काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया, तब भीमसेनसे अपना कवच कटा हुआ देख मद्र राजा शल्य घबडाकर सहस्रों तारोंवाली ढाल ॥ २८ ॥

प्रगृह्य खड्गं च रथान्महात्मा प्रस्कन्द्य कुन्तीसुतमभ्यधावत् ।
छित्त्वा रथेषां नकुलस्य सोऽथ युधिष्ठिरं भीमबलोऽभ्यधावत् ॥ २९ ॥
और खड्ग लेकर महात्मा शल्य रथसे उतरे और कुन्तीपुत्रकी ओर दौडे, तब नकुलको अपनी ओर आते देख उनके रथका जुआ काट दिया और महाबलवान् शल्य युधिष्ठिरकी ओर दौडे ॥ २९ ॥

तं चापि राजानमथोत्पतन्तं क्रुद्धं यथैवान्तकमापतन्तम् ।
धृष्टद्युम्नो द्रौपदेयाः शिखण्डी शिनेश्च नप्ता सहसा परीयुः ॥ ३० ॥
राजा शल्यको क्रोध भरे यमराजके समान युधिष्ठिरकी ओर दौडते देख, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र, शिखण्डी और सात्यकिने शीघ्रही चारों तरफसे घेर लिया ॥ ३० ॥

अथास्य चर्माप्रतिमं न्यकृन्तद्भीमो महात्मा दशभिः पृषत्कैः ।
खड्गं च भल्लैर्निचकर्त मुष्टौ नदन्प्रहृष्टस्तव सैन्यमध्ये ॥ ३१ ॥
इतनेही समयमें महात्मा भीमसेनने दस बाणोंसे शल्यके अप्रतिम ढालके तुकडे कर दिये और फिर तुम्हारी सेनाके मध्यमें सुप्रसन्न होकर गर्जने लगे और अनेक भल्ल बाणोंसे शल्यकी तलवारकी मुट्ठी भी काट दी ॥ ३१ ॥

तत्कर्म भीमस्य समीक्ष्य हृष्टास्ते पाण्डवानां प्रवरा रथौघाः ।
नादं च चक्रुर्भृशमुत्स्मयन्तः शङ्खांश्च दध्मुः शशिसंनिकाशान् ॥ ३२ ॥
भीमसेनका वह आश्चर्यजनक कर्म देखकर पाण्डवोंके प्रधान रथी प्रसन्न हुए और वे मुस्करा-कर जोरसे सिंहनाद करने और चन्द्रमाके समान सफेद शंख बजाने लगे ॥ ३२ ॥

तेनाथ शब्देन विभीषणेन तवाभितप्तं बलमप्रहृष्टम् ।
स्वेदाभिभूतं रुधिरोक्षिताङ्गं विसंज्ञकल्पं च तथा विषण्णम् ॥ ३३ ॥
उस भयानक शब्दसे और बाणोंसे व्याकुल होकर तुम्हारी अप्रसन्न और विषण्ण सेना अचेतसी हो गई । वह पसीना और रक्तसे भरकर इधर उधरको भागने लगी ॥ ३३ ॥

स मद्रराजः सहसावकीर्णो भीमाग्रगैः पाण्डवयोधमुख्यैः ।
युधिष्ठिरस्याभिमुखं जवेन सिंहो यथा मृगहेतोः प्रयातः ॥ ३४ ॥
उन भीमसेन प्रमुख पाण्डव वीरोंके बाणोंको सहते हुए, टूटा खड्ग लिये मद्र राजा शल्य सहसा बडे वेगसे युधिष्ठिरकी ओर इस प्रकार दौडे जैसे बडा सिंह छोटे हरिणपर दौडता है ॥ ३४ ॥

स धर्मराजो निहताश्वसूतं क्रोधेन दीप्तोज्वलनप्रकाशम् ।
दृष्ट्वा तु मद्राधिपतिं स तूर्णं समभ्यधावत्तमरिं बलेन ॥ ३५ ॥
धर्मराज राजा युधिष्ठिर सारथि और घोडोंके मरनेसे क्रोधमें भरकर अग्निके समान प्रकाशित होने लगे । उन्होंने अपने शत्रु शल्यको अपनी ओर आते देख शीघ्रही उसपर जोरसे आक्रमण किया ॥ ३५ ॥

गोविंदवाक्यं त्वरितं विचिन्त्य दध्रे मतिं शल्यविनाशनाय ।
स धर्मराजो निहताश्वसूते रथे तिष्ठञ्शक्तिमेवाभिकाङ्क्षन् ॥ ३६ ॥
और यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्णके वचनको स्मरण करके शीघ्रही शल्यको मार डालनेका निश्चय किया । धर्मराजके घोडे और सारथि मारे गये थे, इसलिये रथपर ही स्थित होकर उन्होंने शल्यपर शक्ति चलानेकाही विचार किया ॥ ३६ ॥

तच्चापि शल्यस्य निशम्य कर्म महात्मनो भागमथावशिष्टम् ।
स्मृत्वा मनः शल्यवधे यथात्मा यथोक्तमिन्द्रावरजस्य चक्रे ॥ ३७ ॥
फिर महात्मा धर्मराजने महात्मा शल्यके पहलेके कर्मको सुनकर, स्वयंका ही भाग बाकी रह गया है यह मानकर, श्रीकृष्णका वचन सत्य करनेके लिये उन्होंने जैसा कहा था उसके अनुसार शल्यके बधका निश्चय किया ॥ ३७ ॥

स धर्मराजो मणिहेमदण्डां जग्राह शक्तिं कनकप्रकाशाम् ।
नेत्रे च दीप्ते सहसा विवृत्य मद्राधिपं क्रुद्धमना निरैक्षत् ॥ ३८ ॥
तब धर्मराज युधिष्ठिरने सोनेके दण्डवाली, रत्नोंसे जडी और सुवर्णके समान प्रकाशित होनेवाली शक्तिको हाथमें लेकर और क्रोधयुक्त मनसे जलती आंख फैलाकर मद्रराज शल्यकी ओर देखा ॥ ३८ ॥

निरीक्षितो वै नरदेव राज्ञा पूतात्मना निर्हृतकल्मषेण ।
अभून्न यद्भस्मसान्मद्रराजस्तदद्भुतं मे प्रतिभाति राजन् ॥ ३९ ॥
हे राजन् ! पापरहित पवित्रात्मा राजाओंके महाराज महावीर राजा युधिष्ठिरके क्रोध भरे नेत्रोंके देखनेसे भी मद्रराजा शल्य जलकर भस्म न हो गये, यही देखकर हम सब आश्चर्य करने लगे ॥ ३९ ॥

ततस्तु शक्तिं रुचिरोग्रदण्डां मणिप्रवालोज्ज्वलितां प्रदीप्ताम् ।
चिक्षेप वेगात्सुभृशं महात्मा मद्राधिपाय प्रवरः कुरूणाम् ॥ ४० ॥
तब कुरुकुलश्रेष्ठ महात्मा युधिष्ठिरने वह सुंदर और रत्न जडे सोनेके दण्डवाली भयंकर और प्रज्वलित दीप्तिमान् साङ्गी बलसे मद्रराज शल्यकी ओर चलाई ॥ ४० ॥

दीप्तामथैनां महता बलेन सविस्फुलिङ्गां सहसा पतन्तीम् ।
प्रैक्षन्त सर्वे कुरवः समेता यथा युगान्ते महतीमिवोल्काम् ॥ ४१ ॥
बलपूर्वक फेंकी गई उस जलती हुई, वेगसे दौडती हुई और आगकी चिनगारियां छोडती हुई उस साङ्गिको सब कौरव वीरोंने यह प्रलयकालकी आकाशसे गिरनेवाली बडी उल्काके समान सहसा शल्यपर गिरती देखा ॥ ४१ ॥

तां कालरात्रीमिव पाशहस्तां यमस्य धात्रीमिव चोग्ररूपाम् ।
स ब्रह्मदण्डप्रतिमाममोघां ससर्ज यत्तो युधि धर्मराजः ॥ ४२ ॥
वह शक्ति पाश हाथमें लिये कालरात्रिके समान घोर, यमराजकी माताके समान भयानक, ब्रह्माके दण्डके समान अमोघ और जलती हुई आगके समान युधिष्ठिरके हाथसे छूटी। धर्मराजने प्रयत्नपूर्वक युद्धमें उसका उपयोग किया ॥ ४२ ॥

गन्धस्रगग्र्यासनपानभोजनैरभ्यर्चितां पाण्डुसुतैः प्रयत्नात् ।
संवर्तकाग्निप्रतिमां ज्वलन्तीं कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्राम् ॥ ४३ ॥

पाण्डवोंने जिसे अनेक वर्षोंसे गन्ध, माला, उत्तम आसन, पेय पदार्थ और भोजन आदि समर्पण करके सदैव प्रयत्नपूर्वक पूजा था, जो बहुत दिनसे पाण्डवोंके घरमें थी, वह शक्ति प्रलयकालकी जलती हुई संवर्तक अग्निके समान और अथर्वा और अङ्गिरा मुनिके मन्त्रोंसे प्रकट की गई कृत्याके समान भयंकर थी ॥ ४३ ॥

ईशानहेतोः प्रतिनिर्मितां तां त्वष्ट्रा रिपूणामसुदेहभक्षाम् ।
भूम्यन्तरिक्षादिजलाशयानि प्रसह्य भूतानि निहन्तुमीशाम् ॥ ४४ ॥

इस शक्तिको विश्वकर्माने भगवान् शिवके लिये बनाया था, यह सब शत्रुओंके प्राण और शरीरको खानेवाली तथा आकाश, पाताल और भूमिके सब वीरोंको मारनेमें समर्थ थी ॥४४॥

घण्टापताकामणिवज्रभाजं वैडूर्यचित्रां तपनीयदण्डाम् ।
त्वष्ट्रा प्रयत्नान्नियमेन क्लृप्तां ब्रह्मद्विषामन्तकरीममोघाम् ॥ ४५ ॥

इस शक्तिमें घण्टियां और पताकाएं, मणि और हीरे जडे हुए थे, वैडूर्य मणिसे चित्रित, तपाये हुए सुवर्णके दण्डवाली, यह शक्ति विश्वकर्माने नियमपूर्वक रहकर अत्यन्त यत्नसे बनाई थी। वह ब्रह्मद्रोहियोंका विनाश करनेवाली और अमोघ थी ॥ ४५ ॥

बलप्रयत्नादधिरूढवेगां मन्त्रैश्च घोरैरभिमन्त्रयित्वा ।
ससर्ज मार्गेण च तां परेण वधाय मद्राधिपतेस्तदानीम् ॥ ४६ ॥

महाराज युधिष्ठिरने मद्रराजका वध करनेके लिये घोर मन्त्रोंसे मन्त्रित करके, अत्यन्त बल और यत्नसे अत्यंत वेगवाली हो गई हुई इस शक्तिको उत्तम मार्गसे छोडा ॥ ४६ ॥

हतोऽस्यसावित्यभिगर्जमानो रुद्रोऽन्तकायान्तकरं यथेषुम् ।
प्रसार्य बाहुं सुदृढं सुपाणिं क्रोधेन नृत्यन्निव धर्मराजः ॥ ४७ ॥

धर्मराजने उस शक्तिको इस प्रकार चलाया जैसे शिवने अन्धक दानवसे मारनेको बाण छोडा था। फिर क्रोधसे नाचते हुए धर्मराज अपने दोनों सुंदर हाथ उठाकर शल्यसे बोले, हे पापी ! तू मारा गया ! ॥ ४७ ॥

तां सर्वशक्त्या प्रहितां स शक्तिं युधिष्ठिरेणाप्रतिवार्यवीर्याम् ।
प्रतिग्रहायाभिननर्द शल्यः सम्यग्घुतामग्निरिवाज्यधाराम् ॥ ४८ ॥

उस युधिष्ठिरके सारे बलसे भरी हुई, उसके बल और प्रभावको निवारण करने अशक्य ऐसे उत्तम शक्तिको अपनी ओर आते देख, राजा शल्य उसे सहन करनेके लिये गरज उठे, जैसे हवन की हुई घृतधाराको ग्रहण करनेके लिये अग्नि प्रज्वलित हुई हैं ॥ ४८ ॥

सा तस्य मर्माणि विदार्य शुभ्रमुरो विशालं च तथैव वर्म।
विवेश गां तोयमिवाप्रसक्ता यशो विशालं नृपतेर्दहन्ती ॥ ४९ ॥
वह शक्ति महाराज शल्यके मर्मस्थानोंको विदीर्ण करके और उज्ज्वल–विशाल हृदय और कवचको काटती हुई, उनके विस्तृत यशके सहित जलकी भांति पृथ्वीमें घुस गई ॥ ४९ ॥

नासाक्षिकर्णास्यविनिःसृतेन प्रस्यन्दता च व्रणसंभवेन।
संसिक्तगात्रो रुधिरेण सोऽभूत्क्रौञ्चो यथा स्कन्दहतो महाद्रिः ॥ ५० ॥
तब राजा शल्यके नाक, आंख, कान और हृदयसे निकले और घावोंसे बहते हुए रुधिरसे शल्यका सब शरीर भर गया, जैसे कार्त्तिकेयकी शक्तिसे प्रहारित महान् पर्वत क्रौञ्च गेरूमिश्रित झरनोंसे भीग गया ॥ ५० ॥

प्रसार्य बाहू स रथाद्गतो गां संछिन्नवर्मा कुरुनन्दनेन।
महेन्द्रवाहप्रतिमो महात्मा वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ ५१ ॥
कुरुनन्दन भीमसेनने जिनका कवच काटा था, वे इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान पराक्रमी महात्मा शल्य वज्रसे कटे पर्वतके शिखरके समान पृथ्वीपर दोनों हाथ फैलाकर रथसे गिर गये ॥ ५१ ॥

बाहू प्रसार्याभिमुखो धर्मराजस्य मद्रराट्।
ततो निपतितो भूमाविन्द्रध्वज इवोच्छ्रितः ॥ ५२ ॥
मद्रराजा शल्य मरते समय अपने ऊंचे दोनों हाथ फैलाकर इन्द्रकी ध्वजाके समान राजा युधिष्ठिरके आगेहीको गिरे ॥ ५२ ॥

स तथा भिन्नसर्वाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः।
प्रत्युद्गत इव प्रेम्णा भूम्या स नरपुङ्गवः ॥ ५३ ॥
शल्यका सारा शरीर बिद्ध हो गया था और वो रक्तसे नहा रहे थे। मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजा शल्यको पृथ्वीने प्रेमपूर्वक आगे बढकर अपनाया ॥ ५३ ॥

प्रियया कान्तया कान्तः पतमान इवोरसि।
चिरं भुक्त्वा वसुमतीं प्रियां कान्तामिव प्रभुः।
सर्वैरङ्गैः समाश्लिष्य प्रसुप्त इव सोऽभवत् ॥ ५४ ॥
अपने वक्षःस्थलपर गिरनेकी इच्छा करनेवाले पतिका प्रियतमा पत्नी जैसा स्वागत करती हैं, प्रिय भार्याके समान बहुत दिन भूमिको भोग करके राजा शल्य अपने संपूर्ण शरीरसे उसको अपने हृदयको लगाकर सो गये थे ॥ ५४ ॥

+

धर्म्ये धर्मात्मना युद्धे निहतो धर्मसूनुना ।
सम्यग्घुत इव स्विष्टः प्रशान्तोऽग्निरिवाध्वरे ॥ ५५ ॥

उस समय धर्मात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी शक्तिसे धर्मयुद्धमें मरे हुए राजा शल्य ऐसे दीखते थे मानो सब शरीरोंसे अपनी प्यारी स्त्रीसे लपटे हुए सोते हैं। जैसे विधिपूर्वक अनेक आहुति पाई यज्ञकी अग्नि शान्त हो जाती है ऐसे ही राजा शल्य भी शान्त हो गये ॥५५॥

शक्त्या विभिन्नहृदयं विप्रविद्धायुधध्वजम् ।
संशान्तमपि मद्रेशं लक्ष्मीर्नैव व्यमुञ्चत ॥ ५६ ॥

शक्तिसे शल्यका हृदय विदीर्ण हो गया था, उनकी ध्वजा और शस्त्र नष्ट हो गये थे, वह सदाके लिये शान्त हुए थे तो भी राजा शल्यका तेज– (लक्ष्मी) नष्ट नहीं हुआ ॥ ५६ ॥

ततो युधिष्ठिरश्चापमादायेन्द्रधनुष्प्रभम् ।
व्यधमद्द्विषतः संख्ये खगराडिव पन्नगान् ।
देहासून्निशितैर्भल्लै रिपूणां नाशयन्क्षणात् ॥ ५७ ॥

तदनन्तर राजा युधिष्ठिर इन्द्रकी धनुषके समान कान्तिमान् दूसरा धनुष लेकर युद्धमें तीक्ष्ण भल्ल बाणोंसे क्षणभरमें शत्रुओंको इस प्रकार मारने लगे, जैसे गरुड सांपको मारे ॥ ५७ ॥

ततः पार्थस्य बाणौघैरावृताः सैनिकास्तव ।
निमीलिताक्षाः क्षिण्वन्तो भृशमन्योन्यमर्दिताः ।
संन्यस्तकवचा देहैर्विपत्रायुधजीविताः ॥ ५८ ॥

तब राजा युधिष्ठिरके बाणोंसे तुम्हारी सब सेना आच्छादित हुई और योद्धाओंने आंख बन्द करके आपसमें ही एक–दूसरेको घायल करके, वे बहुत पीडित हुए। उनके शरीरोंसे उनके कवच नष्ट हो गये और वे अपने शस्त्र और जीवित नष्ट कर चुके ॥ ५८ ॥

ततः शल्ये निपतिते मद्रराजानुजो युवा ।
भ्रातुः सर्वैर्गुणैस्तुल्यो रथी पाण्डवमभ्ययात् ॥ ५९ ॥

मद्रराजा शल्यके मरनेके पश्चात् उनका छोटा नवयुवक भाई, जो सब गुणोंमें शल्यके समान था, रथमें बैठकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे युद्ध करनेको आया ॥ ५९ ॥

विव्याध च नरश्रेष्ठो नाराचैर्बहुभिस्त्वरन् ।
हतस्यापचितिं भ्रातुश्चिकीर्षुर्युद्धदुर्मदः ॥ ६० ॥

और मारे गये भाईका बदला लेनेकी इच्छासे वह रणदुर्मद नरश्रेष्ठ शीघ्रतासे उन्हें अनेक बाणोंसे विद्ध करने लगा ॥ ६० ॥

तं विव्याधाशुगैः षड्भिर्धर्मराजस्त्वरान्निव ।
कार्मुकं चास्य चिच्छेद क्षुराभ्यां ध्वजमेव च ॥ ६१ ॥

तब धर्मराजने शीघ्रता सहित उसके शरीरमें छः बाण मारे, फिर एक क्षुर बाणसे धनुष और एक क्षुरसे ध्वजा काट दी ॥ ६१ ॥

ततोऽस्य दीप्यमानेन सुदृढेन शितेन च ।
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरच्छिरः ॥ ६२ ॥

फिर एक चमकीले, सुदृढ और तेज भल्ल बाणसे सामने खडे हुए उसके मस्तकको काट गिराया ॥ ६२ ॥

सकुण्डलं तद्ददृशे पतमानं शिरो रथात् ।
पुण्यक्षयमिव प्राप्य पतन्तं स्वर्गवासिनम् ॥ ६३ ॥

कुण्डल और मुकुटसहित काटकर रथसे पृथ्वीमें गिरता हुआ उसका शिर ऐसा दीखा जैसे पुण्य नाश होनेपर स्वर्गसे भ्रष्ट होकर नीचे गिरनेवाला जीव ॥ ६३ ॥

तस्यापकृष्टशीर्षं तच्छरीरं पतितं रथात् ।
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं दृष्ट्वा सैन्यमभज्यत ॥ ६४ ॥

जब रुधिरमें भीगा शिर रहित उसका शरीर भी पृथ्वीमें रथसे नीचे गिरा, तब उसे देखकर तुम्हारी सेनाके सब वीर इधर उधरको भागने लगे ॥ ६४ ॥

विचित्रकवचे तस्मिन्हते मद्रनृपानुजे ।
हाहाकारं विकुर्वाणाः कुरवो विप्रदुद्रुवुः ॥ ६५ ॥

मद्रराज शल्यका छोटा भाई विचित्र कवच धारण किया हुआ था, उसे मरा देख, तुम्हारी सब कौरव सेनामें हाहाकार होने लगा और वे भागने लगे ॥ ६५ ॥

शल्यानुजं हतं दृष्ट्वा तावकास्त्यक्तजीविताः ।
वित्रेसुः पाण्डवभयाद्रजोध्वस्तास्तथा भृशम् ॥ ६६ ॥

शल्यके भाईका वध हुआ हुआ देख, धूलिसे भरे हुए तुम्हारे सब सैनिक पाण्डुपुत्रके भयसे प्राणोंकी आशा छोडकर अत्यन्त त्रस्त हो गये ॥ ६६ ॥

तांस्तथा भज्यतस्त्रस्तान्कौरवान्भरतर्षभ ।
शिनेर्नप्ता किरन्बाणैरभ्यवर्तत सात्यकिः ॥ ६७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारी कौरव सेनाको इस प्रकार संत्रस्त होकर भागते देख महारथ महाधनुषधारी शिनिपौत्र सात्यकि उनपर बाण वर्षाते दौडे ॥ ६७ ॥

तमायान्तं महेष्वासमप्रसह्यं दुरासदम् ।
हार्दिक्यस्त्वरितो राजन्प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥ ६८ ॥

राजन् ! दुःसह, दुर्जय महाधनुर्धर सात्यकिको आक्रमणके लिये आते देख कृतवर्मा शीघ्रतासे बेडर होकर युद्ध करने लगे ॥ ६८ ॥

तौ समेतौ महात्मानौ वार्ष्णेयावपराजितौ ।
हार्दिक्यः सात्यकिश्चैव सिंहाविव मदोत्कटौ ॥ ६९ ॥

ये दोनों महात्मा, अपराजित वृष्णिवंशी वीर सात्यकि और कृतवर्मा दो मतवाले सिंहोंके समान एक दूसरेसे लडने लगे ॥ ६९ ॥

इषुभिर्विमलाभासैश्छादयन्तौ परस्परम् ।
अर्चिर्भिरिव सूर्यस्य दिवाकरसमप्रभौ ॥ ७० ॥

ये दोनों सूर्यके समान तेज वृष्णिकुलसिंह वीर तरुण सूर्यकी किरणोंके समान निर्मल कान्तिवाले तेज बाणोंसे एक दूसरेको ढांकने लगे ॥ ७० ॥

चापमार्गबलोद्धूतान्मार्गणान्वृष्णिसिंहयोः ।
आकाशे समपश्याम पतङ्गानिव शीघ्रगान् ॥ ७१ ॥

हमने उस समय वृष्णिवंशके दोनों सिंहोंके धनुषसे बलपूर्वक चलाये हुए बाण, वेगसे उडते हुए टिड्डीयोंके समान आकाशमें देखे ॥ ७१ ॥

सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः ।
चापमेकेन चिच्छेद हार्दिक्यो नतपर्वणा ॥ ७२ ॥

तब कृतवर्माने सात्यकिको दस बाणोंसे और घोडोंको तीन बाणोंसे विद्ध किया । फिर एक नतपर्व बाणसे उनका धनुष भी काट दिया ॥ ७२ ॥

तन्निकृत्तं धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः ।
अन्यदादत्त वेगेन वेगवत्तरमायुधम् ॥ ७३ ॥

शिनिश्रेष्ठ सात्यकिने उस कटे हुए धनुषको फेंककर शीघ्रतासे एक दूसरा वेगवान् श्रेष्ठ धनुष लिया ॥ ७३ ॥

तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम् ।
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ ७४ ॥

और उस श्रेष्ठ धनुषको लेकर सब धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने कृतवर्माकी छातीमें दस बाण मारकर उसको विद्ध किया ॥ ७४ ॥

ततो रथं युगेषां च छित्त्वा भल्लैः सुसंयतैः ।
अश्वांस्तस्यावधीत्तूर्णमुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ७५ ॥

तदनंतर सुसंयत भल्लबाणोंसे रथ, जूए और ईषादण्ड काट दिये और शीघ्रही घोडों और दोनों पार्श्व रक्षकोंको भी मार डाला ॥ ७५ ॥

मद्रराजे हते राजन्विरथे कृतवर्मणि ।
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ॥ ७६ ॥

राजन् ! मद्रराज शल्यके मारे जाने और कृतवर्माके रथहीन होनेपर, दुर्योधनकी सब सेना पुनः युद्धसे पराङ्मुख होकर इधर उधरको भाग गई ॥ ७६ ॥

तत्परे नावबुध्यन्त सैन्येन रजसा वृते ।
बलं तु हतभूयिष्ठं तत्तदासीत्पराङ्मुखम् ॥ ७७ ॥

परन्तु उस समय सब ओर इतनी धूल उठी कि, शत्रु–पाण्डवोंको इस बातका पता नहीं लगा। बहुतसे वीरोंके मारे जानेसे वह सारी सेना विमुख हो गयी थी ॥ ७७ ॥

ततो मुहूर्तात्तेऽपश्यन्रजो भौमं समुत्थितम् ।
विविधैः शोणितस्रावैः प्रशान्तं पुरुषर्षभ ॥ ७८ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! तदनन्तर मुहूर्तभरमें ही उन सबने देखा कि पृथ्वीपरकी ऊपर उठी हुई धूल, नाना प्रकारके रुधिरके स्रावसे शान्त हो गई है ॥ ७८ ॥

ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भग्नं स्वबलमन्तिकात् ।
जवेनापततः पार्थानेकः सर्वानवारयत् ॥ ७९ ॥

दुर्योधन अपनी सेनाको अपने पाससे भागते देख, तथा सब पाण्डवोंको वेगसे अपनी ओर आते देख, अकेले ही सबसे युद्ध करने लगे ॥ ७९ ॥

पाण्डवान्सरथान्दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
आनर्तं च दुराधर्षं शितैर्बाणैरवाकिरत् ॥ ८० ॥

रथसहित पाण्डवोंको, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नको और दुर्धर्ष आनर्त राजाको देख, उसने तीक्ष्ण बाणोंकी उनपर वृष्टि की ॥ ८० ॥

तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवागतम् ।
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्योऽपि न्यवर्तत ॥ ८१ ॥

उनको लडते देख तुम्हारी ओरके और वीर भी लौटे, जैसे मनुष्य आयी हुई मृत्युको नहीं टाल सकते । तब कृतवर्मा भी दूसरे रथमें बैठकर फिर युद्ध करनेको आये ॥ ८१ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः ।
चतुर्भिर्निजघानाश्वान्पत्रिभिः कृतवर्मणः ।
विव्याध गौतमं चापि षड्भिर्भल्लैः सुतेजनैः ॥ ८२ ॥

तब महारथी महाराजा युधिष्ठिरने बहुत शीघ्रतासे चार बाण मारकर कृतवर्माके चारों घोडोंको मार डाला । और कृपाचार्यके शरीरमें छः तीक्ष्ण भल्लबाण मारे ॥ ८२ ॥

अश्वत्थामा ततो राज्ञा हताश्वं विरथीकृतम् ।
समपोवाह हार्दिक्यं स्वरथेन युधिष्ठिरात् ॥ ८३ ॥

तब अश्वत्थामाने घोडोंके मारे जानेसे रथहीन हुए कृतवर्माको अपने रथपर बिठलाकर राजा युधिष्ठिरके आगेसे दूर हटा दिया ॥ ८३ ॥

ततः शारद्वतोऽष्टाभिः प्रत्यविध्यद्युधिष्ठिरम् ।
विव्याध चाश्वान्निशितैस्तस्याष्टाभिः शिलीमुखैः ॥ ८४ ॥

तब कृपाचार्यने युधिष्ठिरको आठ बाण मारकर विद्ध किया और इनके घोडोंको आठ तीक्ष्ण बाणोंसे मार डाला ॥ ८४ ॥

एवमेतन्महाराज युद्धशेषमवर्तत ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्सहपुत्रस्य भारत ॥ ८५ ॥

हे भारत ! हे महाराज ! इस प्रकार पुत्रसहित तुम्हारी कुमन्त्रणासे इस युद्धका अन्त हुआ ॥८५॥

तस्मिन्महेष्वासवरे विशस्ते संग्राममध्ये कुरुपुङ्गवेन ।
पार्थाः समेताः परमप्रहृष्टाः शङ्खान्प्रदध्मुर्हतमीक्ष्य शल्यम् ॥ ८६ ॥

कुरुकुलश्रेष्ठ युधिष्ठिरकी सांगीसे युद्धमें महाधनुषधारी शल्यको मारे जानेपर कुन्तीके सब पुत्र एकत्र होकर प्रसन्न हो गये और शल्यको मारा गया देख अपने अपने शङ्ख बजाने लगे ॥८६॥

युधिष्ठिरं च प्रशशंसुराजौ पुरा सुरा वृत्रवधे यथेन्द्रम् ।
चक्रुश्च नानाविधवाद्यशब्दान्निनादयन्तो वसुधां समन्तात् ॥ ८७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ समाप्तं शल्यवधपर्व ॥ ८४४ ॥

तब सब पाण्डव वीर युद्धमें युधिष्ठिरके पास आकर इस प्रकार प्रशंसा करने लगे, जैसे पहले वृत्रासुरको मारने पर देवताओंने इन्द्रकी स्तुति की थी और पृथ्वीको निनादित करते हुए वे सब नाना प्रकारके वाद्योंका शब्द फैलाने लगे ॥ ८७ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ शल्यवधपर्व समाप्त ॥ ८४३ ॥

: १७ :

सञ्जय उवाच—

शल्ये तु निहते राजन्मद्रराजपदानुगाः ।
रथाः सप्तशता वीर निर्ययुर्महतो बलात् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! मद्रराज शल्यके मारे जानेपर उनकी सेनाके सात सौ महारथी वीर अपनी सब सेनाके सहित अपने देशको चले ॥ १ ॥

दुर्योधनस्तु द्विरदमारुह्याचलसंनिभम् ।
छत्त्रेण ध्रियमाणेन वीज्यमानश्च चामरैः ।
न गन्तव्यं न गन्तव्यमिति मद्रानवारयत् ॥ २ ॥

तब राजा दुर्योधन एक पर्वताकार मतवाले हाथी पर चढके सिरपर छत्र और चामर धारण करके उन्हें लौटानेको चले और जाकर उन मद्रदेशी वीरोंको रोकनेके लिये कहने लगे कि युद्ध छोडकर न जाओ, न जाओ ॥ २ ॥

दुर्योधनेन ते वीरा वार्यमाणाः पुनः पुनः ।
युधिष्ठिरं जिघांसन्तः पाण्डूनां प्राविशन्बलम् ॥ ३ ॥

राजा दुर्योधनके बार बार रोकनेपर वे मद्रदेशीय वीर फिर लौटे और युधिष्ठिरके वधकी इच्छासे पाण्डवोंकी सेनामें गये ॥ ३ ॥

ते तु शूरा महाराज कृतचित्ताः स्म योधने ।
धनुःशब्दं महत्कृत्वा सहायुध्यन्त पाण्डवैः ॥ ४ ॥

महाराज ! और उन सब शूर वीरोंने युद्ध करनेका दृढ निश्चय कर लिया। तदनंतर धनुषकी महान् टंकार करके पाण्डवोंकी सेनासे घोर युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥

श्रुत्वा तु निहतं शल्यं धर्मपुत्रं च पीडितम् ।
मद्रराजप्रिये युक्तैर्मद्रकाणां महारथैः ॥ ५ ॥

राजा शल्यको मारे गये और धर्मपुत्र युधिष्ठिरको मद्रराजका प्रिय करनेवाले मद्रदेशीय महारथी पीडित कर रहे हैं, यह सुनकर ॥ ५ ॥

आजगाम ततः पार्थो गाण्डीवं विक्षिपन्धनुः ।
पूरयन्रथघोषेण दिशः सर्वा महारथः ॥ ६ ॥

गाण्डीव धनुषपर टङ्कार देते हुए कुन्तीपुत्र महारथी अर्जुन दौडे, उनके रथके शब्दसे सब दिशा पूरित हो गई ॥ ६ ॥

ततोऽर्जुनश्च भीमश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
सात्यकिश्च नरव्याघ्रो द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥ ७ ॥

तब अर्जुन, भीमसेन, माद्रीपुत्र पाण्डुकुमार नकुल, सहदेव, पुरुषसिंह सात्यकि, द्रौपदीके पांचों पुत्र ॥ ७ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाञ्चालाः सह सोमकैः ।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ८ ॥

धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि पाञ्चाल और सोमकवंशी प्रधान वीरोंने युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ८ ॥

ते समन्तात्परिवृताः पाण्डवैः पुरुषर्षभाः ।
क्षोभयन्ति स्म तां सेनां मकराः सागरं यथा ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरको सब ओरसे घेरकर पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव तुम्हारी सेनासे घोर युद्ध करके उनको प्रक्षुब्ध करने लगे । उस समय तुम्हारी सेना इस प्रकार व्याकुल हो गई जैसे बडे मगरके आनेसे समुद्र ॥ ९ ॥

पुरोवातेन गङ्गेव क्षोभ्यमाणा महानदी ।
अक्षोभ्यत तदा राजन्पाण्डूनां ध्वजिनी पुनः ॥ १० ॥

राजन् ! जैसे पूर्वी वायु महानदी गङ्गाको प्रक्षुब्ध कर देती है, ऐसे ही मद्रदेशीय सैनिकोंने पाण्डवोंकी सेनाको फिर व्याकुल कर दिया ॥ १० ॥

प्रस्कन्द्य सेनां महतीं त्यक्तात्मानो महारथाः ।
वृक्षानिव महावाताः कम्पयन्ति स्म तावकाः ॥ ११ ॥

अपने जीवितकी अभिलाषा छोडनेवाले उन महारथियोंने पाण्डवोंकी विशाल सेनाको मथ डाला । उस समय तुम्हारी ओरके वीर ऐसे कांपते थे, जैसे आंधीके चलनेसे वृक्ष ॥११॥

बहवश्चुक्रुशुस्तत्र क्व स राजा युधिष्ठिरः ।
भ्रातरो वास्य ते शूरा दृश्यन्ते नेह केचन ॥ १२ ॥

थोडे समयके पश्चात् पाण्डव सैनिकोंको व्याकुल करके मद्रदेशीय महात्मा योद्धा चारों ओरसे पुकारने लगे, कि वह राजा युधिष्ठिर इस समय कहां है ? अथवा उनके वे शूरवीर चारों भाई ? वे सब यहां क्यों नहीं दिखाई देते ? ॥ १२ ॥

पाञ्चालानां महावीर्याः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नोऽथ शैनेयो द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥ १३ ॥

महावीर पाञ्चाल और महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, सात्यकि और द्रौपदीके सब पुत्र— ये सब कहां हैं ? ॥ १३ ॥

एवं तान्वादिनः शूरान्द्रौपदेया महारथाः ।
अभ्यघ्नन्युयुधानश्च मद्रराजपदानुगान् ॥ १४ ॥

ऐसे कहनेवाले मद्रराजके उन अनुयायी वीरोंको द्रौपदीके महारथी पुत्रों और युयुधानने नष्ट करना शुरू किया ॥ १४ ॥

चक्रैर्विमथितैः केचित्केचिच्छिन्नैर्महाध्वजैः ।
प्रत्यदृश्यन्त समरे तावका निहताः परैः ॥ १५ ॥

उन्होंने किसीके रथका पहिया और किसीकी बडी ध्वजा काट डाली। युद्धमें तुम्हारे सैनिक शत्रुसे मारे जाने लगे, ऐसा दिखाई देने लगा ॥ १५ ॥

आलोक्य पाण्डवान्युद्धे योधा राजन्समन्ततः ।
वार्यमाणा ययुर्वेगात्तव पुत्रेण भारत ॥ १६ ॥

राजन् ! भारत ! वे योद्धा पाण्डवोंको युद्धमें सर्वत्र बिखरे हुए देखकर, तुम्हारे पुत्रके रोकने पर भी वेगसे आगे बढे ॥ १६ ॥

दुर्योधनस्तु तान्वीरान्वारयामास सान्त्वयन्।
न चास्य शासनं कश्चित्तत्र चक्रे महारथः ॥ १७ ॥

राजा दुर्योधनने उन वीरोंको सान्त्वना देकर बहुत मना किया, परन्तु उस समय महारथियोंने उसकी आज्ञा न सुनी ॥ १७ ॥

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत्।
दुर्योधनं महाराज वचनं वचनक्षमः ॥ १८ ॥

महाराज! तब बोलनेमें कुशल गान्धारराज सुबलपुत्र शकुनिने दुर्योधनको यह कही ॥ १८ ॥

किं नः सम्प्रेक्षमाणानां मद्राणां हन्यते बलम्।
न युक्तमेतत्समरे त्वयि तिष्ठति भारत ॥ १९ ॥

हे भारत! बहुत शोककी बात है कि हमारे देखते देखते युद्धमें मद्रदेशीय यह सेन मारी जाती है? हे राजन्! तुम्हारे रहते हुए ऐसा होना उचित नहीं ॥ १९ ॥

सहितैर्नाम योद्धव्यमित्येष समयः कृतः।
अथ कस्मात्परानेव घ्नतो मर्षयसे नृप ॥ २० ॥

हम सब इकट्ठे होकर युद्ध करेंगे। ऐसा हम लोगोंने पहले निश्चय किया था। नरेन्द्र शत्रुओंको अपनी सेनाका संहार करते देखकर भी क्यों सहन करते हो? ॥ २० ॥

दुर्योधन उवाच

वार्यमाणा मया पूर्वं नैते चक्रुर्वचो मम।
एते हि निहताः सर्वे प्रस्कन्नाः पाण्डुवाहिनीम् ॥ २१ ॥

दुर्योधन बोले– हमने पहले इस सेनाको बहुत मना किया था परन्तु किसीने हमारी नहीं सुनी, और ये पाण्डव सेनामें घुस गये, इसीसे प्रायः सब सेना नष्ट हो गयी।

शकुनिरुवाच

न भर्तुः शासनं वीरा रणे कुर्वन्त्यमर्षिताः।
अलं क्रोद्धुं तथैतेषां नायं काल उपेक्षितुम् ॥ २२ ॥

शकुनि बोले– युद्धमें यह नियम है, कि क्रोध भरे वीर राजाकी आज्ञाका पालन नहीं हैं। इसलिये आप इनपर क्रोध मत कीजिये, क्योंकि यह समय इनकी उपेक्षा क नहीं है ॥ २२ ॥

यामः सर्वेऽत्र संभूय सवाजिरथकुञ्जराः।
परित्रातुं महेष्वासान्मद्रराजपदानुगान् ॥ २३ ॥

चलिये, हम सब लोग एक साथ हाथी, घोडे और रथोंको इकट्ठा करके इन मद्र महाधनुर्धर वीरोंकी अवश्य रक्षा करेंगे ॥ २३ ॥

अन्योन्यं परिरक्षामो यत्नेन महता नृप ।
एवं सर्वेऽनुसंचिन्त्य प्रययुर्यत्र सैनिकाः ॥ २४ ॥
और महान् प्रयत्नसे एक दूसरेकी रक्षा करें । राजन् ! तब सब लोग इसी बातको स्वीकार करके अपनी सेनाके पास गये ॥ २४ ॥

सञ्जय उवाच
एवमुक्तस्ततो राजा बलेन महता वृतः ।
प्रययौ सिंहनादेन कम्पयन्वै वसुन्धराम् ॥ २५ ॥
सञ्जय बोले— शकुनिका वचन सुनकर राजा दुर्योधन अपने साथ बहुत सेना लेकर सिंहनाद करके और पृथ्वीको कंपाते हुए युद्ध करनेको चले ॥ २५ ॥

हत विध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दस्तव सैन्यस्य भारत ॥ २६ ॥
भारत ! तब तुम्हारी सेनाके वीर सिंहके समान गर्जते हुए मारो, घायल करो, बांधो, पकडो, काटो ऐसा शब्द पुकारने लगे ॥ २६ ॥

पाण्डवास्तु रणे दृष्ट्वा मद्रराजपदानुगान् ।
सहितानभ्यवर्तन्त गुल्ममास्थाय मध्यमम् ॥ २७ ॥
समरमें मद्रदेशकी सेनाको एक साथ आते देखकर पाण्डवोंने मध्यम सेनाविभागसे उनका मुकाबला किया ॥ २७ ॥

ते मुहूर्ताद्रणे वीरा हस्ताहस्तं विशां पते ।
निहताः प्रत्यदृश्यन्त मद्रराजपदानुगाः ॥ २८ ॥
हे प्रजापते ! तब क्षणभरमें युद्धमें चारों ओर कटे हुए मद्रदेशीय वीर दिखाई देने लगे ॥२८॥

ततो नः सम्प्रयातानां हतामित्रास्तरस्विनः ।
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्सहिताः परे ॥ २९ ॥
तब हमारी सेना वहां पहुंचते ही मद्रदेशीय वे वेगवान् वीर मारे गये और पाण्डवोंकी सेनामें बहुत प्रसन्नताका शब्द होने लगा ॥ २९ ॥

अथोत्थितानि रुण्डानि समदृश्यन्त सर्वशः ।
पपात महती चोल्का मध्येनादित्यमण्डलम् ॥ ३० ॥
सब ओर रुण्ड खडे होकर नाचते दिखाई दे रहे और सूर्यके मण्डलके मध्यसे बडी उल्का गिरी ॥ ३० ॥

रथैर्भग्नैर्युगाक्षैश्च निहतैश्च महारथैः ।
अश्वैर्निपतितैश्चैव संछन्नाभूद्वसुन्धरा ॥ ३१ ॥
चारों ओर टूटे हुए रथ, जुआ और पहिये दीखने लगे । कहीं मारे गये महारथियोंसे और मरे हुए घोडोंसे पृथ्वी आच्छादित हुई ॥ ३१ ॥

वातायमानैस्तुरगैर्युगासक्तैस्तुरंगमैः ।
अदृश्यन्त महाराज योधास्तत्र रणाजिरे ॥ ३२ ॥
महाराज ! वहां समरमें वीर योद्धा वायुके समान वेगशाली जुएमें बंधे हुए घोडोंसे इधर उधर ले जा रहे हैं, ऐसा दिखाई देता था ॥ ३२ ॥

भग्नचक्रान्रथान्केचिदवहंस्तुरगा रणे ।
रथार्धं केचिदादाय दिशो दश विबभ्रमुः ।
तत्र तत्र च दृश्यन्ते योक्त्रैः श्लिष्टाः स्म वाजिनः ॥ ३३ ॥
कहीं टूटे पहिये ही रथोंको लिये कुछ घोडे दौडे फिरते थे, और कितने घोडे आधे रथको खींचकर चारों दिशाओंमें घूमते थे । सब ओर जोतोंसे जुडे हुए घोडे दिखाई देते थे ॥३३॥

रथिनः पतमानाश्च व्यदृश्यन्त नरोत्तम ।
गगनात्प्रच्युताः सिद्धाः पुण्यानामिव संक्षये ॥ ३४ ॥
हे नरोत्तम ! कहीं महारथी रथि वीर इस प्रकार रथोंसे गिरते थे जैसे सिद्ध पुरुष पुण्य नाश होनेसे आकाशसे पृथ्वीपर गिर पडते हैं ॥ ३४ ॥

निहतेषु च शूरेषु मद्रराजानुगेषु च ।
अस्मानापततश्चापि दृष्ट्वा पार्था महारथाः ॥ ३५ ॥
मद्रदेशीय शूरवीरोंके मारे जानेपर हमारी आक्रमणके लिये आती हुई सेनाको महारथी पाण्डवोंने देखा ॥ ३५ ॥

अभ्यवर्तन्त वेगेन जयगृध्राः प्रहारिणः ।
बाणशब्दरवान्कृत्वा विमिश्राञ्शङ्खनिस्वनैः ॥ ३६ ॥
तब विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वे धनुष टङ्कारते, शंख बजाते और बाण चलाते हुए हमारा सामना करनेके लिये बडे वेगसे दौडे ॥ ३६ ॥

अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्षाः प्रहारिणः ।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान्प्रचुक्रुशुः ॥ ३७ ॥
हमारी सेनाके पास आकर वे सब लक्ष्यवेधी और प्रहार कुशल वीर धनुष टङ्कारते हुए बाण चलाने और सिंहगर्जना करने लगे ॥ ३७ ॥

अन्योन्यं परिरक्षामो यत्नेन महता नृप ।
एवं सर्वेऽनुसंचिन्त्य प्रययुर्यत्र सैनिकाः ॥ २४ ॥
और महान् प्रयत्नसे एक दूसरेकी रक्षा करें। राजन् ! तब सब लोग इसी बातको स्वीकार करके अपनी सेनाके पास गये ॥ २४ ॥

सञ्जय उवाच
एवमुक्तस्ततो राजा बलेन महता वृतः ।
प्रययौ सिंहनादेन कम्पयन्वै वसुन्धराम् ॥ २५ ॥
सञ्जय बोले– शकुनिका वचन सुनकर राजा दुर्योधन अपने साथ बहुत सेना लेकर सिंहनाद करके और पृथ्वीको कंपाते हुए युद्ध करनेको चले ॥ २५ ॥

हत विध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दस्तव सैन्यस्य भारत ॥ २६ ॥
भारत ! तब तुम्हारी सेनाके वीर सिंहके समान गर्जते हुए मारो, घायल करो, बांधो, पकडो, काटो ऐसा शब्द पुकारने लगे ॥ २६ ॥

पाण्डवास्तु रणे दृष्ट्वा मद्रराजपदानुगान् ।
सहितानभ्यवर्तन्त गुल्ममास्थाय मध्यमम् ॥ २७ ॥
समरमें मद्रदेशकी सेनाको एक साथ आते देखकर पाण्डवोंने मध्यम सेनाविभागसे उनका मुकाबला किया ॥ २७ ॥

ते मुहूर्ताद्रणे वीरा हस्ताहस्तं विशां पते ।
निहताः प्रत्यदृश्यन्त मद्रराजपदानुगाः ॥ २८ ॥
हे प्रजापते ! तब क्षणभरमें युद्धमें चारों ओर कटे हुए मद्रदेशीय वीर दिखाई देने लगे ॥२८॥

ततो नः सम्प्रयातानां हतामित्रास्तरस्विनः ।
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्सहिताः परे ॥ २९ ॥
तब हमारी सेना वहां पहुंचते ही मद्रदेशीय वे वेगवान् वीर मारे गये और पाण्डवोंकी सेनामें बहुत प्रसन्नताका शब्द होने लगा ॥ २९ ॥

अथोत्थितानि रुण्डानि समदृश्यन्त सर्वशः ।
पपात महती चोल्का मध्येनादित्यमण्डलम् ॥ ३० ॥
सब ओर रुण्ड खडे होकर नाचते दिखाई दे रहे और सूर्यके मण्डलके मध्यसे बडी उल्का गिरी ॥ ३० ॥

रथैर्भग्नैर्युगाक्षैश्च निहतैश्च महारथैः ।
अश्वैर्निपतितैश्चैव संछन्नाभूद्वसुन्धरा ॥ ३१ ॥

चारों ओर टूटे हुए रथ, जुआ और पहिये दीखने लगे । कहीं मारे गये महारथियोंसे और मरे हुए घोडोंसे पृथ्वी आच्छादित हुई ॥ ३१ ॥

वातायमानैस्तुरगैर्युगासक्तैस्तुरंगमैः ।
अदृश्यन्त महाराज योधास्तत्र रणाजिरे ॥ ३२ ॥

महाराज ! वहां समरमें वीर योद्धा वायुके समान वेगशाली जुएमें बंधे हुए घोडोंसे इधर उधर ले जा रहे हैं, ऐसा दिखाई देता था ॥ ३२ ॥

भग्नचक्रान्रथान्केचिदवहंस्तुरगा रणे ।
रथार्धं केचिदादाय दिशो दश विबभ्रमुः ।
तत्र तत्र च दृश्यन्ते यौक्त्रैः श्लिष्टाः स्म वाजिनः ॥ ३३ ॥

कहीं टूटे पहिये ही रथोंको लिये कुछ घोडे दौडे फिरते थे, और कितने घोडे आधे रथको खींचकर चारों दिशाओंमें घूमते थे । सब ओर जोतोंसे जुडे हुए घोडे दिखाई देते थे ॥ ३३ ॥

रथिनः पतमानाश्च व्यदृश्यन्त नरोत्तम ।
गगनात्प्रच्युताः सिद्धाः पुण्यानामिव संक्षये ॥ ३४ ॥

हे नरोत्तम ! कहीं महारथी रथि वीर इस प्रकार रथोंसे गिरते थे जैसे सिद्ध पुरुष पुण्य नाश होनेसे आकाशसे पृथ्वीपर गिर पडते हैं ॥ ३४ ॥

निहतेषु च शूरेषु मद्रराजानुगेषु च ।
अस्मानापततश्चापि दृष्ट्वा पार्था महारथाः ॥ ३५ ॥

मद्रदेशीय शूरवीरोंके मारे जानेपर हमारी आक्रमणके लिये आती हुई सेनाको महारथी पाण्डवोंने देखा ॥ ३५ ॥

अभ्यवर्तन्त वेगेन जयगृध्नाः प्रहारिणः ।
बाणशब्दरवान्कृत्वा विमिश्राञ्शङ्खनिस्वनैः ॥ ३६ ॥

तब विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वे धनुष टङ्कारते, शंख बजाते और बाण चलाते हुए हमारा सामना करनेके लिये बडे वेगसे दौडे ॥ ३६ ॥

अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्षाः प्रहारिणः ।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान्प्रचुक्रुशुः ॥ ३७ ॥

हमारी सेनाके पास आकर वे सब लक्ष्यवेधी और प्रहार कुशल वीर धनुष टङ्कारते हुए बाण चलाने और सिंहगर्जना करने लगे ॥ ३७ ॥

ततो हतमभिप्रेक्ष्य मद्रराजबलं महत् ।
मद्रराजं च समरे दृष्ट्वा शूरं निपातितम् ।
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ॥ ३८ ॥

मद्रराज वीर समरमें मारे गये और उनकी सब सेनाको भी मारा गया देख, पाण्डवोंके बाणोंसे व्याकुल होकर दुर्योधनकी सब सेना फिर पराङ्मुख होकर भागने लगी ॥ ३८ ॥

वध्यमानं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
दिशो भेजेऽथ संभ्रान्तं त्रासितं दृढधन्विभिः ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ८८३ ॥

महाराज ! विजयसे हर्षित महाधनुषधारी पाण्डवोंके बाणोंसे वह सेना बहुत ही व्याकुल हो गई, और त्रासित होकर चारों दिशाओंमें भागने लगी ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ ८८३ ॥

: १८ :

संजय उवाच

पातिते युधि दुर्धर्षे मद्रराजे महारथे ।
तावकास्तव पुत्राश्च प्रायशो विमुखाभवन् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! जब दुर्धर्ष महापराक्रमी वीर शल्य मारे गये, तब तुम्हारे सब पुत्र और बची हुई सेना बहुशः युद्धसे विमुख हो गये ॥ १ ॥

वणिजो नावि भिन्नायां यथागाधेऽप्लवेऽर्णवे ।
अपारे पारमिच्छन्तो हते शूरे महात्मनि ॥ २ ॥

जैसे अगाध समुद्रमें नाव टूट जानेपर नौकारहित हुए अपार समुद्रके पार जानेकी इच्छा करनेवाले बनिये घबडाते हैं, ऐसे ही महात्मा शल्यके मरनेपर तुम्हारी सेनाकी दशा हो गई ॥ २ ॥

मद्रराजे महाराज वित्रस्ताः शरविक्षताः ।
अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव ॥ ३ ॥

महाराज ! मद्रराजके मारे जानेपर भयभीत और बाणोंसे विक्षत हुई तुम्हारी सेना अनाथ होकर किसी संरक्षणकी इच्छा करने लगी जैसे सिंहसे डरे हुए हरिण ॥ ३ ॥

वृषा यथा भग्नशृङ्गाः शीर्णदन्ता गजा इव ।
मध्याह्ने प्रत्यपायाम निर्जिता धर्मसूनुना ॥ ४ ॥

जैसे टूटे सीङ्गवाले बैल और दांत टूटे हाथी अनाथ होकर किसीकी शरण जाना चाहते हैं, ऐसे ही तुम्हारी सेना भी व्याकुल हो गई, उस समय लोग दो पहरमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे हारकर युद्धसे भाग चले ॥ ४ ॥

न संधातुमनीकानि न च राजन्पराक्रमे ।
आसीद्बुद्धिर्हते शल्ये तव योधस्य कस्यचित् ॥ ५ ॥

राजन् ! शल्यके वध होनेसे हमारी ओरके किसी भी वीरकी सेनाका प्रबन्ध करनेकी और पराक्रमसे युद्ध करनेकी इच्छा न थी ॥ ५ ॥

भीष्मे द्रोणे च निहते सूतपुत्रे च भारत ।
यद्दुःखं तव योधानां भयं चासीद्विशां पते ।
तद्भयं स च नः शोको भूय एवाभ्यवर्तत ॥ ६ ॥

हे भारत ! हे राजन् ! भीष्म, द्रोणाचार्य और सूतपुत्र कर्णके मरनेसे हमारी ओरके वीरोंको जो दुःख और भय हुआ था और जैसी उनकी इच्छा हुई थी, शल्यके मरनेसे भी वैसाही भय और शोक पुनः हुआ और वैसी ही स्थिति हुई ॥ ६ ॥

निराशाश्च जये तस्मिन्हते शल्ये महारथे ।
हतप्रवीरा विध्वस्ता विकृत्ताश्च शितैः शरैः ।
मद्रराजे हते राजन्योधास्ते प्राद्रवन्भयात् ॥ ७ ॥

परन्तु इतना विशेष हुआ कि महारथ वीर शल्यके वधसे किसीको अपनी जीतकी आशा न रही, क्योंकि उनके सब बडे बडे वीर मारे गये, और बचे हुए वीर पाण्डवोंके बाणोंसे व्याकुल और विध्वस्त हो रहे थे । राजन् ! मद्रराजके मारे जानेपर तुम्हारे वे वीर भयसे भागने लगे ॥ ७ ॥

अश्वानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः ।
आरुह्य जवसंपन्नाः पादाताः प्राद्रवन्भयात् ॥ ८ ॥

तब कोई घोडे, कोई हाथी और कोई महारथी रथोंपर चढकर इधर उधरको बडे जोरसे भागे । कोई पैदल सैनिक ही भयसे भागने लगे ॥ ८ ॥

द्विसाहस्राश्च मातङ्गा गिरिरूपाः प्रहारिणः ।
संप्राद्रवन्हते शल्ये अङ्कुशाङ्गुष्ठचोदिताः ॥ ९ ॥

शल्यके मरनेके बाद पर्वतोंके समान दो सहस्र मतवाले प्रहार कुशल हाथी अंकुश और पैरके अंगूठोंसे प्रेरित हो वेगसे भाग गये ॥ ९ ॥

ते रणाद्भरतश्रेष्ठ तावकाः प्राद्रवन्दिशः ।
धावन्तश्चाप्यदृश्यन्त श्वसमानाः शरातुराः ॥ १० ॥
भरतश्रेष्ठ ! उस समय हमें युद्धसे चारों ओरसे तुम्हारी सेना भागती ही दीखती थी । वह सेना बाणोंसे विद्ध होकर हांफती हुई दौडती थी ॥ १० ॥

तान्प्रभग्नान्द्रुतान्दृष्ट्वा हतोत्साहान्पराजितान् ।
अभ्यद्रवन्त पाञ्चालाः पाण्डवाश्च जयैषिणः ॥ ११ ॥
उनको उत्साह रहित पराजित होकर भागते देख विजयकी इच्छा रखनेवाले पाञ्चाल, सोमक, सृञ्जय और पाण्डव उनका पीछा करने लगे ॥ ११ ॥

बाणशब्दरवश्चापि सिंहनादश्च पुष्कलः ।
शङ्खशब्दश्च शूराणां दारुणः समपद्यत ॥ १२ ॥
चलाये हुए बाणोंका शब्द, शूरोंका बडा सिंहनाद और शङ्खध्वनि बहुत दारुण लगता था ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा तु कौरवं सैन्यं भयत्रस्तं प्रविद्रुतम् ।
अन्योन्यं समभाषन्त पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ १३ ॥
भयसे व्याकुल और भागती हुई तुम्हारी कौरव सेनाको देखकर पाण्डवोंके सहित पाञ्चाल वीर प्रसन्न होकर सब परस्पर बोलने लगे ॥ १३ ॥

अद्य राजा सत्यधृतिर्जितामित्रो युधिष्ठिरः ।
अद्य दुर्योधनो हीनो दीप्तया नृपतिश्रिया ॥ १४ ॥
अब जगत्में सत्यवादी महाराज युधिष्ठिरका कोई शत्रु जीता नहीं रहा । आज राजा दुर्योधन देदीप्यमान राजलक्ष्मीसे हीन हो गये ॥ १४ ॥

अद्य श्रुत्वा हतं पुत्रं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
निःसंज्ञः पतितो भूमौ किल्बिषं प्रतिपद्यताम् ॥ १५ ॥
अब आज राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधनको मारा गया सुनकर मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरेंगे और दुःख भोगेंगे ॥ १५ ॥

अद्य जानातु कौन्तेयं समर्थं सर्वधन्विनाम् ।
अद्यात्मानं च दुर्मेधा गर्हयिष्यति पापकृत् ।
अद्य क्षत्तुर्वचः सत्यं स्मरतां ब्रुवतो हितम् ॥ १६ ॥
अब सब जगत् कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके बल, धनुष और प्रतापको जानेगा, आज पापी दुर्बुद्धि धृतराष्ट्र अपने कपटको स्मरण करें और स्वयंकी निर्भत्सना करें, और विदुरके सत्य और हितकर वचनोंको स्मरण करें ॥ १६ ॥

अद्यप्रभृति पार्थांश्च प्रेष्यभूत उपाचरन् ।
विजानातु नृपो दुःखं यत्प्राप्तं पाण्डुनन्दनैः ॥ १७ ॥

आजसे राजा धृतराष्ट्र स्वयं कुन्तीपुत्रोंके सेवक होकर रहें उन दुःखोंको जान लें जो पहले पाण्डवोंने भोगे थे ॥ १७ ॥

अद्य कृष्णस्य माहात्म्यं जानातु स महीपतिः ।
अद्यार्जुनधनुर्घोषं घोरं जानातु संयुगे ॥ १८ ॥

आज भगवान् श्रीकृष्णका कैसा महात्म्य है और युद्धमें अर्जुनके धनुषकी टङ्कार कितनी भयंकर है, यह राजा धृतराष्ट्र जान लें ॥ १८ ॥

अस्त्राणां च बलं सर्वं बाह्वोश्च बलमाहवे ।
अद्य ज्ञास्यति भीमस्य बलं घोरं महात्मनः ॥ १९ ॥

उनके अस्त्रोंकी सारी शक्ति और युद्धमें उनकी भुजाओंका बल कितना है ? महात्मा भीमका बल कैसा घोर है, यह आज धृतराष्ट्रको ज्ञात होगा ॥ १९ ॥

हते दुर्योधने युद्धे शक्रेणेवासुरे मये ।
यत्कृतं भीमसेनेन दुःशासनवधे तदा ।
नान्यः कर्तास्ति लोके तद्दते भीमं महाबलम् ॥ २० ॥

आज युद्धमें दुर्योधनके मारे जानेपर राक्षसोंको मारनेके समय इन्द्र जो कर्म करते हैं, वैसे ही दुःशासनके मारनेमें महात्मा भीमसेनने जो कर्म किया था, उसे महाबलवान् भीमके सिवा इस जगत्में दूसरा कोई नहीं कर सकता, उसको स्मरण करें ॥ २० ॥

जानीतामद्य ज्येष्ठस्य पाण्डवस्य पराक्रमम् ।
मद्रराजं हतं श्रुत्वा देवैरपि सुदुःसहम् ॥ २१ ॥

आज धृतराष्ट्र देवताओंके लिये भी दुःसह मद्रराज शल्यके वधका वृत्तान्त सुनकर ज्येष्ठ पाण्डव महाराज युधिष्ठिरके विक्रमको जाने ॥ २१ ॥

अद्य ज्ञास्यति संग्रामे माद्रीपुत्रौ महाबलौ ।
निहते सौबले शूरे गान्धारेषु च सर्वशः ॥ २२ ॥

आज सब गान्धार वीरोंके सहित सुबलपुत्र शूर शकुनिको मरा सुन राजा धृतराष्ट्र जानेंगे कि माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव कैसे महाबलवान् हैं ? ॥ २२ ॥

कथं तेषां जयो न स्याद्येषां योद्धा धनंजयः ।
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २३ ॥
द्रौपद्यास्तनयाः पञ्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
शिखण्डी च महेष्वासो राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥

जिनकी ओरसे युद्ध करनेवाले धनंजय– अर्जुन, सात्यकि, भीमसेन सेनापति साक्षात् द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न द्रौपदीके पांचों पुत्र, माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल–सहदेव, महाधनुर्धारी शिखण्डी तथा राजा तो साक्षात् युधिष्ठिर, जैसे वीर हैं, उनकी विजय कैसे नहीं हो सकती ? ॥ २३–२४ ॥

येषां च जगतां नाथो नाथः कृष्णो जनार्दनः ।
कथं तेषां जयो न स्याद्येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥ २५ ॥

जिनके रक्षण करनेवाले साक्षात् जगत् स्वामी जनार्दन श्रीकृष्ण और जिनको साक्षात् धर्मका आश्रय है, उनकी बिजय क्यों नहीं हो सकती ? ॥ २५ ॥

भीष्मं द्रोणं च कर्णं च मद्रराजानमेव च ।
तथान्यान्नृपतीन्वीराञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६ ॥
कोऽन्यः शक्तो रणे जेतुमृते पार्थं युधिष्ठिरम् ।
यस्य नाथो हृषीकेशः सदा धर्मयशोनिधिः ॥ २७ ॥

साक्षात् भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, मद्रराज शल्य और अन्य सैकडों सहस्रों महाबलवान् राजा और वीरोंको, कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिरको छोड और कौन युद्धमें जीत सकता है ? जो सदा ही सत्य और यशके समुद्र भगवान् श्रीकृष्ण जिनके नाथ और रक्षक हैं, उनकी आज्ञामें रहते हैं ॥ २६–२७ ॥

इत्येवं वदमानास्ते हर्षेण महता युताः ।
प्रभग्नांस्तावकान्राजन्सृञ्जयाः पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ २८ ॥

ऐसा कहते हुए ये सब सृंजय वीर प्रसन्न होकर तुम्हारी भागती हुई सेनाके पीछे दौडे ॥ २८ ॥

धनंजयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ।
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महारथः ॥ २९ ॥

वीर अर्जुन रथ सेनाकी ओर और नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि शकुनिकी ओर चढाईके लिये चले ॥ २९ ॥

तान्प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान्भीमसेनभयार्दितान् ।
दुर्योधनस्तदा सूतमब्रवीदुत्स्मयन्निव ॥ ३० ॥

अपनी सेनाको भीमसेनके डरसे भागती देख राजा दुर्योधन अपने सारथिसे हंसते हु
बोले ॥ ३० ॥

न मातिक्रमते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम् ।
जघने सर्वसैन्यानां ममाश्वान्प्रतिपादय ॥ ३१ ॥

जब मैं हाथमें धनुष लेकर खडा हूं तब अर्जुन मुझे लांघ नहीं सकेंगे, इसलिये हमारे घोडों
सेनाके पिछले भागमें खडा कर दो ॥ ३१ ॥

जघने युध्यमानं हि कौन्तेयो मां धनंजयः ।
नोत्सहेताभ्यतिक्रान्तुं वेलामिव महोदधिः ॥ ३२ ॥

पृष्ठभागमें रहकर युद्ध करनेवाले मुझे कुन्तीपुत्र धनंजय लांघनेका साहस नहीं कर सकें
जैसे समुद्र तटके पर्वतको नहीं लांघ सकता ऐसे ही ॥ ३२ ॥

पश्य सैन्यं महत्सूत पाण्डवैः समभिद्रुतम् ।
सैन्यरेणुं समुद्धूतं पश्यस्वैनं समन्ततः ॥ ३३ ॥

हे सूत, देखो ! पाण्डव हमारी विशाल सेनाको चारों ओर भगा रहे हैं, ये देखो सैनिकों
दौडनेसे सब ओर कैसी धूल उड रही है ॥ ३३ ॥

सिंहनादांश्च बहुशः शृणु घोरान्भयानकान् ।
तस्माद्याहि शनैः सूत जघनं परिपालय ॥ ३४ ॥

सूत ! सुनो, ये पाण्डवोंकी ओरके वीर कैसे भयानक और घोर सिंहनाद कर रहे हैं
इसलिये तुम व्यूहकी जङ्घाकी रक्षा करते हुए धीरे धीरे हमारे घोडोंको हांको ॥ ३४ ॥

मयि स्थिते च समरे निरुद्धेषु च पाण्डुषु ।
पुनरावर्तते तूर्णं मामकं बलमोजसा ॥ ३५ ॥

हम जब समरमें खडे होकर युद्ध करेंगे और पाण्डवोंको रोकेंगे, तब हमारी सेना सब शा
लगाकर फिर युद्ध करनेको शीघ्रही लौटेगी ॥ ३५ ॥

तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्य शूराग्र्यसदृशं वचः ।
सारथिर्हेमसंछन्नाञ्शनैरश्वानचोदयत् ॥ ३६ ॥

तुम्हारे पुत्रके यह वीर और महात्माओंके समान वचन सुन, सारथिने सोनेके जालवाले
घोडोंको धीरे धीरे हांका ॥ ३६ ॥

गजाश्वरथिभिर्हीनास्त्यक्तात्मानः पदातयः ।
एकविंशतिसाहस्राः संयुगायावतस्थिरे ॥ ३७ ॥
नानादेशसमुद्भूता नानारञ्जितवाससः ।
अवस्थितास्तदा योधाः प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ३८ ॥

राजाको चलते देख अनेक देशोंमें उत्पन्न और अनेक नगरोंमें रहनेवाले अनेक प्रकारके रंगोंवाले कपडे पहने हुए हाथीसवार, घुडसवार और रथियोंसे रहित इक्कीस सहस्र पैदल सैनिक, अपने प्राणोंका मोह छोडकर युद्धको लौटे । इन सबकी यह इच्छा थी कि हमारा यश जगत्में फैले ॥ ३७-३८ ॥

तेषामापततां तत्र संहृष्टानां परस्परम् ।
संमर्दः सुमहाञ्जज्ञे घोररूपो भयानकः ॥ ३९ ॥

उस समय परस्पर आनन्दित होकर एक दूसरेपर आक्रमण करनेवाले दोनोंके वीर फिर घोर और भयानक युद्ध करने लगे ॥ ३९ ॥

भीमसेनं तदा राजन्धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
बलेन चतुरङ्गेण नानादेश्या न्यवारयन् ॥ ४० ॥

राजन् ! तब चतुरङ्गिणी सेना सहित पराक्रमी भीमसेन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नको उन अनेक देशीय सैनिकोंने रोका ॥ ४० ॥

भीममेवाभ्यवर्तन्त रणेऽन्ये तु पदातयः ।
प्रक्ष्वेड्यास्फोट्य संहृष्टा वीरलोकं यियासवः ॥ ४१ ॥

समरमें तुम्हारी ओरके अनेक पैदल महावीर केवल भीमसेन हीसे लडने लगे । स्वर्गलोकमें जानेकी इच्छासे कूदते, गर्जते और उछलते योद्धा भीमसेनसे युद्ध करने लगे ॥४१॥

आसाद्य भीमसेनं तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः ।
धार्तराष्ट्रा विनेदुर्हि नान्यां चाकथयन्कथाम् ।
परिवार्य रणे भीमं निजघ्नुस्ते समन्ततः ॥ ४२ ॥

भीमसेनके पास पहुंचकर वे क्रुद्ध हुए युद्धदुर्मद कौरव वीर गर्जने लगे, मुंहसे दूसरी कोई बात नहीं करते थे । सब तुम्हारे वीर भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर उनको मारनेके लिये केवल उन्हींसे लडने लगे ॥ ४२ ॥

स वध्यमानः समरे पदातिगणसंवृतः ।
न चचाल रथोपस्थे मैनाक इव पर्वतः ॥ ४३ ॥

जैसे मैनाकपर्वत चारों ओरसे समुद्रकी तरङ्ग लगनेसे भी अपने स्थानसे नहीं चलता, ऐसे ही समरमें चारों ओरसे पैदलोंसे घिरने और अनेक शस्त्र लगनेसे भी भीमसेन अपने स्थानसे नहीं हटे ॥ ४३ ॥

ते तु क्रुद्धा महाराज पाण्डवस्य महारथम् ।
निग्रहीतुं प्रचक्रुर्हि योधांश्चान्यानवारयन् ॥ ४४ ॥

महाराज! तब अनेक वीरोंने क्रुद्ध होकर पाण्डव महारथी महात्मा भीमसेनको जीते पकडनेका विचार किया, और दूसरे अन्य योद्धाओंको रोक दिया ॥ ४४ ॥

अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः ।
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं पदातिः समवस्थितः ॥ ४५ ॥

तब उनको इस प्रकार चारों ओर खडे हुए देखकर भीमसेनको युद्धमें महाक्रोध हुआ और शीघ्रही रथसे नीचे उतरे और पैदल खडे हो गये ॥ ४५ ॥

जातरूपपरिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अवधीत्तावकान्योधान्दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ४६ ॥

और सोनेके तारोंसे जडी हुई बडी गदा हाथमें लेकर तुम्हारी सेनाका इस प्रकार नाश करने लगे, जैसे यमराज अपने दण्डसे प्रजाका नाश करते हैं ॥ ४६ ॥

रथाश्वद्विपहीनांस्तु तान्भीमो गदया बली ।
एकविंशतिसाहस्रान्पदातीनवपोथयत् ॥ ४७ ॥

इस प्रकार थोडे ही समयमें पुरुषसिंह भीमसेनने रथ, अश्व और हाथीयोंसे रहित उन इकीस सहस्र पैदलोंको गदासे मार डाला ॥ ४७ ॥

हत्वा तत्पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ।
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य नचिरात्प्रत्यदृश्यत ॥ ४८ ॥

सत्यपराक्रमी भीमसेनने उस पैदल सैनिकोंका नाश करके थोडेही समयमें धृष्टद्युम्नको आगे किया ॥ ४८ ॥

पादाता निहता भूमौ शिश्यिरे रुधिरोक्षिताः ।
संभग्ना इव वातेन कर्णिकाराः सुपुष्पिताः ॥ ४९ ॥

रुधिरमें भीगे पृथ्वीमें पडे मरे सोये पैदल सैनिक ऐसे दीखने लगे जैसे आंधीसे टूटे हुए सुन्दर लाल फूलोंसे भरे कचनारके वृक्ष ॥ ४९ ॥

नानापुष्पस्रजोपेता नानाकुण्डलधारिणः ।
नानाजात्या हतास्तत्र नानादेशसमागताः ॥ ५० ॥

वहाँ मारे गये ये सब योद्धा अनेक प्रकारके कुण्डल भूषण और नाना प्रकारके पुष्पमालाधारी वीर अनेक जाति और अनेक देशोंके थे ॥ ५० ॥

पताकाध्वजसंछन्नं पदातीनां महद्बलम् ।
निकृत्तं विबभौ तत्र घोररूपं भयानकम् ॥ ५१ ॥

झण्डे और पताकाओंसे ढकी हुई पैदलोंकी छिन्न भिन्न हुई यह बडी सेना बहुत घोर और भयानक दीखने लगी ॥ ५१ ॥

युधिष्ठिरपुरोगास्तु सर्वसैन्यमहारथाः ।
अभ्यधावन्महात्मानं पुत्रं दुर्योधनं तव ॥ ५२ ॥

उधर युधिष्ठिर आदि महारथी सब सेना साथ लेकर तुम्हारे पुत्र महात्मा दुर्योधनसे युद्ध करने चले ॥ ५२ ॥

ते सर्वे तावकान्दृष्ट्वा महेष्वासान्पराङ्मुखान् ।
नाभ्यवर्तन्त ते पुत्रं वेलेव मकरालयम् ॥ ५३ ॥

जैसे समुद्र पर्वतको नहीं नांघ सकता ऐसे ही पाण्डवोंके सब महाधनुर्धर महारथी तुम्हारे वीरोंको युद्धसे पराङ्मुख देखकर भी तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको पार करके आगे बढ नहीं सके ॥ ५३ ॥

तदद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ।
यदेकं सहिताः पार्था न शेकुरतिवर्तितुम् ॥ ५४ ॥

कुन्तीपुत्र सब पाण्डव इकट्ठे होनेपर भी दुर्योधनको न जीत सके, यह तुम्हारे पुत्रका अद्भुत पराक्रम देखकर हम लोग आश्चर्य करने लगे ॥ ५४ ॥

नातिदूरापयातं तु कृतबुद्धिं पलायने ।
दुर्योधनः स्वकं सैन्यमब्रवीद्भृशविक्षतम् ॥ ५५ ॥

बाणोंसे अत्यंत व्याकुल और भागनेका निश्चय करके थोडी दूर गई हुई अपनी सेनासे दुर्योधन बोले ॥ ५५ ॥

न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु वा ।
यत्र यातान्न वो हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः ॥ ५६ ॥

हमें ऐसा कोई देश या पर्वत नहीं दीखता जहां भागकर तुम लोग पाण्डवोंके हाथसे मरनेसे बच जाओगे, इसलिये भागनेसे क्या होगा ? ॥ ५६ ॥

अल्पं च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ।
यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवो नो विजयो भवेत् ॥ ५७ ॥

अब पाण्डवोंकी सेना बहुत थोडी रह गई है, तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन घावोंसे अत्यंत व्याकुल हो गये हैं । यदि इस समय हम लोग साहस करके मिलकर युद्ध करें तो अवश्यही हमारी विजय होगी ॥ ५७ ॥

विप्रयातांस्तु वो भिन्नान्पाण्डवाः कृतकिल्बिषान् ।
अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयो नः समरे स्थितम् ॥ ५८ ॥

तुम पाण्डवोंके अपराधी हैं, यदि तुम लोग अलग होकर भाग जाओगे तो तुम्हारे वैरी पाण्डव वहां भी तुमको मारेंगे ही, इसलिये, हमारे लिये युद्धमें रहना ही अच्छा है ॥५८॥

शृणुध्वं क्षत्रियाः सर्वे यावन्तः स्थ समागताः ।
यदा शूरं च भीरुं च मारयत्यन्तकः सदा ।
को नु मूढो न युध्येत पुरुषः क्षत्रियब्रुवः ॥ ५९ ॥

जितने क्षत्रिय यहां इकट्ठे हुए हैं सो सब हमारे वचनोंको सुनें । यमराज–मृत्यु वीर और कायर सबहीको मारता है, ऐसा विचार कर ऐसा कौन मूर्ख पुरुष क्षत्रिय होगा जो स्वयंको क्षत्रिय कहलाकर युद्ध नहीं करेगा ? ॥ ५९ ॥

श्रेयो नो भीमसेनस्य क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थितम् ।
सुखः सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ।
जित्वेह सुखमाप्नोति हतः प्रेत्य महत्फलम् ॥ ६० ॥

हम लोगोंको यही अच्छा होगा कि क्रोध भरे भीमसेनके आगे खडे होकर युद्ध करें । क्षत्रियको युद्धहीमें मरना अच्छा है सो तुम क्षत्रियोंके धर्मानुसार युद्ध करो। क्षत्रियोंका यही धर्म है, कि युद्धमें मरे, क्योंकि युद्धमें शत्रुको जीतनेसे इहलोकमें राज्य सुख और मरनेसे स्वर्ग मिलता है ॥ ६० ॥

न युद्धधर्माच्छ्रेयान्वै पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः ।
अचिरेण जिताँल्लोकान्हतो युद्धे समश्नुते ॥ ६१ ॥

क्षत्रियोंके लिये युद्ध धर्मके सिवाय और कोई दूसरा श्रेयस्कर मार्ग स्वर्ग प्राप्तिके लिये नहीं है, युद्धमें मारा गया वीर शीघ्रही पुण्यलोकमें जाकर सुखी होता है ॥ ६१ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य पूजयित्वा च पार्थिवाः ।
पुनरेवान्ववर्तन्त पाण्डवानाततायिनः ॥ ६२ ॥

राजा दुर्योधनके वचन सुन सब राजा उनकी प्रशंसा करके फिर आततायी पाण्डवोंसे युद्ध करनेको लौटे ॥ ६२ ॥

तानापतत एवाशु व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्था जयगृध्राः प्रहारिणः ॥ ६३ ॥

प्रहारकुशल पाण्डवलोग भी उनको आक्रमणके लिये आते देख शीघ्रही अपनी सेनाका व्यूह बनाकर विजयके लिये क्रोधमें भरकर दौडे ॥ ६३ ॥

धनंजयो रथेनाजावभ्यवर्तत वीर्यवान् ।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं विक्षिपन्धनुः ॥ ६४ ॥
वीर्यवान् अर्जुन भी तीन लोकोंमें विख्यात गांडीव धनुपपर टङ्कार देते हुए रथसे युद्ध करनेको चले ॥ ६४ ॥

माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः ।
जवेनाभ्यपतन्हृष्टा यतो वै तावकं बलम् ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वण्यष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ९४८ ॥

माद्रीपुत्र नकुल, सहदेव और महाबलवान् सात्यकि शकुनिकी ओर चले । ये सब आनन्दित और प्रसन्न होकर प्रयत्नपूर्वक तुम्हारी सेनापर वेगपूर्वक आक्रमण करने लगे ॥ ६५ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ ९४८ ॥

: १९ :

संजय उवाच—

संनिवृत्ते बलौघे तु शाल्वो म्लेच्छगणाधिपः ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः पाण्डूनां सुमहद्बलम् ॥ १ ॥
सञ्जय बोले– हे राजन् ! जब यह सब सेना पुनः लडनेको लौटकर उपस्थित हो गई, तब म्लेच्छदेशका राजा महापराक्रमी शाल्व क्रुद्ध होकर पांडवोंकी सेनासे युद्ध करनेको खडा हुआ ॥ १ ॥

आस्थाय सुमहानागं प्रभिन्नं पर्वतोपमम् ।
दृप्तमैरावतप्रख्यममित्रगणमर्दनम् ॥ २ ॥
राजा शाल्व मत्त पर्वतके समान भारी और ऐरावतके समान मतवाले शत्रुनाशक हाथीपर बैठकर युद्ध करनेको आये ॥ २ ॥

योऽसौ महाभद्रकुलप्रसूतः सुपूजितो धार्तराष्ट्रेण नित्यम् ।
सुकल्पितः शास्त्रविनिश्चयज्ञैः सदोपवाह्यः समरेषु राजन् ॥ ३ ॥
राजन् ! जो हाथी महा भद्रक वंशमें उत्पन्न हुआ था, धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन सदा ही जिसका आदर करते थे, जो सदा युद्ध करनेवाले हाथियोंके आगे रहता था, उस ही शास्त्र जाननेवाले सेवकोंसे कसे हुए हाथीपर चढकर राजा शाल्व युद्ध करनेको आया ॥ ३ ॥

तमास्थितो राजवरो बभूव यथोदयस्थः सविता क्षपान्ते ।
स तेन नागप्रवरेण राजन्नभ्युद्ययौ पाण्डुसुतान्समन्तात् ।
शितैः पृषत्कैर्विददार चापि महेन्द्रवज्रप्रतिमैः सुघोरैः ॥ ४ ॥

उस हाथीपर चढ़े राजश्रेष्ठ शाल्व ऐसे शोभित दीखते थे, जैसे उदयाचलपर प्रातःकालके सूर्य। राजन् ! तब वह राजा शाल्व उस श्रेष्ठ हाथीपर बैठकर चारों ओरसे पाण्डवोंकी ओर चढ आया। राजा शाल्व अपने इन्द्रके वज्रके समान अत्यंत घोर तीक्ष्ण बाणोंसे पाण्डवोंके वीरोंको वेगसे मारने लगे ॥ ४ ॥

ततः शरान्वै सृजतो महारणे योधांश्च राजन्नयतो यमाय ।
नास्यान्तरं ददृशुः स्वे परे वा यथा पुरा वज्रधरस्य दैत्याः ॥ ५ ॥

हे राजन् ! उस समय महायुद्धमें शाल्वके बाण छोडने और सैनिकोंको यमलोक भेजनेमें कितनी देर लगती है, इसमें तुम्हारे या शत्रुपक्षके योद्धा नहीं देख सकते थे। जैसे पहले वज्रधारी इन्द्रके बाणोंसे दानव व्याकुल हो गये थे ॥ ५ ॥

ते पाण्डवाः सोमकाः सृञ्जयाश्च तमेव नागं ददृशुः समन्तात् ।
सहस्रशो वै विचरन्तमेकं यथा महेन्द्रस्य गजं समीपे ॥ ६ ॥

उस समय म्लेच्छराज शाल्वका एक ही हाथी युद्धमें अकेला ही निकट विचर रहा था तो भी पाण्डव, सोमक और सृञ्जय वंशी क्षत्रियोंको वह सहस्रोंकी संख्याके रूपसे दिखाई देने लगा। अर्थात् जिधर जो देखता था, उसे चारों ओर इन्द्रके ऐरावतके समान घूमता हुआ शाल्वका हाथी ही दीखता था ॥ ६ ॥

संद्राव्यमाणं तु बलं परेषां परीतकल्पं विबभौ समन्तात् ।
नैवावतस्थे समरे भृशं भयाद्विमर्दमानं तु परस्परं तदा ॥ ७ ॥

उस समय हमारे शत्रुओंकी भयसे व्याकुल होकर भागती हुई वह सेना चारों ओरसे घिरी हुई ही दिखती थी, कोई युद्धमें भयसे खडा होनेकी इच्छा नहीं करता था। उस समय आपसमें ही वे कुचले जाने लगे ॥ ७ ॥

ततः प्रभग्ना सहसा महाचमूः सा पाण्डवी तेन नराधिपेन ।
दिशश्चतस्रः सहसा प्रधाविता गजेन्द्रवेगं तमपारयन्ती ॥ ८ ॥

उस समय राजा शाल्वने पाण्डवोंकी बडी सेना सहसा भगा दी। उस हाथीके वेगको सहन न कर सकी और चारों दिशाओंमें एकाएक भाग गयी ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा च तां वेगवता प्रभग्नां सर्वे त्वदीया युधि योधमुख्याः ।
अपूजयंस्तत्र नराधिपं तं दध्मुश्च शङ्खाञ्शशिसन्निकाशान् ॥ ९ ॥
पाण्डवोंकी सेनाको वेगसे भागती देख युद्धमें तुम्हारे सब प्रधान वीर राजा शाल्वकी प्रशंसा करने लगे और चन्द्रमाके समान निर्मल शङ्ख बजाने लगे ॥ ९ ॥

श्रुत्वा निनादं त्वथ कौरवाणां हर्षाद्विमुक्तं सह शङ्खशब्दैः ।
सेनापतिः पाण्डवसृञ्जयानां पाञ्चालपुत्रो न ममर्ष रोषात् ॥ १० ॥
इस कौरवोंके प्रसन्न शब्दको शङ्खध्वनिके साथ सुनकर पाण्डवों और सृञ्जयोंके सेनापति पाञ्चालदेशके राजपुत्र वीर धृष्टद्युम्नको ऐसा क्रोध हुआ कि वे उसे सहन न कर सके ॥ १० ॥

ततस्तु तं वै द्विरदं महात्मा प्रत्युद्ययौ त्वरमाणो जयाय ।
जम्भो यथा शक्रसमागमे वै नागेन्द्रमैरावणमिन्द्रवाह्यम् ॥ ११ ॥
तब महात्मा वीर धृष्टद्युम्न शीघ्रता सहित विजय प्राप्तिके लिये शाल्वके हाथीकी ओर इस प्रकार दौडे जैसे जम्भासुर इन्द्रके साथ युद्धके समय इन्द्र वाहन ऐरावतकी ओर दौडा था ॥ ११ ॥

तमापतन्तं सहसा तु दृष्ट्वा पाञ्चालराजं युधि राजसिंहः ।
तं वै द्विपं प्रेषयामास तूर्णं वधाय राजन्द्रुपदात्मजस्य ॥ १२ ॥
राजन् ! राजा द्रुपदके बेटे और पाण्डवोंके सेनापति धृष्टद्युम्नको अपनी ओर युद्धमें आक्रमणके लिये आते देख नरेन्द्र वीर शाल्वने अपना हाथी उनके वधके लिये शीघ्र ही उनकी ओर दौडाया ॥ १२ ॥

स तं द्विपं सहसाभ्यापतन्तमविध्यदर्कप्रतिमैः पृषत्कैः ।
कर्मारधौतैर्निशितैर्ज्वलद्भिर्नाराचमुख्यैस्त्रिभिरुग्रवेगैः ॥ १३ ॥
सेनापति धृष्टद्युम्नने उस हाथीको अपनी ओर सहसा आते देख जलती अग्निके समान तेज, कारीगरके धोए हुए, तीक्ष्ण धारवाले, तीन अत्यंत वेगवान् उत्तम नाराच बाण मारे और उसे विद्ध किया ॥ १३ ॥

ततोऽपरान्पञ्च शितान्महात्मा नाराचमुख्यान्विससर्ज कुम्भे ।
स तैस्तु विद्धः परमद्विपो रणे तदा परावृत्य भृशं प्रदुद्रुवे ॥ १४ ॥
फिर महात्मा धृष्टद्युम्नने पांच तेज उत्तम नाराच बाण हाथीके शिरमें मारे, तब वह हाथी उन बाणोंसे व्याकुल होकर युद्धसे परावृत्त होकर वेगसे भागा ॥ १४ ॥

तं नागराजं सहसा प्रणुन्नं विद्राव्यमाणं च निगृह्य शाल्वः ।
तोत्त्राङ्कुशैः प्रेषयामास तूर्णं पाञ्चालराजस्य रथं प्रदिश्य ॥ १५ ॥
परन्तु राजा शाल्वने अपने सहसा पीडित होकर भागते हुए हाथीको फिर युद्धकी ओर लौटाया और कोडे और अंकुशोंसे मारकर पाञ्चालदेशके स्वामी धृष्टद्युम्नके रथकी ओर दौडा ॥ १५ ॥

दृष्ट्वापतन्तं सहसा तु नागं धृष्टद्युम्नः स्वरथाच्छीघ्रमेव ।
गदां प्रगृह्याशु जवेन वीरो भूमिं प्रपन्नो भयविह्वलाङ्गः ॥ १६ ॥
वीर धृष्टद्युम्न अपने रथकी ओर उसे सहसा आते देख गदा हाथमें लेकर शीघ्र ही अत्यंत वेगसे अपने रथसे कूदे और पृथ्वीपर आ गये। उस समय उनका सारा शरीर भयसे कांप रहा था ॥ १६ ॥

स तं रथं हेमविभूषिताङ्गं साश्वं ससूतं सहसा विमृद्य ।
उत्क्षिप्य हस्तेन तदा महाद्विपो विपोथयामास वसुंधरातले ॥ १७ ॥
उस महान् हाथीने धृष्टद्युम्नके सुवर्णविभूषित रथको सारथि और घोडोंके सहित सूंडसे उठाकर पृथ्वीपर फेंक दिया और पैरोंसे चूरा कर दिया ॥ १७ ॥

पाञ्चालराजस्य सुतं स दृष्ट्वा तदार्दितं नागवरेण तेन ।
तमभ्यधावत्सहसा जवेन भीमः शिखण्डी च शिनेश्च नप्ता ॥ १८ ॥
पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्नको उस नागराजसे रथहीन और व्याकुल हुआ देख भीमसेन, शिखण्डी और सात्यकि उसकी ओर वेगसे दौडे ॥ १८ ॥

शरैश्च वेगं सहसा निगृह्य तस्याभितोऽभ्यापततो गजस्य ।
स संगृहीतो रथिभिर्गजो वै चचाल तैर्वार्यमाणश्च संख्ये ॥ १९ ॥
उन सब रथि वीरोंने उस चारों ओरसे आक्रमण करनेवाले हाथीकी ओर अनेक बाण चलाये और उसको रोक दिया, तब वह व्याकुल होकर चक्कर खाने लगा ॥ १९ ॥

ततः पृषत्कान्प्रववर्ष राजा सूर्यो यथा रश्मिजालं समन्तात् ।
तेनाशुगैर्वध्यमाना रथौघाः प्रदुद्रुवुस्तत्र ततस्तु सर्वे ॥ २० ॥
तब राजा शाल्व इस प्रकार बाण चलाने लगे जैसे सूर्य अपनी किरणोंको चारों ओर जगत्में फैला देता है। तब पाण्डवोंकी ओरके अनेक वीर विद्ध होने लगे और इधर उधर सर्वत्र भागने लगे ॥ २० ॥

तत्कर्म शाल्वस्य समीक्ष्य सर्वे पाञ्चालमत्स्या नृप सृञ्जयाश्च ।
हाहाकारैर्नादयन्तः स्म युद्धे द्विपं समन्ताद्रुरुधुर्नराग्र्याः ॥ २१ ॥
हे राजन्! तब सब पुरुष श्रेष्ठ वीर पाञ्चाल और सृंजय शाल्वका पराक्रम देख घबडाकर चारों ओर हाहाकार करने लगे, और युद्धमें उस हाथीको उन्होंने चारों बाजूसे घेर लिया ॥२१॥

पाञ्चालराजस्त्वरितस्तु शूरो गदां प्रगृह्याचलशृङ्गकल्पाम् ।
असंभ्रमं भारत शत्रुघाती जवेन वीरोऽनुससार नागम् ॥ २२ ॥
भारत! तब महापराक्रमी शत्रुनाशन वीर धृष्टद्युम्न शीघ्र ही पर्वतके शिखरके समान भारी गदा लेकर और सावधान होकर वेगसे हाथीकी ओर लौटे ॥ २२ ॥

*

ततोऽथ नागं धरणीधराभं मदं स्रवन्तं जलदप्रकाशम् ।
गदां समाविध्य भृशं जघान पाञ्चालराजस्य सुतस्तरस्वी ॥ २३ ॥
तब काले मेघके समान मद बरसते और पर्वतके समान भारी शरीरवाले हाथीके पाञ्चाल राजके वेगवान् पुत्र वीर धृष्टद्युम्नने एक गदा घुमाकर वेगसे मारी ॥ २३ ॥

स भिन्नकुम्भः सहसा विनद्य मुखात्प्रभूतं क्षतजं विमुञ्चन् ।
पपात नागो धरणीधराभः क्षितिप्रकम्पाच्चलितो यथाद्रिः ॥ २४ ॥
उस गदाके लगनेसे हाथीका शिर फट गया, पर्वतके समान विशाल शरीरवाला हाथी मुंहसे रुधिर बहाने लगा और इस प्रकार पृथ्वीमें गिरा जैसे भूकम्प होनेसे पर्वत टूटकर गिर पडता है ॥ २४ ॥

निपात्यमाने तु तदा गजेन्द्रे हाहाकृते तव पुत्रस्य सैन्ये ।
स शाल्वराजस्य शिनिप्रवीरो जहार भल्लेन शिरः शितेन ॥ २५ ॥
उस श्रेष्ठ हाथीके गिरते ही तुम्हारे पुत्रकी सेनामें हाहाकार हो गया, उसी समय शिनिवंशीय प्रमुख वीर सात्यकिने एक तीक्ष्ण भल्ल बाणसे राजा शाल्वका शिर भी काटकर गिरा दिया ॥ २५ ॥

हृतोत्तमाङ्गो युधि सात्वतेन पपात भूमौ सह नागराज्ञा ।
यथाद्रिशृङ्गं सुमहत्प्रणुन्नं वज्रेण देवाधिपचोदितेन ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वण्येकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ९७४ ॥

यह राजा शाल्व रणभूमिमें सात्यकिसे शिर कट जानेपर गजराजके सहित इस प्रकार पृथ्वीमें गिरा जैसे इन्द्रका वज्र लगनेसे पर्वत शिखर टूट पडता है ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ ९७४ ॥

: २० :

सञ्जय उवाच—

तस्मिंस्तु निहते शूरे शाल्वे समितिशोभने ।
तवाभज्यद्बलं वेगाद्वातेनेव महाद्रुमः ॥ १ ॥
सञ्जय बोले— हे राजन् ! युद्धमें शोभायमान् वीर राजा शाल्वके मारे जानेपर तुम्हारी सेना भागने लगी, और इस प्रकार कांपने लगी, जैसे आंधी चलनेसे महान् वृक्ष ॥ १ ॥

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कृतवर्मा महारथः ।
दधार समरे शूरः शत्रुसैन्यं महाबलः ॥ २ ॥
अपनी सेनाको भागते देख महारथी महाबलवान् शूर कृतवर्मा पाण्डवोंकी सेनासे युद्ध करनेको चले ॥ २ ॥

संनिवृत्तास्तु ते शूरा दृष्ट्वा सात्वतमाहवे ।
शैलोपमं स्थितं राजन्कीर्यमाणं शरैर्युधि ॥ ३ ॥

राजन् ! सात्वतवंशी कृतवर्माको युद्धमें बाण चलाते और बाणोंकी वर्षासे ढक जानेपर भी पर्वतके समान अविचल खडा देख, तुम्हारी सेना भी फिर लौटी ॥ ३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
निवृत्तानां महाराज मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ४ ॥

हे महाराज ! तब लौटे हुए कौरवोंका पाण्डवोंके साथ फिर घोर युद्ध होने लगा; और दोनोंने मृत्युको आगे कर लिया ॥ ४ ॥

तत्राश्चर्यमभूद्युद्धं सात्वतस्य परैः सह ।
यदेको वारयामास पाण्डुसेनां दुरासदाम् ॥ ५ ॥

इस समय कृतवर्माने शत्रुओंके साथ अत्यंत विस्मयकारक युद्ध किया । क्योंकि अकेलेने ही पाण्डवोंकी सब भारी सेनाको रोक दिया ॥ ५ ॥

तेषामन्योन्यसुहृदां कृते कर्मणि दुष्करे ।
सिंहनादः प्रहृष्टानां दिवःस्पृक्सुमहानभूत् ॥ ६ ॥

तब कृतवर्माके यह दुष्कर कर्म करनेपर परस्पर हित चाहनेवाले कौरवोंके ओरके वीर प्रसन्न होकर गर्जने और युद्ध करने लगे । उनके सिंहनादका शब्द आकाशतक फैल गया ॥ ६ ॥

तेन शब्देन वित्रस्तान्पाञ्चालान्भरतर्षभ ।
शिनेर्नप्ता महाबाहुरन्वपद्यत सात्यकिः ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! पाञ्चाल सैनिक उस सिंहनादसे घबडा गये, तब अपनी सेनाको व्याकुल देख शिनीके पोते महाबाहु सात्यकि उन शत्रुओंका सामना करनेके लिये दौडे ॥ ७ ॥

स समासाद्य राजानं क्षेमधूर्तिं महाबलम् ।
सप्तभिर्निशितैर्बाणैरनयद्यमसादनम् ॥ ८ ॥

उन्होंने आते ही अपने सात तीक्ष्ण बाणोंसे महा बलवान् राजा क्षेमधूर्तिको मार डाला और यमलोकके भेज दिया ॥ ८ ॥

तमायान्तं महाबाहुं प्रवपन्तं शिताञ्शरान् ।
जवेनाभ्यपतद्धीमान्हार्दिक्यः शिनिपुंगवम् ॥ ९ ॥

शिनिपौत्र महाबाहु सात्यकिको अपनी ओर आते और तीक्ष्ण बाण वर्षाते देख बुद्धिमान् कृतवर्मा उनकी ओर वेगसे दौडे ॥ ९ ॥

तौ सिंहाविव नर्दन्तौ धन्विनौ रथिनां वरौ।
अन्योन्यमभ्यधावेतां शस्त्रप्रवरधारिणौ ॥ १० ॥

तब ये दोनों उत्तम शस्त्र धारण करनेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ, धनुर्धर वृष्णिवंशी वीर सात्यकि और कृतवर्मा सिंहके समान गर्जना करते तेज बाण चलाते हुए परस्पर घोर युद्ध करने लगे ॥१०॥

पाण्डवाः सह पाञ्चालैर्योधाश्चान्ये नृपोत्तमाः।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ ११ ॥

तब पाञ्चालों सहित पाण्डव और दूसरे सब श्रेष्ठ नरेश योद्धा इन दोनों पुरुषसिंहोंका युद्ध देखने लगे ॥ ११ ॥

नाराचैर्वत्सदन्तैश्च वृष्ण्यन्धकमहारथौ।
अभिजघ्नतुरन्योन्यं प्रहृष्टाविव कुञ्जरौ ॥ १२ ॥

तब वे दोनों वृष्णि और अन्धकवंशीय महारथी मतवाले हाथियोंके समान प्रसन्न होकर परस्पर नाराच और वत्सदन्त बाण वर्षाने लगे ॥ १२ ॥

चरन्तौ विविधान्मार्गान्हार्दिक्यशिनिपुङ्गवौ।
मुहुरन्तर्दधाते तौ बाणवृष्ट्या परस्परम् ॥ १३ ॥

कृतवर्मा और सात्यकि दोनों अपने अपने रथोंकी अनेक प्रकारकी गतियोंसे घूमते थे, कभी परस्पर बाणोंमें छिप जाते थे और कभी प्रकट हो जाते थे ॥ १३ ॥

चापवेगबलोद्धूतान्मार्गणान्वृष्णिसिंहयोः।
आकाशे समपश्याम पतंगानिव शीघ्रगान् ॥ १४ ॥

उस समय हमने दोनों यदुवंशी वीरोंके धनुषके वेग और बलसे चलाये हुए शीघ्रगामी बाण आकाशमें टीडीदलके समान घूमते देखे ॥ १४ ॥

तमेकं सत्यकर्माणमासाद्य हृदिकात्मजः।
अविध्यन्निशितैर्बाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १५ ॥

तब कृतवर्माने सत्यपराक्रमी सात्यकिके पास पहुंचकर उनको एक बाण मारा और फिर चार तीक्ष्ण बाणोंसे चारों घोडोंको मार डाला ॥ १५ ॥

स दीर्घबाहुः संक्रुद्धस्तोत्त्रार्दित इव द्विपः।
अष्टभिः कृतवर्माणमविध्यत्परमेषुभिः ॥ १६ ॥

तब महाबाहु सात्यकिको ऐसा क्रोध हुआ जैसे अंकुश लगनेसे हाथीको। तब उन्होंने कृतवर्माको आठ उत्तम बाण मारे ॥ १६ ॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः कृतवर्मा शिलाशितैः ।
सात्यकिं त्रिभिराहत्य धनुरेकेन चिच्छिदे ॥ १७ ॥
तब कृतवर्माने भी कानतक धनुष खींचकर शिलापर तीक्ष्ण किए हुए तीन बाणोंसे सात्यकिको मारकर विद्ध किया और एकसे उनका धनुष काट दिया ॥ १७ ॥

निकृत्तं तद्धनुःश्रेष्ठमपास्य शिनिपुंगवः ।
अन्यदादत्त वेगेन शैनेयः सशरं धनुः ॥ १८ ॥
तब शिनिश्रेष्ठ सात्यकिने उस कटे हुए उत्तम धनुषको फेंककर, शीघ्र दूसरा बाणसहित धनुष हाथमें लिया ॥ १८ ॥

तदादाय धनुःश्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम् ।
आरोप्य च महावीर्यो महाबुद्धिर्महाबलः ॥ १९ ॥
तब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ, महापराक्रमी, महाबुद्धिमान् और महाबलवान् सात्यकिने उस श्रेष्ठ धनुषको लेकर उसपर बाण चढाया ॥ १९ ॥

अमृष्यमाणो धनुषश्छेदनं कृतवर्मणा ।
कुपितोऽतिरथः शीघ्रं कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ २० ॥
कृतवर्मासे अपने धनुषका काटा जाना सहन न करके उस अतिरथीने महाक्रोध करके शीघ्र ही कृतवर्माकी ओर धावा किया ॥ २० ॥

ततः सुनिशितैर्बाणैर्दशभिः शिनिपुंगवः ।
जघान सूतमश्वांश्च ध्वजं च कृतवर्मणः ॥ २१ ॥
तब दस अत्यंत तेज बाणोंसे शिनिश्रेष्ठ सात्यकिने कृतवर्माके सारथि, ध्वजा और घोडोंको नष्ट किया ॥ २१ ॥

ततो राजन्महेष्वासः कृतवर्मा महारथः ।
हताश्वसूतं संप्रेक्ष्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ २२ ॥
राजन् ! तदनंतर महान् धनुर्धारी महारथी कृतवर्माने अपने सुवर्णभूषित रथको घोडे और सारथिसे विना देख ॥ २२ ॥

रोषेण महताविष्टः शूलमुद्यम्य मारिष ।
चिक्षेप भुजवेगेन जिघांसुः शिनिपुंगवम् ॥ २३ ॥
अत्यंत क्रुद्ध होकर, हे मारिष ! शिनिश्रेष्ठ सात्यकिको मारनेके लिए भाला उठाकर अपने बाहुओंके वेगसे चलाया ॥ २३ ॥

तच्छूलं सात्वतो ह्याजौ निर्भिद्य निशितैः शरैः ।
चूर्णितं पातयामास मोहयन्निव माधवम् ।
ततोऽपरेण भल्लेन हृद्येनं समताडयत् ॥ २४ ॥

तब युद्धमें सात्यकिने उस भालेको मार्गहीमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काटकर चूरा करके पृथ्वी-पर गिरा दिया, तब कृतवर्मा घबडाने लगे । फिर कृतवर्माकी छातीमें दूसरा एक तेज भल्ल बाण मारा ॥ २४ ॥

स युद्धे युयुधानेन हताश्वो हतसारथिः ।
कृतवर्मा कृतास्त्रेण धरणीमन्वपद्यत ॥ २५ ॥

युयुधानसे घोडों और सारथिसे रहित किये हुए कृतवर्मा युद्धमें रथसे नीचे उतरे, और जमीनपर खडे हो गये ॥ २५ ॥

तस्मिन्सात्यकिना वीरे द्वैरथे विरथीकृते ।
समपद्यत सर्वेषां सैन्यानां सुमहद्भयम् ॥ २६ ॥

उस रथ युद्धमें उनको रथहीन और सात्यकिसे हारा हुआ देख, तुम्हारे सब वीर डरने लगे ॥ २६ ॥

पुत्रस्य तव चात्यर्थं विषादः समपद्यत ।
हतसूते हताश्वे च विरथे कृतवर्मणि ॥ २७ ॥

कृतवर्माके घोडे और सारथि मारे जाकर जब वे रथहीन हो गये, तब विशेष कर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनको बडा दुःख हुआ ॥ २७ ॥

हताश्वं च समालक्ष्य हतसूतमरिन्दमम् ।
अभ्यधावत्कृपो राजञ्जिघांसुः शिनिपुंगवम् ॥ २८ ॥

राजन् ! घोडों और सारथिके मारे जानेपर शत्रुदमन कृतवर्माको रथहीन देखकर कृपाचार्य शिनिश्रेष्ठ सात्यकिको मारनेकी इच्छासे दौडे ॥ २८ ॥

तमारोप्य रथोपस्थे मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
अपोवाह महाबाहुस्तूर्णमायोधनादपि ॥ २९ ॥

और उन महाबाहुको अपने रथपर बिठलाकर सब धनुषधारियोंके देखते देखते युद्धसे वे शीघ्रही हटा ले गये ॥ २९ ॥

शैनेयेऽधिष्ठिते राजन्विरथे कृतवर्मणि ।
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ॥ ३० ॥

राजन् ! कृतवर्माको रथहीन होकर भागते और सात्यकिको युद्धमें खडा देख, दुर्योधनकी सब सेना फिर विमुख होकर भागने लगी ॥ ३० ॥

तत्परे नावबुध्यन्त सैन्येन रजसावृते ।
तावकाः प्रद्रुता राजन्दुर्योधनमृते नृपम् ॥ ३१ ॥

परन्तु सैनिकोंसे ऐसी धूल उडी कि शत्रुओंकी सेना तुम्हारी भागती सेनाको जान न सकी। राजन् ! राजा दुर्योधनको छोड और सब सेना भागने लगी ॥ ३१ ॥

दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात् ।
जवेनाभ्यपतत्तूर्णं सर्वांश्चैको न्यवारयत् ॥ ३२ ॥

अपनी सेनाको निकटसे भागती देख राजा दुर्योधनने बडे जोरसे शत्रुओंपर धावा किया और अकेले ही शीघ्रतासे उनको रोकने लगे ॥ ३२ ॥

पाण्डूंश्च सर्वान्संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
शिखण्डिनं द्रौपदेयान्पाञ्चालानां च ये गणाः ॥ ३३ ॥

वह महाक्रोधित होकर सब पांचों पाण्डव, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पांचों पुत्र, सब पाञ्चाल ॥ ३३ ॥

केकयान्सोमकांश्चैव पाञ्चालांश्चैव मारिष ।
असम्भ्रमं दुराधर्षः शितैरस्त्रैरवारयत् ॥ ३४ ॥

मारिष ! सब केकय, सब सोमक और सब पाञ्चालोंको बिना किसी घबराहटसे दुर्धर्ष दुर्योधनने अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंसे रोक दिया ॥ ३४ ॥

अतिष्ठदाहवे यत्तः पुत्रस्तव महाबलः ।
यथा यज्ञे महानग्निर्मन्त्रपूतः प्रकाशयन् ॥ ३५ ॥

उस समय अकेले ही तुम्हारे महापराक्रमी पुत्र दुर्योधन सावधान होकर निर्भय चित्तसे घोर युद्ध करने लगे। जैसे यज्ञशालामें मन्त्रोंसे दी हुई आहुति जलाती हुई अग्नि चारों ओर प्रकाशित दीखती हैं, ऐसे ही उस युद्धमें राजा दुर्योधन दीखने लगे ॥ ३५ ॥

तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवाहवे ।
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्यः समपद्यत ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ १०१० ॥

उस समय युद्धमें उनके आगे शत्रुपक्षका कोई वीर इस प्रकार नहीं ठहरता था जैसे यमराजके आगे मनुष्य । तब थोडे ही समयमें कृतवर्मा दूसरे रथमें बैठकर युद्धमें आगये ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ १०१० ॥

: २१ :

सञ्जय उवाच

पुत्रस्तु ते महाराज रथस्थो रथिनां वरः ।
दुरुत्सहो बभौ युद्धे यथा रुद्रः प्रतापवान् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! उस समय रथियोंमें श्रेष्ठ तुम्हारा महावीर पुत्र दुर्योधन रथमें बैठे युद्धमें ऐसे दुःसह दीखते थे, जैसे शिव ॥ १ ॥

तस्य बाणसहस्रैस्तु प्रच्छन्ना ह्यभवन्मही ।
परांश्च सिषिचे बाणैर्धाराभिरिव पर्वतान् ॥ २ ॥

राजा दुर्योधन शत्रुओंपर इस प्रकार सहस्रों बाण चला रहे थे कि उधरकी सारी भूमि बाणोंसे आच्छादित हो गई, जैसे मेघ पर्वतोंपर जल बरसाते हैं ॥ २ ॥

न च सोऽस्ति पुमान्कश्चित्पाण्डवानां महाहवे ।
हयो गजो रथो वापि योऽस्य बाणैरविक्षतः ॥ ३ ॥

सब युद्धभूमिमें दुर्योधनके बाण ही बाण दीखने लगे । उस समय पाण्डवोंकी सेनामें कोई मनुष्य, घोडा, हाथी अथवा रथ ऐसा न बचा था जिसके शरीरमें दुर्योधनका बाण न लगा हो और विद्ध न हुआ हो ॥ ३ ॥

यं यं हि समरे योधं प्रपश्यामि विशां पते ।
स स बाणैश्चितोऽभूद्वै पुत्रेण तव भारत ॥ ४ ॥

पृथ्वीपते ! भारत ! उस समय हम जिस योद्धाको देखते थे उसे ही तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके बाणोंसे व्याकुल पाते थे ॥ ४ ॥

यथा सैन्येन रजसा समुद्धूतेन वाहिनी ।
प्रत्यदृश्यत संछन्ना तथा बाणैर्महात्मनः ॥ ५ ॥

जैसे चलती हुई सेनाकी धूलसे मनुष्य छा जाते हैं वैसे ही महात्मा दुर्योधनके बाणोंसे वह सेना छा गयी दिखाई देती थी ॥ ५ ॥

बाणभूतामपश्याम पृथिवीं पृथिवीपते ।
दुर्योधनेन प्रकृतां क्षिप्रहस्तेन धन्विना ॥ ६ ॥

पृथ्वीपते ! उस समय महाधनुषधारी शीघ्र बाण चलानेवाले राजा दुर्योधनके बाणोंसे पृथ्वी भर गई ऐसा हमने देखा ॥ ६ ॥

तेषु योधसहस्रेषु तावकेषु परेषु च ।
एको दुर्योधनो ह्यासीत्पुमानिति मतिर्मम ॥ ७ ॥

अकेले दुर्योधन ही तुम्हारे और शत्रुपक्षके हजारों योद्धाओंमें वीर पुरुष हैं, ऐसी मेरी धारणा है ॥ ७ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य विक्रमम् ।
यदेकं सहिताः पार्था नात्यवर्तन्त भारत ॥ ८ ॥

भारत ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन अकेले ही सबसे लडते रहे यह उनका अद्भुत पराक्रम देखकर हम सब लोग आश्चर्य करने लगे, क्योंकि सब पाण्डव उस अकेलेको परास्त नहीं कर सके ॥ ८ ॥

युधिष्ठिरं शतेनाजौ विव्याध भरतर्षभ ।
भीमसेनं च सप्तत्या सहदेवं च सप्तभिः ॥ ९ ॥

भरतर्षभ ! दुर्योधनने युद्धमें युधिष्ठिरको सौ, भीमसेनको सत्तर, सहदेवको सात बाणोंसे विद्ध किया ॥ ९ ॥

नकुलं च चतुःषष्ट्या धृष्टद्युम्नं च पञ्चभिः ।
सप्तभिर्द्रौपदेयांश्च त्रिभिर्विव्याध सात्यकिम् ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सहदेवस्य मारिष ॥ १० ॥

नकुलको चौसठ, धृष्टद्युम्नको पांच, द्रौपदीके पुत्रोंको सात सात और सात्यकिको तीन बाणोंसे विद्ध किया । मारिष ! फिर एक भल्ल बाणसे सहदेवका धनुष काट दिया ॥ १० ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
अभ्यधावत राजानं प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः ।
ततो दुर्योधनं संख्ये विव्याध दशभिः शरैः ॥ ११ ॥

तब प्रतापी माद्रीपुत्र सहदेवने उस कटे हुए धनुषको फेंक कर शीघ्रता सहित दूसरा बडा धनुष लेकर धावा करके युद्धमें दुर्योधनके शरीरमें दस तेज बाण मारे ॥ ११ ॥

नकुलश्च ततो वीरो राजानं नवभिः शरैः ।
घोररूपैर्महेष्वासो विव्याध च ननाद च ॥ १२ ॥

ऐसे ही महाधनुर्धर वीर नकुल भी राजा दुर्योधनके शरीरमें नौ घोर बाण मार सिंहके समान गर्जने लगे ॥ १२ ॥

सात्यकिश्चापि राजानं शरेणानतपर्वणा ।
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या धर्मराजश्च सप्तभिः ।
अशीत्या भीमसेनश्च शरै राजानमार्दयत् ॥ १३ ॥

सात्यकिने भी नतपर्ववाले एक बाणसे, द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, धर्मराज युधिष्ठिरने सात और अस्सी बाण भीमसेनने मारे ॥ १३ ॥

+

समन्तात्कीर्यमाणस्तु बाणसङ्घैर्महात्मभिः ।
न चचाल महाराज सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ १४ ॥

महाराज ! और भी महात्मा वीरोंने चारों ओरसे सब सेनाके देखते दुर्योधनको बाणोंसे छा दिया, परन्तु दुर्योधन कुछ न घबडाये ॥ १४ ॥

लाघवं सौष्ठवं चापि वीर्यं चैव महात्मनः ।
अति सर्वाणि भूतानि ददृशुः सर्वमानवाः ॥ १५ ॥

उस महात्मा वीरका हस्तलाघव शस्त्र चलानेकी सुंदर रीति और शौर्य— सब लोगोंने सब प्राणियोंसे बढकर देखा ॥ १५ ॥

धार्तराष्ट्रास्तु राजेन्द्र यात्वा तु स्वल्पमन्तरम् ।
अपश्यमाना राजानं पर्यवर्तन्त दंशिताः ॥ १६ ॥

राजेन्द्र ! तुम्हारे वीर थोडासा भी छिद्र न देखते हुए कवच आदि धारण करके राजा दुर्योधनको घेरकर खडे हो गये ॥ १६ ॥

तेषामापततां घोरस्तुमुलः समजायत ।
क्षुब्धस्य हि समुद्रस्य प्रावृट्काले यथा निशि ॥ १७ ॥

तब आक्रमणकारी दोनोंका महाघोर और भयंकर शब्द होने लगा, जैसे वर्षाकालमें प्रक्षुब्ध हुए समुद्रका रात्रीके समय होता है ॥ १७ ॥

समासाद्य रणे ते तु राजानमपराजितम् ।
प्रत्युद्ययुर्महेष्वासाः पाण्डवानाततायिनः ॥ १८ ॥

तब इधरसे भी वे महाधनुर्धर वीर समरमें राजा दुर्योधनके पास पहुंचकर आततायी पाण्डवोंसे युद्ध करनेको चले ॥ १८ ॥

भीमसेनं रणे क्रुद्धं द्रोणपुत्रो न्यवारयत् ।
ततो बाणैर्महाराज प्रमुक्तैः सर्वतोदिशम् ।
नाज्ञायन्त रणे वीरा न दिशः प्रदिशस्तथा ॥ १९ ॥

महाराज ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने युद्धमें क्रुद्ध हुए भीमसेनको चारों ओरसे चलाये हुए अनेक प्रकारके बाणोंसे तब रोक दिया, उस समय युद्धमें बाणोंके मारे हमें यह नहीं जान पडता था, कि कौन किस पक्षका वीर है, और दिशा, उपदिशा कौनसी हैं ? ॥ १९ ॥

तावुभौ क्रूरकर्माणावुभौ भारत दुःसहौ ।
घोररूपमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
त्रासयन्तौ जगत्सर्वं ज्याक्षेपविहतत्वचौ ॥ २० ॥

भारत ! वे दोनों वीर महापराक्रमी क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले और दुःसह थे । इसलिये एक दूसरेके मारनेका यत्न करके घोर युद्ध करने लगे । दोनोंकी धनुषके शब्दसे सब जगत् भयभीत होने लगा, धनुषकी डोरी खींचनेसे उनके हाथोंकी त्वचा कठीन हो गयी थी ॥२०॥

शकुनिस्तु रणे वीरो युधिष्ठिरमपीडयत् ।
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सुबलस्य सुतो विभुः ।
नादं चकार बलवान्सर्वसैन्यानि कम्पयन् ॥ २१ ॥

उसी समय वीर शकुनि युधिष्ठिरकी ओर युद्धमें बाण चलाकर पीडा देने लगे और सुबलके उस प्रबल पुत्रने महाराज युधिष्ठिरके चारों घोडोंको मारकर सब सेनाको कंपित करते हुए वे बलवान् सिंहके समान गर्जे ॥ २१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरं राजानमपराजितम् ।
अपोवाह रथेनाजौ सहदेवः प्रतापवान् ॥ २२ ॥

तब प्रतापी सहदेव अपराजित वीर राजा युधिष्ठिरको अपने रथपर बिठाकर युद्धसे दूर ले गये ॥ २२ ॥

अथान्यं रथमास्थाय धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
शकुनिं नवभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
ननाद च महानादं प्रवरः सर्वधन्विनाम् ॥ २३ ॥

फिर धर्मराज युधिष्ठिरने दूसरे रथमें बैठकर शकुनिके शरीरमें पहले नौ बाण मारकर, पांच और मारे और उनको बिद्ध किया और सब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर सिंहके समान गर्जने लगे ॥ २३ ॥

तद्युद्धमभवच्चित्रं घोररूपं च मारिष ।
ईक्षितृप्रीतिजननं सिद्धचारणसेवितम् ॥ २४ ॥

मारिष ! तब शकुनि और युधिष्ठिरका विचित्र और घोर युद्ध होने लगा । उस युद्धको देखकर सिद्ध, चारण और गन्धर्व प्रसन्न होकर दोनोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ २४ ॥

उलूकस्तु महेष्वासं नकुलं युद्धदुर्मदम् ।
अभ्यद्रवदमेयात्मा शरवर्षैः समन्ततः ॥ २५ ॥

महावीर शकुनिके पुत्र अमेयात्मा उलूक महाधनुर्धर महापराक्रमी नकुलकी ओर दौडे और चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

तथैव नकुलः शूरः सौबलस्य सुतं रणे।
शरवर्षेण महता समन्तात्पर्यवारयत् ॥ २६ ॥

और शूर नकुल भी शकुनिके पुत्रकी ओर दौडे और उसको भारी बाणवर्षासे सब ओरसे रोक दिया ॥ २६ ॥

तौ तत्र समरे वीरौ कुलपुत्रौ महारथौ।
योधयन्तावपश्येतां परस्परकृतागसौ ॥ २७ ॥

दोनों उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए महारथी क्षत्रिय वीर परस्पर किये हुए आक्रमणका प्रतिकार करके घोर युद्ध करने लगे, यह हमने देखा ॥ २७ ॥

तथैव कृतवर्मा तु शैनेयं शत्रुतापनम्।
योधयञ्शुशुभे राजन्बलं शक्र इवाहवे ॥ २८ ॥

वे दोनों एक दूसरेके बाणोंको काटकर अपनी अपनी विजयका यत्न करने लगे, उधर शत्रुतापन सात्यकि कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए, युद्धमें बली और इन्द्रके समान शोभित होने लगे ॥ २८ ॥

दुर्योधनो धनुश्छित्त्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध निशितैः शरैः ॥ २९ ॥

दुर्योधनने एक बाणसे युद्धमें धृष्टद्युम्नका धनुष काट दिया, और धनुष कट जानेपर उनके शरीरमें अनेक तीक्ष्ण बाण मारे ॥ २९ ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि समरे प्रगृह्य परमायुधम्।
राजानं योधयामास पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ ३० ॥

धृष्टद्युम्नने भी दूसरा उत्तम धनुष लेकर दुर्योधनसे समरमें सब धनुर्धरोंके देखते घोर युद्ध किया ॥ ३० ॥

तयोर्युद्धं महच्चासीत्संग्रामे भरतर्षभ।
प्रभिन्नयोर्यथा सक्तं मत्तयोर्वरहस्तिनोः ॥ ३१ ॥

जैसे मद बहानेवाले दो मतवाले हाथी घोर युद्ध करते हैं, ऐसे ही युद्धमें इन दोनोंका महा-भयानक युद्ध हुआ ॥ ३१ ॥

गौतमस्तु रणे क्रुद्धो द्रौपदेयान्महाबलान्।
विव्याध बहुभिः शूरः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३२ ॥

शूर कृपाचार्यने समरमें क्रुद्ध होकर महाबलवान् द्रौपदीके पुत्रोंको अनेक नतपर्व बाणोंसे विद्ध कर दिया ॥ ३२ ॥

तस्य तैरभवद्युद्धमिन्द्रियैरिव देहिनः ।
घोररूपमसंवार्यं निर्मर्यादमतीव च ॥ ३३ ॥

जैसे पांचों इन्द्रियोंके सङ्ग देहधारी जीव लडता है ऐसे ही कृपाचार्य और द्रौपदीके पुत्रोंका महाघोर युद्ध हुआ । वह युद्ध भयंकर, अनिवार्य और अमर्यादित हुआ ॥ ३३ ॥

ते च तं पीडयामासुरिन्द्रियाणीव बालिशम् ।
स च तान्प्रतिसंरब्धः प्रत्ययोधयदाहवे ॥ ३४ ॥

जैसे मूर्खको इन्द्रियां व्याकुल कर देती हैं, वैसे ही उन पांचोंने कृपाचार्यको व्याकुल कर दिया, परन्तु कृपाचार्य भी क्रुद्ध होकर युद्धक्षेत्रमें उन सबसे युद्ध कर रहे थे ॥ ३४ ॥

एवं चित्रमभूद्युद्धं तस्य तैः सह भारत ।
उत्थायोत्थाय हि यथा देहिनामिन्द्रियैर्विभो ॥ ३५ ॥

हे भारत ! नृप ! वे अकेले ही उन पांचों द्रौपदीपुत्रोंके सङ्ग विचित्र युद्ध करते रहे, जैसे देहधारी जीव बार बार उठकर विषयोंकी ओर प्रवृत्त होनेवाली इन्द्रियोंको जीतनेका उपाय करता है, वैसे ही कृपाचार्य भी उनके जीतनेका उपाय करने लगे ॥ ३५ ॥

नराश्चैव नरैः सार्धं दन्तिनो दन्तिभिस्तथा ।
हया हयैः समासक्ता रथिनो रथिभिस्तथा ।
संकुलं चाभवद्भूयो घोररूपं विशां पते ॥ ३६ ॥

पृथ्वीपते ! पैदल पैदलोंसे, हाथीपर चढे हाथीपर चढोंसे, घुडचढे घुडचढोंसे और रथी रथियोंसे सामना करने लगे । फिर उनमें अत्यंत घोर युद्ध होने लगा ॥ ३६ ॥

इदं चित्रमिदं घोरमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
युद्धान्यासन्महाराज घोराणि च बहूनि च ॥ ३७ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार सब रीतिसे विचित्र घोर, रौद्र और भयानक युद्ध हुआ ॥ ३७ ॥

ते समासाद्य समरे परस्परमरिन्दमाः ।
विव्यधुश्चैव जघ्नुश्च समासाद्य महाहवे ॥ ३८ ॥

शत्रुदमन करनेवाले वे वीर एक दूसरेके पास जाकर परस्पर सामना करते हुए गर्जने लगे और परस्पर मारने लगे ॥ ३८ ॥

तेषां शस्त्रसमुद्भूतं रजस्तीव्रमदृश्यत ।
प्रवातेनोद्धतं राजन्धावद्भिश्चाश्वसादिभिः ॥ ३९ ॥

राजन् ! उनके शस्त्रोंसे, वायुसे और घुडसवारोंके दौडनेसे उडायी गयी भयंकर धूल चारों ओर व्याप्त दिखाई देने लगी ॥ ३९ ॥

रथनेमिसमुद्भूतं निःश्वासैश्चापि दन्तिनाम् ।
रजः सन्ध्याभ्रकपिलं दिवाकरपथं ययौ ॥ ४० ॥

रथोंके पहियोंके वायु और हाथियोंके श्वाससे उडकर धूल सन्ध्या समयके मेघोंके समान सूर्यतक पहुंच गई ॥ ४० ॥

रजसा तेन संपृक्ते भास्करे निष्प्रभीकृते ।
संछादिताभवद्भूमिस्ते च शूरा महारथाः ॥ ४१ ॥

उस धूलके संपर्कसे सूर्यका तेज घट गया, सब भूमि और महारथी शूरवीर भी छा गये ॥४१॥

मुहूर्तादिव संवृत्तं नीरजस्कं समन्ततः ।
वीरशोणितसिक्तायां भूमौ भरतसत्तम ।
उपाशाम्यत्ततस्तीव्रं तद्रजो घोरदर्शनम् ॥ ४२ ॥

भरतश्रेष्ठ! फिर थोडे समयके पश्चात् वीरोंका रुधिर बहनेसे पृथ्वी सिंच उठी और सब ओरकी धूल बैठ गई और रणक्षेत्र स्वच्छ हो गया । यह घोर स्वरूपी तीव्र धूल शान्त हुई ॥ ४२ ॥

ततोऽपश्यं महाराज द्वंद्वयुद्धानि भारत ।
यथाप्राग्र्यं यथाज्येष्ठं मध्याह्ने वै सुदारुणे ।
वर्मणां तत्र राजेन्द्र व्यदृश्यन्तोज्ज्वलाः प्रभाः ॥ ४३ ॥

भारत ! तब मैंने फिर देखा कि चारों ओर घोर द्वंद्व युद्ध हो रहे हैं । हे राजेन्द्र ! उस दो पहरके दारुण समयमें अपनी प्रमुखता और ज्येष्ठताके अनुसार होनेवाले अनेक द्वंद्व युद्ध देखने लगा । चारों ओर पडे हुए वीरोंके कवचोंकी प्रभा उज्ज्वल दिखाई देती थी ॥४३॥

शब्दः सुतुमुलः संख्ये शराणां पततामभूत् ।
महावेणुवनस्येव दह्यमानस्य सर्वतः ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वण्येकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ १०५४ ॥

जैसे पर्वतपर जलते हुए बडे बांसोंके वनमें चटकनेका शब्द होता है, ऐसे ही युद्धमें बाणोंके चलनेका तुमुल शब्द सुनाई देता था ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ १०५४ ॥

: २२ :

सञ्जय उवाच
वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयानके ।
अभज्यत बलं तत्र तव पुत्रस्य पाण्डवैः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! जब ऐसा घोर भयानक युद्ध होने लगा, तब पाण्डवोंने तुम्हारे पुत्रकी सेना इधर उधर भगा दी ॥ १ ॥

तांस्तु यत्नेन महता संनिवार्य महारथान् ।
पुत्रस्ते योधयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २ ॥

तब तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन भागते हुए महारथियोंको बहुत यत्नसे रोक कर पाण्डवोंकी सेनासे युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

निवृत्ताः सहसा योधास्तव पुत्रप्रियैषिणः ।
संनिवृत्तेषु तेष्वेवं युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ ३ ॥

तब तुम्हारी ओरके और भी वीर जो तुम्हारे पुत्रकी विजय चाहते थे लौटे और लौटनेपर उन सबमें घोर युद्ध होने लगा ॥ ३ ॥

तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम् ।
परेषां तव सैन्ये च नासीत्कश्चित्पराङ्मुखः ॥ ४ ॥

तुम्हारे और शत्रुओंके वीरोंका यह युद्ध देवासुर संग्रामके समान हुआ । उस समय तुम्हारे और शत्रुओंके दोनों ओरसे कोई बिमुख होकर भागा नहीं ॥ ४ ॥

अनुमानेन युध्यन्ते संज्ञाभिश्च परस्परम् ।
तेषां क्षयो महानासीद्युध्यतामितरेतरम् ॥ ५ ॥

उस समय दोनों ओरके वीर केवल अनुमान और चिन्होंसे परस्पर युद्ध कर रहे थे, अर्थात् कोई किसीको पहचान नहीं सकता था, परस्पर युद्ध करनेवाले उनका भारी विनाश हो गया ॥ ५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा क्रोधेन महता युतः ।
जिगीषमाणः संग्रामे धार्तराष्ट्रान्सराजकान् ॥ ६ ॥

तब राजा युधिष्ठिरको महाक्रोध हुआ, और संग्राममें राजाओंके समेत तुम्हारे पुत्रोंको जीतनेके लिये ॥ ६ ॥

त्रिभिः शारद्वतं विद्ध्वा रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
चतुर्भिर्निजघानाश्वान्कल्याणान्कृतवर्मणः ॥ ७ ॥

कृपाचार्यके शरीरमें शिलापर तेज किये हुए सोनेके पंखवाले तीन बाण मारकर विद्ध किया और चार नाराच बाणोंसे कृतवर्माके चारों घोडोंको मार डाला ॥ ७ ॥

अश्वत्थामा तु हार्दिक्यमपोवाह यशस्विनम् ।
अथ शारद्वतोऽष्टाभिः प्रत्यविध्यद्युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥

तब यशस्वी कृतवर्माको अश्वत्थामा अपने रथपर चढाकर दूर ले गया और तदनन्तर कृपाचार्यने भी राजा युधिष्ठिरको आठ बाण मारे और घायल किया ॥ ८ ॥

ततो दुर्योधनो राजा रथान्सप्तशतान्रणे ।
प्रेषयद्यत्र राजासौ धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

तब राजा दुर्योधनने जहां धर्मपुत्र युधिष्ठिर थे वहां उनसे लडनेके लिये सात सौ रथ भेजे ॥ ९ ॥

ते रथा रथिभिर्युक्ता मनोमारुतरंहसः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे कौन्तेयस्य रथं प्रति ॥ १० ॥

वे वायु और मनके समान तेज चलनेवाले रथ रथि वीरोंके सहित रणभूमिमें कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके रथकी ओर दौडे ॥ १० ॥

ते समन्तान्महाराज परिवार्य युधिष्ठिरम् ।
अदृश्यं सायकैश्चक्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ ११ ॥

महाराज ! तब उनमें बैठे वीर रथि युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर बाण चलाने लगे। राजा युधिष्ठिर उनके बाणोंसे ऐसे छिप गये, जैसे सूर्य मेघोंमें ॥ ११ ॥

नामृष्यन्त सुसंरब्धाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः ।
रथैरग्र्यजवैर्युक्तैः किङ्किणीजालसंवृतैः ।
आजग्मुरभिरक्षन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ १२ ॥

राजा युधिष्ठिरको घिरा देख अत्यंत क्रुद्ध हुए शिखण्डी आदि रथी वह सहन न कर सके और वे घंटियोंकी जालीसे और श्रेष्ठ वेगवान अश्वोंसे युक्त रथोंद्वारा कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये दौडे ॥ १२ ॥

ततः प्रववृते रौद्रः संग्रामः शोणितोदकः ।
पाण्डवानां कुरूणां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ १३ ॥

तब फिर पाण्डवों और कौरवोंका अत्यंत घोर युद्ध होने लगा। उसमें पानीकी तरह रुधिर बह चला, वह युद्ध यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था ॥ १३ ॥

रथान्सप्तशतान्हत्वा कुरूणामाततायिनाम् ।
पाण्डवाः सह पाञ्चालैः पुनरेवाभ्यवारयन् ॥ १४ ॥

पाञ्चाल और पाण्डवोंने थोडे ही समयमें आततायी कौरवोंके उन सात सौ रथियोंका नाश कर दिया, और तुम्हारी सेनाको रोका ॥ १४ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीत्तव पुत्रस्य पाण्डवैः ।
न च नस्तादृशं दृष्टं नैव चापि परिश्रुतम् ॥ १५ ॥

जैसा उस समय तुम्हारे पुत्रका पाण्डवोंके साथ भारी युद्ध हुआ, ऐसा युद्ध मैंने कभी न देखा था और न सुना था ॥ १५ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे समन्ततः ।
वध्यमानेषु योधेषु तावकेष्वितरेषु च ॥ १६ ॥

इस सब ओरसे होनेवाले मर्यादारहित घोर युद्धमें तुम्हारे और शत्रुओंके दोनों ओरके वीरोंका नाश होने लगा ॥ १६ ॥

निनदत्सु च योधेषु शङ्खवर्यैश्च पूरितैः ।
उत्कृष्टैः सिंहनादैश्च गर्जितेन च धन्विनाम् ॥ १७ ॥

दोनों ओरके वीर गर्जने लगे । उत्तम शङ्ख बजाने लगे और धनुषोंपर टङ्कार देने लगे । धनुषधारीयोंकी पुकार, सिंहनाद और गर्जनाओंके साथ ॥ १७ ॥

अतिप्रवृद्धे युद्धे च छिद्यमानेषु मर्मसु ।
धावमानेषु योधेषु जयगृद्धिषु मारिष ॥ १८ ॥

हे मारिष ! जब वह संग्राम सीमाको उल्लंघन करने लगा, कहीं वीरोंके मर्मस्थल फाड जाने लगे । अपनी अपनी विजयके लिये वीर दौडने लगे ॥ १८ ॥

संहारे सर्वतो जाते पृथिव्यां शोकसम्भवे ।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां सीमन्तोद्धरणे तथा ॥ १९ ॥

इस घोर युद्धमें सब ओर शोकजनक संहार होने लगा, पृथ्वी भरकी अनेक उत्तम युवती स्त्रियां विधवा हुईं ॥ १९ ॥

निर्मर्यादे तथा युद्धे वर्तमाने सुदारुणे ।
प्रादुरासन्विनाशाय तदोत्पाताः सुदारुणाः ।
चचाल शब्दं कुर्वाणा सपर्वतवना मही ॥ २० ॥

सब मर्यादाओंका उल्लंघन करके अत्यंत दारुण युद्ध होने लगा, तब जगत्का नाश करनेवाले अनेक घोर उत्पात हुए, फिर उस पवित्र कुरुक्षेत्रमें क्षत्रियलोग सावधान होकर युद्ध करने लगे । उस समय वन और पर्वतोंके सहित भूमि भयानक शब्द करती हुई हिलने लगी ॥ २० ॥

सदण्डाः सोल्मुका राजञ्शीर्यमाणाः समन्ततः ।
उल्काः पेतुर्दिवो भूमावाहत्य रविमण्डलम् ॥ २१ ॥

राजन् ! आकाशसे जलती हुई दण्डके समान उल्का चारों ओरसे गिरी । आकाशसे सूर्यके मण्डलको आघात करके उल्काएं गिरने लगी ॥ २१ ॥

विष्वग्वाताः प्रादुरासन्नीचैः शर्करवर्षिणः ।
अश्रूणि मुमुचुर्नागा वेपथुश्चास्पृशद्भृशम् ॥ २२ ॥

सब ओर नीचे बालू और कंकड बरसानेवाली भयानक वायु चलने लगी, हाथि आंसू बहाने और थरथर कांपने लगे ॥ २२ ॥

+

एतान्घोराननादृत्य समुत्पातान्सुदारुणान् ।
पुनर्युद्धाय संमन्त्र्य क्षत्रियास्तस्थुरव्यथाः ।
रमणीये कुरुक्षेत्रे पुण्ये स्वर्गं यियासवः ॥ २३ ॥

इन सब घोर और दारुण अपशकुनोंका निरादर करके वीर क्षत्रिय सावधान होकर अव्यथित मनसे फिर भी युद्ध करने लगे और शत्रुओंको मारने लगे । उस रमणीय और पुण्यमय कुरुक्षेत्रमें स्वर्ग जानेकी इच्छावाले क्षत्रिय घोर युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत् ।
युध्यध्वमग्रतो यावत्पृष्ठतो हन्मि पाण्डवान् ॥ २४ ॥

तब गान्धारराज सुबलके पुत्र शकुनि अपने प्रधान वीरोंसे बोले, तुम लोग पाण्डवोंके आगे खडे हुए युद्ध किये जाओ और मैं पीछेसे जाकर नाश किये देता हूं ॥ २४ ॥

ततो नः सम्प्रयातानां मद्रयोधास्तरस्विनः ।
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्तापरे तथा ॥ २५ ॥

शकुनिके ऐसे वचन सुन हमारी ओरके मद्रदेशीय वेगवान् योद्धा और अन्य वीर प्रसन्न होकर गर्जने और हंसने लगे ॥ २५ ॥

अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्षा दुरासदाः ।
शरासनानि धुन्वन्तः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २६ ॥

तब पाण्डवोंकी ओरके दुर्धर्ष योद्धा भी फिर हमारे पास आकर, हमें अपना लक्ष्य बनाकर, धनुष हिलाते हुए हमारे ऊपर घोर बाण वर्षाने लगे ॥ २६ ॥

ततो हतं परैस्तत्र मद्रराजबलं तदा ।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा पुनरासीत्पराङ्मुखम् ॥ २७ ॥

क्षणभरमें शत्रुओंने मद्रराजकी सेनाका नाश कर दिया है, यह देख दुर्योधनकी सब सेना पुनः विमुख होकर इधर उधरको भाग चली ॥ २७ ॥

गान्धारराजस्तु पुनर्वाक्यमाह ततो बली ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ २८ ॥

अपनी सेनाको भागते देख बलवान् गान्धारराज शकुनि क्रोधकर फिर बोले, अरे अधर्मियों ! तुम लोग युद्ध छोडकर कहां भागे जाते हो ? लौटो और युद्ध करो, भागनेसे क्या होगा ? ॥ २८ ॥

अनीकं दशसाहस्रमश्वानां भरतर्षभ ।
आसीद्गान्धारराजस्य विमलप्रासयोधिनाम् ॥ २९ ॥

हे महाराज ! उस समय घोर प्राससे युद्ध करनेवाले दस सहस्र घुडसवार वीर गान्धारराज शकुनिके सङ्गमें थे ॥ २९ ॥

बलेन तेन विक्रम्य वर्तमाने जनक्षये ।
पृष्ठतः पाण्डवानीकमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः ॥ ३० ॥
उसी सेनाको सङ्गमें लेकर वीर शकुनि उस मनुष्य संहारकारी युद्धमें पाण्डवोंके पीछेसे जाकर, तीक्ष्ण बाण वर्षाने लगे ॥ ३० ॥

तदभ्रमिव वातेन क्षिप्यमाणं समन्ततः ।
अभज्यत महाराज पाण्डूनां सुमहद्बलम् ॥ ३१ ॥
महाराज ! तब वह पाण्डवोंकी बडी सेना इस प्रकार फट गई जैसे वायु लगनेसे सब ओरसे मेघ फट जाते हैं ॥ ३१ ॥

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात् ।
अभ्यचोदयदव्यग्रः सहदेवं महाबलम् ॥ ३२ ॥
तब राजा युधिष्ठिर अपनी सेना अपने पाससे ही भागती हुई देख, व्यग्रतासे महाबलवान् सहदेवसे बोले ॥ ३२ ॥

असौ सुबलपुत्रो नो जघनं पीड्य दंशितः ।
सेनां निसूदयत्येष पश्य पाण्डव दुर्मतिम् ॥ ३३ ॥
हे पाण्डव ! यह कवच धारण किया हुआ सुबलपुत्र सावधान होकर हमारी सेनाको पीछेसे पीडित करके सैनिकोंका नाश कर रहा है, तो इस दुर्बुद्धिको देखो ॥ ३३ ॥

गच्छ त्वं द्रौपदेयाश्च शकुनिं सौबलं जहि ।
रथानीकमहं रक्ष्ये पाञ्चालसहितोऽनघ ॥ ३४ ॥
हे अनघ ! तुम बहुत शीघ्र द्रौपदीके पुत्रोंके सहित दौडो और सुबलपुत्र शकुनिको मार डालो । मैं पाञ्चाल वीरोंके सहित इस रथ सेनाको नाश कर दूंगा ॥ ३४ ॥

गच्छन्तु कुञ्जराः सर्वे वाजिनश्च सह त्वया ।
पादाताश्च त्रिसाहस्राः शकुनिं सौबलं जहि ॥ ३५ ॥
हमारी आज्ञासे तुम्हारे सङ्ग सब हाथीसवार, सब घुडसवार और तीन सहस्र पैदल भी जांय और तुम हमारी आज्ञासे सुबलपुत्र शकुनिको मारो ॥ ३५ ॥

ततो गजाः सप्तशताश्चापपाणिभिरास्थिताः ।
पञ्च चाश्वसहस्राणि सहदेवश्च वीर्यवान् ॥ ३६ ॥
तब महाराजकी आज्ञा सुनते ही धनुषधारी वीरोंके सहित सात सौ हाथी, पांच सहस्र घोडे वीर्यवान् सहदेव ॥ ३६ ॥

पादाताश्च त्रिसाहस्रा द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
रणे ह्यभ्यद्रवंस्ते तु शकुनिं युद्धदुर्मदम् ॥ ३७ ॥
तीन सहस्र पैदल और पांचों द्रौपदीके पुत्र समरमें महायोद्धा शकुनिसे युद्ध करनेको चले ॥ ३७ ॥

ततस्तु सौबलो राजन्नभ्यतिक्रम्य पाण्डवान् ।
जघान पृष्ठतः सेनां जयगृध्रः प्रतापवान् ॥ ३८ ॥

राजन् ! इनको आते देख विजय चाहनेवाले प्रतापवान् सुबलपुत्र शकुनि भी पाण्डवोंके सामनेसे हटकर पीछेसे उनकी सेनाका नाश करने लगा ॥ ३८ ॥

अश्वारोहास्तु संरब्धाः पाण्डवानां तरस्विनाम् ।
प्राविशन्सौबलानीकमभ्यतिक्रम्य तान्रथान् ॥ ३९ ॥

तब वेगशाली पाण्डवोंके वीर घुडचढे योद्धा क्रुद्ध होकर कौरव रथियोंको लांघकर सुबलपुत्र शकुनिकी सेनामें हठसे घुसे ॥ ३९ ॥

ते तत्र सादिनः शूराः सौबलस्य महद्बलम् ।
गजमध्येऽवतिष्ठन्तः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ४० ॥

और वे सब घुडसवार वीर गजसेनाके बीचमें खडे हो गये और शकुनिकी महान् सेनापर सहस्रों बाण वर्षाने लगे ॥ ४० ॥

तदुद्यतगदाप्रासमकापुरुषसेवितम् ।
प्रावर्तत महद्युद्धं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ४१ ॥

हे राजन् ! उस युद्धमें महावीर गदा और प्रास आदि शस्त्र चलाने लगे । हे महाराज ! यह घोर युद्ध आपकी उस कपट सम्मतिहीका फल हुआ ॥ ४१ ॥

उपारमन्त ज्याशब्दाः प्रेक्षका रथिनोऽभवन् ।
न हि स्वेषां परेषां वा विशेषः प्रत्यदृश्यत ॥ ४२ ॥

दोनों ओरसे धनुषके रोदोंके शब्द बंद हो गये, रथी योद्धा प्रेक्षक हो गये । उस समय तुम्हारे या शत्रुपक्षके योद्धाओंमें कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती थी ॥ ४२ ॥

शूरबाहुविसृष्टानां शक्तीनां भरतर्षभ ।
ज्योतिषामिव संपातमपश्यन्कुरुपाण्डवाः ॥ ४३ ॥

भरतकुलसिंह ! वीरोंके हाथसे छूटी हुई साङ्गी शत्रुपर इस प्रकार छूटती थी, मानों आकाशसे सहस्रों बिजली गिर रहीं हैं, कौरव-पाण्डव वीरोंने यह देखा ॥ ४३ ॥

ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च तत्र तत्र विशां पते ।
संपतन्तीभिराकाशमावृतं बह्वशोभत ॥ ४४ ॥

प्रजापते ! चमकते और गिरते हुए निर्मल सहस्रों खड्गोंसे व्याप्त हुए आकाशकी अद्भुत शोभा दीखती थी ॥ ४४ ॥

प्रासानां पततां राजन्रूपमासीत्समन्ततः ।
शलभानामिवाकाशे तदा भरतसत्तम ॥ ४५ ॥

हे भरतकुलसिंह ! सब ओर चलते हुए प्रास ऐसे जान पडते थे मानो सहस्रों जुगुनूं आकाशमें चमक रहे हैं ॥ ४५ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा विप्रविद्धैर्नियन्तृभिः ।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४६ ॥

सैकडों और सहस्रों घोडे रुधिरमें भीगे वीरोंके सहित पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ४६ ॥

अन्योन्यपरिपिष्टाश्च समासाद्य परस्परम् ।
अविक्षताः स्म दृश्यन्ते वमन्तो रुधिरं मुखैः ॥ ४७ ॥

किसीके क्षतविक्षत हो मुखसे रुधिर गिरने लगा और कोई परस्पर सामना करके एक दूसरेसे पिसकर मर गए, ऐसा सब ओर दीखने लगा ॥ ४७ ॥

ततोऽभवत्तमो घोरं सैन्येन रजसा वृते ।
तानपाक्रमतोऽद्राक्षं तस्माद्देशादरिन्दमान् ।
अश्वान्राजन्मनुष्यांश्च रजसा संवृते सति ॥ ४८ ॥

उस समय दोनों सेनासे उडी हुई धूलसे सब ओर घोर अंधकार छा गया, और चारों ओर शत्रुदमन वीर इधर उधरको घबडाकर भागने लगे, ऐसा हमने देखा। राजन् ! धूलसे सब पृथ्वी भर जाते ही घोडों और मनुष्योंको भी हमने भागते हुए देखा ॥ ४८ ॥

भूमौ निपतिताश्चान्ये वमन्तो रुधिरं बहु ।
केशाकेशिसमालग्ना न शेकुश्चेष्टितुं जनाः ॥ ४९ ॥

कोई वीर पृथ्वीमें गिरा और किसीके मुखमे रुधिर बहने लगा, बहुतसे वीर परस्पर बाल पकडकर इतने परस्पर चिपक गये कि कोई चेष्टा नहीं कर सकते थे ॥ ४९ ॥

अन्योन्यमश्वपृष्ठेभ्यो विकर्षन्तो महाबलाः ।
मल्ला इव समासाद्य निजघ्नुरितरेतरम् ।
अश्वैश्च व्यपकृष्यन्त बहवोऽत्र गतासवः ॥ ५० ॥

कितने महाबलवान् योद्धा एक दूसरेको घोडेपरसे खींचने लगे, कोई मल्लयुद्ध करने लगे और एक दूसरेपर प्रहार करने लगे, कितने ही मरकर घोडोंसे इधर उधर खींचकर लेजा रहे थे ॥ ५० ॥

भूमौ निपतिताश्चान्ये बहवो विजयैषिणः ।
तत्र तत्र व्यदृश्यन्त पुरुषाः शूरमानिनः ॥ ५१ ॥

बहुतसे दूसरे विजयाभिलाषी और अभिमानी वीर पृथ्वीमें सब जगह पडे दिखायी देते थे ॥ ५१ ॥

रक्तोक्षितैश्छिन्नभुजैरपकृष्टशिरोरुहैः ।
व्यदृश्यत मही कीर्णा शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५२ ॥
उस समय कटे हुए हाथोंसे और खींचे गये बालोंवाले सैकड़ों और सहस्रों रुधिरसे भीगे वीरोंके शरीरोंसे युद्धभूमि भरी हुई दिखाई देती थी ॥ ५२ ॥

दूरं न शक्यं तत्रासीद् गन्तुमश्वेन केनचित् ।
साश्वारोहैर्हतैरश्वैरावृते वसुधातले ॥ ५३ ॥
सवारों सहित घोडोंकी लाशोंसे भरी हुई युद्धभूमिपरसे किसीके लिये भी तेज घोडेसे भी दूर तक जाना अशक्य हुआ था ॥ ५३ ॥

रुधिरोक्षितसंनाहैरात्तशस्त्रैरुदायुधैः ।
नानाप्रहरणैर्घोरैः परस्परवधेप्सुभिः ।
सुसंनिकृष्टैः संग्रामे हतभूयिष्ठसैनिकैः ॥ ५४ ॥
सब शस्त्रधारी योद्धाओंके कवच रुधिरसे भीग गये थे, वे अस्त्रशस्त्र लेकर धनुष खींचकर अनेक प्रकारके घोर आयुधोंसे एक दूसरेके वधकी इच्छा करते थे । उस युद्धमें सभी निकट होकर युद्ध करते थे और उनमेंसे बहुतेरे योद्धा मारे गये थे ॥ ५४ ॥

स मुहूर्तं ततो युद्ध्वा सौबलोऽथ विशां पते ।
षट्सहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छकुनिस्ततः ॥ ५५ ॥
पृथ्वीपते ! यह घोर युद्ध थोडे समय तक होता रहा तब शकुनि बचे हुए छः सहस्र घुड-चढोंको लेकर युद्धसे भाग गये ॥ ५५ ॥

तथैव पाण्डवानीकं रुधिरेण समुक्षितम् ।
षट्सहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छ्रान्तवाहनम् ॥ ५६ ॥
रुधिरसे भीगी हुई पाण्डवोंकी सेना भी बचे हुए छः सहस्र घुड चढोंके साथ युद्धसे लौट गयी । उनके सारे वाहन थक गये थे ॥ ५६ ॥

अश्वारोहास्तु पाण्डूनामब्रुवन् रुधिरोक्षिताः ।
सुसंनिकृष्टाः संग्रामे भूयिष्ठं त्यक्तजीविताः ॥ ५७ ॥
तब रुधिरमें भीगे प्राणकी आशा छोडकर लडनेवाले पाण्डवोंके निकटवर्ती घुडसवार युद्धमें इस प्रकार बोले ॥ ५७ ॥

नेह शक्यं रथैर्योद्धुं कुत एव महागजैः ।
रथानेव रथा यान्तु कुञ्जराः कुञ्जरानपि ॥ ५८ ॥
इस समय रथोंसे भी युद्ध नहीं कर सकते, फिर बडे बडे हाथियोंकी तो कथा ही क्या है ? रथ रथोंका और हाथी हाथियोंका सामना करें ॥ ५८ ॥

प्रतियातो हि शकुनिः स्वमनीकमवस्थितः ।
न पुनः सौबलो राजा युद्धमभ्यागमिष्यति ॥ ५९ ॥

राजा शकुनि युद्ध छोडकर अपनी सेनामें भाग गये, अब फिर लौटकर राजा सुबलपुत्र शकुनि युद्धमें नहीं आवेंगे ॥ ५९ ॥

ततस्तु द्रौपदेयाश्च ते च मत्ता महाद्विपाः ।
प्रययुर्यत्र पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ६० ॥

उनका यह वचन सुन द्रौपदीके पांचों पुत्र और वे मतवाले हाथी महारथी पाञ्चाल राजा धृष्टद्युम्नकी ओर चले गये ॥ ६० ॥

सहदेवोऽपि कौरव्य रजोमेघे समुत्थिते ।
एकाकी प्रययौ तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ६१ ॥

कुरुकुलनन्दन ! सहदेव भी शकुनिकी सेनाको धूलके बादलसे भरी देख, अकेले ही राजा युधिष्ठिरके पास चले गये ॥ ६१ ॥

ततस्तेषु प्रयातेषु शकुनिः सौबलः पुनः ।
पार्श्वतोऽभ्यहनत्क्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य वाहिनीम् ॥ ६२ ॥

उन सब वीरोंको गया हुआ देख, सुबलपुत्र शकुनि फिर क्रोध करके धृष्टद्युम्नकी सेनाको पिछले भागसे आकर काटने लगे ॥ ६२ ॥

तत्पुनस्तुमुलं युद्धं प्राणांस्त्यक्त्वाभ्यवर्तत ।
तावकानां परेषां च परस्परवधैषिणाम् ॥ ६३ ॥

तब परस्पर बधकी इच्छा करनेवाले तुम्हारे और शत्रुपक्षके सैनिकोंमें प्राणोंका मोह छोडकर घोर युद्ध होने लगा ॥ ६३ ॥

ते ह्यन्योन्यमवेक्षन्त तस्मिन्वीरसमागमे ।
योधाः पर्यपतन्राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६४ ॥

राजन् ! वीरोंके उस संग्राममें सैकडों—सहस्रों वीर योद्धाओंने उधरसे बडे वेगसे आक्रमण किया और वे एक दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ ६४ ॥

असिभिश्छिद्यमानानां शिरसां लोकसंक्षये ।
प्रादुरासीन्महाशब्दस्तालानां पततामिव ॥ ६५ ॥

दोनों ओरसे खड्ग चलने लगे, और उस लोक संहारक युद्धमें तलवारोंसे वीरोंके शिर कट कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे, तब ऐसा शब्द होने लगा, जैसे तालके फलोंके गिरनेसे होता है ॥ ६५ ॥

विमुक्तानां शरीराणां भिन्नानां पततां भुवि ।
सायुधानां च बाहूनामूरूणां च विशां पते ।
आसीत्कटकटाशब्दः सुमहाँल्लोमहर्षणः ॥ ६६ ॥

प्रजापते! भिन्न होकर पृथ्वीपर गिरनेवाले शरीर, शस्त्रोंके साथ कहीं हाथ और कहीं जांघ कट-कर गिरने लगे और ऐसा घोर कट—कट शब्द होने लगा कि, सुनकर रोए खडे होने लगे ॥६६॥

निघ्नन्तो निशितैः शस्त्रैर्भ्रातॄन्पुत्रान्सखीनपि ।
योधाः परिपतन्ति स्म यथामिषकृते खगाः ॥ ६७ ॥

जैसे मांसके लिये पक्षी एक दूसरेको मारते हैं, ऐसे ही वीर लोग अपने तीक्ष्ण शस्त्रोंसे भाई, पुत्र और मित्रोंको मारने लगे ॥ ६७ ॥

अन्योन्यं प्रतिसंरब्धाः समासाद्य परस्परम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति न्यघ्नन्सहस्रशः ॥ ६८ ॥

दोनों पक्षोंके वीर क्रुद्ध होकर परस्पर लडते हुए 'हम पहले तुझे मारेंगे, हम पहले तुझे मारेंगे;' ऐसा कहते हुए सहस्रों वीरोंका वध करने लगे ॥ ६८ ॥

संघातैरासनभ्रष्टैरश्वारोहैर्गतासुभिः ।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६९ ॥

कहीं शत्रुओंके प्रहारसे मरकर घोडोंसे घुडसवार आसनभ्रष्ट होकर गिरने लगे और इनके साथ ही सैकडों और सहस्रों घोडे ही मरने लगे ॥ ६९ ॥

स्फुरतां प्रतिपिष्टानामश्वानां शीघ्रसारिणाम् ।
स्तनतां च मनुष्याणां संनद्धानां विशां पते ॥ ७० ॥

पृथ्वीपते! कहीं अत्यन्त तेज चलनेवाले घोडे पृथ्वीमें गिर कर तडफने लगे, कितने तो पिस गये थे। कहीं हाहाकार करते हुए कवचधारी मनुष्य गिर गये ॥ ७० ॥

शक्त्यृष्टिप्रासशब्दश्च तुमुलः समजायत ।
भिन्दतां परमर्माणि राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ७१ ॥

कहीं वीरोंके मर्मस्थानोंको काटते हुए शक्ति, ऋष्टि और खड्गोंके घोर शब्द होने लगे। यह नाश तुम्हारी दुष्ट बुद्धिकी सलाहसे हुआ ॥ ७१ ॥

श्रमाभिभूताः संरब्धाः श्रान्तवाहाः पिपासिताः ।
विक्षताश्च शितैः शस्त्रैरभ्यवर्तन्त तावकाः ॥ ७२ ॥

हे राजन्! ऐसे तुम्हारी ओरके सब वीर परिश्रमसे थके हुए, क्रोधित हुए थे। उनके वाहन भी थके हुए थे, और वे प्याससे व्याकुल हुए थे। उन सबोंका सब शरीर तीक्ष्ण शस्त्रोंके घावसे विक्षत हुआ था। ऐसी स्थितीमें वे इधर उधरको भागने लगे ॥ ७२ ॥

मत्ता रुधिरगन्धेन बहवोऽत्र विचेतसः ।
जघ्नुः परान्स्वकांश्चैव प्राप्तान्प्राप्ताननन्तरान् ॥ ७३ ॥

अनेक वीर रुधिरकी गन्धिसे मतवाले होकर विवेकहीन हो गये थे, और अपने और पराये सैनिकों-को भी मारने लगे। उस समय जो जिसके आगे आ गया, उसने उसीको मार डाला ॥७३॥

बहवश्च गतप्राणाः क्षत्रिया जयगृद्धिनः ।
भूमावभ्यपतन्राजञ्शरवृष्टिभिरावृताः ॥ ७४ ॥

हे राजन् ! उस समय विजय चाहनेवाले अनेक क्षत्रिय बाणोंकी वर्षासे आच्छादित होकर मरकर पृथ्वीपर गिर गये ॥ ७४ ॥

वृकगृध्रशृगालानां तुमुले मोदनेऽहनि ।
आसीद्बलक्षयो घोरस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ७५ ॥

गिद्ध, भेडिये और सियार उस भयंकर दिनमें बहुत प्रसन्न हुए। उस दिन तुम्हारे पुत्रके देखते देखते तुम्हारी सेनाका बहुत नाश हुआ ॥ ७५ ॥

नराश्वकायसंछन्ना भूमिरासीद्विशां पते ।
रुधिरोदकचित्रा च भीरूणां भयवर्धिनी ॥ ७६ ॥

उस मरे हुए मनुष्यों और घोडोंके शरीरोंसे पृथ्वी ढकी गई थी और पानीके समान बहाये जाते हुए रुधिरसे विचित्र दीखती थी। यह देखकर कायर लोग डरने लगे ॥ ७६ ॥

असिभिः पट्टिशैः शूलैस्तक्षमाणाः पुनः पुनः ।
तावकाः पाण्डवाश्चैव नाभ्यवर्तन्त भारत ॥ ७७ ॥

भारत ! दोनों ओरकी सेना खड्ग, पट्टिश और परिघोंसे एक दूसरेको बार बार घायल करती थी। तो भी तुम्हारे और पाण्डवोंके योद्धा युद्धसे विमुख नहीं हुए ॥ ७७ ॥

प्रहरन्तो यथाशक्ति यावत्प्राणस्य धारणम् ।
योधाः परिपतन्ति स्म वमन्तो रुधिरं व्रणैः ॥ ७८ ॥

योद्धा लोग अपने बलके अनुसार शस्त्र चलाते रहे और कहते रहे कि जबतक हमारा प्राण रहेगा तबतक शक्तिभर युद्ध करेंगे। वीरोंके घावसे रुधिर बहने लगा, और वे मरकर गिरने लगे ॥ ७८ ॥

शिरो गृहीत्वा केशेषु कबन्धः समदृश्यत ।
उद्यम्य निशितं खड्गं रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ७९ ॥

वहां कहीं कबन्ध (रुण्ड) शत्रुके कटे हुए शिरको बालोंसहित हाथमें पकडे हुए और रुधिरमें भींगा चमकता तीक्ष्ण खड्ग उठाकर खडा था, ऐसे दिखाई देता था ॥ ७९ ॥

*

अथोत्थितेषु बहुषु कबन्धेषु जनाधिप ।
तथा रुधिरगन्धेन योधाः कश्मलमाविशन् ॥ ८० ॥

जनेश्वर! इस प्रकार बहुत कबन्ध खडे हो गये, तब रुधिरकी गन्धिसे वीर भी मोहित होकर घबडाने लगे ॥ ८० ॥

मन्दीभूते ततः शब्दे पाण्डवानां महद्बलम् ।
अल्पावशिष्टैस्तुरगैरभ्यवर्तत सौबलः ॥ ८१ ॥

जब मार काटका शब्द कम हुआ, तब सुबलपुत्र शकुनिने देखा कि मेरे सङ्ग बहुत थोडे घुडचढे रह गये । परन्तु शकुनि बचे हुए उतने ही घुडसवार वीरोंको लेकर फिर पाण्डवोंकी भारी सेनाकी ओरको धावा करनेके लिये चले ॥ ८१ ॥

ततोऽभ्यधावंस्त्वरिताः पाण्डवा जयगृद्धिनः ।
पदातयश्च नागाश्च सादिनश्चोद्यतायुधाः ॥ ८२ ॥

तब विजयकी इच्छा करनेवाले पाण्डवोंके वीर भी तुरंत ही अपने पैदल, हाथीसवार और घुडसवार भी आयुधोंको उठाकर शकुनिकी ओर दौडे ॥ ८२ ॥

कोष्टकीकृत्य चाप्येनं परिक्षिप्य च सर्वशः ।
शस्त्रैर्नानाविधैर्जघ्नुर्युद्धपारं तितीर्षवः ॥ ८३ ॥

धृष्टद्युम्नने शकुनिकी सब सेनाको घेरकर अपनी सेनाके बीचमें ले लिया और युद्ध समाप्त करनेके लिये, तुम्हारी सेनाको अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे मारने लगे ॥ ८३ ॥

त्वदीयास्तांस्तु सम्प्रेक्ष्य सर्वतः समभिद्रुतान् ।
साश्वपत्तिद्विपरथाः पाण्डवानभिदुद्रुवुः ॥ ८४ ॥

तुम्हारे वीर भी अपने चारों ओरसे पाण्डवोंकी सेनाको आक्रमण करते देख, अपने घुडसवार, पैदल, हाथीसवार और रथियोंसे पाण्डवोंपर टूट पडे ॥ ८४ ॥

केचित्पदातयः पद्भिर्मुष्टिभिश्च परस्परम् ।
निजघ्नुः समरे शूराः क्षीणशस्त्रास्ततोऽपतन् ॥ ८५ ॥

कोई कोई पैदल योद्धा, समरमें पैदल योद्धासे सामना करने लगे और एक दूसरेको मुक्कोंसे मारने लगे । कोई शस्त्र नष्ट होनेसे लडते लडते आप भी मर गये ॥ ८५ ॥

रथेभ्यो रथिनः पेतुर्द्विपेभ्यो हस्तिसादिनः ।
विमानेभ्य इव भ्रष्टाः सिद्धाः पुण्यक्षयाद्यथा ॥ ८६ ॥

जैसे पुण्य नाश होनेसे स्वर्गलोकके विमानोंसे सिद्ध पुरुष गिरते हैं वैसे ही रथोंसे रथी वीर और हाथियोंसे हाथीसवार गिरने लगे ॥ ८६ ॥

एवमन्योन्यमायस्ता योधा जघ्नुर्महामृधे ।
पितॄन्भ्रातॄन्वयस्यांश्च पुत्रानपि तथापरे ॥ ८७ ॥

इस महासंग्राममें अन्य वीर परस्पर प्रयत्नशील होकर पिता, भाई, मित्र और पुत्रोंका भी नाश करने लगे ॥ ८७ ॥

एवमासीदमर्यादं युद्धं भरतसत्तम ।
प्रासासिबाणकलिले वर्तमाने सुदारुणे ॥ ८८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ११४२ ॥

हे भरतोत्तम ! इस प्रकार प्रास, खड्ग और बाणोंसे व्याप्त हुए दारुण समरमें मर्यादारहित युद्ध हो गया ॥ ८८ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें बाईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ ११४२ ॥

: २३ :

संजय उवाच

तस्मिञ्शब्दे मृदौ जाते पाण्डवैर्निहते बले ।
अश्वैः सप्तशतैः शिष्टैरुपावर्तत सौबलः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– राजन् ! जब वह घोर शब्द कुछ कम हुआ और पाण्डवोंने तुम्हारी उस सेनाका भी नाश कर दिया, तब सुबलपुत्र शकुनि बचे हुए सात सौ घुडचढोंको सङ्ग लेकर लौट गये ॥ १ ॥

स यात्वा वाहिनीं तूर्णमब्रवीत्त्वरयन्युधि ।
युध्यध्वमिति संहृष्टाः पुनः पुनररिंदमः ।
अपृच्छत्क्षत्रियांस्तत्र क्व नु राजा महारथः ॥ २ ॥

और वह शीघ्र ही सेनामें जाकर सबको युद्धके लिये शीघ्रता करनेके लिये कहने लगे कि, तुम प्रसन्न होकर घोर युद्ध करो ! फिर बार बार शत्रुनाशन शकुनिने वहां क्षत्रियोंसे पूछा कि– महारथी राजा दुर्योधन कहां हैं ? ॥ २ ॥

शकुनेस्तु वचः श्रुत्वा तं ऊचुर्भरतर्षभ ।
असौ तिष्ठति कौरव्यो रणमध्ये महारथः ॥ ३ ॥

भरतर्षभ ! शकुनिके उस वचनको सुन सब क्षत्रिय बोले वहां महारथी कुरुराजा दुर्योधन युद्धक्षेत्रके मध्यभागमें खडे हैं ॥ ३ ॥

यत्रैतत्सुमहच्छत्त्रं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
यत्रैते सतलत्राणा रथास्तिष्ठन्ति दंशिताः ॥ ४ ॥

जहां यह पूरे चन्द्रमाके समान विशाल छत्र शोभित हो रहा है, जहां ये कवच पहने रथोंपर चढे अनेक शरीर रक्षक वीर खडे हैं ॥ ४ ॥

यत्रैष शब्दस्तुमुलः पर्जन्यनिनदोपमः ।
तत्र गच्छ द्रुतं राजंस्ततो द्रक्ष्यसि कौरवम् ॥ ५ ॥

जहां वह मेघके समान घोर शब्द हो रहा है । राजन् ! आप शीघ्र वहां जांय तो अवश्य कुरुराजका दर्शन होगा ॥ ५ ॥

एवमुक्तस्तु तैः शूरैः शकुनिः सौबलस्तदा ।
प्रययौ तत्र यत्रासौ पुत्रस्तव नराधिप ।
सर्वतः संवृतो वीरैः समरेष्वनिवर्तिभिः ॥ ६ ॥

नराधिप ! शूर क्षत्रियोंके ऐसे वचन सुनकर सुबलपुत्र राजा शकुनि तुम्हारे पुत्रके पास गये, जिधर राजा दुर्योधन समरमें अनुयायि वीरोंसे सब ओरसे घिरा हुआ था ॥ ६ ॥

ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा रथानीके व्यवस्थितम् ।
सरथांस्तावकान्सर्वान्हर्षयञ्शकुनिस्ततः ॥ ७ ॥

तदनन्तर राजा दुर्योधनको रथ सेनाके बीचमें खडे देख, तुम्हारे सब रथी क्षत्रियोंको प्रसन्न करते हुए शकुनि ॥ ७ ॥

दुर्योधनमिदं वाक्यं हृष्टरूपो विशां पते ।
कृतकार्यमिवात्मानं मन्यमानोऽब्रवीन्नृपम् ॥ ८ ॥

विशांपते ! अपनेको कृतार्थ जैसे मानकर बडे आनन्दसे राजा दुर्योधनसे ऐसे बोले ॥ ८ ॥

जहि राजन्रथानीकमश्वाः सर्वे जिता मया ।
नात्यक्त्वा जीवितं संख्ये शक्यो जेतुं युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

हे राजन् दुर्योधन ! तुम इन सब रथ सेनाका नाश करो । मैंने पाण्डवोंके सब घुडचढे वीरोंको जीत लिया है । युद्धमें अपने प्राणोंको छोडे बिना राजा युधिष्ठिर जीते जा नहीं सकते ॥ ९ ॥

हते तस्मिन्रथानीके पाण्डवेनाभिपालिते ।
गजानेतान्हनिष्यामः पदातींश्चेतरांस्तथा ॥ १० ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे रक्षित इस रथ सेनाका नाश होनेपर मैं इन हाथी सवीरों, पदातियों और दूसरोंका नाश कर दूंगा ॥ १० ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य तावका जयगृद्धिनः ।
जवेनाभ्यपतन्हृष्टाः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ११ ॥

विजयकी इच्छा करनेवाले शकुनिके ऐसे वचन सुन तुम्हारे ओरके सब वीर प्रसन्न होकर बडे वेगसे पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे ॥ ११ ॥

सर्वे विधृततूणीराः प्रगृहीतशरासनाः ।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ १२ ॥

सब क्षत्रियोंने बाणोंके भाथेको खोल दिया, हाथोंमें धनुष लेकर, धनुषोंपर बाण चढाने लगे, सिंहके समान गर्जने लगे ॥ १२ ॥

ततो ज्यातलनिर्घोषः पुनरासीद्विशां पते ।
प्रादुरासीच्छराणां च सुमुक्तानां सुदारुणः ॥ १३ ॥

पृथ्वीपते ! तब चारों ओरसे धनुषकी टङ्कारका और अच्छी तरह छोडे हुए बाणोंका दारुण शब्द होने लगा ॥ १३ ॥

तान्समीपगतान्हृष्ट्वा जवेनोद्यतकार्मुकान् ।
उवाच देवकीपुत्रं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १४ ॥

इन सब क्षत्रियोंको बडे वेगसे धनुष उठाये अपने पास आया हुआ देख कुन्तीपुत्र अर्जुन देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले ॥ १४ ॥

चोदयाश्वानसंभ्रान्तः प्रविशैतद्बलार्णवम् ।
अन्तमद्य गमिष्यामि शत्रूणां निशितैः शरैः ॥ १५ ॥

हे कृष्ण ! आप सावधान होकर घोडे हांकिये और इस समुद्रके समान सेनामें प्रवेश कीजिये, अब मैं अपने तेज बाणोंसे सब शत्रुओंको नाश कर दूंगा ॥ १५ ॥

अष्टादश दिनान्यद्य युद्धस्यास्य जनार्दन ।
वर्तमानस्य महतः समासाद्य परस्परम् ॥ १६ ॥

जनार्दन ! आज हम लोगोंको परस्पर यह महान् युद्ध करते हुए अठारह दिन बीत गये ॥ १६ ॥

अनन्तकल्पा ध्वजिनी भूत्वा ह्येषां महात्मनाम् ।
क्षयमद्य गता युद्धे पश्य दैवं यथाविधम् ॥ १७ ॥

देखो प्रारब्धही बलवान् है । पहले दिन इन महात्मा कौरव क्षत्रियोंकी सेना अनन्त जान पडती थी, परन्तु आज युद्धमें सब ही नष्ट हो गयी ॥ १७ ॥

समुद्रकल्पं तु बलं धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
अस्मानासाद्य संजातं गोष्पदोपममच्युत ॥ १८ ॥

माधव ! अच्युत ! वह समुद्रके समान दुर्योधनकी अनन्त सेना हम लोगोंसे युद्ध करते करते आज गौके चरणके समान रह गई है ॥ १८ ॥

हते भीष्मे च संदध्याच्छिवं स्यादिह माधव ।
न च तत्कृतवान्मूढो धार्तराष्ट्रः सुबालिशः ॥ १९ ॥

माधव ! जब भीष्म मरे थे, तब हम लोगोंने जाना था कि अब मूर्ख दुर्योधन सन्धि कर लेगा तो सबका कल्याण ही होगा परन्तु उस अज्ञानी मूर्खने ऐसा नहीं किया ॥ १९ ॥

उक्तं भीष्मेण यद्वाक्यं हितं पथ्यं च माधव ।
तच्चापि नासौ कृतवान्वीतबुद्धिः सुयोधनः ॥ २० ॥

माधव ! भीष्मने जो सच्ची और पथ्यकर बात कही थी, वही उसके लिये अच्छी थी । परन्तु बुद्धिहीन दुर्योधनने वह भी न मानी ॥ २० ॥

तस्मिंस्तु पतिते भीष्मे प्रच्युते पृथिवीतले ।
न जाने कारणं किं नु येन युद्धमवर्तत ॥ २१ ॥

जब उस महाघोर युद्धमें भीष्म मरकर पृथ्वीमें गिरे थे, तब न जाने फिर किस कारणके लिये युद्ध होता रहा ? ॥ २१ ॥

मूढांस्तु सर्वथा मन्ये धार्तराष्ट्रान्सुबालिशान् ।
पतिते शांतनोः पुत्रे येऽकार्षुः संयुगं पुनः ॥ २२ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्मके मरनेपर भी फिर युद्ध होता रहा, इससे हम जानते हैं कि धृतराष्ट्रके पुत्र महामूर्ख और नादान हैं ॥ २२ ॥

अनन्तरं च निहते द्रोणे ब्रह्मविदां वरे ।
राधेये च विकर्णे च नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २३ ॥

फिर वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्य, राधापुत्र कर्ण और विकर्णके मरनेपर भी युद्ध समाप्त न हुआ ॥ २३ ॥

अल्पावशिष्टे सैन्येऽस्मिन्सूतपुत्रे च पातिते ।
सपुत्रे वै नरव्याघ्रे नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २४ ॥

अब पुत्रोंके सहित पुरुषसिंह सूतपुत्र कर्ण मारे गये और सेना बहुत थोडी रह गई थी, तब भी युद्ध समाप्त न हुआ ॥ २४ ॥

श्रुतायुषि हते शूरे जलसंधे च पौरवे।
श्रुतायुधे च नृपतौ नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २५ ॥

जब वीर श्रुतायु, पुरुवंशी शूर जलसन्ध और राजा श्रुतायुध मारे गये, तब भी यह युद्ध समाप्त न हुआ ॥ २५ ॥

भूरिश्रवसि शल्ये च शाल्वे चैव जनार्दन।
आवन्त्येषु च वीरेषु नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २६ ॥

जनार्दन ! जब भूरिश्रवा, शल्य, शाल्व और उज्जैनके प्रधान वीर मारे गये तो भी यह युद्ध समाप्त न हुआ ॥ २६ ॥

जयद्रथे च निहते राक्षसे चाप्यलायुधे।
बाल्हिके सोमदत्ते च नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २७ ॥

जब जयद्रथ, अलायुद्ध राक्षस, बाह्लिक और सोमदत्त मारे गये, तब भी यह युद्ध समाप्त न हुआ ॥ २७ ॥

भगदत्ते हते शूरे काम्बोजे च सुदक्षिणे।
दुःशासने च निहते नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २८ ॥

जब वीर भगदत्त, काम्बोजराज महावीर सुदक्षिण और दुःशासन मारे गये, तब भी यह युद्ध समाप्त न हुआ ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा च निहताञ्शूरान्पृथङ्माण्डलिकान्नृपान्।
बलिनश्च रणे कृष्ण नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २९ ॥

हे श्रीकृष्ण ! इन अनेक देशोंके प्रधान बलवान् और शूर वीर राजाओंको समरमें मरा हुआ देख भी युद्ध समाप्त न हुआ ॥ २९ ॥

अक्षौहिणीपतीन्दृष्ट्वा भीमसेनेन पातितान्।
मोहाद्वा यदि वा लोभान्नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ ३० ॥

अनेक अक्षौहिणीपति राजाओंको भीमसेनके हाथसे मरा देखकर भी, दुर्योधनने मूर्खता और लोभसे युद्धको समाप्त न किया ॥ ३० ॥

को नु राजकुले जातः कौरवेयो विशेषतः।
निरर्थकं महद्वैरं कुर्यादन्यः सुयोधनात् ॥ ३१ ॥

दुर्योधनको छोडकर, राजकुलमें उत्पन्न हुआ और विशेष करके कुरुकुलकी संतान होकर दूसरा ऐसा कौन क्षत्रिय होगा जो वृथा ऐसा घोर वैर करे ? ॥ ३१ ॥

गुणतोऽभ्यधिकं ज्ञात्वा बलतः शौर्यतोऽपि वा ।
अमूढः को नु युध्येत जानन्प्राज्ञो हिताहितम् ॥ ३२ ॥

जिनमें भी बुद्धिमान् कुलवंशी होकर ऐसा कौन मूर्ख होगा जो शत्रुको अपनेसे अधिक बलवान् , गुणवान् और तेजवान् जान कर भी, अपने हित और अहितको समझकर भी, उनसे युद्ध करे ? ॥ ३२ ॥

यत्र तस्य मनो ह्यासीत्त्वयोक्तस्य हितं वचः ।
प्रशमे पाण्डवैः सार्धं सोऽन्यस्य शृणुयात्कथम् ॥ ३३ ॥

जिसने पाण्डवोंके साथ सन्धिके लिये तुम्हारे ही हितकारक वचन न सुने, वह दूसरेके क्या सुनता ? ॥ ३३ ॥

येन शांतनवो भीष्मो द्रोणो विदुर एव च ।
प्रत्याख्याताः शमस्यार्थे किं नु तस्याद्य भेषजम् ॥ ३४ ॥

जिसने शान्तिके लिये अनेक यत्न करते हुए शान्तनुनन्दन भीष्म, द्रोणाचार्य और विदुरके वचन न सुने, उसकी औषधि क्या है ? ॥ ३४ ॥

मौर्ख्याद्येन पिता वृद्धः प्रत्याख्यातो जनार्दन ।
तथा माता हितं वाक्यं भाषमाणा हितैषिणी ।
प्रत्याख्याता ह्यसत्कृत्य स कस्मै रोचयेद्वचः ॥ ३५ ॥

हे जनार्दन ! जिसने अपने वृद्ध पिताके वचन न सुने और कल्याण वचन कहती हुई हितैषिणी माताका भी जिसने निरादर कर दिया, उसे दूसरे किसीका हितकारक वचन कैसे रुचेगा ? ॥ ३५ ॥

कुलान्तकरणो व्यक्तं जात एष जनार्दन ।
तथास्य दृश्यते चेष्टा नीतिश्चैव विशां पते ।
नैष दास्यति नो राज्यमिति मे मतिरच्युत ॥ ३६ ॥

जनार्दन ! वह निश्चय ही वंशका नाश करनेको उत्पन्न हुआ था। पृथ्वीपते ! अच्युत ! हमको अभी भी इसकी नीति और चेष्टासे यही मालुम देता है कि यह हमें जीता हुआ भी राज्य न देगा ॥ ३६ ॥

उक्तोऽहं बहुशस्तात विदुरेण महात्मना ।
न जीवन्दास्यते भागं धार्तराष्ट्रः कथंचन ॥ ३७ ॥

तात ! महात्मा विदुरने हमसे पहले ही अनेक बार कहा था कि, धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन जीते जी तुम्हारा राज्य भाग तुमको न देगा ॥ ३७ ॥

यावत्प्राणा धमिष्यन्ति धार्तराष्ट्रस्य मानद ।
तावद्युष्मास्वपापेषु प्रचरिष्यति पातकम् ॥ ३८ ॥

मानद ! जबतक इस दुर्बुद्धि दुर्योधनके शरीरमें प्राण रहेंगे, तबतक पापरहित पाण्डवोंके साथ वह पाप ही करता रहेगा ॥ ३८ ॥

न स युक्तोऽन्यथा जेतुमृते युद्धेन माधव ।
इत्यब्रवीत्सदा मां हि विदुरः सत्यदर्शनः ॥ ३९ ॥

माधव ! सत्यवादी विदुर सदा मुझे यही बात कहा करते थे, कि दुर्योधनको युद्ध किये विना दूसरे किसी उपायसे जीतना अशक्य है ॥ ३९ ॥

तत्सर्वमद्य जानामि व्यवसायं दुरात्मनः ।
यदुक्तं वचनं तेन विदुरेण महात्मना ॥ ४० ॥

महात्मा विदुरने जो जो कुछ कहा था उनके अनुसार दुष्ट दुर्योधनके वैसे ही सब लक्षण आज मुझे जान पडते हैं ॥ ४० ॥

यो हि श्रुत्वा वचः पथ्यं जामदग्न्याद्यथातथम् ।
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्ध्रुवं नाशमुखे स्थितः ॥ ४१ ॥

जिस दुर्बुद्धि मूर्खने जमदग्निपुत्र परशुरामके कल्याण भरे वचन सुनकर भी न मानकर उनकी अवगणना की, वह निश्चय ही नाशके मुखमें बैठा है ॥ ४१ ॥

उक्तं हि बहुभिः सिद्धैर्जातमात्रे सुयोधने ।
एनं प्राप्य दुरात्मानं क्षयं क्षत्रं गमिष्यति ॥ ४२ ॥

जब यह दुर्योधन उत्पन्न हुआ था तब ही अनेक सिद्धोंने कहा था कि इस दुष्टके कारण सब क्षत्रियोंका नाश होगा ॥ ४२ ॥

तदिदं वचनं तेषां निरुक्तं वै जनार्दन ।
क्षयं याता हि राजानो दुर्योधनकृते भृशम् ॥ ४३ ॥

हे जनार्दन ! आज उन सब सिद्धोंका वचन ठीक हुआ, अर्थात् दुर्योधनके कारणसे प्रायः सब क्षत्रिय राजाओंका नाश हो गया ॥ ४३ ॥

सोऽद्य सर्वान्रणे योधान्निहनिष्यामि माधव ।
क्षत्रियेषु हतेष्वाशु शून्ये च शिबिरे कृते ॥ ४४ ॥

माधव ! आज हम समरमें शत्रुओंके बचे हुए सब क्षत्रियोंको भी मार डालेंगे । इन क्षत्रियोंका शीघ्र ही नाश हो जानेपर जिस समय डेरे शून्य हो जायंगे और कोई क्षत्रिय न रहेगा, ॥ ४४ ॥

*

वधाय चात्मनोऽस्माभिः संयुगं रोचयिष्यति ।
तदन्तं हि भवेद्वैरमनुमानेन माधव ॥ ४५ ॥

तब ये मूर्ख दुर्योधन अपने मरनेका उपाय करेगा, हमारे साथ लडना पसंद करेगा। माधव ! तब इसके मरनेहीसे यह वैर समाप्त हो जायगा, ऐसा मेरा अनुमान है ॥ ४५ ॥

एवं पश्यामि वार्ष्णेय चिन्तयन्प्रज्ञया स्वया ।
विदुरस्य च वाक्येन चेष्टया च दुरात्मनः ॥ ४६ ॥

हे वृष्णिकुलश्रेष्ठ ! मैं अपनी बुद्धि और विदुरके वचनसे और इस दुष्टकी चेष्टासे विचार कर ऐसे ही समझता हूं ॥ ४६ ॥

संयाहि भारतीं वीर यावद्धन्मि शितैः शरैः ।
दुर्योधनं दुरात्मानं वाहिनीं चास्य संयुगे ॥ ४७ ॥

हे वीर ! इसलिये, आप इसी सेनाके आगे हमारे रथको ले चलिये। मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे दुरात्मा दुर्योधनको उसकी सेनाके सहित युद्धमें मारूंगा ॥ ४७ ॥

क्षेममद्य करिष्यामि धर्मराजस्य माधव।
हत्वैतद्दुर्बलं सैन्यं धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥ ४८ ॥

हे माधव ! आज इस दुर्बल सेनाको दुर्योधनके देखते मार कर मैं धर्मराजका कल्याण करूंगा ॥ ४८ ॥

सञ्जय उवाच—

अभीशुहस्तो दाशार्हस्तथोक्तः सव्यसाचिना ।
तद्बलौघममित्राणामभीतः प्राविशद्रणे ॥ ४९ ॥

सञ्जय बोले— सव्यसाची अर्जुनके वचनको स्वीकार कर, घोडोंकी लगाम हाथमें लेकर दशार्ह कुलनन्दन श्रीकृष्णने बेडर होकर उस घोर सेनाकी ओरको घोडोंकी सान उठाई और समरमें सेना प्रवेश किया ॥ ४९ ॥

शरासनवरं घोरं शक्तिकण्टकसंवृतम् ।
गदापरिघपन्थानं रथनागमहाद्रुमम् ॥ ५० ॥

श्रेष्ठ धनुषबाणोंसे भयानक, साङ्गरूपी कांटोंसे भरे, गदा और परिघ रूपी मार्गवाले, रथ और हाथीरूपी वृक्षोंसे भरे ॥ ५० ॥

हयपत्तिलताकीर्णं गाहमानो महायशाः ।
व्यचरत्तत्र गोविन्दो रथेनातिपताकिना ॥ ५१ ॥

घोडे और पदातिरूपी लताओंसे पूर्ण, उस सेनारूपी वनमें, महायशस्वी श्रीकृष्ण उस ऊंची पताकावाले रथसे प्रवेश करके सब ओर घुमने लगे ॥ ५१ ॥

ते हयाः पाण्डुरा राजन्वहन्तोऽर्जुनमाहवे ।
दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त दाशार्हेण प्रचोदिताः　　　　॥ ५२ ॥

राजन् ! वे सफेद घोडे अर्जुनके समेत श्रीकृष्णसे प्रेरित होकर युद्धमें चारों ओर सब दिशाओंमें दीखने लगे ॥ ५२ ॥

ततः प्रायाद्रथेनाजौ सव्यसाची परंतपः ।
किरञ्शरशतांस्तीक्ष्णान्वारिधारा इवाम्बुदः　　　　॥ ५३ ॥

तब शत्रुनाशन अर्जुन युद्धमें रथके द्वारा आगे बढकर उस सेनापर इस प्रकार अपने सैकडों तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे जैसे मेघ जल धारा वर्षाता है ॥ ५३ ॥

प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः शराणां नतपर्वणाम् ।
इषुभिश्छाद्यमानानां समरे सव्यसाचिना　　　　॥ ५४ ॥
असज्जन्तस्तनुत्रेषु शरौघाः प्रापतन्भुवि ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शा गाण्डीवप्रेषिताः शराः　　　　॥ ५५ ॥

उस समय धनुषसे छूटे हुए अर्जुनके नतपर्व बाणोंका चारों ओर घोर शब्द होने लगा । सव्यसाची अर्जुनके गाण्डीव धनुषसे युद्धमें छूटे हुए इन्द्रके वज्रके समान बाण चारों ओरसे क्षत्रियोंको आच्छादित करके उनके कवचोंमें लगने लगे और सैनिकोंको घायल करके पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ ५४–५५ ॥

नरान्नागान्समाहत्य हयांश्चापि विशां पते ।
अपतन्त रणे बाणाः पतंगा इव घोषिणः　　　　॥ ५६ ॥

पृथ्वीपते ! उन बाणोंके लगनेसे सब वीर, हाथी, घोडे आदिओंका संहार होने लगा । बाण भी इस प्रकार पृथ्वीमें गिरते थे, जैसे शब्द करते हुए पतंग ॥ ५६ ॥

आसीत्सर्वमवच्छन्नं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
न प्राज्ञायन्त समरे दिशो वा प्रदिशोऽपि वा　　　　॥ ५७ ॥

उस समय गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे ही युद्धभूमि सब ओरसे आच्छादित दिखती थी । उस समय कोई दिशा या विदिशाका ज्ञान नहीं होता था ॥ ५७ ॥

सर्वमासीज्जगत्पूर्णं पार्थनामाङ्कितैः शरैः ।
रुक्मपुङ्खैस्तैलधौतैः कर्मारपरिमार्जितैः　　　　॥ ५८ ॥

अर्जुनके नामसे चिन्हित, तेलके धोये, कारीगरके साफ किये सोनेके पंखवाले बाणोंसे उधरका सारा जगत् परिपूर्ण हो गया था ॥ ५८ ॥

ते दह्यमानाः पार्थेन पावकेनेव कुञ्जराः ।
समासीदन्त कौरव्या वध्यमानाः शितैः शरैः ॥ ५९ ॥

तौ भी वे वीर सैनिक अर्जुनके आगेसे भागते नहीं थे । जैसे वनकी अग्नि हाथियोंको जला देती है, ऐसे ही तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुन उस सेनाको जलाने लगे ॥ ५९ ॥

शरचापधरः पार्थः प्रज्वलन्निव भारत ।
ददाह समरे योधान्कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥ ६० ॥

भारत ! जैसे प्रज्वलित अग्नि काठको जला देती है, उसी प्रकार सूर्यके समान तेजस्वी धनुष-बाणधारी अर्जुन युद्धमें तुम्हारे वीरोंको दग्ध करने लगे ॥ ६० ॥

यथा वनान्ते वनपैर्विसृष्टः कक्षं दहेत्कृष्णगतिः सघोषः ।
भूरिद्रुमं शुष्कलतावितानं भृशं समृद्धो ज्वलनः प्रतापी ॥ ६१ ॥

जैसे बनरक्षकोंद्वारा वनमें लगायी हुई अग्नि धीरेसे बढकर प्रज्वलित और तापयुक्त होकर बासको, अनेक वृक्षोंको और लताओंको जलाकर भस्म कर देती है ॥ ६१ ॥

एवं स नाराचगणप्रतापी शरार्चिरुच्चावचतिग्मतेजाः ।
ददाह सर्वां तव पुत्रसेनाममृष्यमाणस्तरसा तरस्वी ॥ ६२ ॥

ऐसे ही नाराचोंसे त्रस्त करनेवाले, तेज बाणरूपी ज्वालावाले और क्रोधित हुए प्रतापी अर्जुनने समरमें तुम्हारे पुत्रकी सेनाको क्षणभरमें नष्ट कर दिया ॥ ६२ ॥

तस्येषवः प्राणहराः सुमुक्ता नासज्जन्वै वर्मसु रुक्मपुङ्खाः ।
न च द्वितीयं प्रमुमोच बाणं नरे हये वा परमद्विपे वा ॥ ६३ ॥

अर्जुनके अच्छी तरह छोडे हुए सोनेके पङ्खवाले प्राणघातक एक बाणको भी कोई न सह सका अर्थात् सब एक ही एक बाणसे मर गये, अर्जुनने मनुष्य, घोडे या बडे हाथीके मारनेको भी दूसरा बाण नहीं चलाया ॥ ६३ ॥

अनेकरूपाकृतिभिर्हि बाणैर्महारथानीकमनुप्रविश्य ।
स एव एकस्तव पुत्रसेनां जघान दैत्यानिव वज्रपाणिः ॥ ६४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ १२०६ ॥

अकेले अर्जुनने उस घोर रथियोंकी सेनामें प्रवेश करके अनेक रंग-रूपवाले बाणोंसे उस तुम्हारे पुत्रकी सेनाका इस प्रकारसे नाश किया जैसे वज्रपाणि इन्द्र दानवोंका नाश करते हैं ॥ ६४ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ १२०६ ॥

: २४ :

सञ्जय उवाच—

अस्यतां यतमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– राजन् ! कौरव वीरोंको विजयके लिये अनेक यत्न करते और युद्धसे पीछेको न हटते देख, अर्जुनने भी अपने गाण्डीव धनुषसे उनके उन सब निश्चयको विफल कर दिया ॥१॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शानविषह्यान्महौजसः ।
विसृजन्दृश्यते बाणान्धारा मुञ्चन्निवाम्बुदः ॥ २ ॥

उस समय अर्जुन बाण चलाते हुए ऐसे दीखते थे, जैसे पानी बरसाता हुआ मेघ । उन बाणोंका स्पर्श इन्द्रके वज्रके समान कठोर था । वे बाण असह्य और महातेजस्वी थे ॥२॥

तत्सैन्यं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं किरीटिना ।
सम्प्रदुद्राव संग्रामात्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ३ ॥

हे भरतकुलश्रेष्ठ ! तब तुम्हारी सेनाके वीर किरीटधारी अर्जुनके बाणोंसे व्याकुल होकर तुम्हारे पुत्रके देखते देखते युद्धसे भागे ॥ ३ ॥

हतधुर्या रथाः केचिद्धतसूतास्तथापरे ।
भग्नाक्षयुगचक्रेषाः केचिदासन्विशां पते ॥ ४ ॥

प्रजापते ! किसीकी रथकी धुरी टूट गई, किसीका सारथि मर गया, किसीके पहिये ईषा टूट गये, किसीकी पहियोंकी नाभी धूरे टूट गये ॥ ४ ॥

अन्येषां सायकाः क्षीणास्तथान्ये शरपीडिताः ।
अक्षता युगपत्केचित्प्राद्रवन्भयपीडिताः ॥ ५ ॥

किसी वीरके पास चलानेको बाण न रहे और कोई अर्जुनके बाणोंसे व्याकुल हो गया । कोई बिना घाव लगे ही डरकर एक साथ भाग गये ॥ ५ ॥

केचित्पुत्रानुपादाय हतभूयिष्ठवाहनाः ।
विचुक्रुशुः पितॄनन्ये सहायानपरे पुनः ॥ ६ ॥

कोई अपने वाहनोंको मरा देख अपने पुत्रोंको साथ लेकर भागे, कोई बापको, कोई सहायकोंको पुकारते थे ॥ ६ ॥

बान्धवांश्च नरव्याघ्र भ्रातॄन्संबन्धिनस्तथा ।
दुद्रुवुः केचिदुत्सृज्य तत्र तत्र विशां पते ॥ ७ ॥

नरव्याघ्र ! पृथ्वीपते ! कोई अपने बन्धुओंको, कोई भाइयोंको और कोई सम्बन्धियोंको वहीं छोडकर भाग गये, कोई सब छोडकर युद्धसे भागे ॥ ७ ॥

बहवोऽत्र भृशं विद्धा मुह्यमाना महारथाः ।
निष्टनन्तः स्म दृश्यन्ते पार्थबाणहता नराः ॥ ८ ॥

कोई महारथी अर्जुनके बाण लगनेसे वहीं मूर्च्छा खाकर गिर गये, कितने ही मनुष्य अर्जुनके बाण लगनेसे ऊंचे स्वांस लेने लगे ऐसे दिखाई देते थे ॥ ८ ॥

तानन्ये रथमारोप्य समाश्वास्य मुहूर्तकम् ।
विश्रान्ताश्च वितृष्णाश्च पुनर्युद्धाय जग्मिरे ॥ ९ ॥

कोई उनको अपने रथोंपर बिठलाकर मुहूर्तभर उनका धीर बढाने लगे और स्वयं भी विश्राम लेकर प्यास बुझाकर फिर युद्ध करनेको चले ॥ ९ ॥

तानपास्य गताः केचित्पुनरेव युयुत्सवः ।
कुर्वन्तस्तव पुत्रस्य शासनं युद्धदुर्मदाः ॥ १० ॥

कोई युद्धदुर्मद युद्धाभिलाषी वीर तुम्हारे पुत्रकी आज्ञा पालन करनेके लिये अपने घायल साथियोंको वैसे ही छोडकर पुनः युद्धके लिये गये ॥ १० ॥

पानीयमपरे पीत्वा पर्याश्वास्य च वाहनम् ।
वर्माणि च समारोप्य केचिद्भरतसत्तम ॥ ११ ॥

भरतसत्तम! कोई दूसरे वीर स्वयं पानी पीकर और घोडोंको शान्त करके, फिर कवच धारण करके युद्ध करनेको चले ॥ ११ ॥

समाश्वास्यापरे भ्रातॄन्निक्षिप्य शिबिरेऽपि च ।
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये पुनर्युद्धमरोचयन् ॥ १२ ॥

अनेक दूसरे सैनिक अपने घायल भाई, बाप और बेटोंको डेरोंमें लिटाकर और आश्वासन देकर शान्त करके कवच पहनकर फिर मनसे युद्ध करनेको चले ॥ १२ ॥

सज्जयित्वा रथान्केचिद्यथासुख्यं विशां पते ।
आप्लुत्य पाण्डवानीकं पुनर्युद्धमरोचयन् ॥ १३ ॥

प्रजानाथ! कोई दूसरे अपने रथोंको युद्धसामग्रीसे सज्ज करके उनपर बैठ अपनी श्रेष्ठताके अनुसार पाण्डवसेनापर आक्रमण करते थे ॥ १३ ॥

ते शूराः किङ्किणीजालैः समाच्छन्ना बभासिरे ।
त्रैलोक्यविजये युक्ता यथा दैतेयदानवाः ॥ १४ ॥

वे शूर सैनिक रथमें लगे किंकिणीजालसे आच्छादित हो शोभित होकर इस प्रकार दौडे जैसे तीनों लोकोंपर विजय करनेके समय दैत्य और दानव दौडे थे ॥ १४ ॥

आगम्य सहसा केचिद्रथैः स्वर्णविभूषितैः ।
पाण्डवानामनीकेषु धृष्टद्युम्नमयोधयन् ॥ १५ ॥

कोई सोनेसे भूषित अपने रथपर बैठकर सहसा आकर पाण्डवसेनाओंमें धृष्टद्युम्नसे युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः ।
नाकुलिश्च शतानीको रथानीकमयोधयन् ॥ १६ ॥

तब वीर पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्न, महारथी शिखण्डी और नकुलपुत्र शतानीक महा क्रोध करके उस रथ सेनासे युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥

पाञ्चाल्यस्तु ततः क्रुद्धः सैन्येन महता वृतः ।
अभ्यद्रवत्सुसंरब्धस्तावकान्हन्तुमुद्यतः ॥ १७ ॥

तब सेनापति धृष्टद्युम्नको महाक्रोध हुआ और बहुत सेना अपने सङ्गमें लेकर तुम्हारे सैनिकोंका नाश करनेके लिये उद्यत होकर अत्यंत क्रुद्ध होकर आक्रमण किया ॥ १७ ॥

ततस्त्वापततस्तस्य तव पुत्रो जनाधिप ।
बाणसंघाननेकान्वै प्रेषयामास भारत ॥ १८ ॥

हे महाराज ! हे भारत ! उनको आते देख तुम्हारे पुत्र दुर्योधन उनके ऊपर अनेक प्रकार बाण चलाने लगे ॥ १८ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजंस्तव पुत्रेण धन्विना ।
नाराचैर्बहुभिः क्षिप्रं बाह्वोरुरसि चार्पितः ॥ १९ ॥

राजन् ! तुम्हारे धनुषधारी पुत्रने अनेक नाराच, विषमें बुझे बाणोंसे शीघ्र ही धृष्टद्युम्नकी दोनों भुजाओं और छातीमें भी मारकर उन्हें व्याकुल कर दिया ॥ १९ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
तस्याश्वांश्चतुरो बाणैः प्रेषयामास मृत्यवे ।
सारथेश्चास्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥ २० ॥

दुर्योधनके उन बाणोंके लगनेसे विद्ध हुए महाधनुषधारी धृष्टद्युम्नको ऐसा क्रोध हुआ जैसे अंकुश लगनेसे हाथीको । तब उन्होंने चार बाणोंसे दुर्योधनके चारों घोडोंको मार कर, एक भल्ल बाणसे सारथीका शिर धडसे काटकर गिरा दिया ॥ २० ॥

ततो दुर्योधनो राजा पृष्ठमारुह्य वाजिनः ।
अपाक्रामद्धतरथो नातिदूरमरिंदमः ॥ २१ ॥

तब रथके नष्ट हो जानेपर शत्रुदमन राजा दुर्योधन रथसे उतरकर एक घोडेपर चढे और सेनासे थोडी दूर जाकर खडे हो गये ॥ २१ ॥

दृष्ट्वा तु हतविक्रान्तं स्वमनीकं महाबलः ।
तव पुत्रो महाराज प्रययौ यत्र सौबलः ॥ २२ ॥

महाराज ! तुम्हारे पुत्र महाबलवान् दुर्योधन अपनी सेनाका पराक्रम नष्ट हुआ देखकर, उसी घोडेपर चढकर सुबलपुत्र शकुनिके पास चले गये ॥ २२ ॥

ततो रथेषु भग्नेषु त्रिसाहस्रा महाद्विपाः ।
पाण्डवान्रथिनः पञ्च समन्तात्पर्यवारयन् ॥ २३ ॥

जब यह रथसेना नष्ट हो चुकी और बचे हुए वीर भाग गये, तब तीन सहस्र बडे हाथियोंने पांचों पाण्डवोंको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २३ ॥

ते वृताः समरे पञ्च गजानीकेन भारत ।
अशोभन्त नरव्याघ्रा ग्रहा व्याप्ता घनैरिव ॥ २४ ॥

भारत ! महाराज ! समरमें उस समय पांचों पाण्डव उन हाथियोंके बीचमें ऐसे शोभित होने लगे, जैसे मेघोंके बीचमें पांच ग्रह ॥ २४ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज लब्धलक्षो महाभुजः ।
विनिर्ययौ रथेनैव श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ २५ ॥

महाराज ! तब महाबाहु अर्जुन जिनके श्रीकृष्ण सारथि हैं, वे सफेद घोडोंके रथपर बैठकर अपने बाणोंका लक्ष्य पाकर आगे चले ॥ २५ ॥

तैः समन्तात्परिवृतः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्गजानीकमपोथयत् ॥ २६ ॥

अर्जुनको चारों ओरसे पर्वतके समान हाथियोंकी सेनाने घेर दिया था। वे तेज निर्मल और तीक्ष्ण नाराच बाण चलाने और उस गज सेनाका नाश करने लगे ॥ २६ ॥

तत्रैकबाणनिहतानपश्याम महागजान् ।
पतितान्पात्यमानांश्च विभिन्नान्सव्यसाचिना ॥ २७ ॥

हमने उस समय यह देखा कि सव्यसाची अर्जुनके एक एक ही बाणसे अनेक हाथी शरीर विदीर्ण होकर मरकर गिर गये और गिराये जा रहे हैं ॥ २७ ॥

भीमसेनस्तु तान्दृष्ट्वा नागान्मत्तगजोपमः ।
करेण गृह्य महतीं गदामभ्यपतद्बली ।
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ २८ ॥

मतवाले हाथीके समान पराक्रमी बलवान् भीमसेन भी उस गजसेनाको आगे देखकर शीघ्र ही रथसे कूदकर हाथमें बडी गदा लेकर दण्डधारी यमराजके समान उनपर टूट पडे ॥ २८ ॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथम् ।
वित्रेसुस्तावकाः सैन्याः शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।
आविग्नं च बलं सर्वं गदाहस्ते वृकोदरे ॥ २९ ॥

उन पाण्डव महारथी भीमसेनको रथसे उतरते देख तुम्हारी सब सेना डरने लगी। और तुम्हारे सैनिक विष्टा और मूत्र करने लगे, भीमसेनको गदा धारण किये देख सब कौरव सेना उद्विग्न हो गई ॥ २९ ॥

गदया भीमसेनेन भिन्नकुम्भान्रजस्वलान् ।
धावमानानपश्याम कुञ्जरान्पर्वतोपमान् ॥ ३० ॥

उस समय भीमसेनकी गदासे पर्वतके समान हाथियोंके शिर टूटे और रुधिरमें भीगे हाथी इधर उधरको भागते दीखते थे ॥ ३० ॥

प्रधाव्य कुञ्जरास्ते तु भीमसेनगदाहताः ।
पेतुरार्तस्वरं कृत्वा छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ ३१ ॥

कहीं भीमसेनकी गदाके लगनेसे घायल हुए हाथी भाग चले और कहीं चिल्लाते हुए हाथी पंख कटे हुए पर्वतोंके समान पृथ्वी पर गिरते थे ॥ ३१ ॥

तान्भिन्नकुम्भान्सुबहून्द्रवमाणानितस्ततः ।
पतमानांश्च सम्प्रेक्ष्य वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ ३२ ॥

कुंभस्थल फट जानेके कारण इधर उधर भागते हुए और गिरते हुए अनेक हाथियोंको देखकर तुम्हारी सब सेना भयसे व्याकुल हो गई ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
गृध्रपक्षैः शितैर्बाणैर्जघ्नुर्वै गजयोधिनः ॥ ३३ ॥

तब राजा युधिष्ठिर, माद्रीपुत्र पाण्डव नकुल और सहदेव भी क्रोध करके अपने गीधकी पांखोंवाले तेज बाणोंसे हाथियोंको मारने लगे ॥ ३३ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे पराजित्य नराधिपम् ।
अपक्रान्ते तव सुते हयपृष्ठं समाश्रिते ॥ ३४ ॥

द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न भी युद्धमें राजा दुर्योधनको पराजित कर और तुम्हारे पुत्रको घोडेके पीठ पर चढकर भागते देख ॥ ३४ ॥

दृष्ट्वा च पाण्डवान्सर्वान्कुञ्जरैः परिवारितान् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज सह सर्वैः प्रभद्रकैः ।
पुत्रः पाञ्चालराजस्य जिघांसुः कुञ्जरान्ययौ ॥ ३५ ॥

और सब पाण्डवोंको हाथियोंसे घिरा हुआ देखकर, महाराज ! सब प्रभद्रक वीरोंके साथ पाञ्चाल राजपुत्र धृष्टद्युम्न उधरहीके हाथियोंको मारनेकी इच्छासे युद्ध करनेके लिये चले गये ॥ ३५ ॥

अदृष्ट्वा तु रथानीके दुर्योधनमरिन्दमम् ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
अपृच्छन्क्षत्रियांस्तत्र क नु दुर्योधनो गतः ॥ ३६ ॥

इधर रथसेनामें शत्रुनाशन दुर्योधनको न देखकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा क्षत्रियोंसे पूछने लगे कि राजा दुर्योधन कहां चले गये हैं ? ॥ ३६ ॥

अपश्यमाना राजानं वर्तमाने जनक्षये ।
मन्वाना निहतं तत्र तव पुत्रं महारथाः ।
विषण्णवदना भूत्वा पर्यपृच्छन्त ते सुतम् ॥ ३७ ॥

किसीने जब उनके वचनका उत्तर न दिया, तब इन तीनों महारथियोंने राजाको न देखकर मान लिया कि तुम्हारे पुत्र महाराज दुर्योधन आजके युद्धमें मारे गये, उस समय उन तीनोंके मुखोंका रङ्ग उड गया । तब फिर घबडाकर क्षत्रियोंसे तुम्हारे पुत्रका पता पूछने लगे ॥ ३७ ॥

आहुः केचिद्धते सूते प्रयातो यत्र सौबलः ।
अपरे त्वब्रुवंस्तत्र क्षत्रिया भृशविक्षताः ॥ ३८ ॥

तब किसी क्षत्रियने कहा कहा कि सारथिके मारे जानेपर राजा दुर्योधन सुबलपुत्र शकुनिके पास चले गये हैं, कोई कोई बाणोंसे अत्यंत व्याकुल क्षत्रिय क्रोधसे भरकर वहां कहने लगे ॥ ३८ ॥

दुर्योधनेन किं कार्यं द्रक्ष्यध्वं यदि जीवति ।
युध्यध्वं सहिताः सर्वे किं वो राजा करिष्य ॥ ३९ ॥

दुर्योधनसे क्या काम है ? कहीं वे जीवित होंगे तो देखेंगे ही। चलो सब मिलकर पाण्डवोंसे युद्ध करें, अब राजा तुम्हारी सहाय्यता करेंगे ? ॥ ३९ ॥

ते क्षत्रियाः क्षतैर्गात्रैर्हतभूयिष्ठवाहनाः ।
शरैः संपीडयमानाश्च नातिव्यक्तमिवाब्रुवन् ॥ ४० ॥

वे युद्ध करनेवाले सब क्षत्रिय वाहनरहित और उनके शरीर क्षतविक्षत हो गये थे । बाणोंके घावोंसे पीडित क्षत्रिय दुर्योधनके ठीक पता न लगा सके और सब अस्पष्ट अवाजमें बोलने लगे कि ॥ ४० ॥

इदं सर्वं बलं हन्मो येन स्म परिवारिताः ।
एते सर्वे गजान्हत्वा उपयान्ति स्म पाण्डवाः ॥ ४१ ॥

हम जिस पाण्डवोंकी सेनासे घिरे हुए हैं, आज उसका सर्वनाश करेंगे । ये सब पाण्डव लोग हमारी ओरके हाथियोंकी सेनाको मारकर हमारे पास आ रहे हैं ॥ ४१ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषामश्वत्थामा महाबलः ।
हित्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम् ॥ ४२ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च प्रययुर्यत्र सौबलः ।
रथानीकं परित्यज्य शूराः सुदृढधन्विनः ॥ ४३ ॥

उनके वचन सुनकर महाबलवान् अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ये सब दृढ धनुषधारी शूरवीर अपनी रथसेनाको छोडकर, पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नकी उस दुःसह सेनाको काटते हुए शकुनिके पास पहुंच गये ॥ ४२-४३ ॥

ततस्तेषु प्रयातेषु धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
आययुः पाण्डवा राजन्विनिघ्नन्तः स्म तावकान् ॥ ४४ ॥
राजन् ! उनके चले जानेके पश्चात् धृष्टद्युम्नकी आदि और पाण्डव भी तुम्हारी सेनाका नाश करते करते वहां मिल गये ॥ ४४ ॥

दृष्ट्वा तु तानापततः संप्रहृष्टान्महारथान्।
पराक्रान्तांस्ततो वीरान्निराशाञ्जीविते तदा।
विवर्णमुखभूयिष्ठमभवत्तावकं बलम् ॥ ४५ ॥
उन आनन्दमें भरे हुए महारथी वीरोंको अपनी ओर आक्रमणके लिये आते हुए देखकर तुम्हारी ओरके वीरोंको जीनेकी आशा छूट गई, तुम्हारे सब सैनिकोंके मुखोंके रङ्ग उड गये ॥ ४५ ॥

परिक्षीणायुधान्दृष्ट्वा तानहं परिवारितान्।
राजन्बलेन द्व्यङ्गेन त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ ४६ ॥
हम अपनी सेनाको शस्त्र रहित, चारों ओरसे घिरी हुई और भागती हुई देखकर घबडाने लगे, राजन् ! उन सबकी वैसी अवस्था देख, जीवनका मोह छोडकर ॥ ४६ ॥

आत्मनापञ्चमोऽयुध्यं पाञ्चालस्य बलेन ह।
तस्मिन्देशे व्यवस्थाप्य यत्र शारद्वतः स्थितः ॥ ४७ ॥
धृष्टद्युम्नकी सेनासे आप ही युद्ध करने लगे, उस समय हम जहां कृपाचार्य थे उसी स्थानमें स्थित होकर युद्ध करते थे ॥ ४७ ॥

संप्रयुद्धा वयं पञ्च किरीटिशरपीडिताः।
धृष्टद्युम्नं महानीकं तत्र नोऽभूद्रणो महान्।
जितास्तेन वयं सर्वे व्यपयाम रणात्ततः ॥ ४८ ॥
फिर किरीटधारी अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर हम पांचों वहांसे भाग गये, वहां भी महापराक्रमी धृष्टद्युम्न और उनकी महान् सेनाके पास पहुंच गए और वहां हमारा बडा भारी युद्ध हुआ। उन्होंने हमको जीत लिया। तब हम फिर युद्धसे भागे ॥ ४८ ॥

अथापश्यं सात्यकिं तमुपायान्तं महारथम्।
रथैश्चतुःशतैर्वीरो मां चाभ्यद्रवदाहवे ॥ ४९ ॥
और थोडी दूर जाकर देखा कि चार सौ रथियोंके समेत समरमें महारथी सात्यकि मेरे ऊपर धावा करनेके लिये मेरे पास आ रहे हैं ॥ ४९ ॥

धृष्टद्युम्नादहं मुक्तः कथंचिच्छ्रान्तवाहनः ।
पतितो माधवानीकं दुष्कृती नरकं यथा ।
तत्र युद्धमभूद्घोरं मुहूर्तमतिदारुणम् ॥ ५० ॥

उस समय धृष्टद्युम्नके घोडे कुछ थक गये थे, इसलिये वह हमको पकड न सके, तब मैं उनसे छूटकर सात्यकिकी सेनामें इस प्रकार आ पडा, जैसे पापी नरकमें जा गिरता है। तब वहां भी क्षणमात्र अत्यंत घोर युद्ध होता रहा ॥ ५० ॥

सात्यकिस्तु महाबाहुर्मम हत्वा परिच्छदम् ।
जीवग्राहमगृह्णान्मां मूर्छितं पतितं भुवि ॥ ५१ ॥

महाबाहु सात्यकिने मेरी सब युद्ध सामग्री काट डाली, तब मुझे पृथ्वीमें मूर्च्छित पडा देख, जीता ही पकड लिया ॥ ५१ ॥

ततो मुहूर्तादिव तद्गजानीकमवध्यत ।
गदया भीमसेनेन नाराचैरर्जुनेन च ॥ ५२ ॥

तदनन्तर थोडे ही समयमें भीमसेनने गदासे और अर्जुनने नाराच बाणोंसे हमारी सब गजसेना नष्ट कर दी ॥ ५२ ॥

प्रतिपिष्टैर्महानागैः समन्तात्पर्वतोपमैः ।
नातिप्रसिद्धेव गतिः पाण्डवानामजायत ॥ ५३ ॥

उस समय चारों ओर पर्वतोंके समान हाथियोंके गिरनेसे जो भीमसेन और अर्जुनके आघातोंसे पिस गये थे, पाण्डवोंके रथोंकी गति बन्द हो गई ॥ ५३ ॥

रथमार्गांस्ततश्चक्रे भीमसेनो महाबलः ।
पाण्डवानां महाराज व्यपकर्षन्महागजान् ॥ ५४ ॥

महाराज ! तब महाबलवान् भीमसेनने उन बडे हाथियोंको खींच खींचकर हटाया और पाण्डवोंके लिये रथोंका मार्ग बना लिया ॥ ५४ ॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
अपश्यन्तो रथानीके दुर्योधनमरिंदमम् ।
राजानं मृगयामासुस्तव पुत्रं महारथम् ॥ ५५ ॥

तब अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा उस रथसेनामें भी तुम्हारे पुत्र शत्रुनाशन महारथी राजा दुर्योधनको न पाकर बहुत घबडाये और उसकी खोज करने लगे ॥ ५५ ॥

परित्यज्य च पाञ्चालं प्रयाता यत्र सौबलः ।
राज्ञोऽदर्शनसंविग्ना वर्तमाने जनक्षये ॥ ५६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ १२६२ ॥

धृष्टद्युम्नको वैसे ही युद्ध करते खडे तथा अपनी सेनाको वैसे ही नष्ट होते छोड, राजाको ढूंढनेके लिये शकुनिकी ओर चले गये । राजा दुर्योधनको उस नरसंहारमें नहीं देखनेके कारण वे उद्विग्न हो गये थे ॥ ५६ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें चौवीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ १२६२ ॥

: २५ :

सञ्जय उवाच—
गजानीके हते तस्मिन्पाण्डुपुत्रेण भारत ।
वध्यमाने बले चैव भीमसेनेन संयुगे ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! भारत धृतराष्ट्र ! जब पाण्डुपुत्र भीमसेनने उस गजसेनाका और दुसरी सेनाका भी नाश कर दिया ॥ १ ॥

चरन्तं च तथा दृष्ट्वा भीमसेनमरिंदमम् ।
दण्डहस्तं यथा क्रुद्धमन्तकं प्राणहारिणम् ॥ २ ॥

और समरमें प्राणनाशक दण्डधारी यमराजके समान कुपित हुए शत्रुनाशन भीमसेन घूमने लगे ॥ २ ॥

समेत्य समरे राजन्हतशेषाः सुतास्तव ।
अदृश्यमाने कौरव्ये पुत्रे दुर्योधने तव
सोदर्याः सहिता भूत्वा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥ ३ ॥

राजन् ! और जब तुम्हारे पुत्र कुरुवंशी राजा दुर्योधनका कहीं पता न लगा, तब मरनेसे बचे हुए तुम्हारे सब पुत्र मिलकर भीमसेनसे युद्ध करनेको दौडे ॥ ३ ॥

दुर्मर्षणो महाराज जैत्रो भूरिबलो रविः ।
इत्येते सहिता भूत्वा तव पुत्राः समन्ततः ।
भीमसेनमभिद्रुत्य रुरुधुः सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥

महाराज ! दुर्मर्षण, जैत्र, भूरिबल, रवि, आदि ये सब महावीर तुम्हारे पुत्रोंने चारों ओरसे एक साथ मिलकर भीमसेनको घेर लिया और आक्रमण करके सब दिशाओंको रोक दिया ॥४॥

ततो भीमो महाराज स्वरथं पुनरास्थितः ।
मुमोच निशितान्बाणान्पुत्राणां तव मर्मसु ॥ ५ ॥

हे महाराज ! तब महारथी भीमसेन भी फिर अपने रथपर चढकर तुम्हारे पुत्रोंके मर्मस्थानोंमें तीक्ष्ण बाण मारने लगे ॥ ५ ॥

ते कीर्यमाणा भीमेन पुत्रास्तव महारणे ।
भीमसेनमपासेधन्प्रवणादिव कुञ्जरम् ॥ ६ ॥

जब भीमसेन तुम्हारे पुत्रोंपर बाणोंका वर्षाव उस महासंग्राममें करने लगे, तब जैसे शिकारी हाथीको दूरतक खींचकर ले जाते हैं वैसे ही उन्होंने भीमसेनको किया ॥ ६ ॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमः शिरो दुर्मर्षणस्य ह ।
क्षुरप्रेण प्रमथ्याशु पातयामास भूतले ॥ ७ ॥

तब भीमसेनने रणभूमिमें क्रोध करके एक क्षुरप्र बाणसे दुर्मर्षणका शिर शीघ्र ही काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ७ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन सर्वावरणभेदिना
श्रुतान्तमवधीद्भीमस्तव पुत्रं महारथः ॥ ८ ॥

तदनंतर दूसरे सब शरीरावरण काटने योग्य भल्ल बाणसे महारथी भीमसेनने तुम्हारे पुत्र श्रुतान्तका वध किया ॥ ८ ॥

जयत्सेनं ततो विद्ध्वा नाराचेन हसन्निव ।
पातयामास कौरव्यं रथोपस्थादरिंदमः ।
स पपात रथाद्राजन्भूमौ तूर्णं ममार च ॥ ९ ॥

और फिर हंसकर शत्रुनाशन भीमने कुरुवंशी जयत्सेनको नाराच बाणसे विद्ध करके रथसे नीचे गिरा दिया। राजन् ! जयत्सेन उस बाणके लगते ही रथसे पृथ्वीपर गिर गया और तुरंत ही मर गया ॥ ९ ॥

श्रुतर्वा तु ततो भीमं क्रुद्धो विव्याध मारिष ।
शतेन गृध्रवाजानां शराणां नतपर्वणाम् ॥ १० ॥

मारिष ! तब श्रुतर्वाने महाक्रोध करके गिद्धके पङ्ख लगे, अत्यन्त तेज नतपर्व सौ बाण भीमसेनके शरीरमें मारे ॥ १० ॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमो जैत्रं भूरिबलं रविम् ।
त्रीनेतांस्त्रिभिरानर्छद्विषाग्निप्रतिमैः शरैः ॥ ११ ॥

तब भीमसेनने क्रोध करके विष और अग्निके समान भयंकर तीन तेज बाणोंसे जैत्र, भूरिबल और रवि इन तीनोंको मार डाला ॥ ११ ॥

ते हता न्यपतन्भूमौ स्यन्दनेभ्यो महारथाः ।
वसन्ते पुष्पशबला निकृत्ता इव किंशुकाः ॥ १२ ॥

ये तीनों महारथी भाई बाणोंसे कटकर रथोंसे इस प्रकार पृथ्वीमें गिरे जैसे वसन्त कालमें फूला हुआ टेसू कटकर गिरते हैं ॥ १२ ॥

ततोऽपरेण तीक्ष्णेन नाराचेन परंतपः ।
दुर्विमोचनमाहत्य प्रेषयामास मृत्यवे ॥ १३ ॥

तब शत्रुओंको त्रस्त करनेवाले भीमसेनने दूसरे एक अत्यन्त तेज नाराच बाणसे दुर्विमोचनको मारकर मृत्युके आधीन कर दिया ॥ १३ ॥

स हतः प्रापतद्भूमौ स्वरथाद्रथिनां वरः ।
गिरेस्तु कूटजो भग्नो मारुतेनेव पादपः ॥ १४ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ दुर्विमोचन उस बाणके आघातसे मरकर इस प्रकार अपने रथसे पृथ्वीमें गिरे, जैसे कोई बडा वृक्ष वायुके वेगसे पर्वतके शिखरसे टूटकर पृथ्वीमें गिरता है ॥ १४ ॥

दुष्प्रधर्षं ततश्चैव सुजातं च सुतौ तव ।
एकैकं न्यवधीत्संख्ये द्वाभ्यां द्वाभ्यां चमूमुखे ।
तौ शिलीमुखविद्धाङ्गौ पेततू रथसत्तमौ ॥ १५ ॥

फिर भीमसेनने दो दो बाणोंसे तुम्हारे पुत्र दुष्प्रधर्ष और सुजातको सेनाके अग्रभागमें युद्धमें मार डाला; ये दोनों महारथी वीर बाणोंसे सब शरीर विद्ध होकर मरकर पृथ्वीमें गिर गये ॥ १५ ॥

ततो यतन्तमपरमभिवीक्ष्य सुतं तव ।
भल्लेन युधि विव्याध भीमो दुर्विषहं रणे ।
स पपात हतो वाहात्पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ १६ ॥

तब तुम्हारे पुत्र दुर्विषहको अपनी ओर आक्रमणके लिये आते देख भीमने उसे भी युद्धमें एक भल्ल बाणसे मार डाला; वह भल्ल बाणके आघातसे सब धनुषधारीयोंके देखते ही रथसे पृथ्वीमें गिर गया ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा तु निहतान्भ्रातॄन्बहूनेकेन संयुगे ।
अमर्षवशमापन्नः श्रुतर्वा भीममभ्ययात् ॥ १७ ॥

युद्धमें अपने अनेक भाइयोंको अकेले भीमसेनसे मारा गया देख श्रुतर्वाको महाक्रोध हुआ और उसने भीमसेनपर धावा किया ॥ १७ ॥

विक्षिपन्सुमहच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ।
विसृजन्सायकांश्चैव विषाग्निप्रतिमान्बहून् ॥ १८ ॥

वह अपने सुवर्णभूषित बडे धनुषको खींचकर उसमें विष और अग्निके समान भयंकर अनेक बाण छोडने लगा ॥ १८ ॥

स तु राजन्धनुश्छित्त्वा पाण्डवस्य महामृधे ।
अथैनं छिन्नधन्वानं विंशत्या समवाकिरत् ॥ १९ ॥

राजन् ! और उस महायुद्धमें उसने पाण्डुपुत्र भीमसेनका धनुष काटकर बीस बाण उनके शरीरमें मारे ॥ १९ ॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनो महारथः ।
अवाकिरत्तव सुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २० ॥

तब महारथी भीमसेनने शीघ्रता सहित दूसरा धनुष लेकर तुम्हारे पुत्रपर अनेक बाण चलाये और श्रुतर्वासे कहने लगे कि खडा रह खडा रह ॥ २० ॥

महदासीत्तयोर्युद्धं चित्ररूपं भयानकम् ।
यादृशं समरे पूर्वं जम्भवासवयोरभूत् ॥ २१ ॥

उस समय उन दोनोंका ऐसा घोर, भयानक, अद्भुत और महान् युद्ध हुआ, जैसा पहले जंभासुर और इन्द्रका युद्ध हुआ था ॥ २१ ॥

तयोस्तत्र शरैर्मुक्तैर्यमदण्डनिभैः शुभैः ।
समाच्छन्ना धरा सर्वा खं च सर्वा दिशस्तथा ॥ २२ ॥

इन दोनोंके यमराजके दण्डके समान तेज, शुभ बाणोंसे सारी पृथ्वी, आकाश और सब दिशाएं आच्छादित हो गयीं ॥ २२ ॥

ततः श्रुतर्वा संक्रुद्धो धनुरायम्य सायकैः ।
भीमसेनं रणे राजन्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २३ ॥

राजन् ! तब श्रुतर्वाने क्रोध करके धनुष खींचकर अपने बाणोंसे युद्धमें भीमसेनके हृदय और हाथोंमें अनेक बाण मारे ॥ २३ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज तव पुत्रेण धन्विना ।
भीमः संचुक्षुभे क्रुद्धः पर्वणीव महोदधिः ॥ २४ ॥

महाराज ! तब तुम्हारे धनुर्धर पुत्रके उन बाणोंसे अत्यंत व्याकुल होकर, भीमसेनका क्रोध ऐसा बढा जैसे पूर्णमासीके दिन महा समुद्र क्षुब्ध हो उठता है ॥ २४ ॥

तत्तो भीमो रुषाविष्टः पुत्रस्य तव मारिष ।
सारथिं चतुरश्चाश्वान्बाणैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ २५ ॥

मारिष ! तब क्रोधाविष्ट भीमसेनने अपने बाणोंसे तुम्हारे पुत्रके घोडे और सारथिको मार डाला ॥ २५ ॥

विरथं तं समालक्ष्य विशिखैर्लोमवाहिभिः ।
अवाकिरदमेयात्मा दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥ २६ ॥

श्रुतर्वाको रथहीन देखकर अमेयात्मा भीमसेनने पक्षियोंके पंखयुक्त बहुत तेज बाणोंसे व्याकुल कर दिया और अपनी बाणविद्याकी शीघ्रता दिखलाई ॥ २६ ॥

श्रुतर्वा विरथो राजन्नाददे खड्गचर्मणी ।
अथास्याददतः खड्गं शतचन्द्रं च भानुमत् ।
क्षुरप्रेण शिरः कायात्पातयामास पाण्डवः ॥ २७ ॥

राजन् ! रथहीन तब श्रुतर्वा भी खड्ग और ढाल लेकर रथसे उतरने लगे । सौ चन्द्रकार चिन्होंसे युक्त ढाल और स्वयंकी प्रभासे चमकता हुआ खड्ग वह ले रहा था, परन्तु पाण्डव-पुत्र भीमसेनने शीघ्रता सहित एक तेज क्षुरप्र बाणसे उसका शिर धडसे काटकर पृथ्वीमें डाल दिया ॥ २७ ॥

छिन्नोत्तमाङ्गस्य ततः क्षुरप्रेण महात्मनः ।
पपात कायः स रथाद्वसुधामनुनादयन् ॥ २८ ॥

तब भीमसेनके क्षुरप्र बाणसे शिर कट जानेसे उसका शरीर भी पृथ्वीको प्रतिध्वनित करता हुआ रथसे नीचे गिर गया ॥ २८ ॥

तस्मिन्निपतिते वीरे तावका भयमोहिताः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीमसेनं युयुत्सवः ॥ २९ ॥

वीर श्रुतर्वाको मरा हुआ देख, तुम्हारी सेना भयसे व्याकुल हो गई और बचे हुए वीर भीमसेनसे युद्ध करनेकी इच्छासे दौडे ॥ २९ ॥

तानापतत एवाशु हतशेषाद्बलार्णवात् ।
दंशितः प्रतिजग्राह भीमसेनः प्रतापवान् ।
ते तु तं वै समासाद्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ ३० ॥

मरनेसे बचे हुए सैन्य समूहको अपनी ओर आक्रमणके लिये आते देख कवचधारी प्रतापवान् भीमसेनने उनको रोक दिया, उन्होंने चारों ओरसे भीमसेनके पास आकर उन्हें घेर लिया ॥ ३० ॥

ततस्तु संवृतो भीमस्तावकैर्निशितैः शरैः ।
पीडयामास तान्सर्वान्सहस्राक्ष इवासुरान् ॥ ३१ ॥

तब घिरे हुए भीमसेनने अपने तेज बाणोंसे तुम्हारे उन सब सैनिकोंको इस प्रकार व्याकुल कर दिया, जैसे इन्द्र राक्षसोंको व्याकुल कर देता है ॥ ३१ ॥

ततः पञ्चशतान्हत्वा सवरूथान्महारथान् ।
जघान कुञ्जरानीकं पुनः सप्तशतं युधि ॥ ३२ ॥

तदनंतर भीमसेनने आवरणों सहित पांच सौ महारथोंको नष्ट करके फिर युद्धमें सात सौ हाथीसेनाको मार डाला ॥ ३२ ॥

हत्वा दश सहस्राणि पत्तीनां परमेषुभिः ।
वाजिनां च शतान्यष्टौ पाण्डवः स्म विराजते ॥ ३३ ॥

फिर श्रेष्ठ बाणोंसे दस हजार पैदल और आठ सौ घोडोंको मारके पाण्डुपुत्र भीमसेन शोभायमान होने लगे ॥ ३३ ॥

भीमसेनस्तु कौन्तेयो हत्वा युद्धे सुतांस्तव ।
मेने कृतार्थमात्मानं सफलं जन्म च प्रभो ॥ ३४ ॥

हे प्रभो ! इस प्रकार तुम्हारे पुत्रोंका युद्धमें नाश करके कुन्तीपुत्र भीमसेनने अपनेको कृतकृत्य और अपने जन्मको सफल जाना ॥ ३४ ॥

तं तथा युध्यमानं च विनिघ्नन्तं च तावकान् ।
ईक्षितुं नोत्सहन्ते स्म तव सैन्यानि भारत । ॥ ३५ ॥

भारत ! उनको इस प्रकार युद्ध और तुम्हारे पुत्र और सैनिकोंका नाश करते देख, तुम्हारी सेनाके किसी वीरकी यह शक्ति न देख पडी कि उनकी ओर दृष्टि कर सके ॥ ३५ ॥

विद्राव्य तु कुरून्सर्वांस्तांश्च हत्वा पदानुगान् ।
दोर्भ्यां शब्दं ततश्चक्रे त्रासयानो महाद्विपान् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार सब कौरव वीरोंको भगाकर और उनके अनुयायी सैनिकोंको नष्ट करके भीमसेन ताल ठोकने लगे । उस तालके शब्दसे बडे बडे हाथी डरने लगे ॥ ३६ ॥

हतभूयिष्ठयोधा तु तव सेना विशां पते ।
किंचिच्छेषा महाराज कृपणा समपद्यत ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ १२९९ ॥

हे पृथ्वीपते ! महाराज ! उस समय प्रायः तुम्हारे सब वीर मारे गये परंतु तुम्हारी जो सेना मरनेसे बची थी, वह भी भयसे व्याकुल हो गई ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें पचीसवां अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ १२९९ ॥

: २६ :

सञ्जय उवाच—

दुर्योधनो महाराज सुदर्शश्चापि ते सुतः ।
हतशेषौ तदा संख्ये वाजिमध्ये व्यवस्थितौ ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! उस समय तुम्हारे पुत्रोंमेंसे केवल दुर्योधन और सुदर्शन ये दो ही मरनेसे बचे थे, ये दोनों अश्वसेनामें खडे थे ॥ १ ॥

ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा वाजिमध्ये व्यवस्थितम् ।
उवाच देवकीपुत्रः कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ॥ २ ॥

तदनन्तर दुर्योधनको अश्वसेनामें खडे देख देवकीपुत्र श्रीकृष्ण कुन्तीपुत्र अर्जुनसे बोले ॥ २ ॥

शत्रवो हतभूयिष्ठा ज्ञातयः परिपालिताः ।
गृहीत्वा संजयं चासौ निवृत्तः शिनिपुंगवः ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! शत्रुओंके प्रायः सब वीर मारे गये और तुमने अपनी जातिकी रक्षा की है । ये देखो, सञ्जयको पकडे हुए शिनिश्रेष्ठ सात्यकि युद्धसे लौटे आते हैं ॥ ३ ॥

परिश्रान्तश्च नकुलः सहदेवश्च भारत ।
योधयित्वा रणे पापान्धार्तराष्ट्रपदानुगान् ॥ ४ ॥

भारत ! देखो, अनुयायियोंके साथ धृतराष्ट्रके पापी पुत्रोंसे युद्धमें लडते लडते नकुल और सहदेव भी थक गये हैं ॥ ४ ॥

सुयोधनमभित्यज्य त्रय एते व्यवस्थिताः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥ ५ ॥

यह देखो, दुर्योधनको छोडकर कृपाचार्य, कृतवर्मा, और महारथी अश्वत्थामा ये तीनों खडे हैं ॥ ५ ॥

असौ तिष्ठति पाञ्चाल्यः श्रिया परमया युतः ।
दुर्योधनबलं हत्वा सह सर्वैः प्रभद्रकैः ॥ ६ ॥

यह देखो, हमारे प्रधान सेनापति महातेजस्वी पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न दुर्योधनकी सब सेनाका नाश करके प्रभद्रकवंशी क्षत्रियोंके सहित युद्धभूमीमें खडे हैं ॥ ६ ॥

असौ दुर्योधनः पार्थ वाजिमध्ये व्यवस्थितः ।
छत्रेण ध्रियमाणेन प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥

पार्थ ! यह देखो जिनके शिरपर छत्र लगा है, जो बार बार चारों ओर देख रहे हैं, जो व्यूह बनाये घुडचढी सेनाके बीचमें खडे हैं वही महाराज दुर्योधन हैं ॥ ७ ॥

प्रतिव्यूह्य बलं सर्वं रणमध्ये व्यवस्थितः ।
एनं हत्वा शितैर्बाणैः कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ८ ॥

वह सब अपनी सेनाका व्यूह बनाकर रणभूमिमें खडे हैं । तुम तेजबाणोंसे इनका नाश करके कृतकृत्य होंगे ॥ ८ ॥

गजानीकं हतं दृष्ट्वा त्वां च प्राप्तमरिंदम ।
यावन्न विद्रवन्त्येते तावज्जहि सुयोधनम् ॥ ९ ॥

हे शत्रुनाशन ! जबतक हाथी सेनाको मरा देख और तुमको आया देख यह सेना न भाग जाय, तभीतक तुम दुर्योधनको मार डालो ॥ ९ ॥

यातु कश्चित्तु पाञ्चाल्यं क्षिप्रमागम्यतामिति ।
परिश्रान्तबलस्तात नैष मुच्येत किल्बिषी ॥ १० ॥

तुम अपनी सहायताके लिये शीघ्र एक मनुष्य भेजकर पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नको अपने पास शीघ्रतासे बुला लो । तात ! इस समय यह पापी दुर्योधन नहीं बच सकता, कारण इसकी सब सेना बहुत थक गयी है, इस लिये इसे मार ही डालना चाहिये ॥ १० ॥

तव हत्वा बलं सर्वं संग्रामे धृतराष्ट्रजः ।
जितान्पाण्डुसुतान्मत्वा रूपं धारयते महत् ॥ ११ ॥

यह दुर्योधन युद्धमें तुम्हारी सब सेनाका नाश करके पाण्डवोंको जीत लिया यह समझकर कैसा उग्ररूप धारण करके खडा है ॥ ११ ॥

निहतं स्वबलं दृष्ट्वा पीडितं चापि पाण्डवैः ।
ध्रुवमेष्यति संग्रामे वधायैवात्मनो नृपः ॥ १२ ॥

जब इसकी सब सेना मारी गयी और पाण्डवोंके बाणोंसे व्याकुल हो गई हुई यह देखेगा, तब राजा दुर्योधन निश्चय ही आप ही मरनेके लिये युद्धमें आवेगा ॥ १२ ॥

एवमुक्तः फल्गुनस्तु कृष्णं वचनमब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रसुताः सर्वे हता भीमेन मानद ।
यावेतावास्थितौ कृष्ण तावद्य न भविष्यतः ॥ १३ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे वचन कहनेपर अर्जुन उनसे बोले, हे माननीय कृष्ण ! धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको भीमसेनने मारा है, ये जो दोनों खडे हैं सो भी अब आज नहीं बचेंगे ॥ १३ ॥

हतो भीष्मो हतो द्रोणः कर्णो वैकर्तनो हतः ।
मद्रराजो हतः शल्यो हतः कृष्ण जयद्रथः ॥ १४ ॥

हे श्रीकृष्ण ! भीष्म मारे गये, द्रोणाचार्य मारे गए, वैकर्तन कर्ण भी मार डाले गए, मद्रराज शल्य मारे गए, जयद्रथ मारे गए ॥ १४ ॥

हयाः पञ्चशताः शिष्टाः शकुनेः सौबलस्य च ।
रथानां तु शते शिष्टे द्वे एव तु जनार्दन ।
दन्तिनां च शतं साग्रं त्रिसाहस्राः पदातयः ॥ १५ ॥

जनार्दन ! अब सुबलपुत्र शकुनिके सङ्गवाले पांच सौ घुडचढे, दो सौ रथ, एक सौ हाथी और तीन सहस्र पैदल सैनिक शेष रह गये हैं ॥ १५ ॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव त्रिगर्ताधिपतिस्तथा ।
उलूकः शकुनिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ १६ ॥

प्रधानोंमें अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रिगर्तदेशके राजा सुशर्मा, उलूक, शकुनि और सात्वतवंशी कृतबर्मा ॥ १६ ॥

एतद्बलमभूच्छेषं धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
मोक्षो न नूनं कालाद्धि विद्यते भुवि कस्यचित् ॥ १७ ॥

माधव ! दुर्योधनकी सेनामें येही वीर शेष रह गये हैं। अब दुर्योधनकी सब इतनी ही सेना है, परन्तु जगत्में कालसे कोई नहीं बचता इस लिये यह भी नहीं बचेंगे ॥ १७ ॥

तथा विनिहते सैन्ये पश्य दुर्योधनं स्थितम् ।
अद्याहा हि महाराजो हतामित्रो भविष्यति ॥ १८ ॥

देखो सेनाका नाश होनेपर भी दुर्योधन युद्धके लिये खडा है । हमें निश्चय है, कि आज ही महाराज युधिष्ठिरके शत्रुओंका सर्वनाश हो जायगा ॥ १८ ॥

न हि मे मोक्ष्यते कश्चित्परेषामिति चिन्तये ।
ये त्वद्य समरं कृष्ण न हास्यन्ति रणोत्कटाः ।
तान्वै सर्वान्हनिष्यामि यद्यपि स्युरमानुषाः ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण ! मैं विचार करता हूं कि आज शत्रुपक्षका कोई भी वीर हमसे नहीं बचेगा, जो युद्धोन्मत्त वीर आज युद्ध छोडकर न भाग जायेंगे और आज हमसे युद्ध करनेको आवेंगे, उन सबको वे चाहे साक्षात् देवता ही क्यों न हों, तो भी जीते नहीं बचेंगे मैं उनको मार डालूंगा ॥ १९ ॥

अद्य युद्धे सुसंक्रुद्धो दीर्घं राज्ञः प्रजागरम् ।
अपनेष्यामि गान्धारं पातयित्वा शितैः शरैः ॥ २० ॥

आज मैं अत्यंत क्रुद्ध होकर तेजबाणोंसे गान्धारराज दुष्ट शकुनिको मारकर महाराज युधिष्ठिरका पुराना जागरणरूपी शोक दूर करूंगा ॥ २० ॥

निकृत्या वै दुराचारो यानि रत्नानि सौबलः ।
सभायामहरद्द्यूते पुनस्तान्याहराम्यहम् ॥ २१ ॥
जिस दुराचारी सुबलपुत्र शकुनिने उस सभामें जुआ खेलकर हमारे रत्न छीन लिये थे, सो आज मैं सब ले लूंगा ॥ २१ ॥

अद्य ता अपि वेत्स्यन्ति सर्वा नागपुरस्त्रियः ।
श्रुत्वा पतींश्च पुत्रांश्च पाण्डवैर्निहतान्युधि ॥ २२ ॥
युद्धमें पाण्डवोंके हाथसे अपने पति और पुत्रोंको मारा हुआ सुन आज हस्तिनापुरकी सब स्त्रियाँ रोयेंगी ॥ २२ ॥

समाप्तमद्य वै कर्म सर्वं कृष्ण भविष्यति ।
अद्य दुर्योधनो दीप्तां श्रियं प्राणांश्च त्यक्ष्यति ॥ २३ ॥
हे श्रीकृष्ण ! आज यह हमारा सब कर्म समाप्त हो जायगा । आज दुर्योधन अपनी दीप्तिमती राजलक्ष्मी और प्राणोंको त्याग देगा ॥ २३ ॥

नापयाति भयात्कृष्ण संग्रामाद्यदि चेन्मम ।
निहतं विद्धि वार्ष्णेय धार्तराष्ट्रं सुबालिशम् ॥ २४ ॥
वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण ! यदि वह डरसे युद्धसे भाग न जायगा, तो उस मूर्ख दुर्योधनको मारा गया ही समझिये ॥ २४ ॥

मम खेतदशक्तं वै वाजिवृन्दमरिंदम ।
सोढुं ज्यातलनिर्घोषं याहि यावन्निहन्म्यहम् ॥ २५ ॥
हे शत्रुनाशन ! हमारे गाण्डीव धनुषकी टङ्कारको यह घुडचढी सेना नहीं सह सकती, अब तुम चलो, हम इसका नाश करेंगे ॥ २५ ॥

एवमुक्तस्तु दाशार्हः पाण्डवेन यशस्विना ।
अचोदयद्धयान्राजन्दुर्योधनबलं प्रति ॥ २६ ॥
राजन् ! यशस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनके वचन सुन दशार्ह कुलनन्दन श्रीकृष्णने दुर्योधनकी सेनाकी ओर घोडे हांके ॥ २६ ॥

तदनीकमभिप्रेक्ष्य त्रयः सज्जा महारथाः ।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव सहदेवश्च मारिष ।
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनजिघांसया ॥ २७ ॥
मारिष ! उस सेनाको देखकर वे तीनों महारथी अर्जुन, महारथी भीम और महारथी सहदेव सुसज्जित होकर दुर्योधनको मारनेके लिये सिंहके समान गर्जते हुए चले ॥ २७ ॥

तान्प्रेक्ष्य सहितान्सर्वाञ्जवेनोद्यतकार्मुकान् ।
सौबलोऽभ्यद्रवद्युद्धे पाण्डवानाततायिनः ॥ २८ ॥

उनको धनुष धारण किये बडे वेगसे एक साथ आक्रमणके लिये आते देख, सुबलपुत्र शकुनि आततायी पाण्डवोंसे युद्ध करनेको दौडे ॥ २८ ॥

सुदर्शनस्तव सुतो भीमसेनं समभ्ययात् ।
सुशर्मा शकुनिश्चैव युयुधाते किरीटिना ।
सहदेवं तव सुतो हयपृष्ठगतोऽभ्ययात् ॥ २९ ॥

तुम्हारे पुत्र सुदर्शन भीमसेनसे, सुशर्मा और शकुनि किरीटधारी अर्जुनसे और घोडेपर चढे तुम्हारे पुत्र दुर्योधन सहदेवसे युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥

ततो ह्ययत्नतः क्षिप्रं तव पुत्रो जनाधिप ।
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद्भृशम् ॥ ३० ॥

जनाधिप ! तब तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने शीघ्रतासे सहसा एक प्रासका आघात सहदेवके शिरपर किया ॥ ३० ॥

सोपाविशद्रथोपस्थे तव पुत्रेण ताडितः ।
रुधिराप्लुतसर्वाङ्ग आशीविष इव श्वसन् ॥ ३१ ॥

उसके लगनेसे सहदेव रुधिरमें भीग गए और विषैले सांपके समान लंबी स्वांस लेते हुए मूर्च्छित होकर रथपर गिर गये ॥ ३१ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां सहदेवो विशां पते ।
दुर्योधनं शरैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः समवाकिरत् ॥ ३२ ॥

पृथ्वीपते ! फिर थोडे समयमें चैतन्य होकर महाक्रोध करके सहदेवने दुर्योधनको अपने तेज बाणोंकी वर्षासे व्याकुल कर दिया ॥ ३२ ॥

पार्थोऽपि युधि विक्रम्य कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
शूराणामश्वपृष्ठेभ्यः शिरांसि निचकर्त ह ॥ ३३ ॥

कुन्तीपुत्र अर्जुन भी युद्धमें अपने पराक्रमसे अपने तेजबाणोंसे अनेक घुडचढे वीरोंके सिर काटने लगे ॥ ३३ ॥

तदनीकं तदा पार्थो व्यधमद्बहुभिः शरैः ।
पातयित्वा हयान्सर्वांस्त्रिगर्तानां रथान्ययौ ॥ ३४ ॥

पृथापुत्र अर्जुनने अनेक बाणोंसे इस घुडसवारोंकी सेनाका नाश करके सब घोडोंको मार गिराया और फिर अर्जुन त्रिगर्त्तदेशकी रथसेनाकी ओर चले गये ॥ ३४ ॥

ततस्ते सहिता भूत्वा त्रिगर्तानां महारथाः ।
अर्जुनं वासुदेवं च शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३५ ॥

सब त्रिगर्तदेशीय महारथी भी एक साथ मिलकर अर्जुन और कृष्णके ऊपर बाण बर्षाने लगे ॥ ३५ ॥

सत्यकर्माणमाक्षिप्य क्षुरप्रेण महायशाः ।
ततोऽस्य स्यन्दनस्येषां चिच्छिदे पाण्डुनन्दनः ॥ ३६ ॥

फिर महायशस्वी पाण्डुनन्दन अर्जुनके सत्यकर्माको क्षुरप्रसे घायल करके तदनन्तर उसके रथकी एक धुरी काट डाली ॥ ३६ ॥

शिलाशितेन च विभो क्षुरप्रेण महायशाः ।
शिरश्चिच्छेद प्रहसंस्तप्तकुण्डलभूषणम् ॥ ३७ ॥

महायशस्वी अर्जुनने शिलापर घिसे तेजक्षुरप्र बाणोंसे चमकते हुए सोनेके कुण्डलसहित उसका शिर हंसकर सहसा काट दिया ॥ ३७ ॥

सत्येषुमथ चादत्त योधानां मिषतां ततः ।
यथा सिंहो वने राजन्मृगं परिबुभुक्षितः ॥ ३८ ॥

हे राजन् ! तब महापराक्रमी अर्जुनने वीरोंके देखते ही सत्येषुको मार डाला जैसे वनमें भूखा सिंह किसी हरिनको दबोच देता है ॥ ३८ ॥

तं निहत्य ततः पार्थः सुशर्माणं त्रिभिः शरैः ।
विद्ध्वा तानहनत्सर्वान्रथान्रुक्मविभूषितान् ॥ ३९ ॥

सत्येषुको मारकर फिर अर्जुनने तीन बाण सुशर्माको मारकर विद्ध किया । अनन्तर सब सोनेके रथोंका नाश कर डाला ॥ ३९ ॥

ततस्तु प्रत्वरन्पार्थो दीर्घकालं सुसंभृतम् ।
मुञ्चन्क्रोधविषं तीक्ष्णं प्रस्थलाधिपतिं प्रति ॥ ४० ॥

फिर शीघ्रता सहित दीर्घकालसे संचित किये हुए क्रोधरूपी तेज विषको छोडते हुए प्रस्थल-देशके राजा सुशर्माकी ओर दौडे ॥ ४० ॥

तमर्जुनः पृषत्कानां शतेन भरतर्षभ ।
पूरयित्वा ततो वाहान्न्यहनत्तस्य धन्विनः ॥ ४१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ओर उनकी ओर सौ बाण छोडकर उसे आच्छादित किया । फिर उस धनुर्धरके घोडोंपर बाणोंसे प्रहार किया ॥ ४१ ॥

तत: शरं समादाय यमदण्डोपमं शितम् ।
सुशर्माणं समुद्दिश्य चिक्षेपाशु हसन्निव । ॥ ४२ ॥

फिर यमराजके दण्डके समान बाण लेकर सुशर्माको वेध करके शीघ्र ही हंसकर मारा ॥४२॥

स शरः प्रेषितस्तेन क्रोधदीप्तेन धन्विना ।
सुशर्माणं समासाद्य बिभेद हृदयं रणे ॥ ४३ ॥

युद्धमें अत्यंत क्रोधित हुए धनुर्धर अर्जुनसे चलाये गये उस बाणके लगनेसे सुशर्माका हृदय फट गया ॥ ४३ ॥

स गतासुर्महाराज पपात धरणीतले ।
नन्दयन्पाण्डवान्सर्वान्व्यथयंश्चापि तावकान् ॥ ४४ ॥

महाराज ! और वह मरकर पृथ्वीमें गिर गया; तब पाण्डवोंकी सब सेना बहुत प्रसन्न और तुम्हारी सेना बहुत दुःखी हो गई ॥ ४४ ॥

सुशर्माणं रणे हत्वा पुत्रानस्य महारथान् ।
सप्त चाष्टौ च त्रिंशच्च सायकैरनयत्क्षयम् ॥ ४५ ॥

युद्धभूमिमें सुशर्माको मारकर अर्जुनने फिर अपने तेजबाणोंसे उसके पैंतालीस महारथी पुत्रोंको मार डाला ॥ ४५ ॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सर्वान्हत्वा पदानुगान् ।
अभ्यगाद्भारतीं सेनां हतशेषां महारथः ॥ ४६ ॥

फिर तीक्ष्ण बाणोंसे उसके त्रिगर्त्तदेशीय सब सेनाका नाश कर दिया । और महारथी अर्जुनने मरनेसे बची हुई कौरव सेनापर धावा किया ॥ ४६ ॥

भीमस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रं तव जनाधिप ।
सुदर्शनमदृश्यन्तं शरैश्चक्रे हसन्निव ॥ ४७ ॥

हे महाराज ! उसी ही समय महारथी भीमसेन भी क्रोध करके तुम्हारे पुत्र सुदर्शनसे युद्ध करने लगे । तब हंसकर उसे बाणोंसे छिपा दिया ॥ ४७ ॥

ततोऽस्य प्रहसन्क्रुद्धः शिरः कायादपाहरत् ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतः प्रापतद्भुवि ॥ ४८ ॥

फिर क्रोधित होकर और जोरसे हंसकर उन्होंने एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणसे धडसे उसका शिर काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया । सुदर्शन पृथ्वीपर मरकर गिर पडा ॥ ४८ ॥

+

तस्मिंस्तु निहते वीरे ततस्तस्य पदानुगाः ।
परिवव्रू रणे भीमं किरन्तो विशिखाञ्शितान् ॥ ४९ ॥

जब वीर सुदर्शन मरकर पृथ्वीमें गिरे, तब उनके सङ्गी भीमसेनको सब ओरसे घेरकर युद्ध करने लगे और अनेक प्रकारके तीक्ष्ण बाण वर्षाने लगे ॥ ४९ ॥

ततस्तु निशितैर्बाणैस्तदानीकं वृकोदरः ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शैः समन्तात्पर्यवाकिरत्
ततः क्षणेन तद्भीमो न्यहनद्भरतर्षभ ॥ ५० ॥

तब भीमसेनने इन्द्रके वज्रके समान घोर तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हारी सेनाको चारों ओरसे आच्छादित किया । भरतर्षभ ! तदनंतर भीमसेनने क्षणभरमें उस सब सेनाका नाश कर दिया ॥ ५० ॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु सेनाध्यक्षा महाबलाः ।
भीमसेनं समासाद्य ततोऽयुध्यन्त भारत ।
तांस्तु सर्वाञ्शरैर्घोरैरवाकिरत पाण्डवः ॥ ५१ ॥

भारत ! जब सैनिकोंका नाश होने लगा, तब अनेक सेनाके प्रधान महाबलवान् वीर भीमसेनपर आक्रमण करके उनसे युद्ध करनेको आये । पाण्डुपुत्र भीमसेनने अपने तेज बाणोंसे उन सबपर घोर बाणोंकी वर्षा की ॥ ५१ ॥

तथैव तावका राजन्पाण्डवेयान्महारथान् ।
शरवर्षेण महता समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ५२ ॥

राजन् ! इसी प्रकार तुम्हारी ओरके वीरोंने भी पाण्डवोंके महारथियोंको बाणोंकी भारी वर्षा करके सब ओरसे आच्छादित किया ॥ ५२ ॥

व्याकुलं तदभूत्सर्वं पाण्डवानां परैः सह ।
तावकानां च समरे पाण्डवेयैर्युयुत्सताम् ॥ ५३ ॥

पाण्डवोंके शत्रुओंके साथ लडनेवाले सैनिक और तुम्हारे पाण्डवोंसे लडनेवाले सैनिक युद्धमें परस्पर मिलकर एक जैसे हो गये ॥ ५३ ॥

तत्र योधास्तदा पेतुः परस्परसमाहताः ।
उभयोः सेनयो राजन्संशोचन्तः स्म बान्धवान् ॥ ५४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ १३५३ ॥

राजन् ! उस समय एक दूसरेसे घायल होकर दोनों पक्षके वीर बन्धुओंकी याद करते, शोक करते पृथ्वीमें मरकर गिर जाते थे ॥ ५४ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें छबीसवां अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ १३५३ ॥

: २७ :

संजय उवाच

तस्मिन्प्रवृत्ते संग्रामे नरवाजिगजक्षये ।
शकुनिः सौबलो राजन्सहदेवं समभ्ययात् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज धृतराष्ट्र ! जब यह मनुष्य, घोडे और हाथीयोंका नाश करनेवाला घोर युद्ध होने लगा, तब सुबलपुत्र शकुनि सहदेवसे युद्ध करनेको आये ॥ १ ॥

ततोऽस्यापततस्तूर्णं सहदेवः प्रतापवान् ।
शरौघान्प्रेषयामास पतंगानिव शीघ्रगान् ।
उलूकश्च रणे भीमं विव्याध दशभिः शरैः ॥ २ ॥

प्रतापवान् सहदेवने उनको अपनी ओर आक्रमणके लिये आते देख शीघ्र ही टिड्डीदलोंके समान शीघ्र चलनेवाले अनेक बाण शकुनिकी ओर छोडे । और उलूकने भीमसेनको समरमें दस बाणोंसे विद्ध किया ॥ २ ॥

शकुनिस्तु महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः ।
सायकानां नवत्या वै सहदेवमवाकिरत् ॥ ३ ॥

फिर और शकुनिने भी तीन बाणोंसे भीमको घायल करके, फिर सहदेवको नब्बे बाणोंसे आच्छादित किया ॥ ३ ॥

ते शूराः समरे राजन्समासाद्य परस्परम् ।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैरा कर्णात्प्रहितैः शरैः ॥ ४ ॥

राजन् ! ये वीर युद्धमें क्रोध करके परस्पर लडते हुए, कङ्क और मोरके पङ्ख लगे, सोनेके तारोंसे मढे, शिलापर घिसे बाण, कानोंतक खींच खींचकर छोडने लगे और परस्पर आघात करने लगे ॥ ४ ॥

तेषां चापभुजोत्सृष्टा शरवृष्टिर्विशां पते ।
आच्छादयद्दिशः सर्वा धाराभिरिव तोयदः ॥ ५ ॥

पृथ्वीपते ! उस समय इन वीरोंके धनुष और बाहुसे छोडे गये बाणोंकी वर्षाने सब दिशाओंको ऐसा आच्छादित कर दिया जैसे मेघकी जलवर्षा सब दिशाओंको ढक देती है ॥ ५ ॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमः सहदेवश्च भारत ।
चेरतुः कदनं संख्ये कुर्वन्तौ सुमहाबलौ ॥ ६ ॥

हे भारत ! तब भीमसेन और सहदेव ये दोनों महाबलवान् वीर महाक्रोध करके रणभूमिमें तुम्हारी सेनाका नाश करके विचरने लगे ॥ ६ ॥

ताभ्यां शरशतैश्छन्नं तद्बलं तव भारत ।
अन्धकारमिवाकाशमभवत्तत्र तत्र ह ॥ ७ ॥

तब इन दोनोंने इतने सैकडों वाण छोडे कि तुम्हारी सब सेना पूरित हो गई और सब ओर महा अन्धकारपूर्ण आकाशके समान दीखने लगी ॥ ७ ॥

अश्वैर्विपरिधावद्भिः शरच्छन्नैर्विशां पते ।
तत्र तत्र कृतो मार्गो विकर्षद्भिर्हतान्बहून् ॥ ८ ॥

पृथ्वीपते ! अनेक घोडे बाणोंसे व्याकुल होकर इधर उधर भागने लगे, अनेक मरे हुए वीर उनके पैरोंमें आकर इधर उधरको खिंचने लगे, इसी कारण इधर उधर मार्ग हो गया ॥ ८ ॥

निहतानां हयानां च सहैव हययोधिभिः ।
वर्मभिर्विनिकृत्तैश्च प्रासैश्छिन्नैश्च मारिष ।
संछन्ना पृथिवी जज्ञे कुसुमैः शबला इव ॥ ९ ॥

मारिष ! अनेक घोडोंपर चढे वीर उन घोडोंके सहित मरकर मार्ग ही में गिर गये । किसीका कवच कट गया और किसीका प्रास टूट गया, इन्हींसे पृथ्वी ऐसी पूरित हो गई जैसी बसन्तकालमें बहुरंगी फूलोंसे ॥ ९ ॥

योधास्तत्र महाराज समासाद्य परस्परम् ।
व्यचरन्त रणे क्रुद्धा विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥ १० ॥

हे महाराज ! दोनों ओरके वीर युद्धभूमिमें क्रोध करके सेनामें घूमने और एक दूसरेसे सामना करके परस्पर मारने लगे ॥ १० ॥

उद्वृत्तनयनै रोषात्संदष्टौष्ठपुटैर्मुखैः ।
सकुण्डलैर्मही छन्ना पद्मकिञ्जल्कसंनिभैः ॥ ११ ॥

कमलके समान कुण्डल पहिने सुन्दर कटे हुए मुखोंसे पृथ्वी भर गई, उनकी आंखें स्थिर हो गईं थीं और क्रोधसे अपने ओठोंको उन्होंने दांतोंसे दबाया था ॥ ११ ॥

भुजैश्छिन्नैर्महाराज नागराजकरोपमैः ।
साङ्गदैः सतनुत्रैश्च सासिप्रासपरश्वधैः ॥ १२ ॥

महाराज ! कवच और बाजूबन्द पहिने, खड्ग, प्रास और परश्वध लिये हाथीके सूंडके समान कटे हुए हाथ ॥ १२ ॥

कबन्धैरुत्थितैश्छिन्नैर्नृत्यद्भिश्चापरैर्युधि ।
क्रव्यादगणसंकीर्णा घोराभूत्पृथिवी विभो ॥ १३ ॥

पृथ्वीमें चारों ओर दीखने लगे, अनेक छिन्नभिन्न कबन्ध उठकर नाचने लगे, अन्य दूसरे लोगोंसे वह भरी थी, और मांस खानेवाले जन्तु चारों ओर घूमने लगे, प्रभो ! इन सबोंसे आच्छादित हुई यह पृथ्वी भयानक दीखती थी ॥ १३ ॥

अल्पावशिष्टे सैन्ये तु कौरवेयान्महाहवे ।
प्रहृष्टाः पाण्डवा भूत्वा निन्यिरे यमसादनम् ॥ १४ ॥

उस महायुद्धमें कौरवोंकी थोडी सेना शेष रही देखकर, पाण्डवोंके वीर बहुत प्रसन्न हुए और शत्रुओंका नाश करने लगे ॥ १४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरः सौबलेयः प्रतापवान् ।
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद्भृशम् ।
स विह्वलो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १५ ॥

उसी ही समय प्रतापवान् वीर सुबलपुत्र शकुनिने एक प्रास सहदेवके शिरमें मारकर उन्हें विद्ध किया । उसके लगनेसे सहदेव गिरते ही व्याकुल होकर रथमें बैठ गये ॥ १५ ॥

सहदेवं तथा दृष्ट्वा भीमसेनः प्रतापवान् ।
सर्वसैन्यानि संक्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १६ ॥

भारत ! तब सहदेवकी वैसी हालत देखकर प्रतापवान् भीमसेनने क्रोध करके अपने बाणोंसे सब सेनाको रोक दिया ॥ १६ ॥

निर्बिभेद च नाराचैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
विनिर्भिद्याकरोच्चैव सिंहनादमरिंदमः ॥ १७ ॥

और सैकडों और हजारों नाराच बाणोंसे उनको विदीर्ण किया । शत्रुनाशन ! अनेक वीरोंको मारकर सिंहके समान गर्जने लगे ॥ १७ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ताः सर्वे सहयवारणाः ।
प्राद्रवन्सहसा भीताः शकुनेश्च पदानुगाः ॥ १८ ॥

उनके उस शब्दसे त्रस्त होकर घोडे और हाथियोंके साथ शकुनिके अनुयायी सैनिक व्याकुल होकर इधर उधर भागने लगे ॥ १८ ॥

प्रभग्नानथ तान्दृष्ट्वा राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ १९ ॥

शकुनिके सङ्गियोंको भागते देख राजा दुर्योधन बोले, अरे अधर्मियों ! लौटो और युद्ध करो, भागनेसे क्या होगा ? ॥ १९ ॥

इह कीर्तिं समाधाय प्रेत्य लोकान्समश्नुते ।
प्राणाञ्जहाति यो वीरो युधि पृष्ठमदर्शयन् ॥ २० ॥

युद्ध करनेसे इस लोकमें यश और मरनेसे स्वर्ग मिलता है । जो धैर्यशाली वीर युद्धमें पीठ न दिखाकर मरता है वह निःसन्देह स्वर्गमें जाता है ॥ २० ॥

एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सौबलस्य पदानुगाः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ २१ ॥

राजाके ऐसे वचन सुन सुबलपुत्र शकुनिके अनुगामी सैनिक मृत्यु अवश्य होगी, यह निश्चय-कर वीरलोग लौटे और उन्होंने पांडवोंपर धावा किया ॥ २१ ॥

द्रवद्भिस्तत्र राजेन्द्र कृतः शब्दोऽतिदारुणः ।
क्षुब्धसागरसङ्काशः क्षुभिताः सर्वतोऽभवत् ॥ २२ ॥

राजेन्द्र ! आक्रमणके समय उनके अत्यंन्त भयंकर शब्द होने लगा। उस समय यह सेना क्षुभित होकर सब ओर फैल गयी, जैसे उबलता हुआ समुद्र ॥ २२ ॥

तांस्तदापततो दृष्ट्वा सौबलस्य पदानुगान् ।
प्रत्युद्ययुर्महाराज पाण्डवा विजये वृताः ॥ २३ ॥

महाराज ! शकुनिके सैनिकोंको सामने आते हुए देख, उनसे युद्ध करनेको पाण्डवोंकी सेनाके विजयी वीर भी चले ॥ २३ ॥

प्रत्याश्वस्य च दुर्धर्षः सहदेवो विशां पते ।
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः ।
धनुश्चिच्छेद च शरैः सौबलस्य हसन्निव ॥ २४ ॥

पृथ्वीपते ! इतने ही समयमें महापराक्रमी सहदेवने सावधान होकर हंसकर शकुनिको दस बाणोंसे विद्ध किया और तीन बाणोंसे उसके घोडोंको मारकर, हंसकर अनेक बाणोंसे सुबलपुत्र शकुनिका धनुष काट दिया ॥ २४ ॥

अथान्यद्धनुरादाय शकुनिर्युद्धदुर्मदः ।
विव्याध नकुलं षष्ठ्या भीमसेनं च सप्तभिः ॥ २५ ॥

तदनंन्तर युद्ध दुर्मद शकुनिने शीघ्रता सहित दूसरा धनुष लेकर नकुलके शरीरमें साठ और भीमसेनके शरीरमें सात बाण मारकर घायल कर दिया ॥ २५ ॥

उलूकोऽपि महाराज भीमं विव्याध सप्तभिः ।
सहदेवं च सप्तत्या परीप्सन्पितरं रणे ॥ २६ ॥

हे महाराज ! उसी समय युद्धमें पिताकी रक्षा करते हुए उलूकने भी भीमसेनके शरीरमें सात और सहदेवके शरीरमें सत्तर बाण मारकर विद्ध किया ॥ २६ ॥

तं भीमसेनः समरे विव्याध निशितैः शरैः ।
शकुनिं च चतुःषष्ट्या पार्श्वस्थांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २७ ॥

भीमसेनने भी क्रोध करके उलूकको समरमें अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे बिद्ध करके, शकुनिको चौसठ और रक्षा करनेवाले वीरोंको तीन तीन बाण मारे ॥ २७ ॥

ते हन्यमाना भीमेन नाराचैस्तैलपायितैः ।
सहदेवं रणे क्रुद्धाश्छादयञ्शरवृष्टिभिः ।
पर्वतं वारिधाराभिः सविद्युत इवाम्बुदाः ॥ २८ ॥

फिर ये सब भीमके द्वारा तेल पिलाये नाराच बाणोंसे मारे जानेवाले वीर रणभूमिमें क्रोधित और इकट्ठे होकर सहदेवके ऊपर इस प्रकार बाण वर्षाकर आच्छादित करने लगे, जैसे बिजलीवाले मेघ पर्वतके ऊपर जल वर्षासे उनको ढकते हैं ॥ २८ ॥

ततोऽस्यापततः शूरः सहदेवः प्रतापवान् ।
उलूकस्य महाराज भल्लेनापाहरच्छिरः ॥ २९ ॥

महाराज ! तब महा प्रतापवान् शूर सहदेवने एक भल्ल बाणसे अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले उलूकका शिर काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २९ ॥

स जगाम रथाद्भूमिं सहदेवेन पातितः ।
रुधिराप्लुतसर्वाङ्गो नन्दयन्पाण्डवान्युधि ॥ ३० ॥

वह सहदेवके हाथसे युद्धमें मरकर रुधिरमें भीगकर पाण्डवोंकी प्रसन्नता बढाता हुआ रथसे पृथ्वीमें गिरा ॥ ३० ॥

पुत्रं तु निहतं दृष्ट्वा शकुनिस्तत्र भारत ।
साश्रुकण्ठो विनिःश्वस्य क्षत्तुर्वाक्यमनुस्मरन् ॥ ३१ ॥

हे भारत ! अपने पुत्रको मारा हुआ देख शकुनिकी आंखमें आंसू भर आई और रुके हुए उनके कण्ठसे श्वांस लेते हुए क्षणभरतक विदुरके वचनोंको स्मरण करते हुए ॥ ३१ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तं स बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन् ।
सहदेवं समासाद्य त्रिभिर्विव्याध सायकैः ॥ ३२ ॥

शान्त हो गये, और मुहूर्तभर आंसू भरी आंखोंसे श्वांस लेते हुए सोचने लगे । फिर क्रोध करके सहदेवके सामने जाकर उसने तीन बाण चलाये और उनको विद्ध किया ॥ ३२ ॥

तानपास्य शरान्मुक्ताञ्शरसंघैः प्रतापवान् ।
सहदेवो महाराज धनुश्चिच्छेद संयुगे ॥ ३३ ॥

महाराज ! प्रतापी सहदेवने उनके छोडे हुए बाणोंको युद्धमें अपने बाणोंसे काटकर शकुनिका धनुष काट दिया ॥ ३३ ॥

छिन्ने धनुषि राजेन्द्र शकुनिः सौबलस्तदा ।
प्रगृह्य विपुलं खड्गं सहदेवाय प्राहिणोत् ॥ ३४ ॥

राजेन्द्र ! तब सुबलपुत्र शकुनिने अपना धनुष कट जानेपर क्रोध करके सहदेवकी ओर चमकता हुआ एक महान् खड्ग चलाया और प्रहार किया ॥ ३४ ॥

तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशां पते ।
द्विधा चिच्छेद समरे सौबलस्य हसन्निव ॥ ३५ ॥

विशांपते ! उस घोर खड्गको सहसा आते देख सहदेवने हंसकर एक बाणसे उस खड्गके दो टुकडे कर दिये ॥ ३५ ॥

असिं दृष्ट्वा द्विधा छिन्नं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
प्राहिणोत्सहदेवाय सा मोघा न्यपतद्भुवि ॥ ३६ ॥

तब शकुनिने उस खड्गको कटा हुआ देख एक भारी गदा लेकर सहदेवकी ओर फेंकी परन्तु वह रथतक न पहूंचने पाई, बीचहीमें पृथ्वीपर गिर गई ॥ ३६ ॥

ततः शक्तिं महाघोरां कालरात्रिमिवोद्यताम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः पाण्डवं प्रति सौबलः । ॥ ३७ ॥

तब सुबलपुत्र शकुनिने क्रोध करके कालरात्रिके समान महा भयानक साङ्गी सहदेवकी ओर चलाई ॥ ३७ ॥

तामापतन्तीं सहसा शरैः कानश्चभूषणैः ।
त्रिधा चिच्छेद समरे सहदेवो हसन्निव ॥ ३८ ॥

उस अपने उपर आती हुई शक्तिको युद्धमें हंसकर अपने सुवर्णभूपित बाणोंसे मारकर सहसा उसके तीन टुकडे कर दिये ॥ ३८ ॥

सा पपात त्रिधा छिन्ना भूमौ कनकभूषणा ।
शीर्यमाणा यथा दीप्ता गगनाद्वै शतह्रदा ॥ ३९ ॥

उस सोनेसे मढी शक्तिको सहदेवने बाणोंसे तीन टुकडोंमें काटकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिरा दिया, जैसे आकाशसे गिरनेवाली चमकती हुई बिजलीको ॥ ३९ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा सौबलं च भयार्दितम् ।
दुद्रुवुस्तावकाः सर्वे भये जाते ससौबलाः ॥ ४० ॥

उस साङ्गीको नष्ट हुई और सुबलपुत्र शकुनिको भयसे व्याकुल देख, शकुनिके सहित सब सेना भयभीत होकर इधर उधर भाग चली ॥ ४० ॥

अथोत्क्रुष्टं महद्व्यासीत्पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
धार्तराष्ट्रास्ततः सर्वे प्रायशो विमुखाभवन् ॥ ४१ ॥

उस समय सहदेवकी विजय देखकर बिजयसे आनन्दित हुई पाण्डवोंकी सेनामें जोरसे सिंहनाद होने लगा । तब तुम्हारी सब सेना प्रायः युद्धसे विमुख हो गई ॥ ४१ ॥

तान्वै विमनसो दृष्ट्वा माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास संयुगे ॥ ४२ ॥

उस सेनाको उदासीन होकर भागते हुए देख प्रतापवान् माद्रीपुत्र सहदेवने अनेक सहस्रों वाण वर्षाकर उनको युद्धस्थलमें रोक दिया ॥ ४२ ॥

ततो गान्धारकैर्गुप्तं पृष्ठैरश्वैर्जये धृतम् ।
आससाद रणे यान्तं सहदेवोऽथ सौबलम् ॥ ४३ ॥

तदनंतर गान्धार देशके पुष्ट घोडों और घुडसवारोंसे रक्षित विजयके लिये संकल्प करके युद्धमें जानेवाले सुबलपुत्र शकुनिपर सहदेवने धावा किया ॥ ४३ ॥

स्वमंशमवशिष्टं सं संस्मृत्य शकुनिं नृप ।
रथेन काञ्चनाङ्गेन सहदेवः समभ्ययात् ।
अधिज्यं बलवत्कृत्वा व्याक्षिपन्सुमहद्धनुः ॥ ४४ ॥

राजन् ! शकुनिको अपना अवशिष्ट अंश समझकर अर्थात् हमने सभामें इसे मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, यह विचार कर सोनेके अंगोवाले रथमें बैठे हुए सहदेवने उसका पीछा किया, और एक बडे धनुषपर बलपूर्वक रोदा चढाकर बाण चलाये ॥ ४४ ॥

स सौबलमभिद्रुत्य गृध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
भृशमभ्यहनत्क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ४५ ॥

उन्होंने शिलापर तेज किये गीधके पंखवाले बाणोंसे शकुनिपर धावा किया और क्रोधित होकर उसको अत्यंत घायल किया जैसे बडे हाथीको अंकुशोंसे मारा जाता है ॥ ४५ ॥

उवाच चैनं मेधावी निगृह्य स्मारयन्निव ।
क्षत्रधर्मे स्थितो भूत्वा युध्यस्व पुरुषो भव ॥ ४६ ॥

बुद्धिमान् सहदेव उसके पास जाकर याद देकर बोले— अरे दुर्बद्धे ! क्षत्रियोंका धर्म स्मरण कर युद्ध कर, और मनुष्य बन, ॥ ४६ ॥

यत्तदा हृष्यसे मूढ ग्लहन्नक्षैः सभातले ।
फलमद्य प्रपद्यस्व कर्मणस्तस्य दुर्मते ॥ ४७ ॥

अरे मूर्ख शकुनि ! तू ही सभामें फांसे लेकर जूआ खेलते समय हम लोगोंको हंसता था, आज उस दुष्कर्मका फल भोग ॥ ४७ ॥

निहतास्ते दुरात्मानो येऽस्मानवहसन्पुरा ।
दुर्योधनः कुलाङ्गारः शिष्टस्त्वं तस्य मातुलः ॥ ४८ ॥

जिन जिन दुरात्माओंने पहले हंस हंसकर हमारा निरादर करा था. वे सब मारे गये । अब केवल एक कुलाङ्गार दुर्योधन और उसका मामा तू ये दो ही शेष हैं ॥ ४८ ॥

*

अद्य ते विहनिष्यामि क्षुरेणोन्मथितं शिरः।
वृक्षात्फलमिवोद्धृत्य लगुडेन प्रमाथिना ॥ ४९ ॥

जैसे कोई मनुष्य जडसे तोडकर वृक्षका फल पृथ्वीमें गिराता है, ऐसे ही मैं इस बाणसे तेरा शिर काट अभी पृथ्वीमें गिरा दूंगा ॥ ४९ ॥

एवमुक्त्वा महाराज सहदेवो महाबलः।
संक्रुद्धो नरशार्दूलो वेगेनाभिजगाम ह ॥ ५० ॥

महाराज! ऐसा कहकर शार्दूलके समान महाबलवान् योद्धाओंमें श्रेष्ठ वीर सहदेवने अत्यंत क्रोधमें भरकर तीव्र वेगसे उसपर धावा किया ॥ ५० ॥

अभिगम्य तु दुर्धर्षः सहदेवो युधां पतिः।
विकृष्य बलवच्चापं क्रोधेन प्रहसन्निव ॥ ५१ ॥

दुर्धर्ष और योद्धाओंमें श्रेष्ठ सहदेवने क्रुद्ध होकर उपहास करके उसके पास जाकर बलसे अपना धनुष खींचा ॥ ५१ ॥

शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चास्य वाजिनः।
छत्रं ध्वजं धनुश्चास्य छित्त्वा सिंह इवानदत् ॥ ५२ ॥

और शकुनीके शरीरमें दस बाण मारकर चार बाणोंसे उसके घोडेको मार डाले, फिर एक एक बाणसे उसकी छत्र ध्वजा और धनुष काटकर सिंहके समान गर्जने लगे ॥ ५२ ॥

छिन्नध्वजधनुश्छत्रः सहदेवेन सौबलः।
ततो विद्धश्च बहुभिः सर्वमर्मसु सायकैः ॥ ५३ ॥

फिर ध्वजा, छत्र और धनुष रहित शकुनिको बाणोंसे व्याकुल करके, फिर उसके सब मर्म स्थानोंमें बाणोंसे गहरी चोट पहुंचायी ॥ ५३ ॥

ततो भूयो महाराज सहदेवः प्रतापवान्।
शकुनेः प्रेषयामास शरवृष्टिं दुरासदाम् ॥ ५४ ॥

महाराज! तत्पश्चात प्रतापवान् सहदेवने शकुनिपर दुर्जय बाणोंकी वर्षा की ॥ ५४ ॥

ततस्तु क्रुद्धः सुबलस्य पुत्रो माद्रीसुतं सहदेवं विमर्दे।
प्रासेन जाम्बूनदभूषणेन जिघांसुरेकोऽभिपपात शीघ्रम् ॥ ५५ ॥

तब सुबलपुत्र शकुनि बडा क्रोध करके युद्धमें माद्रीपुत्र सहदेवको मारनेके लिये एक सुवर्ण-भूषित प्रास उठाकर अकेले ही सहदेवकी ओर शीघ्र ही दौडे ॥ ५५ ॥

माद्रीसुतस्तस्य समुद्यतं तं प्रासं सुवृत्तौ च भुजौ रणाग्रे ।
भल्लैस्त्रिभिर्युगपत्संचकर्त ननाद चोच्चैस्तरसाजिमध्ये ॥ ५६ ॥
उस ही समय माद्रीपुत्र सहदेवने क्रोध करके एक ही समय धनुषपर तीन भल्ल बाण चढाकर छोडे, एकसे शकुनिका उठाया हुआ प्रास और दोसे मोटे मोटे हाथ युद्धके अग्रभागमें काट डाले, और रणभूमिमें उच्च स्वरसे शीघ्र ही गर्जना की ॥ ५६ ॥

तस्याशुकारी सुसमाहितेन सुवर्णपुङ्खेन दृढायसेन ।
भल्लेन सर्वावरणातिगेन शिरः शरीरात्प्रममाथ भूयः ॥ ५७ ॥
फिर सहदेवने शीघ्रतासे उत्तम संधान करके छोडे हुए सोनेके पंखवाले लोहेके बने हुए, सब आवरणोंको छेदनेवाले तेज भल्ल बाणसे शकुनिका शिर शरीरसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ५७ ॥

शरेण कार्तस्वरभूषितेन दिवाकराभेन सुसंशितेन ।
हृतोत्तमाङ्गो युधि पाण्डवेन पपात भूमौ सुबलस्य पुत्रः ॥ ५८ ॥
पाण्डुपुत्र सहदेवने युद्धमें जब सोनेके आभूषित, सूर्यके समान तेजस्वी, अत्यंत तीक्ष्ण बाणसे सुबलपुत्र शकुनिका शिर काट डाला, तब वह मरकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ५८ ॥

स तच्छिरो वेगवता शरेण सुवर्णपुङ्खेन शिलाशितेन ।
प्रावेरयत्कुपितः पाण्डुपुत्रो यत्तत्कुरूणामनयस्य मूलम् ॥ ५९ ॥
वीर पाण्डुपुत्र सहदेवने क्रुद्ध होकर उस शिलापर तेज किये हुए सोनेके पंखवाले शीघ्रगामी बाणसे शकुनिका जो कौरवोंके अन्यायका मूल कारण था– शिर काट डाला ॥ ५९ ॥

हृतोत्तमाङ्गं शकुनिं समीक्ष्य भूमौ शयानं रुधिरार्द्रगात्रम् ।
योधास्त्वदीया भयनष्टसत्त्वा दिशः प्रजग्मुः प्रगृहीतशस्त्राः ॥ ६० ॥
शिरसे रहित और रुधिरमें भीगे हुए शकुनिको पृथ्वीमें सोते हुए देख, तुम्हारी सेनाके बचे हुए वीर भयसे व्याकुल होकर धैर्य रहित हो गये और शस्त्र ले लेकर युद्धसे भाग गये ॥ ६० ॥

विप्रद्रुताः शुष्कमुखा विसंज्ञा गाण्डीवघोषेण समाहताश्च ।
भयार्दिता भग्नरथाश्वनागाः पदातयश्चैव सधार्तराष्ट्राः ॥ ६१ ॥
तुम्हारी सेनाके वीरोंके मुख सूख गये, वे चेतनारहित हो गये, गांडीवधनुषकी टङ्कार सुनकर मृतप्राय हो गये । उनके रथ, घोडे और हाथी नष्ट हो ही गये थे । इसलिये वे भयसे व्याकुल होकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके साथ पैदल ही इधर उधर भागने लगे ॥ ६१ ॥

ततो रथाच्छकुनिं पातयित्वा मुदान्विता भारत पाण्डवेयाः ।
शङ्खान्प्रदध्मुः समरे प्रहृष्टाः सकेशवाः सैनिकान्हर्षयन्तः ॥ ६२ ॥

भारत ! शकुनिको रथसे गिराकर समरमें श्रीकृष्ण सहित सब पाण्डवोंके योद्धा आनन्दित होकर अपनी सेनाको प्रसन्न करनेके लिये हर्षपूर्वक शङ्ख बजाने लगे ॥ ६२ ॥

तं चापि सर्वे प्रतिपूजयन्तो हृष्टा ब्रुवाणाः सहदेवमाजौ ।
दिष्ट्या हतो नैकृतिको दुरात्मा सहात्मजो वीर रणे त्वयेति ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ १४१६ ॥

फिर सब पाण्डव और श्रीकृष्ण सहदेवको देखकर और उनके चारों ओर खडे होकर उनकी प्रशंसा करके कहने लगे, हे वीर ! बडे आनन्दकी बात है कि तुमने युद्धमें प्रारब्धहीसे इस छली दुरात्मा शकुनिको पुत्रके सहित युद्धमें मारा ॥ ६३ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ १४१६ ॥

: २८ :

सञ्जय उवाच—

ततः क्रुद्धा महाराज सौबलस्य पदानुगाः ।
त्यक्त्वा जीवितमाक्रन्दे पाण्डवान्पर्यवारयन् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे महाराज ! तब शकुनिके सङ्गी क्रोध करके और प्राणोंका मोह छोडकर उस महायुद्धमें पाण्डवोंको चारों ओरसे घेरकर युद्ध करनेको दौडे ॥ १ ॥

तानर्जुनः प्रत्यगृह्णात्सहदेवजये धृतः ।
भीमसेनश्च तेजस्वी क्रुद्धाशीविषदर्शनः ॥ २ ॥

वे सब केवल सहदेवको मारने लगे, तब विषभरे सांपके समान क्रोध करके तेजस्वी भीमसेन और सहदेवकी विजयको सुरक्षित रखनेका निश्चय किये हुए अर्जुनने उनको रोक दिया ॥ २ ॥

शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां सहदेवं जिघांसताम् ।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः ॥ ३ ॥

शक्ति, ऋष्टि और प्रास लेकर सहदेवको मारनेकी इच्छा करके धावा करनेवाले उन सब वीरोंका संकल्प अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे विफल कर दिया ॥ ३ ॥

प्रगृहीतायुधान्बाहून्योधानामभिधावताम् ।
भल्लैश्चिच्छेद बीभत्सुः शिरांस्यपि हयानपि ॥ ४ ॥

तब अर्जुनने अपने भल्ल बाणोंसे उन धावा करनेवाले वीरोंके शस्त्रयुक्त हाथ, शिर और घोडोंको भी काट गिराया ॥ ४ ॥

ते हताः प्रत्यपद्यन्त वसुधां विगतासवः ।
त्वरिता लोकवीरेण प्रहताः सव्यसाचिना ॥ ५ ॥

जब प्रसिद्ध वीर सव्यसाची अर्जुनसे मारे गये वे सब मरकर पृथ्वीपर त्वरित गिर पडे ॥ ५ ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा स्वबलसंक्षयम् ।
हतशेषान्समानीय क्रुद्धो रथशतान्विभो ॥ ६ ॥
कुञ्जरांश्च हयांश्चैव पादातांश्च परंतप ।
उवाच सहितान्सर्वान्धार्तराष्ट्र इदं वचः ॥ ७ ॥

हे परंतप प्रभो ! तब राजा दुर्योधनने अपनी सेनाका इस प्रकार नाश होता देखकर, क्रुद्ध होकर मरनेसे बचे हुए सैकडों रथी वीर, हाथी, घोडे और पदातियोंको सब ओरसे एकत्र करके उन सबको इस प्रकार कहा ॥ ६–७ ॥

समासाद्य रणे सर्वान्पाण्डवान्ससुहृद्गणान् ।
पाञ्चाल्यं चापि सबलं हत्वा शीघ्रं निवर्तत ॥ ८ ॥

तुम सब लोग इकट्ठे होकर समरमें सब बन्धुबान्धव और मित्रोंसहित पाण्डवोंको और सेना-सहित सेनापति धृष्टद्युम्नको भी मारकर शीघ्र हमारे पास लौट आओ ॥ ८ ॥

तस्य ते शिरसा गृह्य वचनं युद्धदुर्मदाः ।
प्रत्युद्ययू रणे पार्थांस्तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ९ ॥

उन सब रणदुर्मद वीरोंने तुम्हारे पुत्रकी आज्ञाको शिरसे ग्रहण किया, और पाण्डवोंसे युद्धके लिये चले ॥ ९ ॥

तानभ्यापततः शीघ्रं हतशेषान्महारणे ।
शरैराशीविषाकारैः पाण्डवाः समवाकिरन् ॥ १० ॥

महायुद्धमें मरनेसे बचे हुए, शीघ्रतासे धावा करनेवाले उन सैनिकोंपर सब पाण्डवोंने विषधर सर्पके समान बाणोंकी वर्षा की ॥ १० ॥

तत्सैन्यं भरतश्रेष्ठ मुहूर्तेन महात्मभिः ।
अवध्यत रणं प्राप्य त्रातारं नाभ्यविन्दत ।
प्रतिष्ठमानं तु भयान्नावतिष्ठत दंशितम् ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ ! परन्तु वह सेना युद्धमें आते ही क्षणभरमें ही महात्मा पाण्डवोंसे नष्ट कर दी गयी। उस समय उनके पास उनको कोई भी रक्षक नहीं मिला। वह कवच युक्त थी, तथापि भयके कारण युद्धमें ठहर न सकी ॥ ११ ॥

अश्वैर्विपरिधावद्भिः सैन्येन रजसा वृते ।
न प्राज्ञायन्त समरे दिशश्च प्रदिशस्तथा ॥ १२ ॥

भागते हुए घोडों और सेनासे धूल उडने लगी और वहांकी सारी भूमि धूलसे आच्छादित हो गई । उस समय तुम्हारी ओरके वीरोंको दिशाओं और विदिशाओंका ज्ञान भी नहीं हो रहा था ॥ १२ ॥

ततस्तु पाण्डवानीकान्निःसृत्य बहवो जनाः ।
अभ्यघ्नंस्तावकान्युद्धे मुहूर्तादिव भारत ।
ततो निःशेषमभवत्तत्सैन्यं तव भारत ॥ १३ ॥

भारत ! तब पाण्डवोंकी सेनामेंसे बहुतसे वीर निकले और युद्धमें उन्होंने क्षणभरमें तुम्हारे इन सब सैनिकोंको मार डाला । उस समय तुम्हारी वह सेना पूरी तरह नष्ट हो गयी ॥ १३ ॥

अक्षौहिण्यः समेतास्तु तव पुत्रस्य भारत ।
एकादश हता युद्धे ताः प्रभो पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १४ ॥

हे प्रभो ! महाराज ! उस समय युद्धमें पाण्डव और सृञ्जयवंशी क्षत्रियोंके हाथसे तुम्हारे पुत्रकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना विनष्ट हो गयी ॥ १४ ॥

तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु महात्मसु ।
एको दुर्योधनो राजन्नदृश्यत भृशं क्षतः ॥ १५ ॥

हे महाराज ! तुम्हारे पक्षके उन सहस्रों महात्मा राजाओंसे भरे डेरेमें, घावसे अत्यंत व्याकुल हुए अकेले राजा दुर्योधन स्थानपर दिखाई दिये ॥ १५ ॥

ततो वीक्ष्य दिशः सर्वा दृष्ट्वा शून्यां च मेदिनीम् ।
विहीनः सर्वयोधैश्च पाण्डवान्वीक्ष्य संयुगे ॥ १६ ॥

हे महाराज ! उस समय सब दिशाएं और अपने वीर और सहायकोंसे रहित दुर्योधनको पृथ्वी शून्य दीखने लगी, उसने युद्धभूमिमें पाण्डवोको देखा कि ॥ १६ ॥

मुदितान्सर्वःसिद्धार्थान्नर्दमानान्समन्ततः ।
बाणशब्दरवांश्चैव श्रुत्वा तेषां महात्मनाम् ॥ १७ ॥

वे सर्वथा आनन्दित होकर नाचते कूदते हैं, उनके सब मनोरथ सिद्ध हुए हैं और सब ओरसे सिंहनाद कर रहे हैं । वैसे ही वे महात्मा वीर धनुष बाणोंका शब्द कर रहे हैं ॥ १७ ॥

दुर्योधनो महाराज कश्मलेनाभिसंवृतः ।
अपयाने मनश्चक्रे विहीनबलवाहनः ॥ १८ ॥

तब राजा दुर्योधन बहुत घबडाये और उन्होंने अपनेको वाहन और सेनासे हीन देखकर भागनेकी इच्छा करी ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

निहते मामके सैन्ये निःशेषे शिबिरे कृते ।
पाण्डवानां बलं सूत किं नु शेषमभूत्तदा ।
एतन्मे पृच्छतो ब्रूहि कुशलो ह्यसि संजय ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय सूत ! जिस समय हमारी सब सेना मार डाली गई और डेरोंमें कोई नहीं रहा तब पाण्डवोंकी कितनी सेना शेष रही थी ? संजय ! यह पूछनेवाले मुझे, तुम सब कहो, क्योंकि यह कहनेमें तुम कुशल हो ॥ १९ ॥

यच्च दुर्योधनो मन्दः कृतवांस्तनयो मम ।
बलक्षयं तथा दृष्ट्वा स एकः पृथिवीपतिः ॥ २० ॥

उस समय अपनी सेनाका नाश देखकर अकेले बचे हुए मेरे पुत्र मूर्ख राजा दुर्योधनने क्या किया ? सो तुम हमसे कहो ॥ २० ॥

सञ्जय उवाच

रथानां द्वे सहस्रे तु सप्त नागशतानि च ।
पञ्च चाश्वसहस्राणि पत्तीनां च शतं शताः ॥ २१ ॥
एतच्छेषमभूद्राजन्पाण्डवानां महद्बलम् ।
परिगृह्य हि यद्युद्धे धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः ॥ २२ ॥

सञ्जय बोले– राजन् ! उस समय पाण्डवोंकी बडी सेनामेंसे दो सहस्र रथ, सात सौ हाथी, पांच सहस्र घोडे और एक लाख पदाति शेष थे, इसी ही सेनाको साथ लेकर और व्यूह बनाकर धृष्टद्युम्न रणभूमिमें खडे थे ॥ २१–२२ ॥

एकाकी भरतश्रेष्ठ ततो दुर्योधनो नृपः ।
नापश्यत्समरे कंचित्सहायं रथिनां वरः ॥ २३ ॥

हे महाराज भरतश्रेष्ठ ! उस समय महारथी राजा दुर्योधन अकेला ही था । रथियोंमें श्रेष्ठ दुर्योधनने समरमें किसीको भी अपना सहायक नहीं देखा ॥ २३ ॥

नर्दमानान्परांश्चैव स्वबलस्य च संक्षयम् ।
हतं स्वहयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद्भयात् ॥ २४ ॥

पाण्डवों गर्जते कूदते और अपनी सेनाका नाश देख, गदा हाथमें लेकर भयसे व्याकुल होकर मरे हुए घोडेको छोड पूर्वकी ओरको भागे ॥ २४ ॥

एकादशचमूभर्ता पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
गदामादाय तेजस्वी पदातिः प्रस्थितो ह्रदम् ॥ २५ ॥

हे महाराज ! जो तुम्हारा पुत्र तेजस्वी दुर्योधन केवल गदा लेकर पैरोंही सरोवरकी ओर भागे जाते थे, जो वे ही एक दिन ग्यारह अक्षौहिणीके स्वामी थे ॥ २५ ॥

नातिदूरं ततो गत्वा पद्भ्यामेव नराधिपः ।
सस्मार वचनं क्षत्तुर्धर्मशीलस्य धीमतः ॥ २६ ॥

हे महाराज! थोडी दूर पैरों चलकर महाराजने बुद्धिमान् धर्मात्मा विदुरके वचनोंका स्मरण किया ॥ २६ ॥

इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान्पुरा ।
महद्वैशसमस्माकं क्षत्रियाणां च संयुगे ॥ २७ ॥

महाराज अपने मनमें कहने लगे कि बुद्धिमान् विदुरने हमारे वैरसे हमारे और क्षत्रियोंके इस सर्वनाशको पहले ही देख लिया था ॥ २७ ॥

एवं विचिन्तयानस्तु प्रविविक्षुर्ह्रदं नृपः ।
दुःखसंतप्तहृदयो दृष्ट्वा राजन्बलक्षयम् ॥ २८ ॥

राजन्! अपनी सेनाका नाश देखकर ऐसा विचार करते हुए राजाका हृदय दुःखसे व्याकुल और शोकसे संतप्त हो गया। तब महाराजने तालावमें प्रवेश करनेका निश्चय किया ॥२८॥

पाण्डवाश्च महाराज धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
अभ्यधावन्त संक्रुद्धास्तव राजन्बलं प्रति ॥ २९ ॥

हे महाराज! उस समय धृष्टद्युम्नको आगे करके पाण्डवोंने क्रोधित होकर अपनी सेनाके सहित तुम्हारे बचे हुए वीरोंपर धावा किया ॥ २९ ॥

शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां बलानामभिगर्जताम् ।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः ॥ ३० ॥

शक्ति, ऋष्टि और प्रास हाथमें लिये और गर्जना करनेवाले तुम्हारे सैनिकोंका संकल्प अर्जुनने अपने गांडीव धनुषसे विफल कर दिया ॥ ३० ॥

तान्हत्वा निशितैर्बाणैः सामात्यान्सह बन्धुभिः ।
रथे श्वेतहये तिष्ठन्नर्जुनो बह्वशोभत ॥ ३१ ॥

मन्त्री और बन्धुबांधवों सहित उनको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे नष्ट करके सफेद घोडोंवाले रथ पर बैठे अर्जुन अत्यंत शोभायमान् हो रहे थे ॥ ३१ ॥

सुबलस्य हते पुत्रे सवाजिरथकुञ्जरे ।
महावनमिव छिन्नमभवत्तावकं बलम् ॥ ३२ ॥

घोडे, रथ, हाथी और मनुष्योंके सहित जब सुबलपुत्र शकुनि मारे गये, तब तुम्हारी सेनाके डेरे ऐसे दीखने लगे, जैसे वृक्ष कटनेसे वनकी भूमि ॥ ३२ ॥

अनेकशतसाहस्रे बले दुर्योधनस्य ह ।
नान्यो महारथो राजञ्जीवमानो व्यदृश्यत ॥ ३३ ॥
द्रोणपुत्रादृते वीरात्तथैव कृतवर्मणः ।
कृपाच्च गौतमाद्राजन्पार्थिवाच्च तवात्मजात् ॥ ३४ ॥

हे महाराज ! उस समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी अनेक सैंकडों, सहस्रों सेनामें ये केवल द्रोणपुत्र पराक्रमी अश्वत्थामा, कृतवर्मा, गौतमी, कृपाचार्य और तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके सिवाय और कोई दूसरा महारथी बीर जीवित नहीं दीखता था ॥ ३३-३४ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु मां दृष्ट्वा हसन्सात्यकिमब्रवीत् ।
किमनेन गृहीतेन नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥ ३५ ॥

हे राजन् ! मुझे बंधा हुआ देखकर हंसकर सेनापति धृष्टद्युम्न सात्यकिसे बोले- इसको कैदमें रखनेसे क्या होगा ? क्योंकि इसके जीनेसे हमें कुछ लाभ नहीं है ॥ ३५ ॥

धृष्टद्युम्नवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता महारथः ।
उद्यम्य निशितं खड्गं हन्तुं मामुद्यतस्तदा ॥ ३६ ॥

तब धृष्टद्युम्नके वचन सुन शिनिपौत्र महारथी सात्यकि मुझे मारनेको अपना तेज खड्ग निकालकर उद्यत हो गये ॥ ३६ ॥

तमागम्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
मुच्यतां संजयो जीवन्न हन्तव्यः कथंचन ॥ ३७ ॥

उसी समय महाज्ञानी महात्मा श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास आये, और उन्होंने कहा कि सञ्जयको मत मारो, इसे जीता ही छोड दो ॥ ३७ ॥

द्वैपायनवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता कृताञ्जलिः ।
ततो मामब्रवीन्मुक्त्वा स्वस्ति संजय साधय ॥ ३८ ॥

हाथ जोडे हुए सात्यकि व्यासके वचन सुन मुझे कैदसे मुक्त करके बोले- हे सञ्जय ! तुम्हारा कल्याण हो, यहांसे जावो और इच्छित प्राप्त करो ॥ ३८ ॥

अनुज्ञातस्त्वहं तेन न्यस्तवर्मा निरायुधः ।
प्रातिष्ठं येन नगरं सायाह्ने रुधिरोक्षितः ॥ ३९ ॥

उनकी आज्ञा सुनकर मैं कवच और शस्त्रसे रहित होकर सन्ध्याके समय हस्तिनापुरकी ओर चला । मेरा सारा शरीर रुधिरमें भींगा गया था ॥ ३९ ॥

क्रोशमात्रमपक्रान्तं गदापाणिमवस्थितम् ।
एकं दुर्योधनं राजन्नपश्यं भृशविक्षतम् ॥ ४० ॥

राजन् ! एक कोसभर चला था, तो देखा कि महाराज दुर्योधन शरीरपरके घावोंसे अत्यंत व्याकुल होकर अकेले गदा हाथमें लिये खडे हैं ॥ ४० ॥

स तु मामश्रुपूर्णाक्षो नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ।
उपप्रैक्षत मां दृष्ट्वा तदा दीनमवस्थितम् ॥ ४१ ॥

मुझे देखते ही महाराजकी आंखोंमें आंसू भर आए और मेरी ओर न देख सके । फिर मैं भी दीन होकर उनके पास ठहर गया, वह मेरी ओर देख रहे थे ॥ ४१ ॥

तं चाहमपि शोचन्तं दृष्ट्वैकाकिनमाहवे ।
मुहूर्तं नाशकं वक्तुं किंचिद्दुःखपरिप्लुतः ॥ ४२ ॥

मैं भी उन्हें अकेले युद्धभूमिमें शोकमग्न हुए देखकर दुःखसे व्याकुल हो गया और क्षणभर मुंहसे कुछ न कह सका ॥ ४२ ॥

ततोऽस्मै तदहं सर्वमुक्तवान्ग्रहणं तदा ।
द्वैपायनप्रसादाच्च जीवतो मोक्षमाहवे ॥ ४३ ॥

फिर मैंने युद्धमें अपने पकडे जानेका और व्यासकी कृपासे जीते छूटनेका सब वर्णन उनसे किया ॥ ४३ ॥

मुहूर्तमिव च ध्यात्वा प्रतिलभ्य च चेतनाम् ।
भ्रातॄंश्च सर्वसैन्यानि पर्यपृच्छत मां ततः ॥ ४४ ॥

फिर महाराजने मुहूर्ततक सोचकर चैतन्य होकर अपने भाई और सब सेनाका समाचार मुझसे पूछा ॥ ४४ ॥

तस्मै तदहमाचक्षं सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
भ्रातॄंश्च निहतान्सर्वान्सैन्यं च विनिपातितम् ॥ ४५ ॥

मैंने जो कुछ प्रत्यक्ष आंखोंसे देखा था, वह सब उनसे कह दिया । तुम्हारे सब भाई मारे गये और सब सेनाका भी नाश हो गया ॥ ४५ ॥

त्रयः किल रथाः शिष्टास्तावकानां नराधिप ।
इति प्रस्थानकाले मां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ४६ ॥

हे महाराज ! अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य ये तीन ही तुम्हारे पक्षके महारथी जीते हैं । मैं इस समाचारको नहीं जानता था, युद्धभूमिसे जाते समय मुझसे व्यासने कहा कि वे तीनों ही जीते हैं ॥ ४६ ॥

स दीर्घमिव निःश्वस्य विप्रेक्ष्य च पुनः पुनः ।
असे मां पाणिना स्पृष्ट्वा पुत्रस्ते पर्यभाषत ॥ ४७ ॥

हे महाराज ! फिर यह सुनकर तुम्हारे पुत्रने ऊंचा श्वांस लेकर, बार बार मेरी ओर देखा और हाथसे मेरे कंधेपर स्पर्श किया और कहने लगा ॥ ४७ ॥

त्वदन्यो नेह संग्रामे कश्चिज्जीवति सञ्जय ।
द्वितीयं नेह पश्यामि ससहायाश्च पाण्डवाः ॥ ४८ ॥

हे सञ्जय ! अब इस युद्धमें हम अपने सहायकोंमें तुम्हारे सिवाय दूसरे किसीको जीता नहीं देखते, पाण्डव अपने सहायकोंके साथ हैं ॥ ४८ ॥

ब्रूयाः सञ्जय राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
दुर्योधनस्तव सुतः प्रविष्टो ह्रदमित्युत ॥ ४९ ॥
सुहृद्भिस्तादृशैर्हीनः पुत्रैर्भ्रातृभिरेव च ।
पाण्डवैश्च हृते राज्ये को नु जीवति मादृशः ॥ ५० ॥

जो हो तुम प्रज्ञाचक्षु महाराजसे जाकर कहना कि तुम्हारा पुत्र दुर्योधन सहायक वैसे वैसे मित्र, भाई और पुत्रोंके मरनेपर भी अभी जीता है और उसने सरोवरमें प्रवेश किया है। पाण्डवोंके मेरा राज्य छीन लेनेपर, मेरे जैसा दूसरा और कौन पुरुष जी सकता है ? ॥४९-५०॥

आचक्षेथाः सर्वमिदं मां च मुक्तं महाहवात् ।
अस्मिंस्तोयहृदे सुप्तं जीवन्तं भृशविक्षतम् ॥ ५१ ॥

तुम यह सब कहना और यह भी बताना कि घावोंसे अत्यंत व्याकुल होकर, जीता ही युद्धसे बचकर चला आया है और पानीसे भरे हुए तालावमें छिपा है ॥ ५१ ॥

एवमुक्त्वा महाराज प्राविशत्तं ह्रदं नृपः ।
अस्तम्भयत तोयं च मायया मनुजाधिपः ॥ ५२ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर राजा दुर्योधन तालावमें घुस गये और उस मनुजेन्द्रने जलको मायासे स्तम्भित कर दिया ॥ ५२ ॥

तस्मिन्ह्रदं प्रविष्टे तु त्रीन्रथाञ्श्रान्तवाहनान् ।
अपश्यं सहितानेकस्तं देशं समुपेयुषः ॥ ५३ ॥

जब महाराज तालावमें चले गये तब अकेले खडे हुए मैंने दूसरे एक साथ आते हुए अपने तीन महारथियोंको देखा, उनके घोडे थक गये थे ॥ ५३ ॥

कृपं शारद्वतं वीरं द्रौणिं च रथिनां वरम् ।
भोजं च कृतवर्माणं सहिताञ्शरविक्षतान् ॥ ५४ ॥

बाणोंसे व्याकुल शरद्वान्‌के पुत्र वीर कृपाचार्य, रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और भोजवंशी कृतवर्माको देखा, वे सब एक साथ थे और बाणोंसे क्षतविक्षत हो गये थे ॥५४॥

ते सर्वे मामभिप्रेक्ष्य तूर्णमश्वानचोदयन् ।
उपयाय च मामूचुर्दिष्ट्या जीवसि संजय ॥ ५५ ॥

उन्होंने मुझे देखकर घोडोंको तेज हांका और मेरे पास आकर बोले, हे सञ्जय ! तुम प्रारब्धहीसे जीते हो ॥ ५५ ॥

अपृच्छंश्चैव मां सर्वे पुत्रं तव जनाधिपम्।
कच्चिद्दुर्योधनो राजा स नो जीवति संजय ॥ ५६ ॥

फिर उन्होंने तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनकी खबर पूछी– संजय! कहो, हमारे राजा दुर्योधन कहीं जीते हैं वा नहीं ? ॥ ५६ ॥

आख्यातवानहं तेभ्यस्तदा कुशलिनं नृपम्।
तच्चैव सर्वमाचक्षं यन्मां दुर्योधनोऽब्रवीत्।
ह्रदं चैवाहमाचष्ट यं प्रविष्टो नराधिपः ॥ ५७ ॥

तब मैंने महाराजकी कुशल उनसे कही और दुर्योधनने जो कुछ मुझसे कहा था, वह सब उनको कह सुनाया और यह भी कह दिया कि महाराजने इस तालावहीमें प्रवेश किया है ॥ ५७ ॥

अश्वत्थामा तु तद्राजन्निशम्य वचनं मम।
तं ह्रदं विपुलं प्रेक्ष्य करुणं पर्यदेवयत् ॥ ५८ ॥

राजन्! मेरे वचन सुन और तालावको बडा भारी देख, अश्वत्थामा ऊंचे स्वरसे रोकर कहने लगे कि ॥ ५८ ॥

अहो धिङ्न स जानाति जीवतोऽस्मान्नराधिपः।
पर्याप्ता हि वयं तेन सह योधयितुं परान् ॥ ५९ ॥

हाय, हमको धिकार है कि जो महाराज यह भी नहीं जानते कि हम लोग अभी जीते हैं। यदि महाराज हमको मिल जांय तो अभी भी हम सब शत्रुओंसे युद्ध करनेके लिये समर्थ हैं ॥ ५९ ॥

ते तु तत्र चिरं कालं विलप्य च महारथाः।
प्राद्रवन्रथिनां श्रेष्ठा दृष्ट्वा पाण्डुसुतान्रणे ॥ ६० ॥

बहुत समयतक वे महारथी विलाप करते थे। फिर युद्धभूमिमें इस प्रकार पाण्डवोंको उधर ही आते देख वे रथियोंमें श्रेष्ठ वीर भाग गये ॥ ६० ॥

ते तु मां रथमारोप्य कृपस्य सुपरिष्कृतम्।
सेनानिवेशमाजग्मुर्हतशेषास्त्रयो रथाः ॥ ६१ ॥

मरनेसे बचे हुए वे तीनों महारथी मुझे कृपाचार्यके सुसज्जित रथपर बिठलाकर डेरोंकी ओर चले आये ॥ ६१ ॥

तत्र गुल्माः परित्रस्ताः सूर्ये चास्तमिते सति।
सर्वे विचुक्रुशुः श्रुत्वा पुत्राणां तव संक्षयम् ॥ ६२ ॥

हे महाराज! वहां जाकर हमने देखा कि सूर्य अस्त होनेके समय डेरोंमें पहरे देनेवाले मनुष्य भयसे व्याकुल हो रहे हैं। तब हम लोगोंसे तुम्हारे पुत्रोंका सर्बनासका समाचार सुनकर वे सब रोने लगे ॥ ६२ ॥

ततो वृद्धा महाराज योषितां रक्षिणो नराः ।
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥ ६३ ॥

महाराज ! फिर स्त्रियोंकी रक्षा करनेवाले वृद्ध मनुष्य राजाओंकी स्त्रियोंको साथ ले लेकर अपने अपने नगरोंकी ओरको चल दिये ॥ ६३ ॥

तत्र विक्रोशतीनां च रुदतीनां च सर्वशः ।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः श्रुत्वा तद्बलसंक्षयम् ॥ ६४ ॥

उस समय डेरोंमें सब ओर अपनी सेनाके संहारका वृत्तांत सुनकर स्त्रियोंके आक्रोसका और रोनेका महान् शब्द उठा, ॥ ६४ ॥

ततस्ता योषितो राजन्क्रन्दन्त्यो वै मुहुर्मुहुः ।
कुरर्य इव शब्देन नादयन्त्यो महीतलम् ॥ ६५ ॥

राजन् ! वे युवतियां बारबार कुररीके समान विलाप करके अपने करुण रुदनसे पृथ्वीको निनादित करती थीं ॥ ६५ ॥

आजघ्नुः करजैश्चापि पाणिभिश्च शिरांस्युत ।
लुलुवुश्च तदा केशान्क्रोशन्त्यस्तत्र तत्र ह ॥ ६६ ॥

कोई शिर और छाती हाथोंसे पीटने लगीं; कोई नखूनोंसे अपने ऊपर आघात करने लगीं, कोई बाल उखाडने लगीं और कोई सर्वत्र हाहाकार कर करके शोक करने लगीं ॥ ६६ ॥

हाहाकारविनादिन्यो विनिघ्नन्त्य उरांसि च ।
क्रोशन्त्यस्तत्र रुरुदुः क्रन्दमाना विशां पते ॥ ६७ ॥

पृथ्वी पते ! हाहाकार करती हुई वे छाती पीटने लगीं, और वहां आक्रोश करती हुई वे करुण स्वरसे विलाप करने लगी ॥ ६७ ॥

ततो दुर्योधनामात्याः साश्रुकण्ठा भृशातुराः ।
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥ ६८ ॥

तब दुर्योधनके मन्त्री इकट्ठे हो गये, उनके कण्ठ गद्गद हो गये और वे अत्यंत दुःखित होकर, फिर राजस्त्रियोंको सङ्ग लेकर हस्तिनापुरको चले ॥ ६८ ॥

वेत्रजर्झरहस्ताश्च द्वाराध्यक्षा विशां पते ।
शयनीयानि शुभ्राणि स्पर्ध्यास्तरणवन्ति च ।
सामादाय ययुस्तूर्णं नगरं दाररक्षिणः ॥ ६९ ॥

नृप ! उनके सङ्ग हाथोंमें वेत्र धारण किये द्वारपाल भी चले, स्त्रियोंकी रक्षा करनेवाले लोग भी पलङ्ग और बहुमूल्य शुभ्र बिछौने लेकर शीघ्रतासे नगरकी ओर चले ॥ ६९ ॥

आस्थायाश्वतरीयुक्तान्स्यन्दनानपरे जनाः ।
स्वान्स्वान्दारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥ ७० ॥

दूसरे अनेक लोग खच्चरियोंके रथपर चढकर अपनी अपनी रक्षामें नियुक्त स्त्रियोंको लेकर अपने अपने नगरोंको चले गये, ॥ ७० ॥

अदृष्टपूर्वा या नार्यो भास्करेणापि वेश्मसु ।
ददृशुस्ता महाराज जना यान्तीः पुरं प्रति ॥ ७१ ॥

महाराज ! जिन स्त्रियोंको महलोंमें रहते समय पहिले सूर्यने भी नहीं देखा था, उन्हें साधारण लोग नगरकी ओर जातीं हुई देख रहे थे ॥ ७१ ॥

ताः स्त्रियो भरतश्रेष्ठ सौकुमार्यसमन्विताः ।
प्रययुर्नगरं तूर्णं हतस्वजनबान्धवाः ॥ ७२ ॥

भरत श्रेष्ठ ! वे ही कोमल शरीरवाली सुन्दर स्त्रियां अपने बान्धवोंके मारे जानेसे शीघ्रतापूर्वक नगरकी ओर जा रही थीं ॥ ७२ ॥

आ गोपालाविपालेभ्यो द्रवन्तो नगरं प्रति ।
ययुर्मनुष्याः संभ्रान्ता भीमसेनभयार्दिताः ॥ ७३ ॥

भीमसेनके भयसे व्याकूल होकर सब साधारण मनुष्य और ग्वालियों और अहीरों भी नगरकी ओर भाग रहे थे ॥ ७३ ॥

अपि चैषां भयं तीव्रं पार्थेभ्योऽभूत्सुदारुणम् ।
प्रेक्षमाणास्तदान्योन्यमाधावन्नगरं प्रति ॥ ७४ ॥

कुन्तीपुत्रोंके दारुण और तीव्र डरसे मनुष्य भी एक दूसरेको देखते हुए नगरकी ओर भागने लगे ॥ ७४ ॥

तस्मिंस्तदा वर्तमाने विद्रवे भृशदारुणे ।
युयुत्सुः शोकसंमूढः प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ ७५ ॥

इस प्रकार अत्यंत घोर भगदड होनेके पश्चात्, शोकसे व्याकुल होकर युयुत्सु समयके अनुसार एक स्थानपर शोचने लगे ॥ ७५ ॥

जितो दुर्योधनः संख्ये पाण्डवैर्भीमविक्रमैः ।
एकादशचमूभर्ता भ्रातरश्चास्य सूदिताः ।
हताश्च कुरवः सर्वे भीष्मद्रोणपुरःसराः ॥ ७६ ॥

ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी दुर्योधनको युद्धमें अत्यंत पराक्रमी वीर पाण्डवोंने जीत लिया । और उसके भाईयोंको भी मार डाला। भीष्म और द्रौणाचार्य आदि जिनके प्रमुख थे वे सब कौरव मारे गये ॥ ७६ ॥

अहमेको विमुक्तस्तु भाग्ययोगाद्यदृच्छया ।
विद्रुतानि च सर्वाणि शिबिराणि समन्ततः ॥ ७७ ॥

मैं प्रारब्धसे अकेला बच गया हूं । इस समय सब डेरेके लोग भी भागे जाते हैं ॥ ७७ ॥

दुर्योधनस्य सचिवा ये केचिदवशेषिताः ।
राजदारानुपादाय व्यधावन्नगरं प्रति ॥ ७८ ॥

दुर्योधनके बचे हुए कुछ मन्त्री रानियोंको सङ्ग लेकर हस्तिनापुरको चले जाते हैं ॥ ७८ ॥

प्राप्तकालमहं मन्ये प्रवेशं तैः सहाभिभो ।
युधिष्ठिरमनुज्ञाप्य भीमसेनं तथैव च ॥ ७९ ॥

इस समय राजा युधिष्ठिर और भीमसेनकी आज्ञा लेकर उनके साथ नगरमें प्रवेश करना चाहिये, यही अब समयोचित कर्तव्य है, ऐसा मुझे लगता है ॥ ७९ ॥

एतमर्थं महाबाहुरुभयोः स न्यवेदयत् ।
तस्य प्रीतोऽभवद्राजा नित्यं करुणवेदिता ।
परिष्वज्य महाबाहुर्वैश्यापुत्रं व्यसर्जयत् ॥ ८० ॥

ऐसा विचारकर महाबाहु युयुत्सुने उन दोनों महाराज युधिष्ठिर और भीमसेनसे यह समाचार कह सुनाया । वह सुनकर सदैव कृपा करनेवाले महाबाहु महाराजने प्रसन्न होकर वैश्य कुमारीके पुत्र युयुत्सुको अपनी छातीसे लगाया और हस्तिनापुर जानेको बिदा किया ॥ ८० ॥

ततः स रथमास्थाय द्रुतमश्वानचोदयत् ।
असंभावितवांश्चापि राजदारान्पुरं प्रति ॥ ८१ ॥

फिर वे राजाकी आज्ञासे रथपर चढकर घोडोंको शीघ्र हांकते हुए, रानियोंको सङ्ग लेकर हस्तिनापुरको चले आये, ॥ ८१ ॥

तैश्चैव सहितः क्षिप्रमस्तं गच्छति भास्करे ।
प्रविष्टो हास्तिनपुरं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ ८२ ॥

सूर्य अस्त होते होते आंखोंसे आंसू बहाते रोते हुए युयुत्सु उन सबके साथ हस्तिनापुरमें पहुंचे उनका कण्ठ भर आया था ॥ ८२ ॥

अपश्यत महाप्राज्ञं विदुरं साश्रुलोचनम् ।
राज्ञः समीपान्निष्क्रान्तं शोकोपहतचेतसम् ॥ ८३ ॥

उन्होंने आपके पाससे जाते हुए नेत्रोंमें आंसू भरे और शोकमग्न हुए ऐसे महाज्ञानी विदुरको मार्गमें देखा ॥ ८३ ॥

तमब्रवीत्सत्यधृतिः प्रणतं त्वग्रतः स्थितम् ।
अस्मिन्कुरुक्षये वृत्ते दिष्ट्या त्वं पुत्र जीवसि ॥ ८४ ॥

सामने खडे होकर प्रणाम करते हुए उसको सत्यमार्गी विदुरने कहा– हे पुत्र ! तुम प्रारब्धहीसे इस कुरुकुल क्षयसे जीवित बचे हो ॥ ८४ ॥

विना राज्ञः प्रवेशाद्वै किमसि त्वमिहागतः ।
एतन्मे कारणं सर्वं विस्तरेण निवेदय ॥ ८५ ॥

परन्तु राजाके हास्तिनापुरमें प्रवेश करनेसे पहिले ही तुम नगरमें क्यों चले आये ? इसका कारण तुम विस्तारपूर्वक हमसे कहो ॥ ८५ ॥

युयुत्सुरुवाच—
निहते शकुनौ तात सज्ञातिसुतबान्धवे ।
हतशेषपरीवारो राजा दुर्योधनस्ततः ।
स्वकं स हयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद्भयात् ॥ ८६ ॥

युयुत्सु बोले– तात ! जब युद्धमें जाति, पुत्र और बांधव सहित शकुनि मारे गये, तब राजा दुर्योधन जिनके शेष परिवार नष्ट हो गये थे, वे अपने घोडेसे उतरकर, उसे वहीं छोडकर डरसे पूर्वकी ओर भाग गये ॥ ८६ ॥

अपक्रान्ते तु नृपतौ स्कन्धावारनिवेशनात् ।
भयव्याकुलितं सर्वं प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥ ८७ ॥

राजाके शिबिरसे दूर भागते ही सब लोग डेरे छोडकर डरकर नगरकी ओर भाग गये ॥ ८७ ॥

ततो राज्ञः कलत्राणि भ्रातॄणां चास्य सर्वशः ।
वाहनेषु समारोप्य स्त्र्यध्यक्षाः प्राद्रवन्भयात् ॥ ८८ ॥

अनन्तर राजा और उनके भाइयोंकी सब स्त्रियोंको वाहनोंपर बिठलाकर प्रधानमन्त्री भी भयके कारण नगरकी ओर भाग आये ॥ ८८ ॥

ततोऽहं समनुज्ञाप्य राजानं सहकेशवम् ।
प्रविष्टो हास्तिनपुरं रक्षँल्लोकाद्धि वाच्यताम् ॥ ८९ ॥

तब मैं भी महाराज युधिष्ठिर और श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार भागे हुए लोगोंकी रक्षा करनेके लिये हस्तिनापुरको चला आया ॥ ८९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वैश्यापुत्रेण भाषितम् ।
प्राप्तकालमिति ज्ञात्वा विदुरः सर्वधर्मवित् ।
अपूजयदमेयात्मा युयुत्सुं वाक्यकोविदम् ॥ ९० ॥

वैश्यापुत्र युयुत्सुके कहे हुए वचन सुन और उनके कर्मको समयानुसार जानकर, सर्व धर्मात्मा और अमेयात्मा विदुरने भाषण करनेमें कुशल युयुत्सुकी बहुत प्रशंसा की और कहा कि ॥ ९० ॥

प्राप्तकालमिदं सर्वं भवतो भरतक्षये ।
अद्य त्वमिह विश्रान्तः श्वोऽभिगन्ता युधिष्ठिरम् ॥ ९१ ॥

तुमने भरतवंशियोंके वीरक्षयमें जो समयोचित कर्तव्य था वह सर्व किया है, हे पुत्र ! आज तुम हस्तिनापुरमें विश्राम करके कल प्रातःकाल युधिष्ठिरके पास जाइये ॥ ९१ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं विदुरः सर्वधर्मवित् ।
युयुत्सुं समनुज्ञाप्य प्रविवेश नृपक्षयम् ।
युयुत्सुरपि तां रात्रिं स्वगृहे न्यवसत्तदा ॥ ९२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ समाप्तं ह्रदप्रवेशपर्व ॥ १५०८ ॥

ऐसा वचन कहकर सर्वधर्मके ज्ञाता फिर युयुत्सुको आज्ञा देकर राजभवनमें गये । युयुत्सु भी उस रातमें अपने घरमें जाकर रहे ॥ ९२ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें अठाईसवां अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ ह्रदप्रवेशपर्व समाप्त ॥ १५०८ ॥

: २९ :

धृतराष्ट्र उवाच

हतेषु सर्वसैन्येषु पाण्डुपुत्रै रणाजिरे ।
मम सैन्यावशिष्टास्ते किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! जब पाण्डुके पुत्रोंने हमारी सब सेनाका समरमें नाश कर दिया, तब हमारी ओरके बचे हुए वीरोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

कृतवर्मा कृपश्चैव द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान् ।
दुर्योधनश्च मन्दात्मा राजा किमकरोत्तदा ॥ २ ॥

कृतवर्मा, कृपाचार्य, वीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और मूर्ख राजा दुर्योधनने उस समय क्या किया ? ॥ २ ॥

*

सञ्जय उवाच

संप्राद्रवत्सु दारेषु क्षत्रियाणां महात्मनाम् ।
विद्रुते शिबिरे शून्ये भृशोद्विग्नास्त्रयो रथाः ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! जब महात्मा क्षत्रिय राजाओंकी पत्नियाँ डेरोंसे भाग गयीं और सब लोगोंके भाग जानेसे सब डेरे शून्य हो गये, तब कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा ये तीनों महारथी अत्यन्त उद्विग्न हो गये ॥ ३ ॥

निशम्य पाण्डुपुत्राणां तदा विजयिनां स्वनम् ।
विद्रुतं शिबिरं दृष्ट्वा सायाह्ने राजगृद्धिनः ।
स्थानं नारोचयंस्तत्र ततस्ते ह्रदमभ्ययुः ॥ ४ ॥

सन्ध्या समय विजयी पाण्डवोंका शब्द सुनकर, और अपने शिबिरमेंसे सब लोगोंको भागे हुए देखकर, राजा दुर्योधनको चाहनेवाले ये महारथी डेरोंमें न बैठ सके और राजाको ढूंढनेके लिये उस ही तालावकी ओर चले ॥ ४ ॥

युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो रणे ।
हृष्टः पर्यपतद्राजन्दुर्योधनवधेप्सया ॥ ५ ॥

राजन् ! धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिर भी अपने भाइयोंके सहित आनन्दित होकर दुर्योधनको मारनेके लिये उसको ढूंढने लगे ॥ ५ ॥

मार्गमाणास्तु संक्रुद्धास्तव पुत्रं जयैषिणः ।
यत्नतोऽन्वेषमाणास्तु नैवापश्यञ्जनाधिपम् ॥ ६ ॥

विजयकी इच्छा करनेवाले पाण्डवोंने बहुत क्रोध और यत्न करके तुम्हारे पुत्रको ढूंढनेपर भी कहीं राजा दुर्योधनका पता न पाया ॥ ६ ॥

स हि तीव्रेण वेगेन गदापाणिरपाक्रमत् ।
तं ह्रदं प्राविशच्चापि विष्टभ्यापः स्वमायया ॥ ७ ॥

राजा दुर्योधनने गदा हाथमें लेकर बहुत शीघ्रतासे भागकर तालावमें घुसकर अपनी मायासे जलको स्थिर कर दिया ॥ ७ ॥

यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्तवाहनाः ।
ततः स्वशिबिरं प्राप्य व्यतिष्ठन्सहसैनिकाः ॥ ८ ॥

जब दुर्योधनको ढूंढते ढूंढते पाण्डवोंके घोडे बहुत थक गये, तब वे लोग अपनी सेनाके साथ अपने डेरोंमें जाकर ठहर गये ॥ ८ ॥

ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च सात्वतः ।
संनिविष्टेषु पार्थेषु प्रयातास्तं ह्रदं शनैः ॥ ९ ॥

जब सब कुन्तीपुत्र पाण्डव डेरोंमें चले गये, तब कृपाचार्य अश्वत्थामा, और सात्वतवंशी कृतवर्मा धीरे धीरे उस तालावकी ओर चले ॥ ९ ॥

ते तं ह्रदं समासाद्य यत्र शेते जनाधिपः ।
अभ्यभाषन्त दुर्धर्षं राजानं सुप्तमम्भसि ॥ १० ॥

जहां राजा दुर्योधन सोते थे, उस तालावके पास जाकर पानीमें सोते हुए तेजस्वी राजा दुर्योधनसे बोले ॥ १० ॥

राजन्नुत्तिष्ठ युध्यस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरम् ।
जित्वा वा पृथिवीं भुङ्क्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ॥ ११ ॥

हे राजन् ! आप उठिये और हम लोगोंके सहित युधिष्ठिरसे युद्ध कीजिये, और उन्हें जीतकर पृथ्वीका राज्य कीजिये या मरकर स्वर्गको जाइये, ॥ ११ ॥

तेषामपि बलं सर्वं हतं दुर्योधन त्वया ।
प्रतिरब्धाश्च भूयिष्ठं ये शिष्टास्तत्र सैनिकाः ॥ १२ ॥

दुर्योधन ! आपने भी पाण्डवोंकी सब सेनाका नाश कर दिया है, और जो बचे हुए हैं उन वीरोंको भी अत्यंत व्याकुल कर दिया है ॥ १२ ॥

न ते वेगं विषहितुं शक्तास्तव विशां पते ।
अस्माभिरभिगुप्तस्य तस्मादुत्तिष्ठ भारत ॥ १३ ॥

भारत ! अब हम लोग आपकी रक्षा करेंगे । तब इस स्थितिमें तुम उनपर आक्रमण करोगे तब पाण्डव आपके बलके वेगको नहीं सह सकेंगे । इसलिये आप उठिये, और पाण्डवोंसे युद्ध कीजिये ॥ १३ ॥

दुर्योधन उवाच

दिष्ट्या पश्यामि वो मुक्तानीदृशात्पुरुषक्षयात् ।
पाण्डुकौरवसंमर्दाज्जीवमानान्नरर्षभान् ॥ १४ ॥

राजा दुर्योधन बोले– हे वीरो ! हमारे और पाण्डवोंके घोर युद्धरूपी मनुष्योंके नाशसे बचे हुए तुम तीन पुरुषसिंहोंको प्रारब्धहीसे जीता देखते हैं ॥ १४ ॥

विजेष्यामो वयं सर्वे विश्रान्ता विगतक्लमाः ।
भवन्तश्च परिश्रान्ता वयं च भृशविक्षताः ।
उदीर्णं च बलं तेषां तेन युद्धं न रोचये ॥ १५ ॥

हम सब विश्राम करके थकावट दूर कर लेंगे तो जरूर ही विजयी हो जायेंगे । आप लोग भी बहुत थक गये हैं, और हम भी घावोंसे व्याकुल हैं, पाण्डवोंकी सेनाका उत्साह बहुत बढा हुआ है । इसलिये हम इस समयमें युद्ध करना नहीं चाहते हैं ॥ १५ ॥

न त्वेतदद्भुतं वीरा यद्वो महदिदं मनः ।
अस्मासु च परा भक्तिर्न तु कालः पराक्रमे ॥ १६ ॥

हे वीरो ! आप लोगोंका जो हमारी ओर ऐसी भक्तिपूर्ण चित्त है, और युद्धके लिये मन लगा हुआ है यह कुछ आश्चर्य नहीं । मैं आप लोगोंके बलको जानता हूं, परन्तु समयको नांघ नहीं सकता हूं ॥ १६ ॥

विश्रम्यैकां निशामद्य भवद्भिः सहितो रणे ।
प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रूञ्श्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः ॥ १७ ॥

आज रात्रिभर विश्राम करके प्रातःकाल होते ही युद्धभूमिमें आप लोगोंके सहित मैं पाण्डवोंसे निःसन्देह युद्ध करूंगा ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्तोऽब्रवीद्द्रौणी राजानं युद्धदुर्मदम् ।
उत्तिष्ठ राजन्भद्रं ते विजेष्यामो वयं परान् ॥ १८ ॥

सञ्जय बोले– महाबलवान् राजाके ऐसे वचन सुन द्रोणपुत्र अश्वत्थामा रणदुर्मद राजासे बोले, हे राजन् ! आपका कल्याण हो । आप उठिये हम आपके सब शत्रुओंको जीतेंगे ॥ १८ ॥

इष्टापूर्तेन दानेन सत्येन च जपेन च ।
शपे राजन्यथा ह्यद्य निहनिष्यामि सोमकान् ॥ १९ ॥

राजन् ! हम इष्टापूर्त कर्म, दान, सत्य और जपकी शपथ खाकर कहते हैं कि आज सोमकोंका संहार करेंगे ॥ १९ ॥

मा स्म यज्ञकृतां प्रीतिं प्राप्नुयां सज्जनोचिताम्
यदीमां रजनीं व्युष्टां न निहन्मि परान्रणे ॥ २० ॥

यदि यह रात्रि बीतते ही प्रातःकाल समरमें सोमक वंशियोंका नाश न करें तो महात्माओंके व्रत योग्य यज्ञोंका फल जो प्रीति है वह हमें न मिले ॥ २० ॥

नाहत्वा सर्वपाञ्चालान्विमोक्ष्ये कवचं विभो ।
इति सत्यं ब्रवीम्येतत्तन्मे शृणु जनाधिप ॥ २१ ॥

प्रभो ! हे राजन् ! अब हम आपसे सत्य कहते हैं, कि यह रात्रि बीतनेपर हम सब पाञ्चालोंका नाश करेंगे और विना उनको मारे कवच नहीं खोलेंगे । मेरी इस बातको आप सुनिये ॥ २१ ॥

तेषु संभाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः ।
मांसभारपरिश्रान्ताः पानीयार्थं यदृच्छया ॥ २२ ॥

हे राजन् ! जहां ये सब बातें हो रहीं थी, वहां उसी समय मांस लानेवाले, व्याध मांस भारसे थककर पानी पीनेको अचानक आये ॥ २२ ॥

ते हि नित्यं महाराज भीमसेनस्य लुब्धकाः ।
मांसभारानुपाजह्रुर्भक्त्या परमया विभो ॥ २३ ॥

महाराज ! प्रभो ! वे व्याध भीमसेनकी परमभक्तिसे उनके लिये नित्य मांस भार लाते थे ॥ २३ ॥

ते तत्र विष्ठितास्तेषां सर्वं तद्वचनं रहः ।
दुर्योधनवचश्चैव शुश्रुवुः संगता मिथः ॥ २४ ॥

और उनको बैठा देख छिपकर उनकी एकान्तमें होनेवाली सब बातें सुनने लगे । व्याधोंने मिलकर दुर्योधनकी भी बात सुन ली ॥ २४ ॥

तेऽपि सर्वे महेष्वासा अयुद्धार्थिनि कौरवे ।
निर्बन्धं परमं चक्रुस्तदा वै युद्धकाङ्क्षिणः ॥ २५ ॥

युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले वे सब महाधनुर्धारी वीर, कौरवोंके राजा दुर्योधन युद्धकी इच्छा नहीं करते थे, तो भी उनको युद्ध करनेके लिये आग्रह कर रहे थे ॥ २५ ॥

तांस्तथा समुदीक्ष्याथ कौरवाणां महारथान् ।
अयुद्धमनसं चैव राजानं स्थितमम्भसि ॥ २६ ॥

उन तीनों कौरव महारथियोंकी वैसी युद्ध करनेकी इच्छा जानकर पानीमें स्थित राजा दुर्योधनके मनमें युद्धकी इच्छा नहीं हुई यह देखकर ॥ २६ ॥

तेषां श्रुत्वा च संवादं राज्ञश्च सलिले सतः ।
व्याधाभ्यजानन्राजेन्द्र सलिलस्थं सुयोधनम् ॥ २७ ॥

राजेन्द्र ! वे व्याध भी उन तीनों महारथियोंके जलमें स्थित राजाके साथ हुए वचन सुन, राजाकी युद्ध न करनेकी इच्छा जान गये और राजा दुर्योधन इसी तालावके पानीमें छिपा हुआ है यह समझ गये ॥ २७ ॥

ते पूर्वं पाण्डुपुत्रेण पृष्टा ह्यासन्सुतं तव ।
यदृच्छोपगतास्तत्र राजानं परिमार्गिताः ॥ २८ ॥

महाराज पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर पहले ही राजा दुर्योधनका शोध कर रहे थे, उनके पास प्रारब्धसे ही आये हुए उन व्याधोंसे तुम्हारे पुत्रका पता उन्होंने पूछा ॥ २८ ॥

ततस्ते पाण्डुपुत्रस्य स्मृत्वा तद्भाषितं तदा ।
अन्योन्यमब्रुवन्राजन्मृगव्याधाः शनैरिदम् ॥ २९ ॥

राजन् ! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके वे ही वचन उस समय स्मरण करके, वे व्याध परस्पर धीरे धीरे ऐसा बोलने लगे ॥ २९ ॥

दुर्योधनं ख्यापयामो धनं दास्यति पाण्डवः ।
सुव्यक्तमिति नः ख्यातो ह्रदे दुर्योधनो नृपः ॥ ३० ॥

चलो, पाण्डुपुत्र महाराज युधिष्ठिरसे हम दुर्योधनका पता बतावेंगे तो वे हमको बहुत धन देंगे । राजा दुर्योधन इस तालाबमें हैं, यह हम स्पष्ट रूपसे जान गये हैं ॥ ३० ॥

तस्माद्गच्छामहे सर्वे यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
आख्यातुं सलिले सुप्तं दुर्योधनममर्षणम् ॥ ३१ ॥

इसलिये हम सब जहां राजा युधिष्ठिर हैं वहां चलें और पानीमें सोये हुए अमर्षशील दुर्योधनका पता बतायें ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्रात्मजं तस्मै भीमसेनाय धीमते ।
शयानं सलिले सर्वे कथयामो धनुर्भृते ॥ ३२ ॥

निश्चय धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन पानीमें सो रहे हैं, यह समाचार बुद्धिमान् धनुषधारी भीमसेनको हम सब बतावें ॥ ३२ ॥

स नो दास्यति सुप्रीतो धनानि बहुलान्युत ।
किं नो मांसेन शुष्केण परिक्लिष्टेन शोषिणा ॥ ३३ ॥

यह सुनते ही प्रसन्न होकर वे हम लोगोंको बहुत धन देंगे । इस सूखे मांसको लेकर क्या करेंगे ? इसके क्लेशकारी तृप्तिसे क्या होगा ? ॥ ३३ ॥

एवमुक्त्वा ततो व्याधाः संप्रहृष्टा धनार्थिनः ।
मांसभारानुपादाय प्रययुः शिबिरं प्रति ॥ ३४ ॥

ऐसा कहते हुए वे सब व्याध धन लेनेकी इच्छासे बहुत प्रसन्न होकर मांसकी बहंगी उठा कर डेरोंकी ओर चले गये ॥ ३४ ॥

पाण्डवाश्च महाराज लब्धलक्षाः प्रहारिणः ।
अपश्यमानाः समरे दुर्योधनमवस्थितम् ॥ ३५ ॥

हे राजन् ! प्रहारकुशल पाण्डव लोग भी अपना लक्ष्य विजय प्राप्त कर और दुर्योधनको समरमें उपस्थित न देखकर ॥ ३५ ॥

निकृतेस्तस्य पापस्य ते पारं गमनेप्सवः ।
चारान्संप्रेषयामासुः समन्तात्तद्रणाजिरम् ॥ ३६ ॥

और इस पापी दुर्योधनके अपराधोंका बदला लेकर, वैर समाप्त करनेकी इच्छासे उस युद्ध-भूमिमें चारों ओर दूतोंको भेजने लगे ॥ ३६ ॥

आगम्य तु ततः सर्वे नष्टं दुर्योधनं नृपम् ।
न्यवेदयन्त सहिता धर्मराजस्य सैनिकाः ॥ ३७ ॥

थोडे समयमें धर्मराजके उन सब सेनावालोंने एक साथ वापस आकर महाराजसे कहा कि राजा दुर्योधन कहीं नष्ट हो गया है ॥ ३७ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चाराणां भरतर्षभ ।
चिन्तामभ्यगमत्तीव्रां निःशश्वास च पार्थिवः ॥ ३८ ॥

भरतर्षभ ! उन गुप्तचरोंके वचन सुन राजा युधिष्ठिर ऊंचे श्वांस लेकर बहुत चिन्ता करने लगे ॥ ३८ ॥

अथ स्थितानां पाण्डूनां दीनानां भरतर्षभ ।
तस्माद्देशादपक्रम्य त्वरिता लुब्धका विभो ॥ ३९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! विभो ! उसी समय जब पाण्डव दुःखित होकर बैठे हुए थे, वे व्याध उस स्थानसे निकलकर बहुत शीघ्रतासे डेरोंमें पहुंचे ॥ ३९ ॥

आजग्मुः शिबिरं हृष्टा दृष्ट्वा दुर्योधनं नृपम् ।
वार्यमाणाः प्रविष्टाश्च भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ४० ॥

राजा दुर्योधनको स्वयं आंखोंसे देखकर प्रसन्नचित्तसे पाण्डवोंके शिबिरमें आ गये । यद्यपि पहरेदारोंने उन्हें रोका तो भी वे लोग प्रसन्न होकर भीमसेनके देखते अंदर चले गये ॥ ४० ॥

ते तु पाण्डवमासाद्य भीमसेनं महाबलम् ।
तस्मै तत्सर्वमाचख्युर्यद्वृत्तं यच्च वै श्रुतम् ॥ ४१ ॥

और महाबलवान् पाण्डुपुत्र भीमसेनके पास जाकर उन्होंने तालाबके पास जो कुछ हुआ और जो सुना था, वह सब समाचार कह सुनाया ॥ ४१ ॥

ततो वृकोदरो राजन्दत्त्वा तेषां धनं बहु ।
धर्मराजाय तत्सर्वमाचचक्षे परन्तपः ॥ ४२ ॥

राजन् ! तब शत्रुतापन भीमसेनने बहुत प्रसन्न होकर उन्हें बहुत धन देकर विदा किया और यह सब समाचार महाराजा युधिष्ठिरसे कह दिया ॥ ४२ ॥

असौ दुर्योधनो राजन्विज्ञातो मम लुब्धकैः ।
संस्तभ्य सलिलं शेते यस्यार्थे परितप्यसे ॥ ४३ ॥

भीमसेन बोले, हे महाराज ! आप जिसके लिये शोच कर रहे थे, उस दुर्योधनका पता हमारे व्याधोंने जान लिया है, वह अपनी मायासे जलको स्तम्भित करके तालावमें सोता है ॥ ४३ ॥

तद्वचो भीमसेनस्य प्रियं श्रुत्वा विशां पते ।
अजातशत्रुः कौन्तेयो हृष्टोऽभूत्सह सोदरैः ॥ ४४ ॥

पृथ्वीपते ! कुन्तीपुत्र अजात शत्रु युधिष्ठिर भीमसेनके ऐसे प्यारे वचन सुनकर अपने भाइयोंके सहित बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४४ ॥

तं च श्रुत्वा महेष्वासं प्रविष्टं सलिलह्रदम् ।
क्षिप्रमेव ततोऽगच्छत्पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥ ४५ ॥

महाधनुषधारी दुर्योधनको तालावमें सोते सुन, श्रीकृष्णके सहित वहीं शीघ्र ही चले ॥४५॥

ततः किलकिलाशब्दः प्रादुराशीद्विशां पते ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां पाञ्चालानां च सर्वशः ॥ ४६ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! उस समय पाण्डव और पाञ्चालोंकी सेनामें प्रसन्न क्षत्रियोंका सब ओर हर्ष-भरित शब्द होने लगा ॥ ४६ ॥

सिंहनादांस्ततश्चक्रुः क्ष्वेडांश्च भरतर्षभ ।
त्वरिताः क्षत्रिया राजञ्जग्मुर्द्वैपायनं ह्रदम् ॥ ४७ ॥

भरतर्षभ ! राजन् ! कहीं क्षत्रिय वीर सिंहनाद और गर्जना करने लगे और कहीं कूदने लगे, और शीघ्र ही द्वैपायन तालावके पास गये ॥ ४७ ॥

ज्ञातः पापो धार्तराष्ट्रो दृष्टश्चेत्यसकृद्रणे ।
प्राक्रोशन्सोमकास्तत्र हृष्टरूपाः समन्ततः ॥ ४८ ॥

चारों ओर वीर सोमकोंकी सेनामें समरमें यही शब्द जोरसे सुनाई देता था, कि धृतराष्ट्रके पापी दुर्योधनका पता लग गया और उसे हमारे मनुष्य देख भी आये ॥ ४८ ॥

तेषामाशु प्रयातानां रथानां तत्र वेगिनाम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक्पृथिवीपते ॥ ४९ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! उस समयमें शीघ्रतासे जानेवाले प्रसन्न सोमक वंशियोंके वेगवान् रथोंका घोर शब्द आकाशमें पूरित हो गया था ॥ ४९ ॥

दुर्योधनं परीप्सन्तस्तत्र तत्र युधिष्ठिरम् ।
अन्वयुस्त्वरितास्ते वै राजानं श्रान्तवाहनाः ॥ ५० ॥

सब क्षत्रियवीर थके हुए वाहनोंपर चढकर दुर्योधनको पकडनेकी इच्छा करते हुए बडी शीघ्रतासे युधिष्ठिरके पीछे चले ॥ ५० ॥

अर्जुनो भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी चापराजितः ॥ ५१ ॥

उसमें प्रतापवान् धर्मराजके सङ्ग अर्जुन, भीमसेन, माद्रीपुत्र पाण्डव नकुल–सहदेव, पाञ्चाल–पुत्र सेनापति धृष्टद्युम्न, अपराजित महापराक्रमी शिखण्डी ॥ ५१ ॥

उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिश्चापराजितः ।
पाञ्चालानां च ये शिष्टा द्रौपदेयाश्च भारत ।
हयाश्च सर्वे नागाश्च शतशश्च पदातयः ॥ ५२ ॥

उत्तमौजा, युधामन्यु, अपराजित सात्यकि, द्रौपदीके पांचों पुत्र और बचे हुए पाञ्चालवंशी क्षत्रिय, सब घोडे, हाथी और सैंकडों पैदल सैनिक भी थे ॥ ५२ ॥

ततः प्राप्तो महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
द्वैपायनह्रदं ख्यातं यत्र दुर्योधनोऽभवत् ॥ ५३ ॥

महाराज ! थोडे ही समयमें धर्मपुत्र युधिष्ठिर उस प्रसिद्ध द्वैपायनह्रदके पास आये, जिसमें दुर्योधन छिपकर बैठा था ॥ ५३ ॥

शीतामलजलं हृद्यं द्वितीयमिव सागरम् ।
मायया सलिलं स्तभ्य यत्राभूत्ते सुतः स्थितः ॥ ५४ ॥

उस ठंडे और निर्मल जलवाले, मनोहर समुद्रके समान विशाल गम्भीर द्वैपायन नामक तालावके पास पहुंचे जहां मायासे जलको स्तम्भित करके तुम्हारे पुत्र रहते थे ॥ ५४ ॥

अत्यद्भुतेन विधिना दैवयोगेन भारत ।
सलिलान्तर्गतः शेते दुर्दर्शः कस्यचित्प्रभो ।
मानुषस्य मनुष्येन्द्र गदाहस्तो जनाधिपः ॥ ५५ ॥

भारत ! प्रभो ! नरेद्र ! अद्भुत विधि और दैवयोगसे गदाधारी महाराज दुर्योधन पानीमें सोते थे, उस समय किसी भी मनुष्यको उनको देखना अशक्य था ॥ ५५ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सलिलान्तर्गतो वसन् ।
शुश्रुवे तुमुलं शब्दं जलदोपमनिःस्वनम् ॥ ५६ ॥

तदनन्तर राजा दुर्योधनने भी जलके भीतरहीसे युधिष्ठिरकी आती हुई सेनाका मेघके समान घोर शब्द सुना ॥ ५६ ॥

युधिष्ठिरस्तु राजेन्द्र ह्रदं तं सह सोदरैः ।
आजगाम महाराज तव पुत्रवधाय वै ॥ ५७ ॥

राजेन्द्र ! महाराज ! राजा युधिष्ठिर भी अपने भाइयोंके सहित तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको मारनेके लिये उस तालावके पास आ गये ॥ ५७ ॥

महता शङ्खनादेन रथनेमिस्वनेन च ।
उद्धुन्वंश्च महारेणुं कम्पयंश्चापि मेदिनीम् ॥ ५८ ॥

वे बडे शङ्ख और रथके पहियोंके शब्दसे पृथ्वीको कंपाते हुए और महान् धूलि ऊपर उडाकर आकाशको पूरित करते हुए उस तालावके पास पहुंचे ॥ ५८ ॥

+

यौधिष्ठिरस्य सैन्यस्य श्रुत्वा शब्दं महारथाः ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणी राजानमिदमब्रुवन् ॥ ५९ ॥

युधिष्ठिरकी सेनाका शब्द सुनकर कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा ये महारथी राजा दुर्योधनसे ऐसा बोले ॥ ५९ ॥

इमे ह्यायान्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
अपयास्यामहे तावदनुजानातु नो भवान् ॥ ६० ॥

ये विजयी प्रसन्न पाण्डवोंकी सेना इधर ही चली आती है, इसलिये हमलोग दूर जाते हैं, आप सावधान हो जाइये और आज्ञा दीजिये ॥ ६० ॥

दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा तेषां तत्र यशस्विनाम् ।
तथेत्युक्त्वा ह्रदं तं वै माययास्तम्भयत्प्रभो ॥ ६१ ॥

प्रभो ! उन यशस्वी वीरोंके वचन सुन महाराजने बहुत अच्छा कहकर फिर अपनी मायासे जलको स्तम्भित कर दिया और आप तालावमें घुस गये ॥ ६१ ॥

ते त्वनुज्ञाप्य राजानं भृशं शोकपरायणाः ।
जग्मुर्दूरं महाराज कृपप्रभृतयो रथाः ॥ ६२ ॥

महाराज ! ये तीनों भी कृपाचार्य आदि महारथी राजाकी आज्ञा पाकर और शोकसे अत्यंत व्याकुल होकर वहांसे दूर चले गये ॥ ६२ ॥

ते गत्वा दूरमध्वानं न्यग्रोधं प्रेक्ष्य मारिष ।
न्यविशन्त भृशं श्रान्ताश्चिन्तयन्तो नृपं प्रति ॥ ६३ ॥

मारिष ! तीनों वीर बहुत दूर जाकर थककर एक वडगदका वृक्ष देखकर, उसकी छायामें बैठकर राजाके विषयमें चिन्ता करने लगे ॥ ६३ ॥

विष्टभ्य सलिलं सुप्तो धार्तराष्ट्रो महाबलः ।
पाण्डवाश्चापि संप्राप्तास्तं देशं युद्धमीप्सवः ॥ ६४ ॥

महाबलवान् धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन जलके भीतर पानीको स्तम्भित करके सोते हैं और पाण्डव भी युद्धके लिये वहीं पहुंच गये हैं ॥ ६४ ॥

कथं नु युद्धं भविता कथं राजा भविष्यति ।
कथं नु पाण्डवा राजन्प्रतिपत्स्यन्ति कौरवम् ॥ ६५ ॥

न जाने यह युद्ध कैसा होगा ? न जाने महाराजकी क्या दशा होगी ? और न जाने महाराजके सङ्ग पाण्डव कैसा व्यवहार करेंगे ? ॥ ६५ ॥

इत्येवं चिन्तयन्तस्ते रथेभ्योऽश्वान्विमुच्य ह ।
तत्रासांचक्रिरे राजन्कृपप्रभृतयो रथाः ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ १५७४ ॥

राजन् ! कृपाचार्य आदि महारथियोंने यही शोचते शोचते रथोंसे घोडे छोडे और चिन्ता करते हुए वे वहीं बैठकर विश्राम करने लगे ॥ ६६ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें उनतीसवां अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥ १५७४ ॥

: ३० :

सञ्जय उवाच

ततस्तेष्वपयातेषु रथेषु त्रिषु पाण्डवाः ।
ते ह्रदं प्रत्यपद्यन्त यत्र दुर्योधनोऽभवत् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! जब वे तीनों रथी वीर चले गये, तब पाण्डवोंकी सेना उस तालावके पास पहुंची जिसमें राजा दुर्योधन छिपे हुए थे ॥ १ ॥

आसाद्य च कुरुश्रेष्ठ तदा द्वैपायनह्रदम् ।
स्तम्भितं धार्तराष्ट्रेण दृष्ट्वा तं सलिलाशयम् ।
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुनन्दनः ॥ २ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! वहां द्वैपायनह्रदपर पहुंचकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने तालावके जलको मायासे स्तम्भित कर दिया है, यह देखकर, कुरुनन्दन महाराज युधिष्ठिर वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा बोले ॥ २ ॥

पश्येमां धार्तराष्ट्रेण मायामप्सु प्रयोजिताम् ।
विष्टभ्य सलिलं शेते नास्य मानुषतो भयम् ॥ ३ ॥

हे कृष्ण ! यह देखो, दुर्योधनने अपनी दैवी मायासे इस जलको कैसा स्तम्भित कर दिया है, और पानीको रोककर यह सो रहा है, ये किसी मनुष्यसे भी नहीं डरता ॥ ३ ॥

दैवीं मायामिमां कृत्वा सलिलान्तर्गतो ह्ययम् ।
निकृत्या निकृतिप्रज्ञो न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥ ४ ॥

कारण कि यह इस दैवी मायासे पानीके अन्दर रहता है। यह कपट विद्यामें चतुर होनेपर भी कपट करके आज मेरे हाथसे जीवित नहीं छूटेगा ॥ ४ ॥

यद्यस्य समरे साह्यं कुरुते वज्रभृत्स्वयम् ।
तथाप्येनं हतं युद्धे लोको द्रक्ष्यति माधव ॥ ५ ॥

हे कृष्ण ! आज यदि इस छलीकी समरमें साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी सहायता करें तो भी यह मुझसे जीता नहीं बचेगा । सब लोग इसे युद्धमें मरा हुआ ही देखेंगे ॥ ५ ॥

श्रीवासुदेव उवाच

मायाविन इमां मायां मायया जहि भारत।
मायावी मायया वध्यः सत्यमेतद्युधिष्ठिर ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण बोले– हे महाराज ! मायावी दुर्योधनकी इस मायाको तुम मायासे ही नष्ट कीजिये, युधिष्ठिर ! छलीको छलसे मारनेमें कुछ भी पाप नहीं होता यही सत्य है ॥ ६ ॥

क्रियाभ्युपायैर्बहुलैर्मायामप्सु प्रयोज्य ह।
जहि त्वं भरतश्रेष्ठ पापात्मानं सुयोधनम् ॥ ७ ॥

हे भरतकुलश्रेष्ठ ! आप इस जलमें कुछ रचनात्मक क्रिया और मायाका प्रयोग करके, इस पापी दुर्योधनको मारिये ॥ ७ ॥

क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण निहता दैत्यदानवाः।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्बलिर्बद्धो महात्मना ॥ ८ ॥

रचनात्मक क्रियाओंसे ही इन्द्रने अनेक दैत्य दानवोंको मारा है, महात्मा श्रीहरिने भी नाना प्रकारके कौशलपूर्ण उपायोंहीसे महाबलवान् बलिको बांधा था ॥ ८ ॥

क्रियाभ्युपायैः पूर्वं हि हिरण्याक्षो महासुरः।
हिरण्यकशिपुश्चैव क्रिययैव निषूदितौ।
वृत्रश्च निहतो राजन्क्रिययैव न संशयः ॥ ९ ॥

राजन् ! पहले विष्णुने भी कौशलहीसे महान् हिरण्याक्ष राक्षसको मारा था, और विष्णुने ही कौशलहीसे हिरण्यकशिपु राक्षसको भी मारा था, इन्द्रने भी वृत्रासुरको कौशलहीसे मारा था, इसमें संशय नहीं है ॥ ९ ॥

तथा पौलस्त्यतनयो रावणो नाम राक्षसः।
रामेण निहतो राजन्सानुबन्धः सहानुगः।
क्रियया योगमास्थाय तथा त्वमपि विक्रम ॥ १० ॥

राजन् ! इसी प्रकार पुलस्त्यकुलमें उत्पन्न हुए रावण नामक राक्षसको भी सेना और बान्धवोंके सहित युक्ति–कौशलहीसे श्रीरामचंद्रने मारा था, आप भी वैसे ही कौशल और बलसे दुर्योधनको मारिये ॥ १० ॥

क्रियाभ्युपायैर्निहतो मया राजन्पुरातने।
तारकश्च महादैत्यो विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥ ११ ॥

हे राजन् ! पहिले समयमें मैंने भी वीर्यशाली विप्रचित्ती और महादैत्य तारक नामक राक्षसोंको कौशलहीसे मारा था ॥ ११ ॥

वातापिरिल्वलश्चैव त्रिशिराश्च तथा विभो ।
सुन्दोपसुन्दावसुरौ क्रिययैव निषूदितौ ॥ १२ ॥

प्रभो ! वातापि, इल्वल, त्रिशिरा, सुन्द, उपसुन्द, भी कौशलहीसे मारे गये ॥ १२ ॥

क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण त्रिदिवं भुज्यते विभो ।
क्रिया बलवती राजन्नान्यत्किंचिद्युधिष्ठिर ॥ १३ ॥

कौशलहीसे इन्द्र स्वर्गका राज्य भोगते हैं । हे राजन् युधिष्ठिर ! कार्यकौशल ही जगत्में प्रधान है और कुछ नहीं ॥ १३ ॥

दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसाः पार्थिवास्तथा ।
क्रियाभ्युपायैर्निहताः क्रियां तस्मात्समाचर ॥ १४ ॥

अनेक दैत्य, दानव, राक्षस और भूपति कौशलहीसे मारे गये हैं। इसलिये आप भी कौशलसे ही काम कीजिये ॥ १४ ॥

संजय उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन पाण्डवः संशितव्रतः ।
जलस्थं तं महाराज तव पुत्रं महाबलम् ।
अभ्यभाषत कौन्तेयः प्रहसन्निव भारत ॥ १५ ॥

संजय बोले– महाराज ! भारत ! श्रीकृष्णके ऐसे वचन कहनेपर, महाव्रतधारी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर जलमें सोते हुए तुम्हारे महाबलवान् पुत्र दुर्योधनसे हंसकर बोले ॥ १५ ॥

सुयोधन किमर्थोऽयमारम्भोऽप्सु कृतस्त्वया ।
सर्वं क्षत्रं घातयित्वा स्वकुलं च विशां पते ॥ १६ ॥
जलाशयं प्रविष्टोऽद्य वाञ्छञ्जीवितमात्मनः ।
उत्तिष्ठ राजन्युध्यस्व सहास्माभिः सुयोधन ॥ १७ ॥

हे पृथ्वीपति ! दुर्योधन ! तुमने पानीमें यह आराधना किस लिये शुरू की है ? सब क्षत्रियों और अपने वंशका नाश करके अब अपने जीनेकी इच्छासे तुम जलमें क्यों घुसे हो ! राजन् सुयोधन ! तुम उठो और हम लोगोंसे युद्ध करो ॥ १६–१७ ॥

स च दर्पो नरश्रेष्ठ स च मानः क्व ते गतः ।
यस्त्वं संस्तभ्य सलिलं भीतो राजन्व्यवस्थितः ॥ १८ ॥

हे राजन् ! पुरुषश्रेष्ठ ! तुम्हारा वह अहंकार, अभिमान और तुम्हारा वह गौरव अब कहां गया ? जो तुम डरकर पानीके भीतर उसका स्तम्भन करके छिपे हो ॥ १८ ॥

सर्वे त्वां शूर इत्येव जना जल्पन्ति संसदि ।
व्यर्थं तद्भवतो मन्ये शौर्यं सलिलशायिनः ॥ १९ ॥
सभामें सब लोग तुम्हें वीर कहा करते थे, परन्तु आज तुम्हारे पानीमें छिपनेसे हमें वह तुम्हारे शौर्यकी बात झूठ जान पडी ॥ १९ ॥

उत्तिष्ठ राजन्युध्यस्व क्षत्रियोऽसि कुलोद्भवः ।
कौरवेयो विशेषेण कुले जन्म च संस्मर ॥ २० ॥
राजन् ! तुम क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए विशेषकर कुरुवंशी कहलाते हो, अपने वंश और जन्मका स्मरण करो और उठकर हम लोगोंसे युद्ध करो ॥ २० ॥

स कथं कौरवे वंशे प्रशंसञ्जन्म चात्मनः ।
युद्धाद्भीतस्ततस्तोयं प्रविश्य प्रतितिष्ठसि ॥ २१ ॥
तुम कुरुकुलमें उत्पन्न हुए हैं, ऐसा कहकर स्वयंके जन्मकी प्रशंसा करते थे । फिर यह कहके भी आज युद्धसे डरकर पानीमें क्यों छिपे हो ? ॥ २१ ॥

अयुद्धमव्यवस्थानं नैष धर्मः सनातनः ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं रणे राजन्पलायनम् ॥ २२ ॥
राजन् ! क्या यह तुम्हारे लिये एक लाजकी बात नहीं है ? राज्य और युद्धमें स्थिर न रहना, युद्ध छोडकर पराङ्मुख होकर भागना यह क्षत्रियोंका सनातन धर्म नहीं है । मूर्ख और अनाडी लोग ऐसे कुमार्गका आश्रय लेते हैं, युद्ध छोडकर भागनेसे क्षत्रियको स्वर्ग प्राप्त नहीं होता ॥ २२ ॥

कथं पारमगत्वा हि युद्धे त्वं वै जिजीविषुः ।
इमान्निपतितान्दृष्ट्वा पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄंस्तथा ॥ २३ ॥
तुम विना युद्ध समाप्त किये कैसे जीवित रहनेकी इच्छा करते हो ? युद्धमें मारे गए हुए इन पुत्र, भाई, पिता, आदिको देखकर ॥ २३ ॥

संबन्धिनो वयस्यांश्च मातुलान्बान्धवांस्तथा ।
घातयित्वा कथं तात ह्रदे तिष्ठसि सांप्रतम् ॥ २४ ॥
वैसे ही सम्बन्धी, मामा और बान्धवोंका नाश कराकर तुम किस लिये इस समय पानीमें छिपे हो ? ॥ २४ ॥

शूरमानी न शूरस्त्वं मिथ्या वदसि भारत ।
शूरोऽहमिति दुर्बुद्धे सर्वलोकस्य शृण्वतः ॥ २५ ॥
रे भारत ! दुर्बुद्धे ! तू वृथा वीरताका अभिमान किया करता था और सबको सुनाया करता था, कि मैं वीर हूं, परंतु तू शूर है ही नहीं ॥ २५ ॥

न हि शूराः पलायन्ते शत्रून्दृष्ट्वा कथंचन ।
ब्रूहि वा त्वं यया धृत्या शूर त्यजसि संगरम् ॥ २६ ॥
वीर लोग शत्रुओंको देखकर कदापि युद्ध छोडकर किसी तरह नहीं भागते, हे वीर ! कहो, किस वृत्तीका आश्रय लेकर तुम युद्ध छोडकर भाग आये ? ॥ २६ ॥

स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व विनीय भयमात्मनः ।
घातयित्वा सर्वसैन्यं भ्रातॄंश्चैव सुयोधन ॥ २७ ॥
सो तुम अब भय दूर करके उठो और हम लोगोंसे युद्ध करो । सुयोधन ! भाईयों और सब क्षत्रिय सेनाका नाश कराके ॥ २७ ॥

नेदानीं जीविते बुद्धिः कार्या धर्मचिकीर्षया ।
क्षत्रधर्ममपाश्रित्य त्वद्विधेन सुयोधन ॥ २८ ॥
अब तुम्हें जीनेका विचार करना धर्म नहीं है, हे दुर्योधन ! तुम्हारे समान क्षत्रिय अपने धर्मको नहीं छोडते हैं ॥ २८ ॥

यत्तत्कर्णमुपाश्रित्य शकुनिं चापि सौबलम् ।
अमर्त्य इव संमोहात्त्वमात्मानं न बुद्धवान् ॥ २९ ॥
तुम जो पहिले कर्ण और सुबलपुत्र शकुनिके आश्रयसे अपनेको मोहवश होकर अमर और सब मनुष्योंसे अधिक बुद्धिमान् मानते थे ॥ २९ ॥

तत्पापं सुमहत्कृत्वा प्रतियुध्यस्व भारत ।
कथं हि त्वद्विधो मोहाद्रोचयेत पलायनम् ॥ ३० ॥
उस ही घोर पापका फल भोगनेके लिये आज तुमको हम लोगोंसे युद्ध करना होगा, भारत ! तुम्हारे समान क्षत्रियको युद्ध छोडकर भागना बहुत अनुचित है ॥ ३० ॥

क्व ते तत्पौरुषं यातं क्व च मानः सुयोधन ।
क्व च विक्रान्तता याता क्व च विस्फूर्जितं महत् ॥ ३१ ॥
सुयोधन ! तुम्हारा वह पौरुष कहां चला गया ? तुम्हारा वह अभिमान, तुम्हारा वह पराक्रम और तुम्हारा वह महान् गर्जन कहां गया ? ॥ ३१ ॥

क्व ते कृतास्त्रता याता किं च शेषे जलाशये ।
स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व क्षत्रधर्मेण भारत ॥ ३२ ॥
और तुम्हारी वह शस्त्रविद्या आज कहां गई ? डरसे पानीमें छिपे क्यों सो रहे हो ? भारत ! तुम उठो और क्षत्रिय धर्मके अनुसार हम लोगोंसे युद्ध करो ॥ ३२ ॥

अस्मान्वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ।
अथ वा निहतोऽस्माभिर्भूमौ स्वप्स्यसि भारत ॥ ३३ ॥

हे भारत ! हम लोगोंको जीतकर इस पृथ्वीके स्वामी बनो अथवा लडकर हमारेसे मारे जाकर पृथ्वीमें शयन करो ॥ ३३ ॥

एष ते प्रथमो धर्मः सृष्टो धात्रा महात्मना ।
तं कुरुष्व यथातथ्यं राजा भव महारथ ॥ ३४ ॥

हे महारथी ! ब्रह्माने तुम्हारा यही उत्तम धर्म बनाया है, तुम अपने धर्मका पालन करो और हम लोगोंको मारकर जगत्के राजा बनो ॥ ३४ ॥

दुर्योधन उवाच

नैतच्चित्रं महाराज यद्भीः प्राणिनमाविशेत् ।
न च प्राणभयाद्भीतो व्यपयातोऽस्मि भारत ॥ ३५ ॥

दुर्योधन बोले— हे पृथ्वीनाथ ! हे भारत ! मनुष्योंके मनमें भय उत्पन्न हो यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है । भय होना मनुष्योंका स्वाभाविक धर्म है, परन्तु मुझे वह प्राणोंका भय भी नहीं है अर्थात् मैं किसी समय किसीसे नहीं डरता । मैं इसलिये भागकर यहां नहीं आया हूं ॥ ३५ ॥

अरथश्चानिषङ्गी च निहतः पार्ष्णिसारथिः ।
एकश्चाप्यगणः संख्ये प्रत्याश्वासमरोचयम् ॥ ३६ ॥

मेरा रथ टूट गया, धनुष–तूणीर नष्ट हो गया, सारथि और पृष्ठभागकी रक्षा करनेवाले मर गए, कोई साथी न रहा, सेना नष्ट हो गयी और युद्धभूमिमें मैं अकेला ही रह गया, तब थोडासा सांस लेनेके लिये आरामके लिये— इस इच्छासे इस जलमें आया था ॥ ३६ ॥

न प्राणहेतोर्न भयान्न विषादाद्विशां पते ।
इदमम्भः प्रविष्टोऽस्मि श्रमात्त्विदमनुष्ठितम् ॥ ३७ ॥

पृथ्वीपते ! मैंने अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये, तुम्हारे भयसे, मरनेके डरसे, या किसी शोकसे जलमें प्रवेश नहीं किया है, वरन् युद्ध करते बहुत थक गये थे, इसी कारण ही मैंने ऐसा किया ॥ ३७ ॥

त्वं चाश्वसिहि कौन्तेय ये चाप्यनुगतास्तव ।
अहमुत्थाय वः सर्वान्प्रतियोत्स्यामि संयुगे ॥ ३८ ॥

हे कौन्तेय ! अब तुम और तुम्हारे सब साथी थोडा आराम करके सावधान हो जाओ, मैं जलसे निकलकर तुम सबके साथ युद्ध करूंगा ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आश्वस्ता एव सर्वे स्म चिरं त्वां मृगयामहे ।
तदिदानीं समुत्तिष्ठ युध्यस्वेह सुयोधन ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिर बोले– सुयोधन ! हम सब विश्राम लेकर सावधान हैं और बहुत समयसे तुम्हें ढूंढ रहे हैं, इसलिये अब तुम उठो और यहीं युद्ध करो ॥ ३९ ॥

हत्वा वा समरे पार्थान्स्फीतं राज्यमवाप्नुहि ।
निहतो वा रणेऽस्माभिर्वीरलोकमवाप्स्यसि ॥ ४० ॥

समरमें हम सब पाण्डव लोगोंको मारकर इस वैभवशाली जगत्का राज्य करो । अथवा हम लोगोंके हाथसे मरकर वीर लोकको जाओ ॥ ४० ॥

दुर्योधन उवाच

यदर्थं राज्यमिच्छामि कुरूणां कुरुनन्दन ।
त इमे निहताः सर्वे भ्रातरो मे जनेश्वर ॥ ४१ ॥

दुर्योधन बोले– हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! मैं जिन लोगोंके लिये कौरवोंका राज्य करना चाहता था, वे मेरे सब भाई मरे हुए पृथ्वीमें सोते हैं ॥ ४१ ॥

क्षीणरत्नां च पृथिवीं हतक्षत्रियपुंगवाम् ।
नाभ्युत्सहाम्यहं भोक्तुं विधवामिव योषितम् ॥ ४२ ॥

और भी जगत्के उत्तम क्षत्रिय नष्ट हो गये, पृथ्वी रत्नोंसे हीन हो गई, अब विधवा स्त्रीके समान मैं इसको नहीं भोगना चाहता ॥ ४२ ॥

अद्यापि त्वहमाशंसे त्वां विजेतुं युधिष्ठिर ।
भङ्क्त्वा पाञ्चालपाण्डूनामुत्साहं भरतर्षभ ॥ ४३ ॥

युधिष्ठिर ! भरतर्षभ ! आज भी पाञ्चाल और पाण्डवोंका उत्साह तोडनेके लिये मैं अब भी तुम्हें जीतनेका साहस करता हूं ॥ ४३ ॥

न त्विदानीमहं मन्ये कार्यं युद्धेन कर्हिचित् ।
द्रोणे कर्णे च संशान्ते निहते च पितामहे ॥ ४४ ॥

द्रोणाचार्य और कर्ण शान्त हो गये, भीष्मपितामह मारे गये, इसलिये अब मुझे युद्ध करनेसे कुछ लाभ नहीं है ऐसी मेरी राय है ॥ ४४ ॥

अस्त्विदानीमियं राजन्केवला पृथिवी तव ।
असहायो हि को राजा राज्यमिच्छेत्प्रशासितुम् ॥ ४५ ॥

राजन् ! ऐसा कौन मूर्ख राजा होगा जो अपने सब सहायकोंका नाश कराके राज्य करनेकी इच्छा करे ? इसलिए अब यह रत्नहीन पृथ्वी तुम्हारी ही रहे ॥ ४५ ॥

*

सुहृदस्तादृशान्हित्वा पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄनपि ।
भवद्भिश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः ॥ ४६ ॥

जगत्में ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो मित्र, पुत्र, भाई और पिताओंका नाश कराके और तुम लोगोंसे राज्यका अपहरण होनेपर जीनेकी इच्छा करे ? विशेषकर मेरे समान वीर; अब मुझे जीनेकी कुछ इच्छा नहीं ॥ ४६ ॥

अहं वनं गमिष्यामि ह्यजिनैः प्रतिवासितः ।
रतिर्हि नास्ति मे राज्ये हतपक्षस्य भारत ॥ ४७ ॥

भारत ! मैं हरिनका चमडा ओढकर वनको चला जाऊंगा । मेरे पक्षके लोगोंके मारे जानेसे मुझे इस राज्यसे बिलकुल प्रेम नहीं है ॥ ४७ ॥

हतबान्धवभूयिष्ठा हताश्वा हतकुञ्जरा ।
एषा ते पृथिवी राजन्भुङ्क्ष्वैनां विगतज्वरः ॥ ४८ ॥

यह क्षत्रिय बन्धु-बान्धव, घोडों और हाथीसे रहित पृथ्वी अब तुम्हारी हो, हे राजन् ! तुम अपनी इच्छानुसार निश्चित होकर वीर और रत्नोंसे रहित पृथ्वीका राज्य करो ॥ ४८ ॥

वनमेव गमिष्यामि वसानो मृगचर्मणी ।
न हि मे निर्जितस्यास्ति जीवितेऽद्य स्पृहा विभो ॥ ४९ ॥

प्रभो ! मैं दो मृगचर्म धारण करके वनमें जाऊंगा, मैं स्वजनरहित होकर जीनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ४९ ॥

गच्छ त्वं भुङ्क्ष्व राजेन्द्र पृथिवीं निहतेश्वराम् ।
हतयोधां नष्टरत्नां क्षीणवप्रां यथासुखम् ॥ ५० ॥

राजेन्द्र ! तुम जाओ, जिसका स्वामी नष्ट हो गया है, वीर और रत्न नष्ट हो गये हैं, उस पृथ्वीका सुखसे उपभोग करो, कारण तुम क्षीणवृत्तिके हो गये थे ॥ ५० ॥

युधिष्ठिर उवाच

आर्तप्रलापान्मा तात सलिलस्थः प्रभाषथाः ।
नैतन्मनसि मे राजन्वाशितं शकुनेरिव ॥ ५१ ॥

युधिष्ठिर बोले- हे तात ! अब पानीमें रहकर इस वृथा रोनेसे कुछ फल न होगा । राजन् ! जैसी शकुनिके मनमें छलसे पाण्डवोंका राज्य छीननेकी इच्छा थी वैसी मेरे मनमें नहीं है । पक्षियोंके कलरवके समान यह तुम्हारी बात मेरे मनमें कुछ अर्थ नहीं बताती ॥ ५१ ॥

यदि चापि समर्थः स्यास्त्वं दानाय सुयोधन ।
नाहमिच्छेयमवनिं त्वया दत्तां प्रशासितुम् ॥ ५२ ॥

सुयोधन ! यदि तुम इसे देनेमें अत्यन्त समर्थ भी होते तो भी मैं तुम्हारा दिया हुआ इस पृथ्वीका राज्य चलाना नहीं चाहता ॥ ५२ ॥

अधर्मेण न गृह्णीयां त्वया दत्तां महीमिमाम्।
न हि धर्मः स्मृतो राजन्क्षत्रियस्य प्रतिग्रहः ॥ ५३ ॥

राजन्! तुमने दी हुई इस पृथ्वीको मैं अधर्मसे नहीं लूंगा; कुछ भी दान लेना क्षत्रियका धर्म नहीं है ॥ ५३ ॥

त्वया दत्तां न चेच्छेयं पृथिवीमखिलामहम्।
त्वां तु युद्धे विनिर्जित्य भोक्तास्मि वसुधामिमाम् ॥ ५४ ॥

सम्पूर्ण पृथ्वी तुमने दे दी तो भी वह लेना मैं नहीं चाहता, परंतु युद्धमें तुम्हें जीतकर ही इस पृथ्वीका उपभोग करूंगा ॥ ५४ ॥

अनीश्वरश्च पृथिवीं कथं त्वं दातुमिच्छसि।
त्वयेयं पृथिवी राजन्किं न दत्ता तदैव हि ॥ ५५ ॥

अब तुम स्वयं पृथ्वीके स्वामी नहीं हो, इसलिये तुम्हें देनेका भी कुछ अधिकार नहीं फिर इसका दान करनेकी कैसे इच्छा करते हो? राजन्! उसी समय ही तुमने यह पृथ्वी क्यों नहीं दे दी? ॥ ५५ ॥

धर्मतो याचमानानां शमार्थं च कुलस्य नः।
वार्ष्णेयं प्रथमं राजन्प्रत्याख्याय महाबलम् ॥ ५६ ॥

जब तुम समर्थ थे, और हम लोग कुलकी शान्तिके लिये पहले धर्मसे अपना आधा राज्य मांगते थे, तभी तुमने हमें क्यों नहीं दिया था? राजन्! महाबलवान् श्रीकृष्णका पहले निरादर करके ॥ ५६ ॥

किमिदानीं ददासि त्वं को हि ते चित्तविभ्रमः।
अभियुक्तस्तु को राजा दातुमिच्छेद्धि मेदिनीम् ॥ ५७ ॥

अब तुम हमको राज्य देना कहते हो, यह तुम कैसी भूलकी बात कहते हो? कौन ऐसा राजा होगा जो समर्थ होकर अपना राज्य दूसरेको देनेकी इच्छा करे? ॥ ५७ ॥

न त्वमद्य महीं दातुमीशः कौरवनन्दन।
आच्छेत्तुं वा बलाद्राजन्स कथं दातुमिच्छसि।
मां तु निर्जित्य संग्रामे पालयेमां वसुंधराम् ॥ ५८ ॥

हे कौरवनन्दन राजन्! तुम तो इस समय पृथ्वी देने और बलपूर्वक अपने वशमें रखनेको समर्थ नहीं है। इस अवस्थामें तुम पृथ्वी दान देनेकी इच्छा कैसे रखते हो? मुझे युद्धमें जीतकर इस पृथ्वीका पालन करो ॥ ५८ ॥

सूच्यग्रेणापि यद्भूमेरपि ध्रीयेत भारत ।
तन्मात्रमपि नो मह्यं न ददाति पुरा भवान् ॥ ५९ ॥

भारत ! तुमने श्रीकृष्णसे पहले कहा था की मैं सुईके नोकेके समान पृथ्वी विना युद्धके युधिष्ठिरको न दूंगा ॥ ५९ ॥

स कथं पृथिवीमेतां प्रददासि विशां पते ।
सूच्यग्रं नात्यजः पूर्वं स कथं त्यजसि क्षितिम् ॥ ६० ॥

पृथ्वीपते ! सो तुम पहिले आज सब पृथ्वी मुझे क्यों देते हो ? तुम पहिले सुईके नोकेके समान पृथ्वी नहीं छोडना चाहते थे, सो आज सब पृथ्वी छोडनेकी क्यों इच्छा करते हो ? ॥ ६० ॥

एवमैश्वर्यमासाद्य प्रशास्य पृथिवीमिमाम् ।
को हि मूढो व्यवस्येत शत्रोर्दातुं वसुंधराम् ॥ ६१ ॥

ऐसा वैभव पाकर इस पृथ्वीका प्रशासन करके, ऐसा कौन मूर्ख राजा होगा जो अपने जीते जी अपने शत्रुको राज्य देना चाहेगा ? ॥ ६१ ॥

त्वं तु केवलमौर्ख्येण विमूढो नावबुध्यसे ।
पृथिवीं दातुकामोऽपि जीवितेनाद्य मोक्ष्यसे ॥ ६२ ॥

परन्तु तुम मूर्ख हो, अपनी मूर्खतासे विवेकशून्य होकर बक बक करते हो, परंतु यह नहीं जानते कि पृथ्वीका दान करनेकी इच्छा करनेपर भी तुमको अपने प्राणोंसे खो बैठना होगा ॥ ६२ ॥

अस्मान्वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ।
अथ वा निहतोऽस्माभिर्व्रज लोकाननुत्तमान् ॥ ६३ ॥

अथवा अब तुम हम लोगोंको पराजित करके इस पृथ्वीका राज्य करो। अथवा हमारे हाथसे मरकर उत्तम स्वर्गलोकको जाओ ॥ ६३ ॥

आवयोर्जीवतो राजन्मयि च त्वयि च ध्रुवम् ।
संशयः सर्वभूतानां विजये नो भविष्यति ॥ ६४ ॥

राजन् ! हमारे और तुम्हारे दोनोंके जीनेसे लोगोंको यह सन्देह बना रहेगा, कि इस युद्धमें न जाने किसकी विजय हुई ॥ ६४ ॥

जीवितं तव दुष्प्रज्ञ मयि संप्रति वर्तते ।
जीवयेयं त्वहं कामं न तु त्वं जीवितुं क्षमः ॥ ६५ ॥

रे मूर्ख ! तुम्हारा जीना इस समय हमारे हाथमें है । हम अपनी इच्छासे जी सकते हैं । हम हमारी इच्छासे तुम्हें जीवित रख सकते हैं, परन्तु तुम अपनी इच्छासे जीवित रहनेमें असमर्थ हो ॥ ६५ ॥

दहने हि कृतो यत्नस्त्वयास्मासु विशेषतः ।
आशीविषैर्विषैश्चापि जले चापि प्रवेशनैः ।
त्वया विनिकृता राजन्राज्यस्य हरणेन च ॥ ६६ ॥

तुमने हम लोगोंको मारनेके लिये घरमें आग लगाकर विशेष प्रयत्न किया, भीमको विषधर सांपसे कटवाया और विष खिलाकर उन्हें पानीमें भी डुबाया, राजन् ! छलसे हमारा राज्य छीन लिया ॥ ६६ ॥

एतस्मात्कारणात्पाप जीवितं ते न विद्यते ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ युध्यस्व तत्ते श्रेयो भविष्यति ॥ ६७ ॥

हे पापी ! इन सब अप्रिय कामोंसे अब मैं तुझे जीता न छोडूंगा । इसलिये उठो, उठो और युद्ध करो, युद्धहीसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ६७ ॥

संजय उवाच

एवं तु विविधा वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः ।
कीर्तयन्ति स्म ते वीरास्तत्र तत्र जनाधिप ॥ ६८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ १६४२ ॥

संजय बोले— हे जनेश्वर ! विजयी युधिष्ठिरने और सब पाण्डव वीरोंने भी दुर्योधनको बार बार ऐसी अनेक कठोर बातें कहीं ॥ ६८ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें त्रीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ १६४२ ॥

: ३१ :

धृतराष्ट्र उवाच

एवं संतर्ज्यमानस्तु मम पुत्रो महीपतिः ।
प्रकृत्या मन्युमान्वीरः कथमासीत्परंतपः ॥ १ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले— हे सञ्जय ! शत्रुतापन हमारे वीर पुत्र राजा दुर्योधन स्वभावहीसे महाक्रोधी थे । उन्होंने युधिष्ठिरके ऐसे कठोर वचन सुनके क्या कहा ? ॥ १ ॥

न हि संतर्जना तेन श्रुतपूर्वा कदाचन ।
राजभावेन मान्यश्च सर्वलोकस्य सोऽभवत् ॥ २ ॥

उन्होंने इससे पहिले, किसीके कठोर वचन कभी भी नहीं सुने थे, सब जगत्का महाराज होनेके कारण वह सब लोगोंसे पूजित थे ॥ २ ॥

इयं च पृथिवी सर्वा सम्लेच्छाटविका भृशम् ।
प्रसादाद्ध्रियते यस्य प्रत्यक्षं तव संजय ॥ ३ ॥

संजय ! तुमने तो प्रत्यक्ष देखा था कि उसकी कृपासे म्लेच्छों और वननिवासियोंके सहित यह सारी पृथ्वी स्थिर थी ॥ ३ ॥

स तथा तर्ज्यमानस्तु पाण्डुपुत्रैर्विशेषतः ।
विहीनश्च स्वकैर्भृत्यैर्निर्जने चावृतो भृशम् ॥ ४ ॥

उस समय वे ऐसी आपत्तिमें पडे थे, कि एक सेवक भी उनके सङ्ग न था और एकान्त स्थानमें घिर गये थे। इस स्थितिमें विशेष करके पाण्डवोंने जब उसे ऐसे कठोर वचन कहे ॥ ४ ॥

श्रुत्वा स कटुका वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः ।
किमब्रवीत्पाण्डवेयांस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ५ ॥

तब उस मेरे पुत्रने शत्रुओंके विजयभरे कठोर वचन बार बार सुनके कैसे सहे ? और उसने पाण्डवोंसे क्या कहा ? ॥ ५ ॥

संजय उवाच

तर्ज्यमानस्तदा राजन्नुदकस्थस्तवात्मजः ।
युधिष्ठिरेण राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितेन ह ॥ ६ ॥

संजय बोले– हे राजन् ! राजेन्द्र ! उस समय भाईयोंके सहित युधिष्ठिरने जब इस प्रकार उसकी निर्भत्सना की, तब जलमें स्थित तुम्हारे पुत्रने ॥ ६ ॥

श्रुत्वा स कटुका वाचो विषमस्थो जनाधिपः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य सलिलस्थः पुनः पुनः ॥ ७ ॥

उन कठोर वचनोंको सुनकर गरम लंबी श्वास छोडी। राजा विकट परिस्थितिमें था और पानीमें स्थित था; वह बार बार लंबी श्वास लेता रहा ॥ ७ ॥

सलिलान्तर्गतो राजा धुन्वन्हस्तौ पुनः पुनः ।
मनश्चकार युद्धाय राजानं चाभ्यभाषत ॥ ८ ॥

राजा दुर्योधनने जलमें ही अनेक बार दोनों हाथ पटकते हुए मनमें युद्ध करनेकी इच्छा करने लगे और राजा युधिष्ठिरसे ऐसा वचन बोले ॥ ८ ॥

यूयं ससुहृदः पार्थाः सर्वे सरथवाहनाः ।
अहमेकः परिद्यूनो विरथो हतवाहनः ॥ ९ ॥

आप सब पाण्डव लोग रथ, वाहन और सहायक मित्रोंके सहित हैं, मैं अकेला थका हुआ रथहीन और वाहनरहित हूं ॥ ९ ॥

आत्तशस्त्रै रथगतैर्बहुभिः परिवारितः ।
कथमेकः पदातिः सन्नशस्त्रो योद्धुमुत्सहे ॥ १० ॥

सो रथोंमें बैठे शस्त्रसहित अनेक वीरोंसे मैं घिरा गया हूं । फिर मैं अकेला शस्त्र रहित, पैदल, घावोंसे व्याकुल होकर तुम्हारे साथ किस प्रकार युद्ध करूंगा ॥ १० ॥

एकैकेन तु मां यूयं योधयध्वं युधिष्ठिर ।
न ह्येको बहुभिर्वीरैर्न्याय्यं योधयितुं युधि ॥ ११ ॥

हे राजन् युधिष्ठिर ! धर्मसे एक एकके सङ्ग युद्ध करनेसे कुछ भय नहीं करता, परन्तु अकेलेसे अनेक वीरोंके सहित युद्ध करनेके लिये उद्युक्त करना अधर्म है न्याय्य नहीं है ॥ ११ ॥

विशेषतो विकवचः श्रान्तश्चापः समाश्रितः ।
भृशं विक्षतगात्रश्च श्रान्तवाहनसैनिकः ॥ १२ ॥

विशेष करके जिसके शरीरपर कवच नहीं है, थका हुआ, विपत्तिमें पडा हुआ और घावोंसे अत्यन्त पीडित हो और जिसके वाहन और सैनिक थके हुए हैं, उसे युद्ध करनेके लिये कहना योग्य नहीं है ॥ १२ ॥

न मे त्वत्तो भयं राजन्न च पार्थाद्वृकोदरात् ।
फल्गुनाद्वासुदेवाद्वा पाञ्चालेभ्योऽथ वा पुनः ॥ १३ ॥

राजन् ! मैं तुमसे, कुन्तीपुत्र भीमसेनसे, अर्जुनसे, श्रीकृष्णसे, नकुलसे, सहदेवसे, धृष्टद्युम्नसे, अथवा सब पाञ्चालोंसे डरता नहीं ॥ १३ ॥

यमाभ्यां युयुधानाद्वा ये चान्ये तव सैनिकाः ।
एकः सर्वानहं क्रुद्धो न तान्योद्धुमिहोत्सहे ॥ १४ ॥

और सात्यकि आदि सब वीरोंसे भी कुछ नहीं डरता, मैं अकेला ही क्रोधित हुआ उन सबके साथ युद्ध करना नहीं चाहता हूं ॥ १४ ॥

धर्ममूला सतां कीर्तिर्मनुष्याणां जनाधिप ।
धर्मं चैवेह कीर्तिं च पालयन्प्रब्रवीम्यहम् ॥ १५ ॥

महाराज ! परन्तु जगत्में सज्जनोंकी कीर्तिका मूल धर्म ही है, यहां उस धर्म और कीर्तिका पालन करनेवाला मैं यह सब कह रहा हूं ॥ १५ ॥

अहमुत्थाय वः सर्वान्प्रतियोत्स्यामि संयुगे ।
अन्वंशाभ्यागतान्सर्वानृतून्संवत्सरो यथा ॥ १६ ॥

जैसे वर्ष बारी बारीसे आये हुए सब ऋतुओंको नांघ जाता है, ऐसे ही मैं उठकर युद्धमें एक एक करके आये हुए सब तुम लोगोंके साथ युद्ध करूंगा ॥ १६ ॥

अद्य वः सरथान्साश्वानशस्त्रो विरथोऽपि सन् ।
नक्षत्राणीव सर्वाणि सविता रात्रिसंक्षये ।
तेजसा नाशयिष्यामि स्थिरीभवत पाण्डवाः　　॥ १७ ॥

जैसे रात्रिके अन्तमें प्रातःकाल अकेला सूर्य अपने तेजसे सब तारोंको छिपा देता है, ऐसे ही आज मैं अकेला रथ और शस्त्रोंसे हीन होनेपर भी, घोडों और रथोंपर चढकर आये हुए तुम्हारा सबका नाश करूंगा। हे पाण्डवो ! तुम लोग स्थिर और सावधान हो जाओ ॥१७॥

अद्यानृण्यं गमिष्यामि क्षत्रियाणां यशस्विनाम् ।
बाह्लीकद्रोणभीष्माणां कर्णस्य च महात्मनः　　॥ १८ ॥

आज मैं महायशस्वी क्षत्रियोंके ऋणसे उऋण हो जाऊंगा। बाह्लीक, द्रोणाचार्य, भीष्म, महात्मा कर्ण ॥ १८ ॥

जयद्रथस्य शूरस्य भगदत्तस्य चोभयोः ।
मद्रराजस्य शल्यस्य भूरिश्रवस एव च　　॥ १९ ॥

वीर जयद्रथ, वीर भगदत्त, मद्रराज शल्य, और भूरिश्रवा ॥ १९ ॥

पुत्राणां भरतश्रेष्ठ शकुनेः सौबलस्य च ।
मित्राणां सुहृदां चैव बान्धवानां तथैव च　　॥ २० ॥
आनृण्यमद्य गच्छामि हत्वा त्वां भ्रातृभिः सह ।
एतावदुक्त्वा वचनं विरराम जनाधिपः　　॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अपने पुत्र, सुबलपुत्र शकुनि आदि अपने मित्रों, सुहृदों और बान्धवोंके ऋणसे तुम्हें भाई-बान्धवोंके सहित मारकर ! ऐसा वचन कहकर महाराज चुप हो गए ॥ २०-२१ ॥

युधिष्ठिर उवाच

दिष्ट्या त्वमपि जानीषे क्षत्रधर्मं सुयोधन ।
दिष्ट्या ते वर्तते बुद्धिर्युद्धायैव महाभुज　　॥ २२ ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले- हे सुयोधन महाबाहो ! प्रारब्धहीसे तुम भी क्षत्रिय धर्मको जानते हो, प्रारब्धहीसे तुम युद्धके लिये विचार करके उपस्थित हुए हो ॥ २२ ॥

दिष्ट्या शूरोऽसि कौरव्य दिष्ट्या जानासि संगरम् ।
यस्त्वमेको हि नः सर्वान्संयुगे योद्धुमिच्छसि　　॥ २३ ॥

प्रारब्धहीसे तुम शूरवीर हो और युद्ध करना जानते हो, यह आनन्दकी बात है। तुम्हे धन्य है जो तुम अकेले ही हम सबसे युद्ध करनेको उपस्थित हो गए ॥ २३ ॥

एक एकेन संगम्य यत्ते संमतमायुधम् ।
तत्त्वमादाय युध्यस्व प्रेक्षकास्ते वयं स्थिताः ॥ २४ ॥

अब हम तुम्हारी इच्छानुसार तुम्हें एक वरदान देते हैं । जो तुम्हारी इच्छा हो सो शस्त्र ले लो । और हम सबमेंसे जिस एक एक वीरके सङ्गमें तुम्हारी इच्छा हो उससे युद्ध करो और हम सब लोग युद्ध देखेंगे, कोई लडेगा नहीं ॥ २४ ॥

अयमिष्टं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम् ।
हत्वैकं भवतो राज्यं हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ॥ २५ ॥

और भी हम स्वयं अभीष्ट वरदान देते हैं कि हम पांचोमेंसे एकको मारनेसे भी तुम्हें सारा राज्य मिलेगा अथवा मारे गये तो स्वर्ग मिलेगा ॥ २५ ॥

दुर्योधन उवाच

एकश्चेद्योद्धुमाक्रन्दे वरोऽद्य मम दीयते ।
आयुधानामियं चापि वृता त्वत्संमते गदा ॥ २६ ॥

दुर्योधन बोले– आपने जो कहा हम वही स्वीकार करते हैं । इस महायुद्धमें आज मेरे साथ लडनेके लिये किसी भी एक श्रेष्ठ वीरको दीजिये। शस्त्र हमारे पास गदा है, आपकी सम्मती हो तो हम इसीसे युद्ध करना पसंद करते हैं ॥ २६ ॥

भ्रातॄणां भवतामेकः शक्यं मां योऽभिमन्यते ।
पदातिर्गदया संख्ये स युध्यतु मया सह ॥ २७ ॥

अब तुम सब भाइयोंमेंसे जो एक गदायुद्ध जानता हो और जो मुझ अकेलेको जीतना चाहते हों, सो गदा लेकर युद्धभूमिमें हमसे पैदल गदायुद्ध करें ॥ २७ ॥

वृत्तानि रथयुद्धानि विचित्राणि पदे पदे ।
इदमेकं गदायुद्धं भवत्वद्याद्भुतं महत् ॥ २८ ॥

रथोंमें बैठकर अनेक विचित्र युद्ध किए, अब आज यह आपकी आज्ञासे घोर अद्भुत गदायुद्ध भी हो जाय ॥ २८ ॥

अन्नानामपि पर्यायं कर्तुमिच्छन्ति मानवाः ।
युद्धानामपि पर्यायो भवत्वनुमते तव ॥ २९ ॥

मनुष्य क्रमसे अन्नका प्रयोग करना चाहते हैं, परंतु तुम्हारी अनुमतिसे युद्धका भी आज वैसा ही क्रमशः प्रयोग होवें ॥ २९ ॥

गदया त्वां महाबाहो विजेष्यामि सहानुजम् ।
पाञ्चालान्सृञ्जयांश्चैव ये चान्ये तव सैनिकाः ॥ ३० ॥

महाबाहो मैं केवल गदाहीसे भाइयोंके सहित तुमको, पाञ्चालों और सृञ्जयोंको और तुम्हारे सब अन्य सैनिकोंको भी जीत लूंगा ॥ ३० ॥

*

युधिष्ठिर उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारे मां योधय सुयोधन ।
एक एकेन संगम्य संयुगे गदया बली ॥ ३१ ॥
पुरुषो भव गान्धारे युध्यस्व सुसमाहितः ।
अद्य ते जीवितं नास्ति यद्यपि त्वं मनोजवः ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे गान्धारीपुत्र सुयोधन ! उठो, उठो और मेरे साथ युद्ध करो। तुम बलवान् हो। युद्धमें गदासे अकेले एक एककी साथ भिडकर, अपने पुरुषत्वका प्रभाव दिखाओ। तत्पर होकर युद्ध करो। आज यदि तुम प्रत्यक्ष हनुमान् होवे तो भी तुम जीते नहीं बचोगे ॥ ३१–३२ ॥

सञ्जय उवाच

एतत्स नरशार्दूलो नामृष्यत तवात्मजः ।
सलिलान्तर्गतः श्वभ्रे महानाग इव श्वसन् ॥ ३३ ॥

सञ्जय बोले– युधिष्ठिरके इन कटु वचनोंको तुम्हारा पुत्र पुरुषसिंह दुर्योधन सह नहीं सके और भीतरसे ही बिलमें बैठे हुए महानागके समान लंबी श्वांस लेने लगे ॥ ३३ ॥

तथासौ वाक्प्रतोदेन तुद्यमानः पुनः पुनः ।
वाचं न ममृषे धीमानुत्तमाश्वः कशामिव ॥ ३४ ॥

राजन् ! जैसे उत्तम घोडा कोडेकी मार नहीं सह सकता, ऐसे ही युधिष्ठिरके कडवे वचन-रूपी चाबुकसे बार बार पीडित हुए दुर्योधन उसको न सह सके ॥ ३४ ॥

संक्षोभ्य सलिलं वेगाद्गदामादाय वीर्यवान् ।
अद्रिसारमयीं गुर्वीं काञ्चनाङ्गदभूषणाम् ।
अन्तर्जलात्समुत्तस्थौ नागेन्द्र इव निःश्वसन् ॥ ३५ ॥

तब वेगसे सब पानीको उथल पुथल करके सोनेसे जडी लोहेकी बनी हुई भारी दृढ गदा हाथमें लेकर वह वीर पानीके भीतरसे उठे और सर्पराजके समान लंबी श्वांस खींचने लगे ॥ ३५ ॥

स भित्त्वा स्तम्भितं तोयं स्कन्धे कृत्वायसीं गदाम् ।
उदतिष्ठत पुत्रस्ते प्रतपन्रश्मिमानिव ॥ ३६ ॥

कंधेपर लोहेकी गदा रखकर मायासे स्तम्भित किए हुए पानीको छोडकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन दोपहरके तप्त सूर्यके समान खडे हो गये ॥ ३६ ॥

ततः शैक्यायसीं गुर्वीं जातरूपपरिष्कृताम् ।
गदां परामृशद्धीमान्धार्तराष्ट्रो महाबलः ॥ ३७ ॥

तदनन्तर महाबलवान् बुद्धिमान् दुर्योधनने लोहेकी बनी हुई सोनेसे जडी भारी गदा हाथमें ली ॥ ३७ ॥

गदाहस्तं तु तं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम् ।
प्रजानामिव संक्रुद्धं शूलपाणिमवस्थितम् ।
सगदो भारतो भाति प्रतपन्भास्करो यथा ॥ ३८ ॥

उस समय गदाधारी दुर्योधनका शरीर ऐसा दीखता था, जैसे सिखरके सहित पर्वत और प्रजाओंपर क्रुद्ध स्थित हुए रुद्रदेव। तपते हुए सूर्यके समान वह गदाधारी भरतवंशी प्रकाशमान् हो रहा था ॥ ३८ ॥

तमुत्तीर्णं महाबाहुं गदाहस्तमरिंदमम् ।
मेनिरे सर्वभूतानि दण्डहस्तमिवान्तकम् ॥ ३९ ॥

महाबाहु शत्रुनाशन गदाधारी दुर्योधनको पानीमेंसे निकला हुआ देखकर सब लोग दण्डधारी यमराज आये हैं ऐसा मानने लगे ॥ ३९ ॥

वज्रहस्तं यथा शक्रं शूलहस्तं यथा हरम् ।
ददृशुः सर्वपाञ्चालाः पुत्रं तव जनाधिप ॥ ४० ॥

जनेश्वर ! सब पाञ्चाल तुम्हारे पुत्रको वज्रधारी इन्द्र और त्रिशूलधारी शिवके समान देखने लगे ॥ ४० ॥

तमुत्तीर्णं तु संप्रेक्ष्य समहृष्यन्त सर्वशः ।
पाञ्चालाः पाण्डवेयाश्च तेऽन्योन्यस्य तलान्ददुः ॥ ४१ ॥

उनको पानीसे बाहर आकर अकेले खडा देख सब पाञ्चाल और पाण्डव ताली देकर आनन्दित हो गये ॥ ४१ ॥

अवहासं तु तं मत्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
उद्वृत्य नयने क्रुद्धो दिधक्षुरिव पाण्डवान् ॥ ४२ ॥

तुम्हारे पुत्र दुर्योधन उस हंसीको अपना उपहार समझकर, क्रोधित होकर नेत्र फैलाकर देखने लगे मानो पाण्डवोंको जलाकर भस्म कर देंगे ॥ ४२ ॥

त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा संदष्टदशनच्छदः ।
प्रत्युवाच ततस्तान्वै पाण्डवान्सहकेशवान् ॥ ४३ ॥

फिर उन्होंने दांत चबाकर तीन जगह भौंह टेढी करके श्रीकृष्ण और पाण्डवोंसे बोले ॥ ४३ ॥

अवहासस्य वोऽस्याद्य प्रतिवक्तास्मि पाण्डवाः ।
गमिष्यथ हताः सद्यः सपाञ्चाला यमक्षयम् ॥ ४४ ॥

अरे पाण्डवो आज ही इस हंसीका उत्तर तुमको मैं देनेवाला हूं । मुझसे पाञ्चालोंके सहित मारे जाकर तत्काल स्वर्गको जाओ ॥ ४४ ॥

उत्थितस्तु जलात्तस्मात्पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अतिष्ठत गदापाणी रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४५ ॥

उस पानीसे निकलकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन हाथमें गदा लेकर खडे हो गये । उस समय वह रुधिरमें भीगे हुए थे ॥ ४५ ॥

तस्य शोणितदिग्धस्य सलिलेन समुक्षितम् ।
शरीरं स्म तदा भाति स्रवन्निव महीधरः ॥ ४६ ॥

रुधिरसे खूब भरे और पानीमें भीगे हुए दुर्योधनका शरीर उस समय ऐसा दीखता था, जैसे झरनोंके सहित पर्वत ॥ ४६ ॥

तमुद्यतगदं वीरं मेनिरे तत्र पाण्डवाः ।
वैवस्वतमिव क्रुद्धं किंकरोद्यतपाणिनम् ॥ ४७ ॥

वहां उस समय पाण्डवोंने हाथमें गदा उठाये हुए वीर दुर्योधनको क्रोधमें भरे दण्डधारी यमराजके समान माना ॥ ४७ ॥

स मेघनिनदो हर्षान्नदन्निव च गोवृषः ।
आजुहाव ततः पार्थान्गदया युधि वीर्यवान् ॥ ४८ ॥

मतवाले बैलके समान नाचते हुए, मेघके समान गर्जते हुए वीर दुर्योधन गदायुद्धके लिये आनंदित होकर पाण्डवोंको ललकारने लगे ॥ ४८ ॥

दुर्योधन उवाच

एकैकेन च मां यूयमासीदत युधिष्ठिर ।
न ह्येको बहुभिर्न्याय्यो वीरो योधयितुं युधि ॥ ४९ ॥

दुर्योधन बोले– हे युधिष्ठिर ! अब तुम लोग एक एक मुझसे युद्ध करनेको चले आओ, क्योंकि धर्मके अनुसार एक वीरको अनेक वीरोंके साथ युद्ध करनेके लिये कहना योग्य नहीं है ॥४९॥

न्यस्तवर्मा विशेषेण श्रान्तश्चाप्सु परिप्लुतः ।
भृशं विक्षतगात्रश्च हतवाहनसैनिकः ॥ ५० ॥

विशेष करके जिसने अपना कवच उतार दिया है, जो थका हुआ, पानीमें भीगा हुआ हो, जिसका सब शरीर घावोंसे व्याकुल हुआ है और जिसके वाहन और सैनिक मारे गये हैं, ऐसे अकेलेके साथ अनेकोंको युद्ध करना धर्म नहीं है ॥ ५० ॥

युधिष्ठिर उवाच

नाभूदियं तव प्रज्ञा कथमेवं सुयोधन ।
यदाभिमन्युं बहवो जघ्नुर्युधि महारथाः ॥ ५१ ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले– हे सुयोधन ! यह बतलाओ कि जब अभिमन्युको कई महारथियोंने युद्धमें मिलकर मारा था, तब तुम्हारे मनमें ऐसा विचार क्यों नहीं आया ? ॥ ५१ ॥

आमुञ्च कवचं वीर मूर्धजान्यमयस्व च ।
यच्चान्यदपि ते नास्ति तदप्याद्त्स्व भारत ।
इममेकं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम् ॥ ५२ ॥

हे वीर भारत ! जो हो अब तुम कवच पहिनो, अपने बालोंको ठीक करके टोप लगाओ और भी जो सामग्री तुम्हारे पास न हो सो हमसे लो, हम फिर भी एक वरदान तुम्हें देते हैं ॥ ५२ ॥

पञ्चानां पाण्डवेयानां येन योद्धुमिहेच्छसि ।
तं हत्वा वै भवान्राजा हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ।
ऋते च जीविताद्वीर युद्धे किं कुर्म ते प्रियम् ॥ ५३ ॥

हम पांचों पाण्डवोंमेंसे जिसके सङ्ग तुम लडना चाहो, उस एकको ही मारकर तुम राजा बनोगे, अथवा उसके हाथसे स्वयं मारे गये तो स्वर्गको जाओगे। हे वीर ! युद्धमें जीवदानको छोडकर और तुम्हारी कौनसी प्रिय इच्छा हम पूरी कर सकते हैं ? ॥ ५३ ॥

सञ्जय उवाच

ततस्तव सुतो राजन्वर्म जग्राह काञ्चनम् ।
विचित्रं च शिरस्त्राणं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ ५४ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! तब तुम्हारे पुत्रने सोनेका विचित्र कवच पहिना और सोनेका विचित्र शिरस्त्राण धारण किया ॥ ५४ ॥

सोऽवबद्धशिरस्त्राणः शुभकाञ्चनवर्मभृत् ।
रराज राजन्पुत्रस्ते काञ्चनः शैलराडिव ॥ ५५ ॥

राजन् ! शिरस्त्राण धारण किया और उत्तम सोनेका कवच पहना तुम्हारा पुत्र उस समय स्वर्णमय गिरिराज सुमेरु पर्वतके समान दीखने लगा ॥ ५५ ॥

संनद्धः स गदी राजन्सज्जः संग्राममूर्धनि ।
अब्रवीत्पाण्डवान्सर्वान्पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ५६ ॥

राजन् ! तब युद्धके अग्रभागमें सज्ज होकर, कवच धारण किये और गदा हाथमें लिये तुम्हारे पुत्र दुर्योधन सब पाण्डवोंको ऐसा बोले ॥ ५६ ॥

भ्रातॄणां भवतामेको युध्यतां गदया मया ।
सहदेवेन वा योत्स्ये भीमेन नकुलेन वा ॥ ५७ ॥

तुम्हारे भाइयोंमेंसे कोई एक जिसकी इच्छा हो सो गदा लेकर हमसे युद्ध करनेको आवें । मैं चाहे सहदेव, चाहे भीमसेन, चाहे नकुलसे युद्ध करूंगा ॥ ५७ ॥

अथ वा फाल्गुनेनाद्य त्वया वा भरतर्षभ ।
योत्स्येऽहं संगरं प्राप्य विजेष्ये च रणाजिरे ॥ ५८ ॥

भरतर्षभ ! चाहे अर्जुन और चाहे साक्षात् तुमसे ही मैं युद्ध करूंगा । रणभूमिमें आकर मैं किसी एकके साथ युद्ध करूंगा और युद्धमें विजयी हो जाऊंगा ॥ ५८ ॥

अहमद्य गमिष्यामि वैरस्यान्तं सुदुर्गमम् ।
गदया पुरुषव्याघ्र हेमपट्टविनद्धया ॥ ५९ ॥

हे पुरुषसिंह ! आज मैं सोनेकी मढी गदासे युद्ध करके इस दुष्प्राप्य वैरके पार जाऊंगा ॥ ५९ ॥

गदायुद्धे न मे कश्चित्सदृशोऽस्तीति चिन्तय ।
गदया वो हनिष्यामि सर्वानेव समागतान् ।
गृह्णातु स गदां यो वै युध्यतेऽद्य मया सह ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ १७०२ ॥

जगत्में मेरे समान कोई दूसरा गदायुद्ध करनेवाला नहीं है यह समझो; इसलिये मैं तुम सबको सामने आनेपर गदासे मार डालूंगा । आज जो मेरे साथ युद्ध करना चाहता है, वह गदा धारण करें ॥ ६० ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें एकतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ १७०२ ॥

: ३२ :

सञ्जय उवाच

एवं दुर्योधने राजन्गर्जमाने मुहुर्मुहुः ।
युधिष्ठिरस्य संक्रुद्धो वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! दुर्योधनको इस प्रकार बार बार गर्जते देख श्रीकृष्ण क्रुद्ध होकर युधिष्ठिरसे यह बोले ॥ १ ॥

यदि नाम ह्ययं युद्धे वरयेत्त्वां युधिष्ठिर ।
अर्जुनं नकुलं वापि सहदेवमथापि वा ॥ २ ॥

हे युधिष्ठिर ! यदि अब यह तुमसे, अर्जुनसे, नकुलसे या सहदेवसे युद्ध करना चाहे तो क्या होगा ? ॥ २ ॥

किमिदं साहसं राजंस्त्वया व्याहृतमीदृशम् ।
एकमेव निहत्याजौ भव राजा कुरुष्विति ॥ ३ ॥

राजन् ! आपने यह क्यों अविवेकपूर्ण बात कह दी जो दुर्योधनको यह वरदान दिया कि तुम हम पांचोंमेंसे एकको मारकर कौरवोंका राजा बनोगे ॥ ३ ॥

एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश ।
आयसे पुरुषे राजन्भीमसेनजिघांसया ॥ ४ ॥
राजन् ! इसने तेरह वर्षोंतक लोहेके भीमसेन बनाकर उनका वध करनेकी इच्छासे उससे गदायुद्धका अभ्यास किया है ॥ ४ ॥

कथं नाम भवेत्कार्यमस्माभिर्भरतर्षभ ।
साहसं कृतवांस्त्वं तु ह्यनुक्रोशान्नृपोत्तम ॥ ५ ॥
भरतश्रेष्ठ ! तब हम लोगोंकी कार्यसिद्धि कैसे होगी ? हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! तुमने दयाके कारण यह अविवेकी कार्य किया है ॥ ५ ॥

नान्यमस्यानुपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ।
ऋते वृकोदरात्पार्थात्स च नातिकृतश्रमः ॥ ६ ॥
हम इस समयमें कुन्तीपुत्र भीमसेनके सिवाय और दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखते जो दुर्योधनके साथ गदायुद्ध कर सके, फिर भीमसेनने भी अधिक अभ्यास नहीं किया है ॥६॥

तदिदं द्यूतमारब्धं पुनरेव यथा पुरा ।
विषमं शकुनेश्चैव तव चैव विशां पते ॥ ७ ॥
तुमने पहलेके समान ही पुनः यह जुएका खेल शुरू किया है, पृथ्वीपते ! परन्तु तुम्हारा यह द्यूतका खेल शकुनिके जुएसे अनिष्ट है ॥ ७ ॥

बली भीमः समर्थश्च कृती राजा सुयोधनः ।
बलवान्वा कृती वेति कृती राजन्विशिष्यते ॥ ८ ॥
राजन् ! जो हो अब तो भीमसेन बलवान् और समर्थ हैं, परन्तु राजा दुर्योधनने अधिक अभ्यास किया है, बलवान् और अभ्यासी, इनमेंसे अभ्यासी ही बलवान्से सदा तेज रहता है ॥ ८ ॥

सोऽयं राजंस्त्वया शत्रुः समे पथि निवेशितः ।
न्यस्तश्चात्मा सुविषमे कृच्छ्रमापादिता वयम् ॥ ९ ॥
महाराज ! तुमने इस अपने शत्रुको समान मार्गपर रखा है. ऐसे चालाक शत्रुके सङ्गमें तुमने घोर प्रतिज्ञा करके, आप स्वयं आपत्तिमें पडे और हम लोगोंको भी दुःखमें डाला ॥ ९ ॥

को नु सर्वान्विनिर्जित्य शत्रूनेकेन वैरिणा ।
पणित्वा चैकपाणेन रोचयेदेवमाहवम् ॥ १० ॥
ऐसा कौन राजा होगा जो इतने युद्धसे सब शत्रुओंको जीत लेनेपर एक ही बाकी रह जाय और इसी प्रकार एकके साथ ही युद्ध करनेका नियम रखकर युद्ध करना चाहे ? ॥ १० ॥

न हि पश्यामि तं लोके गदाहस्तं नरोत्तमम् ।
युध्येद्दुर्योधनं संख्ये कृतित्वाद्धि विशेषयेत् ॥ ११ ॥

इस जगत्में हमें कोई ऐसा शूरवीर नहीं दिखाई देता कि जो युद्धमें गदाधारी नरश्रेष्ठ दुर्योधनसे युद्ध करेगा और उससे विशेषता दिखायेगा ॥ ११ ॥

फल्गुनं वा भवन्तं वा माद्रीपुत्रावथापि वा ।
न समर्थानहं मन्ये गदाहस्तस्य संयुगे ॥ १२ ॥

अर्जुन, तुम स्वयं अथवा माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव इनमेंसे कोई भी गदाधारी दुर्योधनसे युद्ध करनेके लिये समर्थ है, ऐसा हम नहीं समझते ॥ १२ ॥

स कथं वदसे शत्रुं युध्यस्व गदयेति ह ।
एकं च नो निहत्याजौ भव राजेति भारत ॥ १३ ॥

भारत ! तव आपने अपने शत्रुको ऐसा क्यों कहा कि गदासे युद्ध करो ? और हममेंसे एकको युद्धमें मारकर राजा हो जाओ ? ॥ १३ ॥

वृकोदरं समासाद्य संशयो विजये हि नः ।
न्यायतो युध्यमानानां कृती ह्येष महाबलः ॥ १४ ॥

राजा दुर्योधन बडा चतुर है और नियमपूर्वक युद्ध करनेवालोंमें महाबलवान् दुर्योधनका अभ्यास अधिक है, इसलिये भीमसेन उससे युद्ध करेंगे तो भी वे उन्हें जीत सके या नहीं इसमें हमें सन्देह है ॥ १४ ॥

भीमसेन उवाच

मधुसूदन मा कार्षीर्विषादं यदुनन्दन ।
अद्य पारं गमिष्यामि वैरस्य भृशदुर्गमम् ॥ १५ ॥

भीमसेन बोले– हे मधुसूदन ! यदुकुलश्रेष्ठ ! आप कुछ भय मत कीजिये, हम आज इस घोर वैरके अत्यंत दुर्गम सीमाके पार जायेंगे ॥ १५ ॥

अहं सुयोधनं संख्ये हनिष्यामि न संशयः ।
विजयो वै ध्रुवं कृष्ण धर्मराजस्य दृश्यते ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण ! मैं युद्धमें सुयोधनको मार डालूंगा, इसमें संशय नहीं है । हमें तो निश्चयसे ही धर्मराजकी विजय दिखाई देती है ॥ १६ ॥

अध्यर्धेन गुणेनेयं गदा गुरुतरी मम ।
न तथा धार्तराष्ट्रस्य मा कार्षीर्माधव व्यथाम् ॥ १७ ॥

हमारी यह गदा दुर्योधनकी गदासे डेढगुनी भारी है, वैसी दुर्योधनकी नहीं है, इसलिये माधव ! आप भय मत कीजिये ॥ १७ ॥

सामरानपि लोकांस्त्रीन्नानाशस्त्रधरान्युधि।
योधयेयं रणे हृष्टः किमुताद्य सुयोधनम् ॥ १८ ॥
हम अकेले अनेक प्रकारके शस्त्रधारी देवताओंसहित तीनों लोकोंके साथ युद्ध कर सकते हैं, फिर सुयोधनकी तो कथा ही क्या है ? ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच
तथा संभाषमाणं तु वासुदेवो वृकोदरम्।
हृष्टः संपूजयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥
सञ्जय बोले— भीमसेनके ऐसे वचन सुन उनकी प्रशंसा करके प्रसन्न होकरके श्रीकृष्ण इस प्रकार बोले ॥ १९ ॥

त्वामाश्रित्य महाबाहो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
निहतारिः स्वकां दीप्तां श्रियं प्राप्तो न संशयः ॥ २० ॥
हे महाबाहो ! तुम्हारे ही आश्रयसे आज धर्मराज राजा युधिष्ठिर शत्रुरहित हुए हैं और तुम्हारे ही आश्रयसे इनको यह उत्तम लक्ष्मी प्राप्त हुई है, इसमें संशय नहीं है ॥ २० ॥

त्वया विनिहताः सर्वे धृतराष्ट्रसुता रणे।
राजानो राजपुत्राश्च नागाश्च विनिपातिताः ॥ २१ ॥
तुमने धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको युद्धमें मारा, तुमने अनेक राजाओं, राजपुत्रों और गजराजोंको मारा ॥ २१ ॥

कलिङ्गा मागधाः प्राच्या गान्धाराः कुरवस्तथा।
त्वामासाद्य महायुद्धे निहताः पाण्डुनन्दन ॥ २२ ॥
पाण्डुनन्दन ! तुम्हारे पास आते ही कलिङ्ग, मागध, प्राच्य, गान्धार और कुरुवंशी क्षत्रियोंका इस महायुद्धमें नाश हो गया ॥ २२ ॥

हत्वा दुर्योधनं चापि प्रयच्छोर्वीं ससागराम्।
धर्मराजाय कौन्तेय यथा विष्णुः शचीपतेः ॥ २३ ॥
जैसे विष्णुने जीतकर स्वर्ग शचीपति इन्द्रको दिया था, वैसे ही तुम दुर्योधनको मारकर समुद्रोंसहित यह सब पृथ्वी धर्मराज युधिष्ठिरको दो ॥ २३ ॥

त्वां च प्राप्य रणे पापो धार्तराष्ट्रो विनङ्क्ष्यति।
त्वमस्य सक्थिनी भङ्क्त्वा प्रतिज्ञां पारयिष्यसि ॥ २४ ॥
हमें यह निश्चय है कि युद्धमें पापी दुर्योधन तुम्हारे सामने आनेपर तुम उसे मारोगे, तुम उसकी जङ्घा तोडकर अपनी प्रतिज्ञा पालन करना ॥ २४ ॥

+

यत्नेन तु सदा पार्थ योद्धव्यो धृतराष्ट्रजः ।
कृती च बलवांश्चैव युद्धशौण्डश्च नित्यदा ॥ २५ ॥

पार्थ ! यह अभ्यासी, बलवान् और कुशल महायोद्धा है, इसलिये तुम्हें यत्नके सहित सदा सावधान होकर दुर्योधनसे युद्ध करना चाहिये ॥ २५ ॥

ततस्तु सात्यकी राजन्पूजयामास पाण्डवम् ।
विविधाभिश्च तं वाग्भिः पूजयामास माधवः ॥ २६ ॥

हे राजन् ! तब सात्यकिने पाण्डुपुत्र भीमसेनकी बहुत प्रशंसा की । इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान्ने उनकी अनेक श्रेष्ठ वचनोंसे प्रशंसा की ॥ २६ ॥

पाञ्चालाः पाण्डवेयाश्च धर्मराजपुरोगमाः ।
तद्वचो भीमसेनस्य सर्व एवाभ्यपूजयन् ॥ २७ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरादि पाण्डव और धृष्टद्युम्नादि पाञ्चाल भीमसेनके उस वचनोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ २७ ॥

ततो भीमबलो भीमो युधिष्ठिरमथाब्रवीत् ।
सृञ्जयैः सह तिष्ठन्तं तपन्तमिव भास्करम् ॥ २८ ॥

तदनन्तर महाबलवान् भीमसेन सृञ्जयवंशी क्षत्रियोंके बीचमें खडे सूर्यके समान तेजस्वी युधिष्ठिरसे बोले ॥ २८ ॥

अहमेतेन संगम्य संयुगे योद्धुमुत्सहे ।
न हि शक्तो रणे जेतुं मामेष पुरुषाधमः ॥ २९ ॥

हे महाराज ! मैं समरमें इससे भिडकर युद्ध करना चाहता हूं । यह नीच युद्धमें मुझे नहीं जीत सकता है ॥ २९ ॥

अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निहितं हृदये भृशम् ।
सुयोधने धार्तराष्ट्रे खाण्डवेऽग्निमिवार्जुनः ॥ ३० ॥

जैसे अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निको छोडा था, वैसे ही आज मैं धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनपर अपने हृदयमें भरे क्रोधको छोडूंगा ॥ ३० ॥

शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डव हृच्छयम् ।
निहत्य गदया पापमद्य राजन्सुखी भव ॥ ३१ ॥

पाण्डव ! राजन् ! आज पापीको गदासे मारकर आपके हृदयका शल्य निकालूंगा । आप सुखी हो जाइये ॥ ३१ ॥

अद्य कीर्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्ये तवानघ ।
प्राणाञ्छ्रियं च राज्यं च मोक्ष्यतेऽद्य सुयोधनः　　॥ ३२ ॥

हे पापरहित ! आज विजय और कीर्तिमाला मैं आपको पहनाऊंगा, मूर्ख दुर्योधन आज धन, राज्य और प्राणोंको छोडेगा ॥ ३२ ॥

राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं मया हतम् ।
स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत्तच्छकुनिबुद्धिजम्　　॥ ३३ ॥

आज अपने पुत्रको मेरे हाथसे मरा हुआ सुन, राजा धृतराष्ट्र शकुनिकी सम्मतिसे किये हुए अपने पापका स्मरण करेंगे ॥ ३३ ॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
उदतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन्　　॥ ३४ ॥

ऐसा कहकर भरतकुलश्रेष्ठ बलवान् भीमसेन गदा लेकर युद्धके लिये खडे हो गये और जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको ललकारा था वैसे ही दुर्योधनको पुकारने लगे ॥ ३४ ॥

तमेकाकिनमासाद्य धार्तराष्ट्रं महाबलम् ।
निर्यूथमिव मातङ्गं समहृष्यन्त पाण्डवाः　　॥ ३५ ॥

अपने झुण्डसे छूटे मतवाले हाथीके समान आये हुए अकेले महाबलवान् दुर्योधनको मिलकर सब पाण्डव आनन्दित हो गये ॥ ३५ ॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
भीमसेनस्तदा राजन्दुर्योधनमथाब्रवीत्　　॥ ३६ ॥

राजा दुर्योधनको गदा धारण किये, शिखरधारी कैलास पर्वतके समान खडा देख, भीमसेन बोले ॥ ३६ ॥

राज्ञापि धृतराष्ट्रेण त्वया चास्मासु यत्कृतम् ।
स्मर तद्दुष्कृतं कर्म यद्वृत्तं वारणावते　　॥ ३७ ॥

वारणवत नगरमें राजा धृतराष्ट्रने और तुमने जो हमारे सङ्ग अधर्म अन्य दूसरे और अत्याचार किये थे, उन दुष्कृत्योंका स्मरण करो ॥ ३७ ॥

द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभामध्ये रजस्वला ।
द्यूते यद्विजितो राजा शकुनेर्बुद्धिनिश्चयात्　　॥ ३८ ॥

रजस्वला द्रौपदीको सभामें दुःख दिया था, शकुनिकी सलाह लेकर महाराजको कपटपूर्वक जुएमें जीता था ॥ ३८ ॥

यानि चान्यानि दुष्टात्मन्पापानि कृतवानसि ।
अनागःसु च पार्थेषु तस्य पश्य महत्फलम् ॥ ३९ ॥

रे दुष्टात्मा! और भी निष्पाप कुन्तीपुत्र धर्मात्मा पाण्डवोंके सङ्ग तुमने जो जो पाप किये हैं, आज उन सबका महान् फल देखोगे ॥ ३९ ॥

त्वत्कृते निहतः शेते शरतल्पे महायशाः ।
गाङ्गेयो भरतश्रेष्ठः सर्वेषां नः पितामहः ॥ ४० ॥

तेरे ही पापसे महायशस्वी भरतकुलश्रेष्ठ हम सबके पितामह गंगापुत्र भीष्म शरशय्यापर सोते हैं ॥ ४० ॥

हतो द्रोणश्च कर्णश्च हतः शल्यः प्रतापवान् ।
वैरस्य चादिकर्तासौ शकुनिर्निहतो युधि ॥ ४१ ॥

तेरे ही पापसे गुरु द्रोणाचार्य, कर्ण, महाप्रतापी शल्य और वैरका मूल शकुनि ये सब युद्धमें मारे गये ॥ ४१ ॥

भ्रातरस्ते हताः शूराः पुत्राश्च सहसैनिकाः ।
राजानश्च हताः शूराः समरेष्वनिवर्तिनः ॥ ४२ ॥

तुम्हारे सब वीर भाई, बेटे, सैनिक, महायोद्धा अनेक राजा और युद्धमें पराङ्मुख न होनेवाले उत्तम क्षत्रियोंका नाश हुआ ॥ ४२ ॥

एते चान्ये च निहता बहवः क्षत्रियर्षभाः ।
प्रातिकामी तथा पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः ॥ ४३ ॥

ये और दूसरे अनेक क्षत्रियश्रेष्ठ शूरवीर मारे गये। द्रौपदीको क्लेश देनेवाला पापी प्रातिकामी भी मारा गया ॥ ४३ ॥

अवशिष्टस्त्वमेवैकः कुलघ्नोऽधमपूरुषः ।
त्वामप्यद्य हनिष्यामि गदया नात्र संशयः ॥ ४४ ॥

अब एक कुलनाशन पुरुषाधम तू ही बचा है, सो आज अब गदासे तुझे भी निःसंदेह मार डालूंगा ॥ ४४ ॥

अद्य तेऽहं रणे दर्पं सर्वं नाशयिता नृप ।
राज्याशां विपुलां राजन्पाण्डवेषु च दुष्कृतम् ॥ ४५ ॥

नृप! आज मैं तेरा महाघोर अभिमान नष्ट कर दूंगा। राजन्! तेरी भारी राज्यतृष्णा और पाण्डवोंपर किये गये अत्याचारोंको समाप्त कर दूंगा ॥ ४५ ॥

दुर्योधन उवाच

किं कत्थितेन बहुधा युध्यस्वाद्य मया सह ।
अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां वृकोदर ॥ ४६ ॥

दुर्योधन बोले– रे भीमसेन ! वृथा बहुत बकनेसे क्या होगा ? आज मुझसे युद्ध कर, आज मैं तेरी युद्धश्रद्धाका नाश कर दूंगा ॥ ४६ ॥

किं न पश्यसि मां पाप गदायुद्धे व्यवस्थितम् ।
हिमवच्छिखराकारां प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ४७ ॥

रे पापी ! क्या तू नहीं देखता है कि मैं हिमाचलके शिखरके समान भारी गदा लेकर युद्धके लिये खडा हूं ? ॥ ४७ ॥

गदिनं कोऽद्य मां पाप जेतुमुत्सहते रिपुः ।
न्यायतो युध्यमानस्य देवेष्वपि पुरंदरः ॥ ४८ ॥

हे पापी ! ऐसा कौन आज शत्रु है कि जो गदा धारण करनेपर भी मुझको जीत सके । न्यायसे युद्ध करनेपर तो मुझे देवताओंके राजा इन्द्र भी नहीं जीत सकते ॥ ४८ ॥

मा वृथा गर्ज कौन्तेय शारदाभ्रमिवाजलम् ।
दर्शयस्व बलं युद्धे यावत्तत्तेऽद्य विद्यते ॥ ४९ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! शरद्कालके जलरहित मेघके समान व्यर्थ मत गर्ज जो तुझमें बल हो सो आज युद्धमें दिखा दो ॥ ४९ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पाञ्चालाः सहसृञ्जयाः ।
सर्वे संपूजयामासुस्तद्वचो विजिगीषवः ॥ ५० ॥

दुर्योधनका यह वचन सुन विजयकी अभिलाषा करनेवाले सब पाञ्चाल और सृञ्जय उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५० ॥

तं मत्तमिव मातङ्गं तलशब्देन मानवाः ।
भूयः संहर्षयामासू राजन्दुर्योधनं नृपम् ॥ ५१ ॥

जैसे मतवाले हाथीको मनुष्य ताली बजाकर क्रोधित करते हैं, ऐसे ही सब बहुत ताली बजाकर राजा दुर्योधनका हर्ष बढाने लगे ॥ ५१ ॥

बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र हया हेषन्ति चासकृत् ।
शस्त्राणि संप्रदीप्यन्ते पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ १७१४ ॥

उस समय हाथी चिंघाडने लगे, घोडे गर्जने लगे, और विजयाभिलाषी पाण्डव शस्त्र चमकाने लगे ॥ ५२ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ १७५४ ॥

: ३३ :

सञ्जय उवाच

तस्मिन्युद्धे महाराज संप्रवृत्ते सुदारुणे ।
उपविष्टेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! जब इन दोनोंका घोर युद्ध होनेको उपस्थित हुआ और सब महात्मा पाण्डव उसे देखनेके लिये बैठ गये ॥ १ ॥

ततस्तालध्वजो रामस्तयोर्युद्ध उपस्थिते ।
श्रुत्वा तच्छिष्ययो राजन्नाजगाम हलायुधः ॥ २ ॥

तब अपने दोनों शिष्योंका गदायुद्ध होनेका है यह समाचार सुनकर तालध्वजावाले हलधारी बलराम तीर्थोंसे घूमते हुए यह युद्ध देखनेको आये ॥ २ ॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः पूजयित्वा नराधिपाः ।
शिष्ययोः कौशलं युद्धे पश्य रामेति चाब्रुवन् ॥ ३ ॥

उनको देखकर सब राजाओंने प्रसन्न होकर यथायोग्य पूजा और सत्कार करके कहने लगे कि राम ! अपने दोनों शिष्योंका युद्ध कौशल देखिये ॥ ३ ॥

अब्रवीच्च तदा रामो दृष्ट्वा कृष्णं च पाण्डवम् ।
दुर्योधनं च कौरव्यं गदापाणिमवस्थितम् ॥ ४ ॥

तब बलराम, श्रीकृष्ण और पाण्डव और कुरुवंशी दुर्योधनको गदा हाथमें लेकर खडे हुए देख बोले ॥ ४ ॥

चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै ।
पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः ।
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव ॥ ५ ॥

माधव ! मैं पुष्य नक्षत्रमें द्वारिकासे गया था, और श्रवण नक्षत्रमें पुनः लौटकर आया हूं। आज मुझे तीर्थयात्राके लिये द्वारिकासे चले बयालिस दिन हुए। अब मैं अपने दोनों शिष्योंका गदायुद्ध देखना चाहता हूं ॥ ५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा परिष्वज्य हलायुधम् ।
स्वागतं कुशलं चास्मै पर्यपृच्छद्यथातथम् ॥ ६ ॥

अनन्तर राजा युधिष्ठिरने बलरामको हृदयसे लगाकर उनका स्वागत किया और यथायोग्य उनसे कुशल पूछने लगे ॥ ६ ॥

कृष्णौ चापि महेष्वासावभिवाद्य हलायुधम् ।
सस्वजाते परिप्रीतौ प्रियमाणौ यशस्विनौ ॥ ७ ॥

महाधनुषधारी यशस्वी श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक बलरामको प्रणाम किया और आलिङ्गन किया ॥ ७ ॥

माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ।
अभिवाद्य स्थिता राजन्रौहिणेयं महाबलम् ॥ ८ ॥

राजन् ! माद्रीके दोनों शूर पुत्र और द्रौपदीके पांचों पुत्र महाबलवान् रोहिणीपुत्र बलरामको प्रणाम करके उनके पास खडे रहे ॥ ८ ॥

भीमसेनोऽथ बलवान्पुत्रस्तव जनाधिप ।
तथैव चोद्यतगदौ पूजयामासतुर्बलम् ॥ ९ ॥

जनाधिप ! भीमसेन और तुम्हारे पुत्र महाबलवान् दुर्योधनने गदा उठाकर बलरामको अभिवादन किया और कुशल पूंछी ॥ ९ ॥

स्वागतेन च ते तत्र प्रतिपूज्य पुनः पुनः ।
पश्य युद्धं महाबाहो इति ते राममब्रुवन् ।
एवमूचुर्महात्मानं रौहिणेयं नराधिपाः ॥ १० ॥

वे सब राजा बलरामको स्वागतपूर्वक वार बार पूजित करके वहां महात्मा रोहिणीपुत्रसे कहने लगे कि हे महाबाहो ! आप इन दोनोंका युद्ध देखिये ॥ १० ॥

परिष्वज्य तदा रामः पाण्डवान्सृञ्जयानपि ।
अपृच्छत्कुशलं सर्वान्पाण्डवांश्चामितौजसः ।
तथैव ते समासाद्य पप्रच्छुस्तमनामयम् ॥ ११ ॥

तदनन्तर महात्मा रोहिणीपुत्र बलराम भी पाण्डवों सृञ्जयों और सब राजाओंसे मिलकर उनका कुशल प्रश्न पूछने लगे और अमित तेजस्वी उसी प्रकार उन सब राजाओंने भी बलरामसे कुशल पूंछी ॥ ११ ॥

प्रत्यभ्यर्च्य हली सर्वान्क्षत्रियांश्च महामनाः ।
कृत्वा कुशलसंयुक्तां संविदं च यथावयः ॥ १२ ॥

हलधारी बलरामने सब महामना क्षत्रियोंका आदर करके उनसे यथायोग्य कुशल पूंछा ॥ १२ ॥

जनार्दनं सात्यकिं च प्रेम्णा स परिषस्वजे ।
मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय कुशलं पर्यपृच्छत ॥ १३ ॥

इस प्रकार सबसे कुशल प्रश्न करके बलरामने प्रेम सहित श्रीकृष्ण और सात्यकिको अपनी छातीसे लगाकर, उन दोनोंका माथा सूङ्घकर कुशल प्रश्न किया ॥ १३ ॥

तौ चैनं विधिवद्राजन्पूजयामासतुर्गुरुम् ।
ब्रह्माणमिव देवेशमिन्द्रोपेन्द्रौ मुदा युतौ ॥ १४ ॥

इन दोनोंने भी अपने गुरु बलरामकी कुशल पूंछ, इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा की जैसे इन्द्र और उपेन्द्र प्रसन्नतासे ब्रह्माकी पूजा करते हैं ॥ १४ ॥

ततोऽब्रवीद्धर्मसुतो रौहिणेयमरिंदमम् ।
इदं भ्रात्रोर्महायुद्धं पश्य रामेति भारत ॥ १५ ॥

भारत ! तब धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरने शत्रुनाशन रोहिणीपुत्रसे कहा कि– हे राम ! अब आप इन दोनों भाइयोंका महान् युद्ध देखिये ॥ १५ ॥

तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान्केशवपूर्वजः ।
न्यविशत्परमप्रीतः पूज्यमानो महारथैः ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णके बडे भाई महाबाहु बलवान् राम उन महारथियोंसे पूजित होकर उनके बीचमें अत्यंत आनन्दित होकर बैठ गये ॥ १६ ॥

स बभौ राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः ।
दिवीव नक्षत्रगणैः परिकीर्णो निशाकरः ॥ १७ ॥

उन सब महात्मा महारथ क्षत्रियोंके बीचमें बैठकर नीलाम्बरधारी गोरे वर्णवाले बलराम इस प्रकार शोभित हुए जैसे आकाशमें तारोंके बीचमें पूर्णचन्द्रमा ॥ १७ ॥

ततस्तयोः संनिपातस्तुमुलो लोमहर्षणः ।
आसीदन्तकरो राजन्वैरस्य तव पुत्रयोः ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ १७७२ ॥

राजन् ! तब तुम्हारे दोनों पुत्र दुर्योधन और भीमसेनका घोर और रोएं खडे करनेवाला युद्ध होने लगा । दोनोंकी यही इच्छा हुई की इस वैरको समाप्त कर दें ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें तैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ १७७२ ॥

: ३४ :

जनमेजय उवाच

पूर्वमेव यदा रामस्तस्मिन्युद्ध उपस्थिते ।
आमंत्र्य केशवं यातो वृष्णिभिः सहितः प्रभुः ॥ १ ॥

महाराज जनमेजय बोले– हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जिस समय कौरव और पाण्डवोंका युद्ध होनेवाला था, तब ही पहले बलराम श्रीकृष्णकी सम्मतिसे यदुवंशियोंके सहित तीर्थयात्राको चले गए थे और यह कह गए थे ॥ १ ॥

साहाय्यं धार्तराष्ट्रस्य न च कर्तास्मि केशव ।
न चैव पाण्डुपुत्राणां गमिष्यामि यथागतम् ॥ २ ॥

केशव ! हम इन दोनोंमेंसे किसीकी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी और पाण्डवोंकी सहायता नहीं करेंगे ॥ २ ॥

एवमुक्त्वा तदा रामो यातः शत्रुनिबर्हणः ।
तस्य चागमनं भूयो ब्रह्मञ्शंसितुमर्हसि ॥ ३ ॥

ब्रह्मन् ! ऐसा कहकर जब शत्रुसंहारक बलराम चले गये, तब वे फिर क्यों चले आए ? यह कहनेकी कृपा करें ॥ ३ ॥

आख्याहि मे विस्तरतः कथं राम उपस्थितः ।
कथं च दृष्टवान्युद्धं कुशलो ह्यसि सत्तम ॥ ४ ॥

हे मुनिबर ! आप कथा कहनेमें कुशल है, इसलिये यह कथा आप हमसे विस्तारपूर्वक कहिये आप सब वृत्तान्तको जानते हैं । इसलिये कहिए कि बलराम कैसे वहां उपस्थित हुए और इस युद्धको उन्होंने किस प्रकार देखा ? ॥ ४ ॥

वैशंपायन उवाच

उपप्लव्ये निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
प्रेषितो धृतराष्ट्रस्य समीपं मधुसूदनः ।
शमं प्रति महाबाहो हितार्थं सर्वदेहिनाम् ॥ ५ ॥

वैशम्पायन मुनि बोले– हे महाबाहु राजन् ! जब महात्मा पाण्डव विराट् नगरके उपप्लव स्थानमें छावनीमें रहते थे, उसी समय युधिष्ठिरने सब जगत्के कल्याणके लिये और सन्धिके लिये, श्रीकृष्णको धृतराष्ट्रके पास भेजा था ॥ ५ ॥

स गत्वा हास्तिनपुरं धृतराष्ट्रं समेत्य च ।
उक्तवान्वचनं तथ्यं हितं चैव विशेषतः ।
न च तत्कृतवान्राजा यथाख्यातं हि ते पुरा ॥ ६ ॥

उन्होंने हस्तिनापुर जाकर राजा धृतराष्ट्रसे भेंट की और सबके लिये हितकर और यथार्थ बचन कहे थे, परन्तु उन्होंने ये नहीं माने, यह कथा हम पहिले तुमसे कह चुके हैं ॥६॥

अनवाप्य शमं तत्र कृष्णः पुरुषसत्तमः ।
आगच्छत महाबाहुरुपप्लव्यं जनाधिप ॥ ७ ॥

जनेश्वर ! महाबाहु पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण वहां सन्धि करनेमें असफल होनेपर लौटकर पाण्डवोंके पास उपालव्यको आ गये ॥ ७ ॥

ततः प्रत्यागतः कृष्णो धार्तराष्ट्रविसर्जितः ।
अक्रियायां नरव्याघ्र पाण्डवानिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

हे नरव्याघ्र ! संधिका कार्य असफल होनेपर धृतराष्ट्रसे विसर्जित होकर वापस आये हुए श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे कहने लगे ॥ ८ ॥

न कुर्वन्ति वचो मह्यं कुरवः कालचोदिताः ।
निर्गच्छध्वं पाण्डवेयाः पुष्येण सहिता मया ॥ ९ ॥

हे पाण्डव ! कुरुवंशके नाशका समय आ गया, इसलिये कौरवोंने हमारे वचन नहीं माने, आज पुष्य नक्षत्र है ! युद्ध करनेको हमारे साथ चलो ॥ ९ ॥

ततो विभज्यमानेषु बलेषु बलिनां वरः ।
प्रोवाच भ्रातरं कृष्णं रौहिणेयो महामनाः ॥ १० ॥

तदनंतर जब सेनाका विभाग होने लगा, तब महाबलवान् रोहिणीपुत्र महामना बलरामने अपने भाई श्रीकृष्णसे कहा कि, ॥ १० ॥

तेषामपि महाबाहो साहाय्यं मधुसूदन ।
क्रियतामिति तत्कृष्णो नास्य चक्रे वचस्तदा ॥ ११ ॥

हे महाबाहु मधुसूदन ! तुम दुर्योधनकी भी सहायता करो, परन्तु श्रीकृष्णने उस समय उनके वचन नहीं माने ॥ ११ ॥

ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः ।
तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः ।
मैत्रे नक्षत्रयोगे स्म सहितः सर्वयादवैः ॥ १२ ॥

तब महायशस्वी यदुनन्दन हलधर बलराम क्रुद्ध होकर पुष्यनक्षत्रमें सरस्वतीके तटपर तीर्थयात्राको चले गये, जिस दिन बलराम श्रीकृष्णसे विदा हुए, उस दिन पुष्य और जिस दिन द्वारिकासे चले, उस दिन अनुराधा नक्षत्र था, बलरामके सङ्ग मुख्य यदुवंशी सब चले गये ॥ १२ ॥

आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिंदमः ।
युयुधानेन सहितो वासुदेवस्तु पाण्डवान् ॥ १३ ॥

उसी दिन शत्रुनाशन कृतवर्मा दुर्योधनके पास और सात्यकि सहित श्रीकृष्ण पाण्डवोंके पास चले गये ॥ १३ ॥

रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः ।
पाण्डवेयान्पुरस्कृत्य ययावभिमुखः कुरून् ॥ १४ ॥

रोहिणीपुत्र शूर बलरामके चले जानेके बाद उस ही पुष्यनक्षत्रमें मधुसूदन श्रीकृष्ण पाण्डवोंके आगे करके कुरुक्षेत्रकी ओर निकले ॥ १४ ॥

गच्छन्नेव पथिस्थस्तु रामः प्रेष्यानुवाच ह ।
संभारांस्तीर्थयात्रायां सर्वोपकरणानि च ।
आनयध्वं द्वारकाया अग्नीन्वै याजकांस्तथा ॥ १५ ॥

यात्रा करनेवाला बलराम थोडी दूर जाकर मार्गमें ही दूतोंसे बोले, तुम लोग द्वारिका जावो और वहांसे तीर्थयात्राकी सब सामग्री, सब उपयुक्त उपकरण, अग्निहोत्रकी अग्नि और पुरोहितोंको ले आओ ॥ १५ ॥

सुवर्णं रजतं चैव धेनुर्वासांसि वाजिनः ।
कुञ्जरांश्च रथांश्चैव खरोष्ट्रं वाहनानि च ।
क्षिप्रमानीयतां सर्वं तीर्थहेतोः परिच्छदम् ॥ १६ ॥

सोना, चांदी, गायें, वस्त्र, घोडे, हाथी, रथ, गर्दभ और उँट आदि वाहन और सब तीर्थोपयोगी सामान शीघ्र ले आओ ॥ १६ ॥

प्रतिस्रोतः सरस्वत्या गच्छध्वं शीघ्रगामिनः ।
ऋत्विजश्चानयध्वं वै शतशश्च द्विजर्षभान् ॥ १७ ॥

शीघ्रगामी दूतों ! तुम सरस्वती नदीके प्रवाहकी ओर जाओ और सैंकडों उत्तम ब्राह्मणों और ऋत्विजोंको ले आवो ॥ १७ ॥

एवं संदिश्य तु प्रेष्यान्बलदेवो महाबलः ।
तीर्थयात्रां ययौ राजन्कुरूणां वैशसे तदा ।
सरस्वतीं प्रतिस्रोतः समुद्रादभिजग्मिवान् ॥ १८ ॥

राजन् ! दूतों उनको वैसी आज्ञा देकर महाबलवान् बलरामने वे सरस्वतीके प्रवाहकी ओर समुद्रतटको चले गये ॥ १८ ॥

ऋत्विग्भिश्च सुहृद्भिश्च तथान्यैर्द्विजसत्तमैः ।
रथैर्गजैस्तथाश्वैश्च प्रेष्यैश्च भरतर्षभ ।
गोखरोष्ट्रप्रयुक्तैश्च यानैश्च बहुभिर्वृतः ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब कुरुक्षेत्रमें ही तीर्थयात्रा शुरू कर दी फिर द्वारिकासे आए हुए ऋत्विक अर्थात् यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण, बान्धव, दूसरे श्रेष्ठ द्विज, रथ, हाथी, घोडे और सेवक उनके साथ थे । बैल, गधे और ऊंटोंसे जुते हुए अनेक वाहनोंसे बलराम घिरे हुए थे ॥ १९ ॥

श्रान्तानां क्लान्तवपुषां शिशूनां विपुलायुषाम् ।
तानि यानानि देशेषु प्रतीक्ष्यन्ते स्म भारत ।
बुभुक्षितानामर्थाय क्लृप्तमन्नं समन्ततः ॥ २० ॥

फिर उनको सङ्गमें लेकर सरस्वतीके तटपर घूमने लगे । भारत ! जिस देशमें जाते थे, वहां थके, भूखे, रोगी, बालक और बूढोंको अनेक प्रकारके दान देते थे, जो जिस समय आकर जो मांगता था, उसी समय उसको वही मिलता था, भूखोंको भोजन देनेके लिये सब जगह अन्नकी व्यवस्था की गयी थी ॥ २० ॥

यो यो यत्र द्विजो भोक्तुं कामं कामयते तदा ।
तस्य तस्य तु तत्रैवमुपजह्रुस्तदा नृप ॥ २१ ॥

राजन् ! जिस देशमें जो जो ब्राह्मण जब भोजनकी इच्छा करता था, तब उसे वहीं खाने-पीनेकी वस्तुएं देते थे ॥ २१ ॥

तत्र स्थिता नरा राजन्रौहिणेयस्य शासनात् ।
भक्ष्यपेयस्य कुर्वन्ति राशींस्तत्र समन्ततः ॥ २२ ॥

राजन् ! रोहिणीपुत्र बलरामकी आज्ञासे मार्गमें उनके सेवकोंने ऐसा प्रबन्ध किया था कि जहां बलरामके जानेका मार्ग था और जहां उनके ठहरनेका निश्चय होता था, वहां पहिलेहींसे खाने, पीनेकी वस्तुओंके ढेर लगाकर रखते थे ॥ २२ ॥

वासांसि च महार्हाणि पर्यङ्कास्तरणानि च ।
पूजार्थं तत्र क्लृप्तानि विप्राणां सुखमिच्छताम् ॥ २३ ॥

कीमती वस्त्र, पलङ्ग और बिछौने आदि सामग्री सत्कारके सुख चाहनेवाले ब्राह्मणोंके लिये तैयार रखी जाती थी ॥ २३ ॥

यत्र यः स्वपते विप्रः क्षत्रियो वापि भारत ।
तत्र तत्र तु तस्यैव सर्वं क्लृप्तमदृश्यत ॥ २४ ॥

भारत ! जो ब्राह्मण वा क्षत्रिय जिस स्थानमें सोता था, उसे वहीं सब वस्तुएं प्राप्त हैं ऐसा दिखाई देता था ॥ २४ ॥

यथासुखं जनः सर्वस्तिष्ठते याति वा तदा ।
यातुकामस्य यानानि पानानि तृषितस्य च ॥ २५ ॥

उस यात्रामें सब लोग सुखसे चलते और आराम करते थे । जिसे चलनेकी इच्छा हो उसे वाहन, प्यासेको पीनेकी वस्तु ॥ २५ ॥

बुभुक्षितस्य चान्नानि स्वादूनि भरतर्षभ ।
उपजह्रुर्नरास्तत्र वस्त्राण्याभरणानि च ॥ २६ ॥

भरतर्षभ ! और भूखेको स्वादु अन्न देनेके लिये हर समय मनुष्य खडे रहते थे । इसी प्रकार वस्त्र और आभूषणोंका भी पूरा प्रबन्ध दान देनेके लिये था ॥ २६ ॥

स पन्थाः प्रबभौ राजन्सर्वस्यैव सुखावहः ।
स्वर्गोपमस्तदा वीर नराणां तत्र गच्छताम् ॥ २७ ॥

राजन् ! वीर ! उस समय सब यात्रियोंको वह मार्ग स्वर्गके समान सुखदायक दीखता था ॥ २७ ॥

नित्यप्रमुदितोपेतः स्वादुभक्षः शुभान्वितः ।
विपण्यापणपण्यानां नानाजनशतैर्वृतः ।
नानाद्रुमलतोपेतो नानारत्नविभूषितः ॥ २८ ॥

वह मार्गमें सदैव प्रसन्नता और आनन्दसे भरा मिष्टान्नसे युक्त और कल्याणमय हुआ था। साथ ही मार्गपर खरीदने बेचनेकी वस्तुओंका बाजार भी था, इसमें नाना प्रकारके सैंकडों मनुष्य घूमते थे। वह बाजार अनेक प्रकारके फूले हुए वृक्ष और लताओंसे शोभित तथा अनेक रत्नोंसे विभूषित दिखाई देता था ॥ २८ ॥

ततो महात्मा नियमे स्थितात्मा पुण्येषु तीर्थेषु वसूनि राजन् ।
ददौ द्विजेभ्यः क्रतुदक्षिणाश्च यदुप्रवीरो हलभृत्प्रतीतः ॥ २९ ॥

इस प्रकार यदुकुल वीरश्रेष्ठ महात्मा हलधर बलराम नियमपूर्वक रहकर ब्राह्मणोंको द्रव्य देते हुए अनेक यज्ञदान करते हुए पुण्यतीर्थोंमें घूमने लगे ॥ २९ ॥

दोग्ध्रीश्च धेनूश्च सहस्रशो वै सुवाससः काञ्चनबद्धशृङ्गीः ।
हयांश्च नानाविधदेशजातान्यानानि दासीश्च तथा द्विजेभ्यः ॥ ३० ॥

उस यात्रामें बलरामने घडाभर दूध देनेवाली, सोनेके पत्रे जडे सींगवाली, उत्तम वस्त्रधारिणी सहस्रों गौएं, अनेक देशोंमें उत्पन्न हुए घोडे, वाहन और दासियों ब्राह्मणोंको दान दीं ॥ ३० ॥

रत्नानि मुक्तामणिविद्रुमं च शृङ्गीसुवर्णं रजतं शुभ्रम् ।
अयस्मयं ताम्रमयं च भाण्डं ददौ द्विजातिप्रवरेषु रामः ॥ ३१ ॥

रत्न, मोती, मणि, मूङ्गे, उत्तम सोना, शुद्ध चांदी तथा लोहे और तांबेके सहस्रों बरतन भी महात्मा ब्राह्मणोंको बलरामने दान किये ॥ ३१ ॥

एवं स वित्तं प्रददौ महात्मा सरस्वतीतीर्थवरेषु भूरि ।
ययौ क्रमेणाप्रतिमप्रभावस्ततः कुरुक्षेत्रमुदारवृत्तः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार उदार अनुपम प्रभावी महानुभाव बलराम सरस्वतीके तटपरके श्रेष्ठ तीर्थोंमें बहुत धन दान करते करते, क्रमसे यात्रा करते हुए कुरुक्षेत्रमें पहुंच गये ॥ ३२ ॥

जनमेजय उवाच

सारस्वतानां तीर्थानां गुणोत्पत्तिं वदस्व मे ।
फलं च द्विपदां श्रेष्ठ कर्मनिर्वृत्तिमेव च ॥ ३३ ॥

जनमेजय बोले– हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! सरस्वतीके तटपर जो तीर्थ हैं, आप उनके गुणोंकी उत्पत्ति, पुण्यफल और कर्मोंका वर्णन हमसे कीजिये ॥ ३३ ॥

यथाक्रमं च भगवंस्तीर्थानामनुपूर्वशः ।
ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ परं कौतूहलं हि मे ॥ ३४ ॥

हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन् ! हमारी क्रमशः इन तीर्थोंके सेवनका फल और अनुष्ठान सुननेकी बहुत इच्छा है ॥ ३४ ॥

वैशम्पायन उवाच

तीर्थानां विस्तरं राजन्गुणोत्पत्तिं च सर्वशः ।
मयोच्यमानां शृणु वै पुण्यां राजेन्द्र कृत्स्नशः ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन मुनि बोले— हे महाराज ! हे राजेन्द्र ! मैं तुम्हें तीर्थोंका विस्तार, गुणोत्पत्ति और उनके सेवनका पुण्य कह रहा हूं, वह सब तुम लक्ष्यपूर्वक सुनो ॥ ३५ ॥

पूर्वं महाराज यदुप्रवीर ऋत्विक्सुहृद्विप्रगणैश्च सार्धम् ।
पुण्यं प्रभासं समुपाजगाम यत्रोडुराडयक्ष्मणा क्लिश्यमानः ॥ ३६ ॥

महाराज ! यदुकुलश्रेष्ठ वीर बलराम पहिले द्वारिकासे चलकर ब्राह्मण और अपने सुहृद बान्धवोंके सहित पवित्र ऋत्विज, प्रभास क्षेत्रमें पहुंचे, इसी स्थानपर चन्द्रमा राज्ययक्ष्मा रोगसे पीडित हुए थे ॥ ३६ ॥

विमुक्तशापः पुनराप्य तेजः सर्वं जगद्भासयते नरेन्द्र ।
एवं तु तीर्थप्रवरं पृथिव्यां प्रभासनात्तस्य ततः प्रभासः ॥ ३७ ॥

और वहीं शापसे छूटकर फिर तेजको प्राप्त हुए थे । नरेन्द्र ! वे वहीं अवतक जगत्को प्रकाशित करते हैं । चन्द्रमाको अपना तेज इस स्थानमें मिला था, इसलिये वह प्रमुखतीर्थ पृथ्वीपर प्रभास नामसे पवित्र क्षेत्र हो गया ॥ ३७ ॥

जनमेजय उवाच

किमर्थं भगवान्सोमो यक्ष्मणा समगृह्यत ।
कथं च तीर्थप्रवरे तस्मिंश्चंद्रो न्यमज्जत ॥ ३८ ॥

जनमेजय बोले— हे भगवन् ! भगवान् चन्द्रमाको राजयक्ष्मा रोग क्यों हो गया था ? इस उत्तम तीर्थमें आकर उन्होंने किस प्रकार स्नान किया था ? ॥ ३८ ॥

कथमाप्लुत्य तस्मिंस्तु पुनराप्यायितः शशी ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ॥ ३९ ॥

महामुने ! उस तीर्थमें स्नान करके चन्द्रमाको फिर तेज कैसे प्राप्त हुआ ? यह सब कथा आप हमसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ३९ ॥

वैशम्पायन उवाच

दक्षस्य तनया यास्ताः प्रादुरासन्विशां पते ।
स सप्तविंशतिं कन्या दक्षः सोमाय वै ददौ ॥ ४० ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजेन्द्र ! दक्ष प्रजापतिकी अनेक कन्यायें उत्पन्न हुई थीं, उनमेंसे उन्होंने अपनी सत्ताइस कन्याओंका विवाह चन्द्रमाके साथ कर दिया ॥ ४० ॥

नक्षत्रयोगनिरताः संख्यानार्थं च भारत ।
पत्न्यो वै तस्य राजेन्द्र सोमस्य शुभलक्षणाः ॥ ४१ ॥

भारत ! राजेन्द्र ! सोमकी वे शुभचिन्होंवाली पत्नियां जगत्के समयकी गिनतीके लिये नक्षत्रोंसे जुडी हुई हैं इसलिये उन्हें ही नक्षत्र कहते हैं ॥ ४१ ॥

तास्तु सर्वा विशालाक्ष्यो रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
अत्यरिच्यत तासां तु रोहिणी रूपसंपदा ॥ ४२ ॥

वे सब बडे बडे नेत्रोंवाली और उस भूतलपर असाधारण रूपवाली थीं, परन्तु उन सबमें रोहिणी अधिक रूपवती थी ॥ ४२ ॥

ततस्तस्यां स भगवान्प्रीतिं चक्रे निशाकरः ।
सास्य हृद्या बभूवाथ तस्मात्तां बुभुजे सदा ॥ ४३ ॥

इसलिये भगवान् चन्द्रमा उसीसे अधिक प्रेम करते थे, वही उनकी हृदयस्वामिनी हुई; और वे सदा उसीहीका उपभोग करते थे ॥ ४३ ॥

पुरा हि सोमो राजेन्द्र रोहिण्यामवसच्चिरम् ।
ततोऽस्य कुपितान्यासन्नक्षत्राणि महात्मनः ॥ ४४ ॥

राजेन्द्र ! पहिले चन्द्रमा रोहिणीके पास ही सदैव रहते थे; इसलिये नक्षत्र नामसे प्रसिद्ध वे सब स्त्रियां महात्मा चन्द्रमासे रुष्ट हो गईं ॥ ४४ ॥

ता गत्वा पितरं प्राहुः प्रजापतिमतन्द्रिताः ।
सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ॥ ४५ ॥

और अपने पिता दक्ष प्रजापतिसे सावधान होते हुए जाकर कहने लगीं, हे प्रजापते ! चन्द्रमा हम लोगोंके पास नहीं आते वे सदा रोहिणीसे प्रेम करते हैं ॥ ४५ ॥

ता वयं सहिताः सर्वास्त्वत्सकाशे प्रजेश्वर ।
वत्स्यामो नियताहारास्तपश्चरणतत्पराः ॥ ४६ ॥

इसलिये हे प्रजेश्वर ! हम सब तुम्हारे पास एक साथ रहकर नियमित आहार करके तपस्या करेंगी ॥ ४६ ॥

श्रुत्वा तासां तु वचनं दक्षः सोममथाब्रवीत् ।
समं वर्तस्व भार्यासु मा त्वाधर्मो महान्स्पृशेत् ॥ ४७ ॥

उनके यह वचन सुनकर दक्ष प्रजापतिने चन्द्रमासे कहा तुम अपनी सभी पत्नियोंसे समान प्रेम रखो, इससे तुम्हें महान् पाप नहीं लगेगा ॥ ४७ ॥

ताश्च सर्वाब्रवीद्दक्षो गच्छध्वं सोममन्तिकात् ।
समं वत्स्यति सर्वासु चन्द्रमा मम शासनात् ॥ ४८ ॥

फिर दक्षने उन सब अपनी बेटियोंसे कहा कि तुम सब चन्द्रमाके घरको ही चली जाओ, वे हमारी आज्ञासे सबके सङ्ग समान प्रेम रखेंगे ॥ ४८ ॥

विसृष्टास्तास्तदा जग्मुः शीतांशुभवनं तदा ।
तथापि सोमो भगवान्पुनरेव महीपते ।
रोहिणीं निवसत्येव प्रीयमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ४९ ॥

पृथ्वीपते ! तब पिताके विदा करनेपर वे सब चन्द्रमाके घरमें चली गईं, परन्तु भगवान् चन्द्रमा फिर भी रोहिणीसे वैसा ही अत्यंत प्रेम करके उसीके पास ही रहने लगे ॥ ४९ ॥

ततस्ताः सहिताः सर्वा भूयः पितरमब्रुवन् ।
तव शुश्रूषणे युक्ता वत्स्यामो हि तवाश्रमे ।
सोमो वसति नास्मासु नाकरोद्वचनं तव ॥ ५० ॥

तब वे सब कन्याएँ फिर अपने पिताके पास एक साथ जाकर कहने लगीं कि भगवान् चन्द्रमा हम लोगोंके पास नहीं रहते, इसलिये हम सब यहीं रहकर तत्परतासे आपकी सेवा करेंगी । उन्होंने आपकी आज्ञा नहीं मानी ॥ ५० ॥

तासां तद्वचनं श्रुत्वा दक्षः सोममथाब्रवीत् ।
समं वर्तस्व भार्यासु मा त्वां शप्स्ये विरोचन ॥ ५१ ॥

तब फिर उनके वचन सुनकर दक्ष प्रजापतिने चन्द्रमासे कहा कि हे सोम ! तुम अपनी सब पत्नियोंसे समान प्रेम करो, नहीं तो तुम्हें शाप देवेंगे ॥ ५१ ॥

अनादृत्य तु तद्वाक्यं दक्षस्य भगवाञ्छशी ।
रोहिण्या सार्धमवसत्ततस्ताः कुपिताः पुनः ॥ ५२ ॥

यह कहकर सबको विदा कर दिया, परन्तु भगवान् चन्द्रमा दक्षके वचनका निरादर करके फिर भी रोहिणीहीके सङ्ग रहने लगे तब फिर वे सब क्रोधित होकर ॥ ५२ ॥

गत्वा च पितरं प्राहुः प्रणम्य शिरसा तदा ।
सोमो वसति नास्मासु तस्मान्नः शरणं भव ॥ ५३ ॥

अपने पिताके घर गईं और शिरसे प्रणाम कर, कहने लगीं कि चन्द्रमाने आपके वचनको नहीं माना और हम लोगोंसे प्रेम नहीं करते, और हमारे पास नहीं रहते, इसलिये आप हमको शरण दीजिये ॥ ५३ ॥

रोहिण्यामेव भगवन्सदा वसति चन्द्रमाः ।
तस्मात्त्राहि सर्वा वै यथा नः सोम आविशेत् ॥ ५४ ॥
भगवान् चन्द्रमा सदा रोहिणीहीके घरमें रहते हैं, इसलिये आप हम सबकी रक्षा करें और ऐसा उपाय कीजिये जिससे चन्द्रमा हम लोगोंसे प्रेम करें ॥ ५४ ॥

तच्छ्रुत्वा भगवान्क्रुद्धो यक्ष्माणं पृथिवीपते ।
ससर्ज रोषात्सोमाय स चोडुपतिमाविशत् ॥ ५५ ॥
पृथ्वीपते ! उनके वचन सुन भगवान् दक्ष प्रजापति क्रुद्ध हुए । उन्होंने क्रोध करके राज-यक्ष्मा रोगका निर्माण किया और वह चन्द्रमाके अन्दर प्रविष्ट हुआ ॥ ५५ ॥

स यक्ष्मणाभिभूतात्माक्षीयताहरहः शशी ।
यत्नं चाप्यकरोद्राजन्मोक्षार्थं तस्य यक्ष्मणः ॥ ५६ ॥
यक्ष्मा रोगसे शरीर पीडित होनेके कारण चन्द्रमा दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगे । राजन् ! उन्होंने इस यक्ष्मा रोगसे छूटनेके लिये प्रयत्न किये ॥ ५६ ॥

इष्ट्वेष्टिभिर्महाराज विविधाभिर्निशाकरः ।
न चामुच्यत शापाद्वै क्षयं चैवाभ्यगच्छत ॥ ५७ ॥
महाराज ! अनेक यज्ञादि प्रयोग भी किये, परन्तु शापसे मुक्त न हो सके और क्षीण हो गये ॥ ५७ ॥

क्षीयमाणे ततः सोमे ओषध्यो न प्रजज्ञिरे ।
निरास्वादरसाः सर्वा हतवीर्याश्च सर्वशः ॥ ५८ ॥
उनके क्षीण होनेसे औषधियां न उत्पन्न हुईं और जो उत्पन्न भी हुईं वे रस, वीर्य और स्वादसे हीन हो गईं ॥ ५८ ॥

ओषधीनां क्षये जाते प्राणिनामपि संक्षयः ।
कृशाश्चासन्प्रजाः सर्वाः क्षीयमाणे निशाकरे ॥ ५९ ॥
औषधियोंका नाश होनेसे सब प्राणियोंका नाश होने लगा; इस प्रकार चन्द्रमाके क्षयके कारण सब प्रजा दुर्बल और हीन हो गयी ॥ ५९ ॥

ततो देवाः समागम्य सोममूचुर्महीपते ।
किमिदं भवतो रूपमीदृशं न प्रकाशते ॥ ६० ॥
प्रजापते ! तब सब देवता चन्द्रमाके पास जाकर बोले, कि आपका यह रूप अब कैसे हो गया ? आपमें पहिलेके समान तेज क्यों नहीं रहा ? यह प्रकाशित क्यों नहीं होता है ? ॥ ६० ॥

*

कारणं ब्रूहि नः सर्वं येनेदं ते महद्भयम् ।
श्रुत्वा तु वचनं त्वत्तो विधास्यामस्ततो जयम् ॥ ६१ ॥

यह सब कारण आप हमसे कहिये, जिससे यह महान् भय आपको प्राप्त हुआ। आपका कहना सुनकर हम लोग उसका उपाय करेंगे ॥ ६१ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच सर्वांस्ताञ्शशलक्षणः ।
शापं च कारणं चैव यक्ष्माणं च तथात्मनः ॥ ६२ ॥

देवताओंके वचन सुन उन सबको चन्द्रमा बोले, कि दक्ष प्रजापतिने शाप दिया है, इसलिये हमें यक्ष्मारोग हो गया है ॥ ६२ ॥

देवास्तस्य वचः श्रुत्वा गत्वा दक्षमथाब्रुवन् ।
प्रसीद भगवन्सोमे शापश्चैष निवर्त्यताम् ॥ ६३ ॥

चन्द्रमाके वचन सुन सब देवता दक्ष प्रजापतिके पास जाकर कहने लगे कि, हे भगवन् ! अब आप चन्द्रमाके ऊपर प्रसन्न होकर, इस शापको लौटा लीजिये ॥ ६३ ॥

असौ हि चन्द्रमाः क्षीणः किंचिच्छेषो हि लक्ष्यते ।
क्षयाच्चैवास्य देवेश प्रजाश्चापि गताः क्षयम् ॥ ६४ ॥

क्योंकि चन्द्रमा क्षीण हो चुके हैं और अब बहुत थोडे शेष हैं, देवेश ! इनके क्षीण होनेसे सब प्रजा भी क्षीण हो गयी है ॥ ६४ ॥

वीरुदोषधयश्चैव बीजानि विविधानि च ।
तथा वयं लोकगुरो प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ६५ ॥

इसलिये आप कृपा कीजिये, चन्द्रमाके क्षीण होनेसे लता, औषधी और विविध बीज नहीं रहेंगे, औषधी न रहनेसे हम लोग कैसे रहेंगे ? लोकगुरो ! यह विचार कर आप चन्द्रमापर कृपा कीजिये ॥ ६५ ॥

एवमुक्तस्तदा चिन्त्य प्राह वाक्यं प्रजापतिः ।
नैतच्छक्यं मम वचो व्यावर्तयितुमन्यथा ।
हेतुना तु महाभागा निवर्तिष्यति केनचित् ॥ ६६ ॥

तब देवताओंके वचन सुन विचार करके दक्ष प्रजापति बोले- हे महाभाग ! हमारा शाप वृथा नहीं हो सकता, कुछ कारणसे वह दूर हो जायगा ॥ ६६ ॥

समं वर्ततु सर्वासु शशी भार्यासु नित्यशः ।
सरस्वत्या वरे तीर्थे उन्मज्जञ्शशलक्षणः ।
पुनर्वर्धिष्यते देवास्तद्वै सत्यं वचो मम ॥ ६७ ॥

यदि चन्द्रमा अपनी सब पत्नियोंसे समान प्रेम करें, तो थोडे ही किसी कारणसे उनका शाप दूर कर सकते हैं, उपाय हम बतला देते हैं यदि चन्द्रमा सरस्वतीके श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करें तो इनका तेज बढकर फिर वैसा ही हो जायगा; हे देवो ! हमारे यह वचन सत्य हैं ॥ ६७ ॥

मासार्धं च क्षयं सोमो नित्यमेव गमिष्यति ।
मासार्धं च सदा वृद्धिं सत्यमेतद्वचो मम ॥ ६८ ॥

परन्तु इतना शाप बना ही रहेगा; आधे महीनेतक प्रतिदिन चन्द्रमा क्षीण हुआ करेंगे और आधे महिनेतक सदा बढा करेंगे, मेरा यह वचन सत्य होगा ॥ ६८ ॥

सरस्वतीं ततः सोमो जगाम ऋषिशासनात् ।
प्रभासं परमं तीर्थं सरस्वत्या जगाम ह ॥ ६९ ॥

ऋषि–दक्ष प्रजापतिके इस आज्ञासे चन्द्रमा सरस्वतीके श्रेष्ठ तीर्थ प्रभासमें गये ॥ ६९ ॥

अमावास्यां महातेजास्तत्रोन्मज्जन्महाद्युतिः ।
लोकान्प्रभासयामास शीतांशुत्वमवाप च ॥ ७० ॥

महातेजस्वी, महाकान्तिमान् चन्द्रमा ऋषियोंकी आज्ञासे अमावस तिथिको सरस्वती तीर्थमें स्नानको पहुंचे तब उनका तेज बढने लगा और उनको शीतल किरण प्राप्त हुई और वे जगत्को प्रकाशित करने लगे ॥ ७० ॥

देवाश्च सर्वे राजेन्द्र प्रभासं प्राप्य पुष्कलम् ।
सोमेन सहिता भूत्वा दक्षस्य प्रमुखेऽभवन् ॥ ७१ ॥

राजेन्द्र ! तब सब देवता सोमके साथ श्रेष्ठ प्रभासक्षेत्रमें जाकर दक्ष· प्रजापतिके पास जाकर उनको प्रणाम करने लगे ॥ ७१ ॥

ततः प्रजापतिः सर्वा विससर्जाथ देवताः ।
सोमं च भगवान्प्रीतो भूयो वचनमब्रवीत् ॥ ७२ ॥

फिर भगवान् दक्ष प्रजापतिने सब देवताओंको बिदा करके, चन्द्रमासे प्रसन्न होकर कहा ॥ ७२ ॥

मावमंस्थाः स्त्रियः पुत्र मा च विप्रान्कदाचन ।
गच्छ युक्तः सदा भूत्वा कुरु वै शासनं मम ॥ ७३ ॥

हे पुत्र ! तुम कभी अपनी स्त्रियों और द्विजोंका अपमान न करना । जाओ, सदा सावधान रहकर हमारी आज्ञामें रहना ॥ ७३ ॥

स विसृष्टो महाराज जगामाथ स्वमालयम् ।
प्रजाश्च मुदिता भूत्वा भोजने च यथा पुरा ॥ ७४ ॥

महाराज ! यह कहकर दक्ष प्रजापतिने चन्द्रमाको विदा किया, चन्द्रमा भी उनसे विदा होकर अपने घर चले गये; तब सब देवता और प्रजा पहिलेके समान प्रसन्न होकर रहने लगे ॥७४॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यथा शप्तो निशाकरः ।
प्रभासं च यथा तीर्थं तीर्थानां प्रवरं ह्यभूत् ॥ ७५ ॥

हमने जिस प्रकार चन्द्रमाको शाप हुआ था और जैसे प्रभासक्षेत्र सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ हुआ सो सब कथा तुमसे कही ॥ ७५ ॥

अमावास्यां महाराज नित्यशः शशलक्षणः ।
स्नात्वा ह्याप्यायते श्रीमान्प्रभासे तीर्थ उत्तमे ॥ ७६ ॥

महाराज! उस दिनसे चन्द्रमा सदा अमावसको उत्तम प्रभासतीर्थमें स्नान करते हैं और उनका तेज बढता है ॥ ७६ ॥

अतश्चैनं प्रजानन्ति प्रभासमिति भूमिप ।
प्रभां हि परमां लेभे तस्मिन्नुन्मज्ज्य चन्द्रमाः ॥ ७७ ॥

राजन्! इस तीर्थमें चन्द्रमाने स्नान करके उत्तम प्रभा प्राप्त की, इसलिये लोग इसे प्रभास नामसे जानते हैं ॥ ७७ ॥

ततस्तु चमसोद्भेदमच्युतस्त्वगमद्बली ।
चमसोद्भेद इत्येवं यं जनाः कथयन्त्युत ॥ ७८ ॥

यहांसे बलराम चमसोद्भेद नामक तीर्थमें गये, जिसको सब लोग चमसोद्भेद नामसे ही बोलते हैं ॥ ७८ ॥

तत्र दत्त्वा च दानानि विशिष्टानि हलायुधः ।
उषित्वा रजनीमेकां स्नात्वा च विधिवत्तदा ॥ ७९ ॥

हलधारी बलराम वहां विधिपूर्वक स्नान करके ब्राह्मणोंको बहुत दान देकर, एक रात्रि रहे ॥ ७९ ॥

उदपानमथागच्छत्त्वरावान्केशवाग्रजः ।
आद्यं स्वस्त्ययनं चैव तत्रावाप्य महत्फलम् ॥ ८० ॥

फिर श्रीकृष्णके बडे भाई शीघ्रता सहित कल्याणकारी आदि तीर्थ उदपानतीर्थको आ गये । यहां आनेसे महान् फल प्राप्त होता है ॥ ८० ॥

स्निग्धत्वादोषधीनां च भूमेश्च जनमेजय ।
जानन्ति सिद्धा राजेन्द्र नष्टामपि सरस्वतीम् ॥ ८१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ १८५२ ॥

जनमेजय राजेन्द्र! जहां औषधियोंकी स्निग्धता और पृथ्वीकी आर्द्रता हो वहां सिद्ध लोग कहते हैं कि यहां अदृश्य सरस्वती हैं ॥ ८१ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें चौतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥ १८५२ ॥

: ३५ :

वैशंपायन उवाच

तस्मान्नदीगतं चापि उदपानं यशस्विनः ।
त्रितस्य च महाराज जगामाथ हलायुधः ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– महाराज ! वहांसे बलराम उदपान नामक तीर्थमें गये, उस ही तीर्थमें महायशस्वी तृत नामक मुनिको परमपद लाभ हुआ था । यह तीर्थ सरस्वती नदीमें है ॥ १ ॥

तत्र दत्त्वा बहु द्रव्यं पूजयित्वा तथा द्विजान् ।
उपस्पृश्य च तत्रैव प्रहृष्टो मुसलायुधः ॥ २ ॥

उस स्थानपर मुसलधारी बलरामने जलका स्पर्श करके, बहुत द्रव्य दान करके, ब्राह्मणोंकी पूजा की और वे आनन्दित हुए ॥ २ ॥

तत्र धर्मपरो ह्यासीत्त्रितः स सुमहातपाः ।
कूपे च वसता तेन सोमः पीतो महात्मना ॥ ३ ॥

इसी स्थानमें महातपस्वी त्रित नामक मुनिने धर्मपरायण होकर रहते थे । उन महात्माने कुएंमें रहकर सोम पिया था ॥ ३ ॥

तत्र चैनं समुत्सृज्य भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान् ।
ततस्तौ वै शशापाथ त्रितो ब्राह्मणसत्तमः ॥ ४ ॥

उनके दोनों भाई उन्हें वहीं छोडकर घरको चले गये थे । तब ब्राह्मणश्रेष्ठ त्रितने अपने दोनों भाइयोंको शाप दिया था ॥ ४ ॥

जनमेजय उवाच

उदपानं कथं ब्रह्मन्कथं च सुमहातपाः ।
पतितः किं च संत्यक्तो भ्रातृभ्यां द्विजसत्तमः ॥ ५ ॥

जनमेजय बोले– हे ब्रह्मन् ! इस तीर्थका नाम उदपान क्यों हुआ ? वे महातपस्वी ब्राह्मण-श्रेष्ठ त्रित कुएंमें क्यों गिरे थे ? उनके भाई उनको कुएंमें पडे छोड क्यों चले गये थे ? ॥५॥

कूपे कथं च हित्वैनं भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान् ।
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन्यदि श्राव्यं हि मन्यसे ॥ ६ ॥

किस कारण उनके दोनों भाई उन्हें कुएंमें ही रखकर घर चले गये थे ? ब्रह्मन् ! आप यह कथा हमसे कहने योग्य समझे तो कहिये ॥ ६ ॥

वैशंपायन उवाच

आसन्पूर्वयुगे राजन्मुनयो भ्रातरस्त्रयः ।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसंनिभाः ॥ ७ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् ! पहिले युगमें तीन सहोदर भाई थे, वे तीनों ही मुनि थे । उनके नाम एकत, द्वित और त्रित ऐसे थे । वे सब सूर्यके समान तेजस्वी ॥ ७ ॥

सर्वे प्रजापतिसमाः प्रजावन्तस्तथैव च ।
ब्रह्मलोकजितः सर्वे तपसा ब्रह्मवादिनः ॥ ८ ॥

प्रजापतिके समान संतानवाले, महात्मा, तपसे ब्रह्म लोकको जीतनेवाले और ब्रह्मवादी थे ॥८॥

तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च ।
अभवद्गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा ॥ ९ ॥

उनके नियम, तप और इंद्रिय निग्रहसे उनके धर्मपरायण पिता गौतम सदा प्रसन्न रहते थे ॥ ९ ॥

स तु दीर्घेण कालेन तेषां प्रीतिमवाप्य च ।
जगाम भगवान्स्थानमनुरूपमिवात्मनः ॥ १० ॥

उन पुत्रोंके सदाचारसे प्रसन्न रहते हुए वे फिर बहुत दिनोंके पश्चात् गौतम अपने पुण्यके फलसे ब्रह्म लोकको चले गये ॥ १० ॥

राजानस्तस्य ये पूर्वे याज्या ह्यासन्महात्मनः ।
ते सर्वे स्वर्गते तस्मिंस्तस्य पुत्रानपूजयन् ॥ ११ ॥

महात्मा गौतमके स्वर्गवासके पश्चात् उनके जो राजा यजमान थे, वे सब गौतमके तीनों पुत्रोंका वैसा ही आदर करने लगे ॥ ११ ॥

तेषां तु कर्मणा राजंस्तथैवाध्ययनेन च ।
त्रितः स श्रेष्ठतां प्राप यथैवास्य पिता तथा ॥ १२ ॥

राजन् ! उन तीनोंमें अपनी विद्या और कर्मसे त्रितने श्रेष्ठता प्राप्त की थी । ये अपने पिता गौतम मुनिके समान थे ॥ १२ ॥

तं स्म सर्वे महाभागा मुनयः पुण्यलक्षणाः ।
अपूजयन्महाभागं तथा विद्वत्तयैव तु ॥ १३ ॥

महात्मा और पुण्यात्मा सब मुनि भी महाभाग और विद्वान् त्रितको गौतमके समान पूज्य मानते थे ॥ १३ ॥

कदाचिद्धि ततो राजन्भ्रातरावेकतद्वितौ ।
यज्ञार्थं चक्रतुश्चित्तं धनार्थं च विशेषतः ॥ १४ ॥

राजन् ! तभी एक दिन उनके दोनों भाई एकत और द्वितने विशेष करके यज्ञ और धनके लिये विचार करने लगे ॥ १४ ॥

तयोश्चिन्ता समभवत्त्रितं गृह्य परन्तप ।
याज्यान्सर्वानुपादाय प्रतिगृह्य पशूंस्ततः ॥ १५ ॥

शत्रुतापन ! उनका यह विचार हुआ कि त्रितको साथ लेकर यजमानोंका यज्ञ करावें और उनसे दानमें पशु प्राप्त करके ॥ १५ ॥

सोमं पास्यामहे हृष्टाः प्राप्य यज्ञं महाफलम् ।
चक्रुश्चैव महाराज भ्रातरस्त्रय एव ह ॥ १६ ॥

महाफलदायी यज्ञ करें और, महाराज ! उसीमें आनन्दपूर्वक सोमरस पीवें। फिर तीनों भाइयोंने ऐसा विचार करके, वैसा ही किया ॥ १६ ॥

तथा तु ते परिक्रम्य याज्यान्सर्वान्पशून्प्रति ।
याजयित्वा ततो याज्याँल्लब्ध्वा च सुबहून्पशून् ॥ १७ ॥

यजमानोंके पास पशुओंके लाभके लिये गये और उनसे यज्ञ करवाके उस कर्मसे उन्होंने बहुत पशु प्राप्त किये ॥ १७ ॥

याज्येन कर्मणा तेन प्रतिगृह्य विधानतः ।
प्राचीं दिशं महात्मान आजग्मुस्ते महर्षयः ॥ १८ ॥

विधिपूर्वक यज्ञ कर्म करके उन पशुओंको लेकर वे महात्मा महर्षि पूर्व दिशाकी ओर चले गये ॥ १८ ॥

त्रितस्तेषां महाराज पुरस्ताद्याति हृष्टवत् ।
एकतश्च द्वितश्चैव पृष्ठतः कालयन्पशून् ॥ १९ ॥

महाराज ! उस समय प्रसन्न त्रित तीनों महात्मा ऋषियोंके आगे प्रसन्न हुए चले जाते थे और पीछेसे एकत और द्वित दोनों भाई पशुओंको हांकते चले आते थे ॥ १९ ॥

तयोश्चिन्ता समभवद्दृष्ट्वा पशुगणं महत् ।
कथं न स्युरिमा गाव आवाभ्यां वै विना त्रितम् ॥ २० ॥

तब बहुत गौओंका वह महान् समुदाय देखकर दोनों भाइयोंने विचार किया कि ऐसा कुछ उपाय करना चाहिये, कि जिससे सब गौएं हम ही दोनोंको मिलें और त्रितको न मिलें ॥२०॥

तावन्योन्यं समाभाष्य एकतश्च द्वितश्च ह ।
यदूचतुर्मिथः पापौ तन्निबोध जनेश्वर ॥ २१ ॥

जनेश्वर ! तब उन एकत और द्वित दोनों पापियोंने परस्पर बातचीत करके जो कुछ आपसमें कहा, वह कहता हूं, सुनो ॥ २१ ॥

त्रितो यज्ञेषु कुशलस्त्रितो वेदेषु निष्ठितः ।
अन्यास्त्रितो बहुतरा गावः समुपलप्स्यते ॥ २२ ॥

त्रित यज्ञकर्ममें बहुत कुशल और वेदनिष्णात् हैं, इसलिये इन्हें और भी बहुत गौएं मिल जायेंगी ॥ २२ ॥

तदावां सहितौ भूत्वा गाः प्रकाल्य व्रजावहे ।
त्रितोऽपि गच्छतां काममावाभ्यां वै विनाकृतः ॥ २३ ॥

इस समय हम दोनों मिलकर इन सब गौओंको लेकर चल दें और त्रित हमसे जुदा होकर जहां चाहे वहां जायं ॥ २३ ॥

तेषामागच्छतां रात्रौ पथिस्थानो वृकोऽभवत् ।
तथा कूपोऽविदूरेऽभूत्सरस्वत्यास्तटे महान् ॥ २४ ॥

त्रित भी रात्रिहीमें उन दोनों भाइयोंके साथ ही सङ्गमें चले, तब मार्गमें एक भेडिया मिला मार्गके पास ही सरस्वतीके तटपर एक बडे कूवां था ॥ २४ ॥

अथ त्रितो वृकं दृष्ट्वा पथि तिष्ठन्तमग्रतः ।
तद्भयादपसर्पन्वै तस्मिन्कूपे पपात ह ।
अगाधे सुमहाघोरे सर्वभूतभयंकरे ॥ २५ ॥

तब त्रित अपने सामने भेडियेको खडे देखकर भयसे भागे । भागते भागते सब प्राणियोंके लिये भयानक महाघोर और बहुत गहरे कुएंमें गिर पडे ॥ २५ ॥

त्रितस्ततो महाभागः कूपस्थो मुनिसत्तमः ।
आर्तनादं ततश्चक्रे तौ तु शुश्रुवतुर्मुनी ॥ २६ ॥

फिर महाभाग मुनिश्रेष्ठ त्रितने उस कुएंमें गिरनेपर ऊंचे स्वरसे करुण शब्द किया, उन दोनों मुनि भाइयोंने उस शब्दको सुना ॥ २६ ॥

तं ज्ञात्वा पतितं कूपे भ्रातरावेकतद्वितौ ।
वृकत्रासाच्च लोभाच्च समुत्सृज्य प्रजग्मतुः ॥ २७ ॥

और जान लिया कि, त्रित कुएमें गिर गये, परन्तु दोनों भाई एकत और द्वित भेडियेके डरसे और पशुओंके लोभसे उन्हे वहीं छोडकर चले गये ॥ २७ ॥

भ्रातृभ्यां पशुलुब्धाभ्यामुत्सृष्टः स महातपाः ।
उदपाने महाराज निर्जले पांसुसंवृते ॥ २८ ॥

महाराज ! पशुओंके लोभसे दोनों भाइयोंने महातपस्वी त्रितको धूलमट्टीसे भरे निर्जल कुएंमें ही छोड दिया ॥ २८ ॥

त्रित आत्मानमालक्ष्य कूपे वीरुत्तृणावृते ।
निमग्नं भरतश्रेष्ठ पापकृन्नरके यथा ॥ २९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! महात्मा त्रित अपने लोभी भाइयोंसे छूटकर जल रहित लता तृणके और धूलके भरे हुए कुएंमें गिरकर अपनेको नरकवासी पापीके समान मानने लगे ॥ २९ ॥

बुद्धया ह्यगणयत्प्राज्ञो मृत्योर्भीतो ह्यसोमपः ।
सोमः कथं नु पातव्य इहस्थेन मया भवेत् ॥ ३० ॥

फिर मृत्युसे भयभीत और सोमपानसे रहित हुए विद्वान् त्रित अपनी बुद्धिसे विचार करने लगे कि इस कुएंमें गिरा हुआ रहकर मैं कैसे सोमपान कर सकूंगा ? ॥ ३० ॥

स एवमनुसंचिन्त्य तस्मिन्कूपे महातपाः ।
ददर्श वीरुधं तत्र लम्बमानां यदृच्छया ॥ ३१ ॥

अनन्तर इस तरह विचार करते उस महातपस्वीने उस कुएंमें एक लटकती हुई लता देखी जो प्रारब्धसे वहां बिखरी हुई थी ॥ ३१ ॥

पांसुग्रस्ते ततः कूपे विचिन्त्य सलिलं मुनिः ।
अग्नीन्संकल्पयामास होत्रे चात्मानमेव च ॥ ३२ ॥

फिर मुनिने उस धूल–मट्टी भरे कुएंमें जलकी कल्पना की और संकल्प करके अग्निको स्थापित किया। होताके रूपमें स्वयंको प्रतिष्ठापना कर दी ॥ ३२ ॥

ततस्तां वीरुधं सोमं संकल्प्य सुमहातपाः ।
ऋचो यजूंषि सामानि मनसा चिन्तयन्मुनिः ।
ग्रावाणः शर्कराः कृत्वा प्रचक्रेऽभिषवं नृप ॥ ३३ ॥

तदनन्तर महातपस्वीने उस घांसको सोम संकल्प करके, मनसे ही ऋक् , यजु और सामवेद पढना आरम्भ किया। नृप ! उन ही धूलिकणोंमें पत्थरकी कल्पना करके पीसकर लतासे सोमरस निकाला ॥ ३३ ॥

आज्यं च सलिलं चक्रे भागांश्च त्रिदिवौकसाम् ।
सोमस्याभिषवं कृत्वा चकार तुमुलं ध्वनिम् ॥ ३४ ॥

पानीमें घीका संकल्प करके उन्होंने देवताओंके भाग निकाले और सोमरस निकालकर उसकी आहुति देते हुए ऊंचे स्वरसे वेद पढना आरम्भ किया ॥ ३४ ॥

स चाविशद्दिवं राजन्स्वरः शैक्षस्त्रितस्य वै ।
समवाप च तं यज्ञं यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ॥ ३५ ॥

राजन् ! ब्रह्मवादियोंके कहनेके अनुसार वह यज्ञ पूर्ण करके, किया हुआ त्रितका वेदपठनका वह शब्द आकाशतक फैल गया ॥ ३५ ॥

×

वर्तमाने तथा यज्ञे त्रितस्य सुमहात्मनः ।
आविग्नं त्रिदिवं सर्वं कारणं च न बुध्यते ॥ ३६ ॥

महात्मा त्रितका उस प्रकार जब यज्ञ चालू था, तब उस महायज्ञको सुनके देवता घबडाने लगे। परन्तु किसीको इसका कारण मालूम नहीं हुआ ॥ ३६ ॥

ततः सुतुमुलं शब्दं शुश्रावाथ बृहस्पतिः ।
श्रुत्वा चैवाब्रवीद्देवान्सर्वान्देवपुरोहितः ॥ ३७ ॥

तब उस वेदमंत्रोंके तुमुल शब्दको सुनकर देवताओंके पुरोहित बृहस्पति देवोंसे बोले ॥३७॥

त्रितस्य वर्तते यज्ञस्तत्र गच्छामहे सुराः ।
स हि क्रुद्धः सृजेदन्यान्देवानपि महातपाः ॥ ३८ ॥

देवो ! महात्मा त्रितने यज्ञ किया है, हम सब लोग वहींको चलें, यदि हम लोग न चलेंगे, तो वे महातपस्वी क्रुद्ध होकर दूसरे देवताओंकी निर्मिति करेंगे ॥ ३८ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सहिताः सर्वदेवताः ।
प्रययुस्तत्र यत्रासौ त्रितयज्ञः प्रवर्तते ॥ ३९ ॥

बृहस्पतिके यह वचन सुनके सब देवता मिलकर जहां महात्मा त्रितका यज्ञ हो रहा था वहां पहुंचे ॥ ३९ ॥

ते तत्र गत्वा विबुधास्तं कूपं यत्र स त्रितः ।
ददृशुस्तं महात्मानं दीक्षितं यज्ञकर्मसु ॥ ४० ॥

वहां जाकर देवोंने त्रित मुनि जिसमें थे, उस कुएंको देखा और यज्ञकर्ममें दीक्षित हुए महात्मा त्रितको भी देखा ॥ ४० ॥

दृष्ट्वा चैनं महात्मानं श्रिया परमया युतम् ।
ऊचुश्चाथ महाभागं प्राप्ता भागार्थिनो वयम् ॥ ४१ ॥

वे महात्मा कुएंमें अत्यंत तेजसे प्रकाशित हो रहे हैं ऐसा देखकर, अनन्तर सब देवता उन महाभागको बोले, हम लोग अपना अपना भाग लेनेको तुम्हारे पास आये हैं ॥ ४१ ॥

अथाब्रवीदृषिर्देवान्पश्यध्वं मां दिवौकसः ।
अस्मिन्प्रतिभये कूपे निमग्नं नष्टचेतसम् ॥ ४२ ॥

तब त्रित ऋषि देवोंसे बोले— हे देवताओं ! देखो, हम इस भयानक कुएंमें पडे हैं, हमें कुछ चैतन्यता भी नहीं है ॥ ४२ ॥

ततस्त्रितो महाराज भागांस्तेषां यथाविधि ।
मन्त्रयुक्तान्समददात्ते च प्रीतास्तदाभवन् ॥ ४३ ॥

महाराज ! फिर त्रितने यथाविधि मन्त्रोंके सहित देवताओंको उनके भाग दिये, वे लोग भी अपना अपना भाग पाकर प्रसन्न हो गये ॥ ४३ ॥

ततो यथाविधि प्राप्तान्भागान्प्राप्य दिवौकसः।
प्रीतात्मानो ददुस्तस्मै वरान्यान्मनसेच्छति ॥ ४४ ॥

यथाविधि प्राप्त हुए भागोंको लेकर, संतुष्ट हुए देवताओंने उनको इच्छित वर दिया ॥ ४४ ॥

स तु वव्रे वरं देवांस्त्रातुमर्हथ मामितः।
यश्चेहोपस्पृशेत्कूपे स सोमपगतिं लभेत् ॥ ४५ ॥

देवताओंसे वर मांगते हुए त्रित बोले, हमें इस कुएंसे आप निकालो और जो मनुष्य इस कुएंको छूवे, उसको सोमपान करनेवालोंकी गति प्राप्त हो ॥ ४५ ॥

तत्र चोर्मिमती राजन्नुत्पपात सरस्वती।
तयोत्क्षिप्तस्त्रितस्तस्थौ पूजयंस्त्रिदिवौकसः ॥ ४६ ॥

हे राजन्! उस ही समय उस कुएंमें उमंग कर सरस्वती नदी निकली और उसने त्रितको ऊपरको उछाल दिया और वे बाहर आये। फिर उन्होंने देवताओंका पूजन किया ॥ ४६ ॥

तथेति चोक्त्वा विबुधा जग्मू राजन्यथागतम्।
त्रितश्चाप्यगमत्प्रीतः स्वमेव निलयं तदा ॥ ४७ ॥

राजन्! 'तथास्तु' कहकर सब देव जैसे आये थे वैसे ही चले गये। फिर त्रित भी प्रसन्न होते हुए अपने घरको लौट आये ॥ ४७ ॥

क्रुद्धः स तु समासाद्य तावृषी भ्रातरौ तदा।
उवाच परुषं वाक्यं शशाप च महातपाः ॥ ४८ ॥

और अपने दोनों ऋषि भाइयोंको मिलकर क्रोध करके महातपस्वी कठोर वचनसे शापित करते हुए बोले ॥ ४८ ॥

पशुलुब्धौ युवां यस्मान्मामुत्सृज्य प्रधावितौ।
तस्माद्रूपेण तेषां वै दंष्ट्रिणामभितश्चरौ ॥ ४९ ॥

भवितारौ मया शप्तौ पापेनानेन कर्मणा।
प्रसवश्चैव युवयोर्गोलाङ्गूलर्क्षवानराः ॥ ५० ॥

तुम लोग पशुओंके लोभसे हमें जङ्गलमें अकेला छोडकर भाग आये थे। इसलिये उस पाप कर्मसे हम तुम्हें शाप देते हैं कि तुम लोग बडे बडे दांतवाले भेडिये बनकर जगत्में घूमोगे, तुम्हारी संतानें गोलाङ्गूल, रीछ और बन्दरके रूपमें होगी ॥ ४९–५० ॥

इत्युक्ते तु तदा तेन क्षणादेव विशां पते।
तथाभूतावदृश्येतां वचनात्सत्यवादिनः ॥ ५१ ॥

पृथ्वीपते! इस सत्यवादीके यह वचन निकलते ही उसी क्षण वे दोनों भाई भेडिये हो गये ॥ ५१ ॥

तत्राप्यमितविक्रान्तः स्पृष्ट्वा तोयं हलायुधः ।
दत्त्वा च विविधान्दायान्पूजयित्वा च वै द्विजान् ॥ ५२ ॥

अमित पराक्रमी बलरामने उस तीर्थके जलको स्पर्श करके, ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें विविध प्रकारका धन दान दिया ॥ ५२ ॥

उदपानं च तं दृष्ट्वा प्रशस्य च पुनः पुनः ।
नदीगतमदीनात्मा प्राप्तो विनशनं तदा ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ १९०६ ॥

सरस्वती नदीके अन्तर्गत उदपान तीर्थका दर्शन करके, पुनः पुनः उसकी स्तुति करते हुए वहांसे विनशन तीर्थको आये ॥ ५३ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ १९०६ ॥

: ३६ :

वैशंपायन उवाच

ततो विनशनं राजन्नाजगाम हलायुधः ।
शूद्राभीरान्प्रति द्वेषाद्यत्र नष्टा सरस्वती ॥ १ ॥

वैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् ! जनमेजय ! तब हलधारी बलराम विनशन तीर्थमें आये । यह वही स्थान था, जहां सरस्वती शूद्रों और अभीरोंसे द्वेष होनेसे नष्ट हो गई थी ॥ १ ॥

यस्मात्सा भरतश्रेष्ठ द्वेषान्नष्टा सरस्वती ।
तस्मात्तदृषयो नित्यं प्राहुर्विनशनेति ह ॥ २ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! जिस स्थानसे वह सरस्वती द्वेषके कारण नष्ट हुई, इस ही लिये मुनियोंने उसका नाम विनशन तीर्थ रक्खा है ॥ २ ॥

तच्चाप्युपस्पृश्य बलः सरस्वत्यां महाबलः ।
सुभूमिकं ततोऽगच्छत्सरस्वत्यास्तटे वरे ॥ ३ ॥

वहां सरस्वती नदीमें स्नान करके वहांसे चलकर महाबलवान् बलराम सरस्वतीके उत्तम तटपर सुभूमिक नामक तीर्थपर पहुंचे ॥ ३ ॥

तत्र चाप्सरसः शुभ्रा नित्यकालमतन्द्रिताः ।
क्रीडाभिर्विमलाभिश्च क्रीडन्ति विमलाननाः ॥ ४ ॥

इसी तीर्थपर सदा गौर भांतिवाली, अति उत्तम सुन्दर मुखवाली अप्रमत्त पवित्र अप्सराएं विमल क्रीडाएं करा करती हैं ॥ ४ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वा मासि मासि जनेश्वर ।
अभिगच्छन्ति तत्तीर्थं पुण्यं ब्राह्मणसेवितम् ॥ ५ ॥

हे प्रजानाथ! उस पुण्यतीर्थ स्थानपर प्रतिमास गन्धर्व सहित देवता आया करते हैं। ब्राह्मण लोग सदा ही उस तीर्थकी सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

तत्रादृश्यन्त गन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ।
समेत्य सहिता राजन्यथाप्राप्तं यथासुखम् ॥ ६ ॥

राजन्! उसी स्थानमें गन्धर्व और अप्सराएं मिलकर वहां आती और सुखपूर्वक विहार करती दिखायी देती हैं ॥ ६ ॥

तत्र मोदन्ति देवाश्च पितरश्च सवीरुधः ।
पुण्यैः पुष्पैः सदा दिव्यैः कीर्यमाणाः पुनः पुनः ॥ ७ ॥

वहां देवता और पितर लताओंके साथ आनन्दित होते हैं, उनके ऊपर सदा शुभ और दिव्य फूलोंकी वर्षा होती रहती है ॥ ७ ॥

आक्रीडभूमिः सा राजंस्तासामप्सरसां शुभा ।
सुभूमिकेति विख्याता सरस्वत्यास्तटे वरे ॥ ८ ॥

हे राजन्! वह सरस्वती नदीके श्रेष्ठ तटपरका स्थान अप्सराओंकी कल्याणमयी क्रीडाभूमि है, वहां अप्सराएं फूल वर्षाती हैं, और क्रीडा करती हैं। इसलिये सुभूमिक नामसे यह प्रख्यात है ॥ ८ ॥

तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वसु विप्रेषु माधवः ।
श्रुत्वा गीतं च तद्दिव्यं वादित्राणां च निःस्वनम् ॥ ९ ॥

इस स्थानपर बलरामने स्नान करके ब्राह्मणोंको बहुत धन दान दिया। दिव्य गीत और बाजाओंके स्वर सुने ॥ ९ ॥

छायाश्च विपुला दृष्ट्वा देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
गन्धर्वाणां ततस्तीर्थमागच्छद्रोहिणीसुतः ॥ १० ॥

देव, गन्धर्व और राक्षसोंकी अनेक मूर्तियोंका दर्शन किया। वहांसे चलकर रोहिणीपुत्र हलधर गन्धर्वतीर्थमें पहुंचे ॥ १० ॥

विश्वावसुमुखास्तत्र गन्धर्वास्तपसान्विताः ।
नृत्तवादित्रगीतं च कुर्वन्ति सुमनोरमम् ॥ ११ ॥

वहां तपस्वी विश्वावसु आदि गन्धर्व अत्यंत मनोहर गीतगाते वाद्य बजाते और नाचते रहते हैं ॥ ११ ॥

तत्र दत्त्वा हलधरो विप्रेभ्यो विविधं वसु ।
अजाविकं गोखरोष्ट्रं सुवर्णं रजतं तथा ॥ १२ ॥

वहां हलधर बलरामने ब्राह्मणोंको बकरी, भेड, गाय, गधे, ऊंट, सोना, चांदी, आदि विविध धन दान दिये ॥ १२ ॥

भोजयित्वा द्विजान्कामैः संतर्प्य च महाधनैः ।
प्रययौ सहितो विप्रैः स्तूयमानश्च माधवः ॥ १३ ॥

फिर ब्राह्मणोंको इच्छानुसार धन और भोजनसे सन्तुष्ट करके स्तुती सुनते हुए बलराम ब्राह्मणोंके सहित वहांसे चल दिये ॥ १३ ॥

तस्माद्गन्धर्वतीर्थाच्च महाबाहुररिंदमः ।
गर्गस्रोतो महातीर्थमाजगामैककुण्डली ॥ १४ ॥

उस गंधर्वतीर्थसे एक कुण्डलधारी शत्रुनाशन महाबाहु बलराम महातीर्थ गर्गश्रोत्रपर पहुंचे ॥ १४ ॥

यत्र गर्गेण वृद्धेन तपसा भावितात्मना ।
कालज्ञानगतिश्चैव ज्योतिषां च व्यतिक्रमः ॥ १५ ॥

इसी सरस्वतीके शुभ तीर्थ स्थानपर बैठकर महातमा तपस्वी पवित्रात्मा बूढे गर्गाचार्यने काल-ज्ञान तारोंकी गति और नक्षत्रोंके उलट फेर ॥ १५ ॥

उत्पाता दारुणाश्चैव शुभाश्च जनमेजय ।
सरस्वत्याः शुभे तीर्थे विहिता वै महात्मना ।
तस्य नाम्ना च तत्तीर्थं गर्गस्रोत इति स्मृतम् ॥ १६ ॥

अनेक घोर उत्पात और शुभ लक्षणोंको जाना था । जनमेजय ! इसीलिये इस तीर्थका नाम गर्गस्रोत्र बिदित हो गया ॥ १६ ॥

तत्र गर्गं महाभागमृषयः सुव्रता नृप ।
उपासांचक्रिरे नित्यं कालज्ञानं प्रति प्रभो ॥ १७ ॥

हे नृप ! प्रभो ! इस स्थानमें ज्योतिप पढनेके लिये श्रेष्ठ व्रतधारी अनेक मुनि महाभाग गर्गकी सदा सेवा करते थे ॥ १७ ॥

तत्र गत्वा महाराज बलः श्वेतानुलेपनः ।
विधिवद्धि धनं दत्त्वा मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ १८ ॥

महाराज ! वहां जाकर श्वेतचन्दनधारी बलरामने पवित्रात्मा तपस्वी ब्राह्मणोंको विधिके अनुसार बहुत धन दान दिया ॥ १८ ॥

उच्चावचांस्तथा भक्ष्यान्द्विजेभ्यो विप्रदाय सः।
नीलवासास्ततोऽगच्छच्छङ्खतीर्थं महायशाः ॥ १९ ॥

उस स्थानमें ब्राह्मणोंको उत्तम उत्तम भोजन कराकर नीलाम्बरधारी महायशस्वी बलराम शङ्खतीर्थमें पहुंचे ॥ १९ ॥

तत्रापश्यन्महाशङ्खं महामेरुमिवोच्छ्रितम्।
श्वेतपर्वतसंकाशमृषिसंघैर्निषेवितम्।
सरस्वत्यास्तटे जातं नगं तालध्वजो बली ॥ २० ॥

वहां जाकर तालध्वजावाले बलवान् बलरामने महान् मेरुके समान ऊंचा और श्वेत पर्वतके समान प्रकाशित ऐसा महाशङ्ख नामका वृक्ष देखा। उसके नीचे चारों ओर ऋषिओंके समूह तपस्या कर रहे थे, उस सरस्वतीके तटपर ही वह उत्तम वृक्ष उत्पन्न हुआ था ॥ २० ॥

यक्षा विद्याधराश्चैव राक्षसाश्चामितौजसः।
पिशाचाश्चामितबला यत्र सिद्धाः सहस्रशः ॥ २१ ॥

यक्ष, विद्याधर, महातेजस्वी राक्षस महाबलवान् पिशाच और सहस्रों सिद्ध उस वृक्षके पास रहते थे ॥ २१ ॥

ते सर्वे ह्यशनं त्यक्त्वा फलं तस्य वनस्पतेः।
व्रतैश्च नियमैश्चैव काले काले स्म भुञ्जते ॥ २२ ॥

वे सब भोजन छोडकर उसके चारों ओर व्रत और नियमोंका पालन करके तपस्या कर रहे थे और समय होनेपर उसीका फल खाते थे ॥ २२ ॥

प्राप्तैश्च नियमैस्तैस्तैर्विचरन्तः पृथक्पृथक्।
अदृश्यमाना मनुजैर्व्यचरन्पुरुषर्षभ ॥ २३ ॥

हे पुरुषर्षभ! वे प्राप्त नियमोंके अनुसार पृथक् पृथक् फिरते हुए मनुष्योंसे अदृश्य होकर घूमते थे ॥ २३ ॥

एवं ख्यातो नरपते लोकेऽस्मिन्स वनस्पतिः।
तत्र तीर्थं सरस्वत्याः पावनं लोकविश्रुतम् ॥ २४ ॥

पुरुषसिंह! इस प्रकार वह वनस्पति इस जगत्में प्रख्यात था। वह वृक्ष सरस्वतीका लोक-विख्यात पावन तीर्थ है ॥ २४ ॥

तस्मिंश्च यदुशार्दूलो दत्त्वा तीर्थे यशस्विनाम्।
ताम्रायसानि भाण्डानि वस्त्राणि विविधानि च ॥ २५ ॥

और फिर उस पवित्र लोक विख्यात तीर्थमें यदुकुलश्रेष्ठ बलरामने तांबे और लोहेके बरतन अनेक प्रकारके वस्त्र यशस्वी ब्राह्मणोंको दिये ॥ २५ ॥

पूजयित्वा द्विजांश्चैव पूजितश्च तपोधनैः ।
पुण्यं द्वैतवनं राजन्नाजगाम हलायुधः ॥ २६ ॥

उन्होंने ब्राह्मणोंका सत्कार किया, और तपस्वी ऋषियोंसे वे स्वयं पूजित हुए । राजन् ! वहांसे हलायुद्ध बलराम पवित्र द्वैत वनमें पहुंचे ॥ २६ ॥

तत्र गत्वा मुनीन्दृष्ट्वा नानावेषधरान्बलः ।
आप्लुत्य सलिले चापि पूजयामास वै द्विजान् ॥ २७ ॥

वहां बलरामने अनेक वेषधारी मुनियोंको देखा, फिर जलमें स्नान करके उन्होंने ब्राह्मणोंको पूजन किया ॥ २७ ॥

तथैव दत्त्वा विप्रेभ्यः परिभोगान्सुपुष्कलान् ।
ततः प्रायाद्धलो राजन्दक्षिणेन सरस्वतीम् ॥ २८ ॥

राजन् ! इसी प्रकार विप्रोंको अनेक योग सामाग्रीका बहुत दान देकर सरस्वतीके दक्षिण ओरको चले गये ॥ २८ ॥

गत्वा चैव महाबाहुर्नातिदूरं महायशाः ।
धर्मात्मा नागधन्वानं तीर्थमागदच्युतः ॥ २९ ॥

वहां थोडा दूर जाकर महाबाहु, महायशस्वी धर्मात्मा बलरामने नागधन्वा तीर्थको आ गये ॥ २९ ॥

यत्र पन्नगराजस्य वासुकेः संनिवेशनम् ।
महाद्युतेर्महाराज बहुभिः पन्नगैर्वृतम् ।
यत्रासन्नृषयः सिद्धाः सहस्राणि चतुर्दश ॥ ३० ॥

महाराज ! इस स्थानमें महातेजस्वी सर्प राजा वासुकिका निवासस्थान था, वहां सहस्रों सर्पोंसे घिरे हुए वह रहते थे, वहाँ चौदह हजार सिद्ध ऋषि निवास करते थे ॥ ३० ॥

यत्र देवाः समागम्य वासुकिं पन्नगोत्तमम् ।
सर्वपन्नगराजानमभ्यषिञ्चन्यथाविधि ।
पन्नगेभ्यो भयं तत्र विद्यते न स्म कौरव ॥ ३१ ॥

इसी स्थानपर सब देवताओंने आकर नागराज बासुकिका सब सर्पोंके राजपदपर विधिके अनुसार अभिषेक किया था । कौरव ! इसीलिये उस स्थानपर सर्पोंका डर नहीं था ॥ ३१ ॥

तत्रापि विधिवद्दत्त्वा विप्रेभ्यो रत्नसंचयान् ।
प्रायात्प्राचीं दिशं राजन्दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ३२ ॥

वहां उस तीर्थमें भी अनेक रत्न विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको दान करके, हे राजन् ! अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए पूर्व दिशाकी ओर चले ॥ ३२ ॥

आप्लुत्य बहुशो हृष्टस्तेषु तीर्थेषु लाङ्गली ।
दत्त्वा वसु द्विजातिभ्यो जगामाति तपस्विनः ॥ ३३ ॥
उन तीर्थोंमें अनेक बार स्नान करके हलधारी बलराम आनंदित हो गये । अत्यंत तपस्वी ब्राह्मणोंको धन दान करके वहांसे चल दिये ॥ ३३ ॥

तत्रस्थानृषिसंघांस्तानभिवाद्य हलायुधः ।
ततो रामोऽगमत्तीर्थमृषिभिः सेवितं महत् ॥ ३४ ॥
हलायुद्ध बलराम वहाँ रहनेवाले तपस्वी ऋषिसमुदायोंको प्रणाम करके, फिर महर्षिओंके सेवित महान् तीर्थको गये ॥ ३४ ॥

यत्र भूयो निपवृते प्राङ्मुखा वै सरस्वती ।
ऋषीणां नैमिषेयाणामवेक्षार्थं महात्मनाम् ॥ ३५ ॥
जहां सरस्वती पुनः पूर्व दिशाकी ओर लौट पडी है (सरस्वती नदी बहनेसे बन्द हो गई है)। नैमिषारण्यनिवासी महात्मा ऋषियोंके दर्शनके लिये ॥ ३५ ॥

निवृत्तां तां सरिच्छ्रेष्ठां तत्र दृष्ट्वा तु लाङ्गली ।
बभूव विस्मितो राजन्बलः श्वेतानुलेपनः ॥ ३६ ॥
पूर्व दिशाकी ओर लौटी नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीको देखकर, श्वेतचंदन चर्चित हलधारी बलराम आश्चर्यचकित हो गये ॥ ३६ ॥

जनमेजय उवाच
कस्मात्सरस्वती ब्रह्मन्निवृत्ता प्राङ्मुखी ततः ।
व्याख्यातुमेतदिच्छामि सर्वमध्वर्युसत्तम ॥ ३७ ॥
जनमेजय बोले– हे ब्रह्मन् ! हे यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ ! सरस्वती नदी किस लिये पीछे लौट-कर पूर्वकी ओर फिर बहने लगी ? हम यह सब कथा आपके मुखसे सुनना चाहते हैं ॥ ३७ ॥

कस्मिंश्च कारणे तत्र विस्मितो यदुनन्दनः ।
विनिवृत्ता सरिच्छ्रेष्ठा कथमेतद्द्विजोत्तम ॥ ३८ ॥
हे द्विजोत्तम ! वहां यदुनन्दन बलराम आश्चर्यचकित हुए, इसका कारण क्या था ? नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती फिर लौट गयी, यह कैसा हुआ था ? ॥ ३८ ॥

वैशंपायन उवाच
पूर्वं कृतयुगे राजन्नैमिषेयास्तपस्विनः ।
वर्तमाने सुबहुले सत्रे द्वादशवार्षिके ।
ऋषयो बहवो राजंस्तत्र संप्रतिपेदिरे ॥ ३९ ॥
श्री वैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् ! जनमेजय ! पहिले सत्ययुगमें बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाले एक महान् यज्ञका आरंभ किया था । उसमें नैमिषारण्यमें रहनेवाले तपस्वी ऋषि और दूसरे अनेक ऋषि आये थे ॥ ३९ ॥

*

उषित्वा च महाभागास्तस्मिन्सत्रे यथाविधि ।
निवृत्ते नैमिषेये वै सत्रे द्वादशवार्षिके ।
आजग्मुर्ऋषयस्तत्र बहवस्तीर्थकारणात् ॥ ४० ॥

उस यज्ञमें वे महाभाग ऋषि यथाविधि रहे थे । नैमिषारण्यवासियोंके उस द्वादश वार्षिक यज्ञके पूर्ण होनेपर बहुतसे ऋषि वहां तीर्थ सेवनके लिये आये ॥ ४० ॥

ऋषीणां बहुलत्वात्तु सरस्वत्या विशां पते ।
तीर्थानि नगरायन्ते कूले वै दक्षिणे तदा ॥ ४१ ॥

हे महाराज ! उस यज्ञमें इतने मुनि आये कि सरस्वतीके दक्षिण तटके सब तीर्थ नगरोंके समान दीखने लगे ॥ ४१ ॥

समन्तपञ्चकं यावत्तावत्ते द्विजसत्तमाः ।
तीर्थलोभान्नरव्याघ्र नद्यास्तीरं समाश्रिताः ॥ ४२ ॥

हे पुरुषसिंह ! तीर्थके लोभसे समन्त पञ्चक नामक तीर्थतक मुनिलोग सरस्वती नदीके तटपर रहे थे ॥ ४२ ॥

जुह्वतां तत्र तेषां तु मुनीनां भावितात्मनाम् ।
स्वाध्यायेनापि महता बभूवुः पूरिता दिशः ॥ ४३ ॥

पवित्रात्मा मुनियोंके करते हुए होमके धूंये और वेदपाठके उच्च शब्दसे दिशायें पूरित हो गईं ॥ ४३ ॥

अग्निहोत्रैस्ततस्तेषां हूयमानैर्महात्मनाम् ।
अशोभत सरिच्छ्रेष्ठा दीप्यमानैः समन्ततः ॥ ४४ ॥

चारों ओर उन महात्माओंकी प्रकाशित होनेवाली अग्निशालाओंसे नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती नदी सब ओर शोभित होने लगी ॥ ४४ ॥

वालखिल्या महाराज अश्मकुट्टाश्च तापसाः ।
दन्तोलूखलिनश्चान्ये संप्रक्षालास्तथापरे ॥ ४५ ॥

महाराज ! वालखिल्य, अश्मकुट्ट, दन्तोलूखल, संप्रक्षाला आदि अनेक ऋषि थे ॥ ४५ ॥

वायुभक्षा जलाहाराः पर्णभक्षाश्च तापसाः ।
नानानियमयुक्ताश्च तथा स्थण्डिलशायिनः ॥ ४६ ॥

कोई वायु, कोई जल और कोई पत्ते खाकर रहते थे और कोई अनेक नियम धारण किये थे, कोई वेदोंपर सोते थे ॥ ४६ ॥

आसन्वै मुनयस्तत्र सरस्वत्याः समीपतः ।
शोभयन्तः सरिच्छ्रेष्ठां गङ्गामिव दिवौकसः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार इन मुनियोंने नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीको इस प्रकार शोभित किया जैसे देवता गङ्गाको शोभित करते हैं ॥ ४७ ॥

ततः पश्चात्समापेतुर्ऋषयः सत्रयाजिनः ।
तेऽवकाशं न ददृशुः कुरुक्षेत्रे महाव्रताः ॥ ४८ ॥

तदनन्तर यज्ञ करनेवाले महान् व्रतधारी मुनि वहां आये । परंतु उन्होंने कुरुक्षेत्रमें अपने रहनेके लिये कुछ भी स्थान नहीं देखा ॥ ४८ ॥

ततो यज्ञोपवीतैस्ते तत्तीर्थं निर्मिमाय वै ।
जुहुवुश्चाग्निहोत्राणि चक्रुश्च विविधाः क्रियाः ॥ ४९ ॥

तब उन ऋषियोंने अपने यज्ञोपवीतोंसे उस तीर्थको बनाकर वहां अग्निहोत्रकी आहुतियां दी और विविध प्रकारके कर्म किये ॥ ४९ ॥

ततस्तमृषिसंघातं निराशं चिन्तयान्वितम् ।
दर्शयामास राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती ॥ ५० ॥

राजेन्द्र ! जब सरस्वतीने उन ऋषियोंको चिन्तासे व्याकुल और निराश देखा, तब उनको विविध कर्मोंके लिये उन्हें दर्शन दिया ॥ ५० ॥

ततः कुञ्जान्बहून्कृत्वा सन्निवृत्ता सरिद्वरा ।
ऋषीणां पुण्यतपसां कारुण्याज्जनमेजय ॥ ५१ ॥

हे जनमेजय ! अनन्तर अनेक कुञ्जोंको उत्पन्न करके नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती पीछे लौट गई, कारण कि उन पुण्य तपस्वी मुनियोंके ऊपर उन्होंने कृपा की थी ॥ ५१ ॥

ततो निवृत्य राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती ।
भूयः प्रतीच्यभिमुखी सुस्राव सरितां वरा ॥ ५२ ॥

राजेन्द्र ! उनके लिये लौटकर सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती फिर पश्चिमकी ओर बहने लगी ॥ ५२ ॥

अमोघा गमनं कृत्वा तेषां भूयो व्रजाम्यहम् ।
इत्यद्भुतं महच्चक्रे ततो राजन्महानदी ॥ ५३ ॥

राजन् ! मैं इन ऋषि-मुनियोंका गमन सफल बनाऊंगी और फिर जाऊंगी, यह सोचकर ही महानदी सरस्वतीने यह बडा आश्चर्यमय कर्म किया ॥ ५३ ॥

एवं स कुञ्जो राजेन्द्र नैमिषेय इति स्मृतः ।
कुरुक्षेत्रे कुरुश्रेष्ठ कुरुष्व महतीः क्रियाः ॥ ५४ ॥

हे राजेन्द्र ! इसलिये उस ही दिनसे इस कुञ्जका नाम नैमिषेय कुंज करके प्रसिद्ध है, हे कुरुश्रेष्ठ ! यह भी स्थान कुरुक्षेत्रहीमें है सो तुम भी वहां अनेक महान् कर्म करो ॥ ५४ ॥

तत्र कुञ्जान्बहून्दृष्ट्वा संनिवृत्तां च तां नदीम् ।
बभूव विस्मयस्तत्र रामस्याथ महात्मनः ॥ ५५ ॥

उस स्थानमें अनेक कुञ्ज और उस सरस्वती नदीको निवृत्त हुई देखकर महात्मा बलरामको आश्चर्य हुआ ॥ ५५ ॥

उपस्पृश्य तु तत्रापि विधिवद्यदुनन्दनः ।
दत्त्वा दायान्द्विजातिभ्यो भाण्डानि विविधानि च ।
भक्ष्यं पेयं च विविधं ब्राह्मणान्प्रत्यपादयत् ॥ ५६ ॥

वहां यदुनन्दन बलरामने विधिवत् स्नान और जलका स्पर्श करके, ब्राह्मणोंको धन और अनेक प्रकारके बरतन और अनेक प्रकारका खाने-पीनेकी वस्तुओंका दान किया ॥ ५६ ॥

ततः प्रायाद्बलो राजन्पूज्यमानो द्विजातिभिः ।
सरस्वतीतीर्थवरं नानाद्विजगणायुतम् ॥ ५७ ॥

अनन्तर ब्राह्मणोंसे पूजित होकर बलराम वहांसे चले और सरस्वतीके तीर्थोंमें श्रेष्ठ और अनेक ब्राह्मणोंके समुदायसे युक्त ॥ ५७ ॥

बदरेङ्गुदकाश्मर्यप्लक्षाश्वत्थविभीतकैः ।
वनसैश्च पलाशैश्च करीरैः पीलुभिस्तथा ॥ ५८ ॥

अनेक बेर, इङ्गुदी, खम्भारी, बडगद, पीपल, बहेडे, दाख, कंकोल, पलास, करील, पीलु ॥ ५८ ॥

सरस्वतीतीररुहैर्बन्धनैः स्यन्दनैस्तथा ।
परूषकवनैश्चैव बिल्वैराम्रातकैस्तथा ॥ ५९ ॥
अतिमुक्तकषण्डैश्च पारिजातैश्च शोभितम् ।
कदलीवनभूयिष्ठमिष्टं कान्तं मनोरमम् ॥ ६० ॥

परूष फालसे, बेल, आमले, अति मुक्तक पारिजात और आम आदि सरस्वतीके तटपर उगे हुए और अनेक प्रकारके प्रिय वृक्षोंसे शोभित, केलेके बगीचोंसे भरा हुआ वह तीर्थ देखनेमें, योग्य, प्रिय और मनोहर है ॥ ५९-६० ॥

वाय्वम्बुफलपर्णादैर्दन्तोलूखलिकैरपि ।
तथाश्मकुट्टैर्वानेयैर्मुनिभिर्बहुभिर्वृतम् ॥ ६१ ॥

वायु, जल, फल, और पत्ते खानेवाले, मुनियोंसे पूरित, दन्तोलूखल, अश्मकुट्ट, वानेय अनेक मुनियोंसे पूरित ॥ ६१ ॥

स्वाध्यायघोषसंघुष्टं मृगयूथशताकुलम् ।
अहिंस्रैर्धर्मपरमैर्नृभिरत्यन्तसेवितम् ॥ ६२ ॥

वेदोंके स्वाध्यायके शब्दसे पूरित, अनेक हरिनोंके सैंकडों झुण्डोंसे राजित हिंसारहित धार्मिक मनुष्योंसे सेवित ॥ ६२ ॥

सप्तसारस्वतं तीर्थमाजगाम हलायुधः ।
यत्र मङ्कणकः सिद्धस्तपस्तेपे महामुनिः ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ १९६९ ॥

उस सप्त सरस्वत नामक तीर्थमें मङ्कणक नामक सिद्धने तपस्या की थी। इस तीर्थमें हलधर बलराम आ गये ॥ ६३ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ १९६९ ॥

: ३७ :

जनमेजय उवाच

सप्तसारस्वतं कस्मात्कश्च मङ्कणको मुनिः ।
कथं सिद्धश्च भगवान्कश्चास्य नियमोऽभवत् ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– इस तीर्थका नाम सप्तसारस्वत क्यों हुआ ? मङ्कणक मुनि कौन थे ? कैसे सिद्ध हुए थे ? उन्होंने क्या नियम किया था ? ॥ १ ॥

कस्य वंशे समुत्पन्नः किं चाधीतं द्विजोत्तम ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विधिवद्द्विजसत्तम ॥ २ ॥

हे द्विजोत्तम ! किसके वंशमें उत्पन्न हुए थे ? और क्या पढे थे ? हम इस सब कथाको आपसे विवरणपूर्वक सुनना चाहते हैं ॥ २ ॥

वैशंपायन उवाच

राजन्सप्त सरस्वत्यो याभिर्व्याप्तमिदं जगत् ।
आहूता बलवद्भिर्हि तत्र तत्र सरस्वती ॥ ३ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् ! जगत्में सरस्वती नामकी सात नदियां हैं, और इनसे सब जगत् व्याप्त हो रहा है। तपस्वी मुनियोंने जहां सरस्वतीका आवाहन किया, वहां वे गयी हैं ॥ ३ ॥

सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला मानसह्रदा ।
सरस्वती ओघवती सुवेणुर्विमलोदका ॥ ४ ॥

उनके नाम ऐसे हैं– सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मानसह्रदा, सरस्वती, ओघवती, सुरेणु और विमलोदका ॥ ४ ॥

पितामहस्य महतो वर्तमाने महीतले ।
वितते यज्ञवाटे वै समेतेषु द्विजातिषु ॥ ५ ॥
जब महात्मा ब्रह्माने पृथ्वीपर एक महायज्ञ किया था और उसी समय उनकी विस्तृत यज्ञमंडपमें अनेक सिद्ध ब्राह्मण एकत्र हुए थे ॥ ५ ॥

पुण्याहघोषैर्विमलैर्वेदानां निनदैस्तथा ।
देवेषु चैव व्यग्रेषु तस्मिन्यज्ञविधौ तदा ॥ ६ ॥
जहां पुण्याहवाचनका निर्मलघोष और वेदमंत्रोंका शब्द हो रहा था। उस यज्ञको सफल करनेके लिये सब देवता मग्न हुए थे ॥ ६ ॥

तत्र चैव महाराज दीक्षिते प्रपितामहे ।
यजतस्तस्य सत्रेण सर्वकामसमृद्धिना ॥ ७ ॥
महाराज ! यज्ञ करनेके लिये ब्रह्माने दीक्षा ली थी । उनके यज्ञ करते समय सबकी इच्छाएं यज्ञसे फलद्रूप होती थीं ॥ ७ ॥

मनसा चिन्तिता ह्यर्था धर्मार्थकुशलैस्तदा ।
उपतिष्ठन्ति राजेन्द्र द्विजातींस्तत्र तत्र ह ॥ ८ ॥
राजेन्द्र ! धर्म, अर्थ कुशल लोग यज्ञके समय मनमें जिन पदार्थोंकी इच्छा करते थे, उनको वही फल उसी समय मिलता था ॥ ८ ॥

जगुश्च तत्र गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
वादित्राणि च दिव्यानि वादयामासुरञ्जसा ॥ ९ ॥
उस यज्ञमें गन्धर्व गाते थे, अप्सराएं नाचती थीं और दिव्य बाजे बजते थे ॥ ९ ॥

तस्य यज्ञस्य संपत्त्या तुतुषुर्देवता अपि ।
विस्मयं परमं जग्मुः किमु मानुषयोनयः ॥ १० ॥
उस यज्ञकी सामग्री वैभव देखकर देवता भी संतुष्ट थे और अत्यन्त आश्चर्य करते थे, फिर मनुष्योंकी तो कथा ही क्या है ? ॥ १० ॥

वर्तमाने तथा यज्ञे पुष्करस्थे पितामहे ।
अब्रुवनृषयो राजन्नायं यज्ञो महाफलः ।
न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती ॥ ११ ॥
राजन् ! जब पितामह ब्रह्माने इस यज्ञको पुष्करक्षेत्रमें रहकर करते थे, तब महात्मा ऋषियोंने कहा कि यह यज्ञ अभी महान् फलदायी नहीं हुआ है, क्योंकि यहां नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती दिखाई नहीं देती हैं ॥ ११ ॥

तच्छ्रुत्वा भगवान्प्रीतः सस्माराथ सरस्वतीम् ।
पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै ।
सुप्रभा नाम राजेन्द्र नाम्ना तत्र सरस्वती ॥ १२ ॥

यह सुनकर भगवान् ब्रह्माने आनन्दित होकर सरस्वतीको स्मरण करके पुष्करमें यज्ञके समय उनका आवाहन किया। राजेन्द्र ! तब वहां सरस्वती सुप्रभा नामसे प्रकट हो गयी ॥१२॥

तां दृष्ट्वा मुनयस्तुष्टा वेगयुक्तां सरस्वतीम् ।
पितामहं मानयंतीं क्रतुं ते बहु मेनिरे ॥ १३ ॥

उसको देख ऋषी लोग बहुत प्रसन्न हुए, ब्रह्माको प्रणाम करती हुई सरस्वतीको शीघ्र आते देख ब्राह्मणोंने कहा कि यह यज्ञ बहुत अच्छा हुआ ॥ १३ ॥

एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करेषु सरस्वती ।
पितामहार्थं संभूता तुष्ट्यर्थं च मनीषिणाम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार ब्रह्मा और मनीषी ब्राह्मणोंकी प्रसन्नताके लिये नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती पुष्करक्षेत्रमें प्रकट हुई ॥ १४ ॥

नैमिषे मुनयो राजन्समागम्य समासते ।
तत्र चित्राः कथा ह्यासन्वेदं प्रति जनेश्वर ॥ १५ ॥

हे राजन् ! जनेश्वर ! जब नैमिषारण्यमें अनेक मुनि इकट्ठे होकर रहे, तब वहां वेदके विषयमें अनेक प्रकारके विचित्र शास्त्रार्थ होने लगे ॥ १५ ॥

तत्र ते मुनयो ह्यासन्नानास्वाध्यायवेदिनः ।
ते समागम्य मुनयः सस्मरुर्वै सरस्वतीम् ॥ १६ ॥

वहांपर अनेक विषयोंको जाननेवाले मुनि रहते थे, वहीं उन मुनियोंने मिलकर सरस्वतीका ध्यान स्मरण किया ॥ १६ ॥

सा तु ध्याता महाराज ऋषिभिः सत्रयाजिभिः ।
समागतानां राजेन्द्र सहायार्थं महात्मनाम् ।
आजगाम महाभागा तत्र पुण्या सरस्वती ॥ १७ ॥

महाराज ! हे राजेन्द्र ! विदेशसे आये हुए मुनियोंके सहायताके लिये, उन यज्ञ करनेवाले मुनियोंके ध्यान करनेसे महाभागा पवित्र सरस्वती वहां आयी ॥ १७ ॥

नैमिषे कांचनाक्षी तु मुनीनां सत्रयाजिनाम् ।
आगता सरितां श्रेष्ठा तत्र भारत पूजिता ॥ १८ ॥

भारत ! नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती नैमिषारण्य तीर्थमें उन सत्रयाजी मुनियोंके लिये आई और काञ्चनाक्षी नामसे विख्यात हुई ॥ १८ ॥

गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम् ।
आहूता सरितां श्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती ॥ १९ ॥

राजा गय गया नामक स्थानमें एक महान् यज्ञ कर रहे थे और उस यज्ञमें सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका आवाहन किया गया ॥ १९ ॥

विशालां तु गयेष्वाहुर्ऋषयः संशितव्रताः ।
सरित्सा हिमवत्पार्श्वात्प्रसूता शीघ्रगामिनी ॥ २० ॥

व्रतधारी ऋषि गयामें आयी हुई सरस्वतीको विशाला कहते हैं । यह शीघ्र बहनेवाली नदी हिमाचलके शिखरसे उत्पन्न हुई थी ॥ २० ॥

औद्दालकेस्तथा यज्ञे यजतस्तत्र भारत ।
समेते वर्सतः स्फीते मुनीनां मण्डले तदा ॥ २१ ॥

भारत ! जब उद्दालक ऋषि यजमान बनकर यज्ञ कर रहे थे, तब सब ओरसे अनेक मुनि समूह वहां एकत्र हुए थे ॥ २१ ॥

उत्तरे कोसलाभागे पुण्ये राजन्महात्मनः ।
औद्दालकेन यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती ॥ २२ ॥

राजन् ! समृद्ध और पुण्यप्रद उत्तर कोसलप्रान्तमें यज्ञ करते हुए उद्दालक ऋषिने पहिले सरस्वतीका ध्यान किया ॥ २२ ॥

आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशमृषिकारणात् ।
पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः ।
मनोह्रदेति विख्याता सा हि तैर्मनसा हृता ॥ २३ ॥

तब ऋषिके कार्य सिद्धिके लिये नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती उस देशमें आयी । तब बल्कल और हरिनका चमडा ओढनेवाले मुनियोंसे पूजित होकर सरस्वती मनोह्रदा नामसे विख्यात हुई, क्योंकि उन्होंने मनसे उसका चिंतन किया था ॥ २३ ॥

सुवेणुर्ऋषभद्वीपे पुण्ये राजर्षिसेविते ।
कुरोश्च यजमानस्य कुरुक्षेत्रे महात्मनः ।
आजगाम महाभागा सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती ॥ २४ ॥

जब महात्मा कुरुने राज ऋषियोंसे सेवित कल्यामय ऋषभ द्वीपमें और कुरुक्षेत्रमें यज्ञ किया तब उन्होंने सरस्वतीका ध्यान किया । तब नदियोंमें श्रेष्ठ महाभागी सरस्वती वहां आयी और उसका नाम सुरेणु हुआ ॥ २४ ॥

ओघवत्यपि राजेन्द्र वसिष्ठेन महात्मना ।
समाहूता कुरुक्षेत्रे दिव्यतोया सरस्वती ॥ २५ ॥

राजेन्द्र ! ओघवती नामक दिव्य सलिला सरस्वती महात्मा वसिष्ठके आवाहन करनेसे कुरुक्षेत्रमें आई थी ॥ २५ ॥

दक्षेण यजता चापि गङ्गाद्वारे सरस्वती ।
विमलोदा भगवती ब्रह्मणा यजता पुनः ।
समाहूता ययौ तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ ॥ २६ ॥

जब दक्ष प्रजापतिने गङ्गाद्वारमें यज्ञ किया था, जब ब्रह्माने पुण्यमय हिमाचलपर फिर यज्ञ किया था, तब उनके आवाहन करनेपर विमलोदका नामक भगवती सरस्वती वहां गई थीं ॥ २६ ॥

एकीभूतास्ततस्तास्तु तस्मिंस्तीर्थे समागताः ।
सप्तसारस्वतं तीर्थं ततस्तत्प्रथितं भुवि ॥ २७ ॥

और उसी पवित्र तीर्थमें ये सातों सरस्वतियोंका सङ्गम हो गया, इसीलिये पृथ्वीमें इस तीर्थका नाम सप्त सारस्वत तीर्थ हुआ ॥ २७ ॥

इति सप्त सरस्वत्यो नामतः परिकीर्तिताः ।
सप्तसारस्वतं चैव तीर्थं पुण्यं तथा स्मृतम् ॥ २८ ॥

इसी प्रकार सात सरस्वती नदियोंका नामसे वर्णन किया है। इन्हींसे सप्त सारस्वत परम पुण्यप्रद तीर्थकी उत्पत्ति कही है ॥ २८ ॥

शृणु मङ्कणकस्यापि कौमारब्रह्मचारिणः ।
आपगामवगाढस्य राजन्प्रक्रीडितं महत् ॥ २९ ॥

राजन् ! अब बाल ब्रह्मचारी और प्रतिदिन सरस्वती नदीमें स्नान करनेवाले मंकणककी महान् कथा सुनो ॥ २९ ॥

दृष्ट्वा यदृच्छया तत्र स्त्रियमम्भसि भारत ।
स्नायन्तीं रुचिरापाङ्गीं दिग्वाससमनिंदिताम् ।
सरस्वत्यां महाराज चस्कन्दे वीर्यमम्भसि ॥ ३० ॥

भारत ! महाराज ! एक दिन मंकणक मुनि सरस्वती नदीमें स्नान कर रहे थे, तब एक सुन्दर नेत्रवाली अनि न्दित नङ्गी नहाती स्त्रीको दैवयोगसे देखा, उसको देखते ही इनका वीर्य स्खलित हो गया और पानीमें गिर पडा ॥ ३० ॥

×

तद्रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः ।
सप्तधा प्रविभागं तु कलशस्थं जगाम ह ।
तत्रर्षयः सप्त जाता जज्ञिरे मरुतां गणाः ॥ ३१ ॥

तब उस वीर्यको महातपस्वी मंकणकने एक घडेमें ले लिया । उस घडेमें स्थित होनेपर उस वीर्यके सात भाग हो गये, तब उससे घडेमें सात ऋषि उत्पन्न हुये, इन्हींको जगत्में मूलभूत मरुद्गण कहते हैं इन्हींसे उश्वास वायु उत्पन्न हुये हैं ॥ ३१ ॥

वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः ।
वायुज्वालो वायुरेता वायुचक्रश्च वीर्यवान् ।
एवमेते समुत्पन्ना मरुतां जनयिष्णवः ॥ ३२ ॥

उन सातों ऋषियोंके ये नाम हैं– वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेता और वीर्यवान् वायुचक्र ये सातों बडे बलवान् थे, ये मरुद्गणोंके जन्मदाता मरुत् उत्पन्न हुए थे ॥ ३२ ॥

इदमन्यच्च राजेन्द्र शृण्वाश्चर्यतरं भुवि ।
महर्षेश्चरितं यादृक्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ३३ ॥

राजेन्द्र ! आगे उस महा ऋषिका तीनों लोकोंमें विख्यात अद्भुत चरित्र सुनो वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है ॥ ३३ ॥

पुरा मङ्कणकः सिद्धः कुशाग्रेणेति नः श्रुतम् ।
क्षतः किल करे राजंस्तस्य शाकरसोऽस्रवत् ।
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान् ॥ ३४ ॥

हमने सुना है कि पहले कभी एक दिन सिद्ध मंकणक मुनिका हाथ किसी कुशके अग्रभागसे छिद गया था, तब उससे रक्तके स्थानपर हाथसे सागाका रस टपकने लगा । उस सागकी रसको देख मंकणक मुनि प्रसन्न होकर मत्तवाले हो नाचने लगे ॥ ३४ ॥

ततस्तस्मिन्प्रनृत्ते वै स्थावरं जङ्गमं च यत् ।
प्रनृत्तमुभयं वीर तेजसा तस्य मोहितम् ॥ ३५ ॥

वीर ! उनके नाचनेसे उनके तेजसे मोहित होकर सब स्थावर जङ्गम जगत् नाचने लगा ॥ ३५ ॥

ब्रह्मादिभिः सुरै राजन्नृषिभिश्च तपोधनैः ।
विज्ञप्तो वै महादेव ऋषेरर्थे नराधिप ।
नायं नृत्येद्यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ३६ ॥

राजन् ! नराधिप ! तब ब्रह्मादिक देवता और महातपस्वी मुनि महादेवके पास जाकर बोले, कि हे देव ! आप ऐसा उपाय कीजिये कि जिससे ये मुनि न नाचें ॥ ३६ ॥

ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव ह ।
सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत ॥ ३७ ॥

तब महादेवने उनके पास जाकर मंकणक मुनिको बहुत ही प्रसन्नतासे नाचते हुए देखा । तब देवताओंके कल्याणके लिये महादेवने इनसे कहा ॥ ३७ ॥

भो भो ब्राह्मण धर्मज्ञ किमर्थं नरिनर्त्सि वै ।
हर्षस्थानं किमर्थं वै तवेदं मुनिसत्तम ।
तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्त द्विजसत्तम ॥ ३८ ॥

हे धर्म जाननेवाले ब्राह्मण ! तुम क्यों नांच रहे हो ? मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारी उतनी प्रसन्नताका कारण क्या है ? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आप धर्म जाननेवाले तपस्वी और ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३८ ॥

ऋषिरुवाच

किं न पश्यसि मे ब्रह्मन्कराच्छाकरसं स्रुतम् ।
यं दृष्ट्वा वै प्रनृत्तोऽहं हर्षेण महता विभो ॥ ३९ ॥

ऋषि बोले— हे ब्रह्मन् ! हे जगत्के स्वामी ! क्या आप नहीं देखते कि हमारे हाथसे सागका रस गिर रहा है । उसीको देखकर हम प्रसन्नतासे नांच रहे हैं ॥ ३९ ॥

तं प्रहस्याब्रवीद्देवो मुनिं रागेण मोहितम् ।
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीति प्रपश्य माम् ॥ ४० ॥

मुनिका वचन सुन महादेव हंसकर, उन मोहित मुनिसे बोले— हे ब्राह्मण ! हम कोई आश्चर्यका स्थान नहीं देखते । अब तुम हमें देखो ॥ ४० ॥

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं महादेवेन धीमता ।
अङ्गुल्यग्रेण राजेन्द्र स्वाङ्गुष्ठस्ताडितोऽभवत् ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र ! मुनिश्रेष्ठ मङ्कणकसे ऐसा कहकर बुद्धिमान् महादेवने अपनी अंगुलिके अग्रभागसे अंगूठेमें घाव कर दिया ॥ ४१ ॥

ततो भस्म क्षताद्राजन्निर्गतं हिमसंनिभम् ।
तद्दृष्ट्वा व्रीडितो राजन्स मुनिः पादयोर्गतः ॥ ४२ ॥

राजन् ! उस घावसे बर्फके समान भस्म निकलने लगा, यह देख मंकणक लज्जित हो उनके चरणोंमें गिर पडे ॥ ४२ ॥

ऋषिरुवाच

नान्यं देवादहं मन्ये रुद्रात्परतरं महत् ।
सुरासुरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृक् ॥ ४३ ॥

ऋषि बोले— हम रुद्रदेव शिवसे अधिक दूसरे किसी देवताको परम महान् नहीं मानते । हे शूलधारी ! आप ही सब देवता और राक्षसोंसहित जगत्की गति हैं ॥ ४३ ॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्तीह मनीषिणः ।
त्वामेव सर्वं विशति पुनरेव युगक्षये ॥ ४४ ॥

हमने बुद्धिमानोंसे सुना है, कि आप ही इस सब जगत्को बनाते हैं और प्रलयकालमें सब जगत् आपहीमें मिल जाता है ॥ ४४ ॥

देवैरपि न शक्यस्त्वं परिज्ञातुं कुतो मया ।
त्वयि सर्वे स्म दृश्यन्ते सुरा ब्रह्मादयोऽनघ ॥ ४५ ॥

आपको देवता भी नहीं जान सकते, मेरी तो कथा ही क्या है ? हे पापरहित ! ब्रह्मादिक सब देवता तुममें दिखाई देते हैं ॥ ४५ ॥

सर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता च ह ।
त्वत्प्रसादात्सुराः सर्वे मोदन्तीहाकुतोभयाः ॥ ४६ ॥

हे देव ! तुम जगत्के रूप हो और देवताओंके भी कर्ता और कारयिता तुम ही हो, आपकी कृपासे ही सब देवता यहां निर्भय होकर आनन्द करते हैं ॥ ४६ ॥

एवं स्तुत्वा महादेवं स ऋषिः प्रणतोऽब्रवीत् ।
भगवंस्त्वत्प्रसादाद्वै तपो मे न क्षरेदिति ॥ ४७ ॥

इस प्रकार महादेवकी स्तुति करके वे महर्षि नतमस्तक हो गये और बोले– भगवन् ! अब हम आपसे यह वरदान मांगते हैं कि आपकी कृपासे हमारी तपस्या क्षीण न होवे ॥४७॥

ततो देवः प्रीतमनास्तमृषिं पुनरब्रवीत् ।
तपस्ते वर्धतां विप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा ।
आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्धमहं सदा ॥ ४८ ॥

मुनिके ऐसे वचन सुन महादेव प्रसन्न होकर उन ऋषिसे फिर बोले– हे ब्राह्मण ! हमारे आशीर्वादसे तुम्हारा तप सहस्रों गुणा बढेगा, हम तुम्हारे सङ्ग इस आश्रममें सदा निवास करेंगे ॥ ४८ ॥

सप्तसारस्वते चास्मिन्यो मामर्चिष्यते नरः ।
न तस्य दुर्लभं किंचिद्भवितेह परत्र च ।
सारस्वतं च लोकं ते गमिष्यन्ति न संशयः ॥ ४९ ॥

जो मनुष्य इस सारस्वत तीर्थमें हमारी पूजा करेगा, उसे इस जगत्में और परलोकमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होगी । वे सारस्वत लोकमें जायँगे इसमें संशय नहीं है ॥ ४९ ॥

एतन्मङ्कणकस्यापि चरितं भूरितेजसः ।
स हि पुत्रः सजन्यायामुत्पन्नो मातरिश्वना ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ २०१९ ॥

हमने यह महातेजस्वी मंकणक मुनिकी कथा तुमसे कही, ये मङ्कणक मुनि वायुके पुत्र थे। वायुने सजन्याके गर्भसे उन्हें उत्पन्न किया था ॥ ५० ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें सडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ २०१९ ॥

: ३८ :

वैशंपायन उवाच

उषित्वा तत्र रामस्तु सम्पूज्याश्रमवासिनः ।
तथा मङ्कणके प्रीतिं शुभां चक्रे हलायुधः ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् जनमेजय ! हलधर बलरामने वहां रहकर आश्रमवासी मुनियोंकी पूजा की और मङ्कणक मुनिपर बहुत भक्ति प्रकट की ॥ १ ॥

दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो रजनीं तामुपोष्य च ।
पूजितो मुनिसंघैश्च प्रातरुत्थाय लाङ्गली ॥ २ ॥

वहां ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान देकर फिर सारी रात रहकर सवेरे उठकर महापराक्रमी लाङ्गलधारी बलरामने मुनियोंसे पूजित होकर ॥ २ ॥

अनुज्ञाप्य मुनीन्सर्वान्स्पृष्ट्वा तोयं च भारत ।
प्रययौ त्वरितो रामस्तीर्थहेतोर्महाबलः ॥ ३ ॥

हे भारत ! उस स्थानके जलको स्पर्श करके सब मुनियोंकी आज्ञा लेकर दूसरे तीर्थोंमें जानेके लिये शीघ्रतासे निकले ॥ ३ ॥

तत औशनसं तीर्थमाजगाम हलायुधः ।
कपालमोचनं नाम यत्र मुक्तो महामुनिः ॥ ४ ॥

तदनन्तर हलधारी बलराम औशनस नामक तीर्थमें पहुंचे। इसका नाम कपालमोचन भी है। जहां एक महामुनिको मुक्ति मिली थी ॥ ४ ॥

महता शिरसा राजन्ग्रस्तजङ्घो महोदरः ।
राक्षसस्य महाराज रामक्षिप्तस्य वै पुरा ॥ ५ ॥

हे महाराज ! पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रने एक राक्षसको मारकर इसी स्थानपर फेंका था। उसका बडाशिर महामुनि महोदरकी जांघमें चिपक गया था ॥ ५ ॥

तत्र पूर्वं तपस्तप्तं काव्येन सुमहात्मनः ।
यत्रास्य नीतिरखिला प्रादुर्भूता महात्मनः ।
तत्रस्थश्चिन्तयामास दैत्यदानवविग्रहम् ॥ ६ ॥

इसी स्थानपर महात्मा शुक्राचार्यने पहले तपस्या की थी, जिससे यहांपर उन्हें नीति बनानेकी बुद्धि हुई थी, यहीं बैठकर महात्मा शुक्राचार्यने देवता और दानवोंके युद्धका विचार किया था ॥ ६ ॥

तत्प्राप्य च बलो राजंस्तीर्थप्रवरमुत्तमम् ।
विधिवद्धि ददौ वित्तं ब्राह्मणानां महात्मनाम् ॥ ७ ॥

राजन् ! इस श्रेष्ठ तीर्थमें पहुंचकर बलरामने महात्मा ब्राह्मणोंको विधिके अनुसार बहुत धनका दान किया था ॥ ७ ॥

जनमेजय उवाच

कपालमोचनं ब्रह्मन्कथं यत्र महामुनिः ।
मुक्तः कथं चास्य शिरो लग्नं केन च हेतुना ॥ ८ ॥

राजा जनमेजय बोले– हे ब्रह्मन् ! इस तीर्थका नाम कपालमोचन कैसे हुआ जहां महामुनि महोदरको मुक्ति मिली ? उनका सिर पहिले कैसे और किस कारणसे जड गया था ? ॥८॥

वैशंपायन उवाच

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना ।
वसता राजशार्दूल राक्षसास्तत्र हिंसिताः ॥ ९ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजशार्दूल ! पहिले समयमें महात्मा राम दाण्डकारण्यमें निवास करते थे, और राक्षसोंका नाश करते थे ॥ ९ ॥

जनस्थाने शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः ।
क्षुरेण शितधारेण तत्पपात महावने ॥ १० ॥

तब ही जनस्थान निवासी दुरात्मा राक्षसका एक तेज बाणसे उन्होंने सिर काटा। वह कटा हुआ सिर महावनमें ऊपरको उछला ॥ १० ॥

महोदरस्य तल्लग्नं जङ्घायां वै यदृच्छया ।
वने विचरतो राजन्नस्थि भित्त्वास्फुरत्तदा ॥ ११ ॥

दैवयोगसे राजन् ! वहीं वनमें घूमते महोदर मुनिकी जंघाकी हड्डी तोडकर उसमें घुसकर जांघमें जम आया ॥ ११ ॥

स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह ।
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च ॥ १२ ॥

उसके लगनेसे महाबुद्धिमान् ब्राह्मण तीर्थयात्रा या देवालयमें भी आ-जा नहीं कर सके ॥१२॥

स पूतिना विस्रवता वेदनार्तो महामुनिः ।
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यामिति नः श्रुतम् ॥ १३ ॥

उस मस्तकसे पीब निकलती थी और महामुनि वेदनासे पीडित हो गये थे, तो भी वे पृथ्वी-परके सब तीर्थोंमें घूमते ही रहे, ऐसा हमने सुना है ॥ १३ ॥

स गत्वा सरितः सर्वाः समुद्रांश्च महातपाः ।
कथयामास तत्सर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ॥ १४ ॥

उसी अवस्थामें महातपस्वी महोदरने सब नदियां और सब समुद्रोंकी यात्रा करके वहां रहनेवाले सब भाविक मुनियोंसे अपनी दशा कहते रहे ॥ १४ ॥

आप्लुतः सर्वतीर्थेषु न च मोक्षमवाप्तवान् ।
स तु शुश्राव विप्रेन्द्रो मुनीनां वचनं महत् ॥ १५ ॥

सब तीर्थोंमें स्नान करनेपर भी, किसी तीर्थमें उनका यह दुःख न छूटा, उन विप्रश्रेष्ठने अनेक मुनियोंसे यह महत्त्वपूर्ण बात सुनी कि, ॥ १५ ॥

सरस्वत्यास्तीर्थवरं ख्यातमौशनसं तदा ।
सर्वपापप्रशमनं सिद्धिक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ १६ ॥

सरस्वतीके तटपर विराजमान् श्रेष्ठ तीर्थ जो औशनस नामसे प्रख्यात है, वह सब पापोंको नष्ट करनेवाला और परमश्रेष्ठ सिद्धिक्षेत्र है ॥ १६ ॥

स तु गत्वा ततस्तत्र तीर्थमौशनसं द्विजः ।
तत औशनसे तीर्थे तस्योपस्पृशतस्तदा ।
तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले तदा ॥ १७ ॥

तदनन्तर वे ऋषि सब पापोंके नाश करनेवाले सिद्ध औशनस तीर्थमें पहुंचे और उन्होंने उस तीर्थके जलसे आचमन और स्नान किया, उसी समय वह शिर उनके चरणको छोडकर जलके भितर गिर गया ॥ १७ ॥

ततः स विरुजो राजन्पूतात्मा वीतकल्मषः ।
आजगामाश्रमं प्रीतः कृतकृत्यो महोदरः ॥ १८ ॥

राजन् ! उस पीडासे मुक्त होकर पवित्रात्मा निष्पाप मुनि कृतकृत्य हो बहुत प्रसन्न हुए और वे अपने आश्रमको चले आये ॥ १८ ॥

सोऽथ गत्वाश्रमं पुण्यं विप्रमुक्तो महातपाः ।
कथयामास तत्सर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ॥ १९ ॥

संकटसे मुक्त हुए महातपस्वी महोदरने अपने पवित्र आश्रममें आकर अपने कपाल छूटनेकी सब कथा वहांके महात्मा मुनियोंसे कही ॥ १९ ॥

ते श्रुत्वा वचनं तस्य ततस्तीर्थस्य मानद ।
कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः ॥ २० ॥

मानद ! तदनन्तर वहां आये हुए ऋषियोंने मुनिकी कथा सुनकर उस तीर्थका नाम कपालमोचन रख दिया ॥ २० ॥

तत्र दत्त्वा बहून्दायान्विप्रान्संपूज्य माधवः ।
जगाम वृष्णिप्रवरो रुषङ्गोराश्रमं तदा ॥ २१ ॥

वृष्णिकुल श्रेष्ठ बलरामने भी यहां ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें बहुत धनका दान दिया । अनन्तर वे रुषंग मुनिके आश्रमको चले गये ॥ २१ ॥

यत्र तप्तं तपो घोरमार्ष्टिषेणेन भारत ।
ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तत्र विश्वामित्रो महामुनिः ॥ २२ ॥

भारत ! इसी तीर्थपर आर्ष्टिपेण मुनि घोर तपस्या करके सिद्ध हुए थे, और इधर ही महामुनि विश्वामित्र क्षत्रियसे ब्राह्मण हुए थे ॥ २२ ॥

ततो हलधरः श्रीमान्ब्राह्मणैः परिवारितः ।
जगाम यत्र राजेन्द्र रुषङ्गुस्तनुमत्यजत् ॥ २३ ॥

राजेन्द्र ! फिर श्रीमान् हलधर बलराम ब्राह्मणोंसे घिरे हुए उस स्थानको गये, जहां तपस्वी रुषंगुने अपने शरीरका त्याग किया था ॥ २३ ॥

रुषङ्गुर्ब्राह्मणो वृद्धस्तपोनित्युश्च भारत ।
देहन्यासे कृतमना विचिन्त्य बहुधा बहु ॥ २४ ॥

भारत ! रुषंगु नामक एक बूढे ब्राह्मण सदा तपस्यामें मग्न रहते थे । जब उनको शरीर छोडनेकी इच्छा हुई तब बहुत विचार कर ॥ २४ ॥

ततः सर्वानुपादाय तनयान्वै महातपाः ।
रुषङ्गुरब्रवीत्तत्र नयध्वं मा पृथूदकम् ॥ २५ ॥

अपने सब पुत्रोंको बुलाकर, महातपस्वी रुषंगु बोले, तुम लोग हमें पृथूदक नामक तीर्थमें ले चलो ॥ २५ ॥

विज्ञायातीतवयसं रुषङ्गुं ते तपोधनाः ।
तं वै तीर्थमुपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम् ॥ २६ ॥

उन तपस्वी पुत्रोंने तपोधन रुषंगुकी अत्यंत वृद्ध अवस्था देखकर, उस महात्माको सरस्वतीके उस उत्तम तीर्थमें पहुंचा दिया ॥ २६ ॥

स तैः पुत्रैस्तदा धीमानानीतो वै सरस्वतीम् ।
पुण्यां तीर्थशतोपेतां विप्रसंघैर्निषेविताम् ॥ २७ ॥

वे पुत्र जब उन बुद्धिमान् रुषंगु मुनिको सैकडों तीर्थोंसे भरी, ब्राह्मणोंसे सेवित पुण्यप्रद सरस्वतीके तटपर ले आये ॥ २७ ॥

स तत्र विधिना राजन्नाप्लुतः सुमहातपाः ।
ज्ञात्वा तीर्थगुणांश्चैव प्राहेदमृषिसत्तमः ।
सुप्रीतः पुरुषव्याघ्र सर्वान्पुत्रानुपासतः ॥ २८ ॥

नरव्याघ्र ! राजन् ! तब वे महातपस्वी महर्षि वहां पहुंचकर विधिपूर्वक स्नान करके तीर्थोंके गुणोंको स्मरण करते अपने पास बैठे हुए सभी पुत्रोंसे आनन्दपूर्वक ऐसा बोले ॥ २८ ॥

सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ।
पृथूदके जप्यपरो नैनं श्वोमरणं तपेत् ॥ २९ ॥

जो महात्मा सरस्वतीके उत्तर तीरपर पृथूदक नामक तीर्थपर जप करता हुआ अपना शरीर छोडेगा, उसे भविष्यमें फिर शरीर धारण करनेका दुःख नहीं उठाना पडेगा ॥ २९ ॥

तत्राप्लुत्य स धर्मात्मा उपस्पृश्य हलायुधः ।
दत्त्वा चैव बहून्दायान्विप्राणां विप्रवत्सलः ॥ ३० ॥

ब्राह्मणोंके प्यारे धर्मात्मा हलधर बलरामने उस तीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणोंको बहुत धनका दान दिया ॥ ३० ॥

ससर्ज यत्र भगवाँल्लोकाँल्लोकपितामहः ।
यत्रार्ष्टिषेणः कौरव्य ब्राह्मण्यं संशितव्रतः ।
तपसा महता राजन्प्राप्तवानृषिसत्तमः ॥ ३१ ॥

कुरुवंशी नरेश ! इसी स्थानमें बैठकर लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने सब जगत्‌को रचा था, इसी स्थानपर कठोरव्रतका पालन करनेवाले, ऋषियोंमें श्रेष्ठ आर्ष्टिषेण महातप करके ब्राह्मण हो गये थे ॥ ३१ ॥

सिन्धुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः ।
ब्राह्मण्यं लब्धवान्यत्र विश्वामित्रो महामुनिः ।
महातपस्वी भगवानुग्रतेजा महातपाः ॥ ३२ ॥

और यहीं राजऋषि, सिन्धुद्वीप और महातपस्वी देवापि भी ब्राह्मण हुए थे और इसी स्थान-पर महातपस्वी, महातेजस्वी भगवान् विश्वामित्र भी ब्राह्मण हो गये थे ॥ ३२ ॥

तत्राजगाम बलवान्बलभद्रः प्रतापवान् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ २०५२ ॥

ऐसे पवित्र तीर्थमें बलवान् प्रतापी बलभद्र आ गये ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥ २०५२ ॥

---

*

: ३९ :

जनमेजय उवाच

कथमार्ष्टिषेणो भगवान्विपुलं तप्तवांस्तपः ।
सिन्धुद्वीपः कथं चापि ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तदा ॥ १ ॥
देवापिश्च कथं ब्रह्मन्विश्वामित्रश्च सत्तम ।
तन्ममाचक्ष्व भगवन्परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥

राजा जनमेजय बोले– हे ब्रह्मन्! भगवान् आर्ष्टिषेणने किस प्रकार उग्र तप किया? सिन्धुद्वीप कैसे ब्राह्मण बने थे, देवापि और विश्वामित्र किस प्रकार ब्राह्मण हुए थे? भगवन्! सो कथा हमसे कहिये, हमें इसे सुननेकी बहुत इच्छा है ॥ १–२ ॥

वैशम्पायन उवाच

पुरा कृतयुगे राजन्नार्ष्टिषेणो द्विजोत्तमः ।
वसन्गुरुकुले नित्यं नित्यमध्ययने रतः ॥ ३ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन्! पहिले सत्ययुगमें एक आर्ष्टिषेण नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। वह सतत गुरुकुलमें रहते हुए नित्य वेदाध्ययनमें रत रहते थे ॥ ३ ॥

तस्य राजन्गुरुकुले वसतो नित्यमेव ह ।
समाप्तिं नागमद्विद्या नापि वेदा विशां पते ॥ ४ ॥

राजन्! पृथ्वीपते! गुरुकुलमें नित्य रहते थे, तो भी वे सब विद्या समाप्त न कर सके और बहुत दिनतक पढनेपर भी वेद समाप्त न हुए ॥ ४ ॥

स निर्विण्णस्ततो राजंस्तपस्तेपे महातपाः ।
ततो वै तपसा तेन प्राप्य वेदाननुत्तमान् ॥ ५ ॥

राजन्! तब आर्ष्टिषेण बहुत खिन्न हो गये और वे महातपस्वी घोर तपस्या करने लगे। उस तपके बलसे उन्हें सब उत्तम वेद विद्या आ गई ॥ ५ ॥

स विद्वान्वेदयुक्तश्च सिद्धश्चाप्यृषिसत्तमः ।
तत्र तीर्थे वरान्प्रादात्त्रीनेव सुमहातपाः ॥ ६ ॥

और वे ऋषिश्रेष्ठ विद्वान् वेदज्ञाता सिद्ध भी हो गए, फिर उन महातपस्वीने उस तीर्थको तीन वरदान दिये ॥ ६ ॥

अस्मिंस्तीर्थे महानद्या अद्यप्रभृति मानवः ।
आप्लुतो वाजिमेधस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥ ७ ॥

जो मनुष्य आजसे महानदी सरस्वतीके इस तीर्थमें स्नान करेगा, उसे अश्वमेध यज्ञका बहुत फल प्राप्त होगा ॥ ७ ॥

अद्यप्रभृति नैवात्र भयं व्यालाद्भविष्यति ।
अपि चाल्पेन यत्नेन फलं प्राप्स्यति पुष्कलम् ॥ ८ ॥

आजसे इस तीर्थमें किसीको सांपोंका भय नहीं रहेगा, इस तीर्थको सेवन करनेसे मनुष्यको शीघ्र ही बहुत फल मिलेगा ॥ ८ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा जगाम त्रिदिवं मुनिः ।
एवं सिद्धः स भगवानार्ष्टिषेणः प्रतापवान् ॥ ९ ॥

ये तीनों वरदान देकर महातपस्वी मुनि आर्ष्टिषेण स्वर्गको चले गये । इस प्रकार प्रतापी आर्ष्टिषेण ऋषि उस तीर्थमें सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं ॥ ९ ॥

तस्मिन्नेव तदा तीर्थे सिन्धुद्वीपः प्रतापवान् ।
देवापिश्च महाराज ब्राह्मण्यं प्रापतुर्महत् ॥ १० ॥

हे महाराज! इस ही तीर्थपर महाप्रतापी सिन्धुद्वीप और देवापिने वहां महान् ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ॥ १० ॥

तथा च कौशिकस्तात तपोनित्यो जितेन्द्रियः ।
तपसा वै सुतप्तेन ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ॥ ११ ॥

तात! कुशिकवंशी जितेन्द्रीय विश्वामित्र वहीं नित्य घोर तप करके, उस भारी तपस्याके कारण ब्राह्मण हुए थे ॥ ११ ॥

गाधिर्नाम महानासीत्क्षत्रियः प्रथितो भुवि ।
तस्य पुत्रोऽभवद्राजन्विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ १२ ॥

राजन्! पहिले समयमें इस पृथ्वीपर एक गाधि नामक प्रख्यात महान् क्षत्रिय राजा हुए थे। उनके प्रतापी पुत्रका नाम विश्वामित्र था ॥ १२ ॥

स राजा कौशिकस्तात महायोग्यभवत्किल ।
स पुत्रमभिषिच्याथ विश्वामित्रं महातपाः ॥ १३ ॥

वह कुशिकवंशी गाधि नामक राजा विश्वामित्रके पिता महान् योगी और बडे तपस्वी थे। उन्होंने अपने पुत्र विश्वामित्रको राज्यपर अभिषिक्त करके ॥ १३ ॥

देहन्यासे मनश्चक्रे तमूचुः प्रणताः प्रजाः ।
न गन्तव्यं महाप्राज्ञ त्राहि चास्मान्महाभयात् ॥ १४ ॥

अपने शरीर छोडनेकी इच्छा की, तब सब प्रजाने नतमस्तक होकर उनसे कहा कि, हे महाबुद्धिमान् महाराज! आप कभी स्वर्गको मत जाइये और हम लोगोंकी इस जगत्के महाभय दुःखसे रक्षा कीजिये ॥ १४ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच ततो गाधिः प्रजास्तदा ।
विश्वस्य जगतो गोप्ता भविष्यति सुतो मम ॥ १५ ॥

तब उनके ऐसा कहनेपर राजा गाधिने अपनी प्रजासे कहा कि मेरा पुत्र सब जगत्‌की रक्षा करनेवाला होगा ॥ १५ ॥

इत्युक्त्वा तु ततो गाधिर्विश्वामित्रं निवेश्य च ।
जगाम त्रिदिवं राजन्विश्वामित्रोऽभवन्नृपः ।
न च शक्नोति पृथिवीं यत्नवानपि रक्षितुम् ॥ १६ ॥

राजन् ! ऐसा कहकर राजा गाधि विश्वामित्रको राज्य देकर आप स्वर्गको चले गये, और तदनन्तर राजा विश्वामित्र राजा होकर राज्य करने लगे । परन्तु विश्वामित्र अनेक यत्न करनेपर भी जगत्‌की रक्षा न कर सके ॥ १६ ॥

ततः शुश्राव राजा स राक्षसेभ्यो महाभयम् ।
निर्ययौ नगराच्चापि चतुरङ्गबलान्वितः ॥ १७ ॥

तब एक दिन राजा विश्वामित्रने सुना कि प्रजाको राक्षसोंसे बहुत पीडा हो रही है । यह सुनकर वे चतुरङ्गिणी सेना लेकर नगरसे बाहर निकले ॥ १७ ॥

स गत्वा दूरमध्वानं वसिष्ठाश्रममभ्ययात् ।
तस्य ते सैनिका राजंश्चक्रुस्तत्रानयान्बहून् ॥ १८ ॥

फिर बहुत दूर जाकर वसिष्ठ मुनिके आश्रमके पास पहुंच गये । राजन् ! उनके सैनिकोंने उस स्थानपर अनेक उपद्रव किये ॥ १८ ॥

ततस्तु भगवान्विप्रो वसिष्ठोऽऽश्रममभ्ययात् ।
ददृशे च ततः सर्वं भज्यमानं महावनम् ॥ १९ ॥

तदनन्तर भगवान् वसिष्ठ ऋषि भी कहींसे अपने आश्रमपर आये, और देखा कि अपना वह विशाल बन टूटकर उजाड हो रहा है ॥ १९ ॥

तस्य क्रुद्धो महाराज वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।
सृजस्व शबरान्घोरानिति स्वां गामुवाच ह ॥ २० ॥

महाराज ! यह देखकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठने राजा विश्वामित्रपर बहुत क्रोध किया, और अपनी गौसे बोले कि, तुम घोर रूपवाले शबर सैनिकोंको उत्पन्न करो ॥ २० ॥

तथोक्ता सासृजद्धेनुः पुरुषान्घोरदर्शनान् ।
ते च तद्बलमासाद्य बभञ्जुः सर्वतोदिशम् ॥ २१ ॥

वसिष्ठ ऋषिके वचन सुन गौने देखनेमें अति भयंकर ऐसे पुरुषोंको उत्पन्न किया, उन्होंने राजाकी सेनापर आक्रमण करके सैनिकोंको सब दिशाओंको भगाया ॥ २१ ॥

तदृष्ट्वा विद्रुतं सैन्यं विश्वामित्रस्तु गाधिजः ।
तपः परं मन्यमानस्तपस्येव मनो दधे ॥ २२ ॥

तब अपनी सेनाको भागती हुई देख गाधिपुत्र विश्वामित्रने तपको ही श्रेष्ठ मानकर तपस्यामें ही मन लगाया ॥ २२ ॥

सोऽस्मिंस्तीर्थवरे राजन्सरस्वत्याः समाहितः ।
नियमैश्चोपवासैश्च कर्शयन्देहमात्मनः ॥ २३ ॥

राजन्! सरस्वतीके तटपर इस श्रेष्ठ तीर्थमें आकर चित्तको एकाग्र करके नियम और उपवासोंसे शरीरको सुखाते हुए तपस्या करने लगे ॥ २३ ॥

जलाहारो वायुभक्षः पर्णाहारश्च सोऽभवत् ।
तथा स्थण्डिलशायी च ये चान्ये नियमाः पृथक् ॥ २४ ॥

कभी जल पीकर रह जाते थे, कभी वायु और कभी सूखे पत्ते ही खाते थे और जमीनपर सोते थे और तपके अन्य जो नियम हैं, उनका भी पृथक् पालन करते थे ॥ २४ ॥

असकृत्तस्य देवास्तु व्रतविघ्नं प्रचक्रिरे ।
न चास्य नियमाद्बुद्धिरपयाति महात्मनः ॥ २५ ॥

उनके यह सब नियम देखकर देवता उनके व्रतमें विघ्न करने लगे । परन्तु महात्मा विश्वामित्रकी बुद्धि नियमसे कुछ भी भ्रष्ट न हुई ॥ २५ ॥

ततः परेण यत्नेन तप्त्वा बहुविधं तपः ।
तेजसा भास्कराकारो गाधिजः समपद्यत ॥ २६ ॥

तदनन्तर अनन्त प्रयत्नसे नाना प्रकारका बहुत तप करके गाधिपुत्र विश्वामित्र अपने तेजसे सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ २६ ॥

तपसा तु तथा युक्तं विश्वामित्रं पितामहः ।
अमन्यत महातेजा वरदो वरमस्य तत् ॥ २७ ॥

फिर विश्वामित्रके घोर तपयुक्त देखकर महातेजस्वी, वरद ब्रह्माने वरदान देनेका विचार किया ॥ २७ ॥

स तु वव्रे वरं राजन्स्यामहं ब्राह्मणस्त्विति ।
तथेति चाब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ २८ ॥

राजन्! तब विश्वामित्रने यह वरदान मांगा कि हम ब्राह्मण हो जांय, सब लोकोंके पितामह ब्रह्माने कहा ऐसा ही हो जायगा ॥ २८ ॥

स लब्ध्वा तपसोग्रेण ब्राह्मणत्वं महायशाः ।
विचचार महीं कृत्स्नां कृतकामः सुरोपमः ॥ २९ ॥

इस प्रकार महातपस्वी विश्वामित्र उग्र तपसे ब्राह्मण होकर अपना काम सिद्ध करके देवताओंके समान सब जगत्में घूमने लगे ॥ २९ ॥

तस्मिंस्तीर्थवरे रामः प्रदाय विविधं वसु ।
पयस्विनीस्तथा धेनूर्यानानि शयनानि च ॥ ३० ॥
तथा वस्त्राण्यलंकारं भक्ष्यं पेयं च शोभनम् ।
अददान्मुदितो राजन्पूजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ ३१ ॥

महाबलवान् बलरामने इस श्रेष्ठ तीर्थमें बहुत धन, दूध देनेवाली गौएं, वाहन, पलङ्ग, वस्त्र, भूषण, खाने पीनेकी उत्तम वस्तुओंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करके प्रसन्नतापूर्वक दान दिये ॥ ३०–३१ ॥

ययौ राजंस्ततो रामो बकस्याश्रमसन्तिकात् ।
यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ २०८४ ॥

राजन्! फिर हे राजन्! वहांसे बक नामक मुनिके आश्रमको चले गये जहां दल्भपुत्र बकने कठोर तप किया था ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें उनचालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ २०८४ ॥

: ४० :

वैशंपायन उवाच

ब्रह्मयोनिभिराकीर्णं जगाम यदुनन्दनः ।
यत्र दाल्भ्यो बको राजन्पश्वर्थं सुमहातपाः ।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं वैचित्रवीर्यिणः ॥ १ ॥
तपसा घोररूपेण कर्शयन्देहमात्मनः ।
क्रोधेन महताविष्टो धर्मात्मा वै प्रतापवान् ॥ २ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे महाराज जनमेजय ! ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति करानेवाले उस तीर्थसे यदुनन्दन प्रसन्न बलवान् बलराम अवाकीर्ण तीर्थमें गये, जहां महातपस्वी, धर्मात्मा, प्रतापी दल्भपुत्र बकने पशुके लिये क्रोध करके अपने घोर तप और नियमोंसे अपने शरीरको सुखाते हुए विचित्रवीर्य पुत्र धृतराष्ट्रके राष्ट्रका होम कर दिया था ॥ १–२ ॥

पुरा हि नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके ।
वृत्ते विश्वजितोऽन्ते वै पञ्चालानृषयोऽगमन् ॥ ३ ॥

पहिले समयमें नैमिषारण्यवासी मुनियोंने बारह वर्षका एक यज्ञ किया था, और जब वह यज्ञ पूरा हो गया, तब वे ऋषि विश्वजित् यज्ञके अन्तमें पाञ्चाल देशमें गये ॥ ३ ॥

तत्रेश्वरमयाचन्त दक्षिणार्थं मनीषिणः ।
बलान्वितान्वत्सतराग्निर्व्याधीनेकविंशतिम् ॥ ४ ॥

उन मनीषि मुनियोंने वहांके राजासे दक्षिणाकी याचना की। तब उन्होंने पाञ्चालोंसे बलवान् और व्याधि रहित इक्कीस बछडे दक्षिणामें पाये ॥ ४ ॥

तानब्रवीद्बको वृद्धो विभजध्वं पशूनिति ।
पशूनेतानहं त्यक्त्वा भिक्षिष्ये राजसत्तमम् ॥ ५ ॥

तब वृद्ध बक मुनिने अन्य मुनियोंसे कहा, तुम लोग इन पशुओंको बांट लो, हम इनमेंसे नहीं लेंगे, और किसी श्रेष्ठ राजाके पास जाकर दूसरे पशु मांग लावेंगे ॥ ५ ॥

एवमुक्त्वा ततो राजन्नृषीन्सर्वान्प्रतापवान् ।
जगाम धृतराष्ट्रस्य भवनं ब्राह्मणोत्तमः ॥ ६ ॥

राजन् ! तदनन्तर उन सब ऋषियोंको ऐसा बोलकर, वे प्रतापी श्रेष्ठ ब्राह्मण राजा धृतराष्ट्रके भवनपर गये ॥ ६ ॥

स समीपगतो भूत्वा धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
अयाचत पशून्दाल्भ्यः स चैनं रुषितोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥

ऐसा विचार कर वे वृद्ध दाल्भ्य कौरवनरेश राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर उनसे पशुओंकी मांग की, तब उन्होंने यह सुनकर क्रोध करके बोले ॥ ७ ॥

यदृच्छया मृता दृष्ट्वा गास्तदा नृपसत्तम ।
एतान्पशून्नय क्षिप्रं ब्रह्मबन्धो यदीच्छसि ॥ ८ ॥

हे नृपश्रेष्ठ ! उस समय कुछ गौएं दैववशात् मर गयीं थीं, यह देखकर उनसे कहा— हे ब्राह्मण बन्धो ! हमारे ये सब गौएं मरी पडी हैं, यदि तुम पशु चाहते हो तो इनको ही शीघ्र ले जाओ ॥ ८ ॥

ऋषिस्त्वथ वचः श्रुत्वा चिन्तयामास धर्मवित् ।
अहो बत नृशंसं वै वाक्यमुक्तोऽस्मि संसदि ॥ ९ ॥

राजाके उस वचनको सुन धर्मके जाननेवाले ऋषि विचारमग्न होकर सोचने लगे— अहो ! दुःखकी बात है कि इस मूर्खने हमें सभाके बीचमें ऐसे कठोर वचन कहे ॥ ९ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तं च रोषाविष्टो द्विजोत्तमः ।
मतिं चक्रे विनाशाय धृतराष्ट्रस्य भूपतेः ॥ १० ॥

थोडे समयतक ऐसा विचार कर क्रोधमें भरे हुए ब्राह्मणोत्तम मुनिने राजा धृतराष्ट्रके राज्यका नाश करनेकी इच्छा की ॥ १० ॥

स उत्कृत्य मृतानां वै मांसानि द्विजसत्तमः ।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेः पुरा ॥ ११ ॥

और उन ही मरी हुई गौओंको वे ब्राह्मणश्रेष्ठ ले गये, फिर सरस्वतीके तटपर जाकर उनका मांस काट काट करके उनसे राजा धृतराष्ट्रके राष्ट्रकी आहुति देने लगे ॥ ११ ॥

अवकीर्णे सरस्वत्यास्तीर्थे प्रज्वाल्य पावकम् ।
बको दाल्भ्यो महाराज नियमं परमास्थितः ।
स तैरेव जुहावास्य राष्ट्रं मांसैर्महातपाः ॥ १२ ॥

महाराज ! महातपस्वी दल्भ्य पुत्र बकने श्रेष्ठ नियमोंका आचरण करके, सरस्वतीके तटपर अवकीर्ण तीर्थमें अग्नि जलाकर उसी मृत पशुओंके मांससे उनके राष्ट्रकी आहुति देना आरम्भ किया ॥ १२ ॥

तस्मिंस्तु विधिवत्सत्रे सम्प्रवृत्ते सुदारुणे ।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव ॥ १३ ॥

राजन् ! जब यह भयानक यज्ञविधिके अनुसार होने लगा, तब राजा धृतराष्ट्रका राज्य नाश होने लगा ॥ १३ ॥

छिद्यमानं यथानन्तं वनं परशुना विभो ।
बभूवापहतं तच्चाप्यवकीर्णमचेतनम् ॥ १४ ॥

हे महाराज ! उस देशका इस प्रकार नाश होने लगा, जैसे कुल्हाडीसे काटनेसे बडे वनका। वह व्याकुल होकर अचेत हो गया ॥ १४ ॥

दृष्ट्वा तदवकीर्णं तु राष्ट्रं स मनुजाधिपः ।
बभूव दुर्मना राजंश्चिन्तयामास च प्रभुः ॥ १५ ॥

राजन् ! अपने राज्यको व्याकुल और संकटग्रस्त देख राजा धृतराष्ट्र मन ही मन बहुत दुःखी होकर घबडाये और सोचने लगे, कि अब हम क्या उपाय करें ? ॥ १५ ॥

मोक्षार्थमकरोद्यत्नं ब्राह्मणैः सहितः पुरा ।
अथासौ पार्थिवः खिन्नस्ते च विप्रास्तदा नृप ॥ १६ ॥

फिर संकटमुक्त होनेके लिये ब्राह्मणोंके साथ प्रयत्न करने लगे। नृप ! इस प्रकार राजा और ब्राह्मण दुःखित हुए ॥ १६ ॥

यदा चापि न शक्नोति राष्ट्रं मोचयितुं नृप ।
अथ वैप्राश्निकांस्तत्र पप्रच्छ जनमेजय ॥ १७ ॥

हे राजन् जनमेजय ! जब राजा धृतराष्ट्र सब उपाय करके अपने राष्ट्रको संकटसे मुक्त कर न सके, तब उन्होंने ज्योतिषियोंको बुलाकर इसका कारण पूछा ॥ १७ ॥

ततो वैप्राश्निकाः प्राहुः पशुविप्रकृतस्त्वया ।
मांसैरभिजुहोतीति तव राष्ट्रं मुनिर्बकः ॥ १८ ॥

तब ज्योतिषियोंने कहा कि तुमने पशुकी याचना करनेवाले एक ब्राह्मणका निरादर किया था, इसलिये वे बक मुनि मृत पशुओंके मांससे तुम्हारे राष्ट्रको नष्ट करनेके लिये होम कर रहे हैं ॥ १८ ॥

तेन ते हूयमानस्य राष्ट्रस्यास्य क्षयो महान् ।
तस्यैतत्तपसः कर्म येन ते ह्यनयो महान् ।
अपां कुञ्जे सरस्वत्यास्तं प्रसादय पार्थिव ॥ १९ ॥

उनसे तुम्हारे राष्ट्रकी आहुति दी जाती है, इसीसे तुम्हारे राज्यका महान् नाश हुआ जाता है । महात्मा बक सरस्वतीके तटपर यज्ञ कर रहे हैं । उन्हींके तपके बलसे तुम्हारे राज्यका यह महान् नाश हुआ जाता है । हे राजन् सरस्वतीके कुञ्जके जलके पास वे मुनि हैं, तुम उन्हें प्रसन्न कीजिये ॥ १९ ॥

सरस्वतीं ततो गत्वा स राजा बकमब्रवीत् ।
निपत्य शिरसा भूमौ प्राञ्जलिर्भरतर्षभ ॥ २० ॥

भरतर्षभ ! उनके वचन सुन राजा धृतराष्ट्र सरस्वतीके तटपर बक मुनिके पास जाकर, पृथ्वीपर शिर लगाकर प्रणाम करके और हाथ जोडकर बोले ॥ २० ॥

प्रसादये त्वा भगवन्नपराधं क्षमस्व मे ।
मम दीनस्य लुब्धस्य मौर्ख्येण हतचेतसः ।
त्वं गतिस्त्वं च मे नाथः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २१ ॥

हे भगवन् ! हे नाथ ! मैं दीन और लोभी हूं, मेरी बुद्धि मूर्खतासे नष्ट हो गई है, इसलिये आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये, आप प्रसन्न हो जाइये । इस समय मैं आपकी शरण हूं, आप ही मेरे रक्षक हैं, इसलिये आप मुझपर कृपा कीजिये ॥ २१ ॥

तं तथा विलपन्तं तु शोकोपहतचेतसम् ।
दृष्ट्वा तस्य कृपा जज्ञे राष्ट्रं तच्च व्यमोचयत् ॥ २२ ॥

राजाको इस प्रकार शोकसे व्याकुल और अचेत होकर रोते देखकर, मुनिको कृपा आ गई और उनके राज्यको संकट मुक्त कर दिया ॥ २२ ॥

ऋषिः प्रसन्नस्तस्याभूत्संरम्भं च विहाय सः ।
मोक्षार्थं तस्य राष्ट्रस्य जुहाव पुनराहुतिम् ॥ २३ ॥

महात्मा बक ऋषिने प्रसन्न होकर क्रोधको दूर किया और फिर उस राज्यको आपत्तिसे छुडानेके लिये आहुति देनी आरम्भ की ॥ २३ ॥

*

मोक्षयित्वा ततो राष्ट्रं प्रतिगृह्य पशून्बहून् ।
हृष्टात्मा नैमिषारण्यं जगाम पुनरेव ह ॥ २४ ॥

इस प्रकार उस राज्यको आपत्तिसे छुडाकर फिर राजा धृतराष्ट्रसे बहुत पशु लेकर मन प्रसन्न होकर दाल्भ्य मुनि फिर नैमिपारण्यको चले गये ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्रोऽपि धर्मात्मा स्वस्थचेता महामनाः ।
स्वमेव नगरं राजा प्रतिपेदे महर्द्धिमत् ॥ २५ ॥

महातपस्वी धर्मात्मा महाराज धृतराष्ट्र भी सावधान होकर अपने समृद्धशाली राजधानीको चले गये ॥ २५ ॥

तत्र तीर्थे महाराज बृहस्पतिरुदारधीः ।
असुराणामभावाय भवाय च दिवौकसाम् ॥ २६ ॥

हे महाराज ! इस ही तीर्थमें राक्षसोंके नाशके और देवताओंकी विजयके लिये महा बुद्धिमान् बृहस्पतिने ॥ २६ ॥

मांसैरपि जुहावेष्टिमक्षीयन्त ततोऽसुराः ।
दैवतैरपि संभग्ना जितकाशिभिराहवे ॥ २७ ॥

मांससे यज्ञ किया था । इस कारण राक्षसोंका क्षय हो गया और युद्धमें विजय पाकर शोभायमान् देवताओंने उनको भगा दिया ॥ २७ ॥

तत्रापि विधिवद्दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ।
वाजिनः कुञ्जरांश्चैव रथांश्चाश्वतरीयुतान् ॥ २८ ॥

इस तीर्थमें भी महा यशस्वी बलदेवने ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक घोडे, हाथी, खचरियां लगे रथ ॥ २८ ॥

रत्नानि च महार्हाणि धनं धान्यं च पुष्कलम् ।
ययौ तीर्थं महाबाहुर्यायातं पृथिवीपते ॥ २९ ॥

मूल्यवान् रत्न, बहुत धन और धान्यादिका दान किया । हे महाराज ! यहांसे महाबाहु बलदेवजी यायात नामक तीर्थमें पहुंचे ॥ २९ ॥

यत्र यज्ञे ययातेस्तु महाराज सरस्वती ।
सर्पिः पयश्च सुस्राव नाहुषस्य महात्मनः ॥ ३० ॥

महाराज ! इस तीर्थमें जब नहुष पुत्र महात्मा ययातिने यज्ञ किया था, तब उनके लिये सरस्वती घी और दूधकी होकर बही थी ॥ ३० ॥

तत्रेष्ट्वा पुरुषव्याघ्रो ययातिः पृथिवीपतिः ।
अक्रामदूर्ध्वं मुदितो लेभे लोकांश्च पुष्कलान् ॥ ३१ ॥

उसी यज्ञके प्रतापसे पुरुषसिंह राजा ययाति आनंदित होकर इसी शरीरसे ऊपरके लोकमें स्वर्गको चले गये । वहां उन्हें बहुत पुण्यलोक प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥

ययातेर्यजमानस्य यत्र राजन्सरस्वती ।
प्रसृता प्रददौ कामान्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ॥ ३२ ॥

हे राजन् ! राजा ययाति जब यज्ञ कर रहे थे, तब वहां आये हुए महात्मा ब्राह्मणोंकी सब इच्छाएँ सरस्वतीने पूर्ण की ॥ ३२ ॥

यत्र यत्र हि यो विप्रो यान्यान्कामानभीप्सति ।
तत्र तत्र सरिच्छ्रेष्ठा ससर्ज सुबहुन्रसान् ॥ ३३ ॥

जहाँ जहाँ जो ब्राह्मण जैसी-जैसी इच्छा किए, वहां-वहां वह सब नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने बहुत प्रमाणमें सुन्दर पदार्थ उत्पन्न किये और दान किये ॥ ३३ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः प्रीता यज्ञस्य संपदा ।
विस्मिता मानुषाश्चासन्दृष्ट्वा तां यज्ञसंपदम् ॥ ३४ ॥

उस यज्ञकी सम्पत्ति देखकर देवता और गन्धर्व प्रसन्न हो गये । मनुष्य तो वह यज्ञका वैभव देखकर अत्यंत आश्चर्य करने लगे ॥ ३४ ॥

ततस्तालकेतुर्महाधर्मसेतुर्महात्मा कृतात्मा महादाननित्यः ।
वसिष्ठापवाहं महाभीमवेगं धृतात्मा जितात्मा समभ्याजगाम ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ २११९ ॥

अनन्तर महान् धर्म ध्वजावाले और तालकेतुवाले महात्मा, कृतात्मा, धृतात्मा और जितात्मा बलराम, नित्य महान् दान करते करते, वहांसे जहां सरस्वतीका वेग बहुत भयंकर है, उस वसिष्ठापवाह तीर्थमें गये ॥ ३५ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ २११९ ॥

: ४१ :

जनमेजय उवाच

वसिष्ठस्यापवाहो वै भीमवेगः कथं नु सः ।
किमर्थं च सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत् ॥ १ ॥

राजा जनमेजय बोले– हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! महामुने ! वसिष्ठापवाहके तीर्थमें सरस्वतीके जलका भयंकर वेग कैसे हुआ ? नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने उन ऋषिको क्यों बहाया था ? ॥ १ ॥

केन चास्याभवद्वैरं कारणं किं च तत्प्रभो ।
शंस पृष्टो महाप्राज्ञ न हि तृप्यामि कथ्यताम् ॥ २ ॥

हे प्रभो ! उन मुनिके साथ सरस्वतीका वैर क्यों हो गया ? उसका कारण क्या है? आपकी वाणी सुननेसे हमारा जी तृप्त नहीं होता, इसलिये यह कथा भी आप कहिये ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

विश्वामित्रस्य चैवर्षेर्वसिष्ठस्य च भारत ।
भृशं वैरमभूद्राजंस्तपःस्पर्धाकृतं महत् ॥ ३ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् ! विश्वामित्र और ब्रह्मर्षि वसिष्ठमें बहुत वैर हो गया था, क्योंकि उन दोनोंमें तप करते करते स्पर्धा होनेके कारण विरोध बढ गया था ॥ ३ ॥

आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थेऽभवन्महान् ।
पूर्वतः पश्चिमश्चासीद्विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ ४ ॥

महात्मा वसिष्ठका बडा आश्रम पूर्व तटपर स्थाणु तीर्थमें था और उससे पश्चिमकी ओर बुद्धिमान् विश्वामित्रका आश्रम था ॥ ४ ॥

यत्र स्थाणुर्महाराज तप्तवान्सुमहत्तपः ।
यत्रास्य कर्म तद्घोरं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ५ ॥

हे महाराज ! जहां स्थाणुने बडा भारी तप किया था, वहां बुद्धिमान् लोग उनकी तपस्याका घोर वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

यत्रेष्ट्वा भगवान्स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम् ।
स्थापयामास तत्तीर्थं स्थाणुतीर्थमिति प्रभो ॥ ६ ॥

प्रभो ! जहां भगवान् स्थाणुने सरस्वतीकी पूजा करके और यज्ञ करके तीर्थकी स्थापना की, वहां वह तीर्थ स्थाणुतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ६ ॥

तत्र सर्वे सुराः स्कन्दमभ्यषिञ्चन्नराधिप ।
सेनापत्येन महता सुरारिविनिबर्हणम् ॥ ७ ॥

नराधिप ! उस ही तीर्थमें सब देवोंने देव शत्रुओंको नष्ट करनेवाले स्कन्दको बडे सेनापति-पदपर अभिषिक्त किया था ॥ ७ ॥

तस्मिन्सरस्वतीतीर्थे विश्वामित्रो महामुनिः ।
वसिष्ठं चालयामास तपसोग्रेण तच्छृणु ॥ ८ ॥

उसी सरस्वती तीर्थमें महामुनि विश्वामित्रने वसिष्ठको अपने उग्र तपके बलसे चलित कर दिया था, सो कथा तुम हमसे सुनो ॥ ८ ॥

विश्वामित्रवसिष्ठौ तावहन्यहनि भारत ।
स्पर्धां तपःकृतां तीव्रां चक्रतुस्तौ तपोधनौ ॥ ९ ॥

हे भारत ! विश्वामित्र और वसिष्ठ दोनों ही महातपस्वी थे, उस वे स्थानमें रहकर प्रतिदिन परस्पर विरोधसे अत्यंत घोर तप करते थे ॥ ९ ॥

तत्राप्यधिकसंतापो विश्वामित्रो महामुनिः ।
दृष्ट्वा तेजो वसिष्ठस्य चिन्तामभिजगाम ह ।
तस्य बुद्धिरियं ह्यासीद्धर्मनित्यस्य भारत ॥ १० ॥

परन्तु महामुनि विश्वामित्र अधिक त्रस्त होते थे, वे वसिष्ठका अधिक तेज देखकर चिन्ता करने लगे । भारत ! सदैव धर्ममें मग्न विश्वामित्र मुनिके मनमें यह विचार आया ॥ १० ॥

इयं सरस्वती तूर्णं मत्समीपं तपोधनम् ।
आनयिष्यति वेगेन वसिष्ठं जपतां वरम् ।
इहागतं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः ॥ ११ ॥

यदि यह सरस्वती नदी सदा धर्म करनेवाले महातपस्वी मुनि वसिष्ठको अपने जलके वेगसे शीघ्र बहाकर मेरे पास ले आयेगी तो मैं यहां आये हुए ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठको मार डालूंगा इसमें संशय नहीं ॥ ११ ॥

एवं निश्चित्य भगवान्विश्वामित्रो महामुनिः ।
सस्मार सरितां श्रेष्ठां क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १२ ॥

ऐसा निश्चयपूर्वक विचार करके महामुनि विश्वामित्रने क्रोधसे लाल नेत्र करके, सब नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका ध्यान किया ॥ १२ ॥

सा ध्याता मुनिना तेन व्याकुलत्वं जगाम ह ।
जज्ञे चैनं महावीर्यं महाकोपं च भामिनी ॥ १३ ॥

उन मुनिके ध्यान करते ही भामिनी सरस्वती बहुत व्याकुल हो गई । उन्होंने जान लिया कि इस समय महावीर्यवान् विश्वामित्र बहुत क्रोधित हैं ॥ १३ ॥

तत एवं वेपमाना विवर्णा प्राञ्जलिस्तदा ।
उपतस्थे मुनिवरं विश्वामित्रं सरस्वती ॥ १४ ॥

तब इस कारण सरस्वती मलीन होकर, कांपती हुई, हाथ जोडकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रके पास आई ॥ १४ ॥

हतवीरा यथा नारी साभवद्दुःखिता भृशम् ।
ब्रूहि किं करवाणीति प्रोवाच मुनिसत्तमम् ॥ १५ ॥

और जिसका पति मारा गया हो उस विधवा स्त्रीके समान वह अत्यंत दुःखित हो गई और मुनिश्रेष्ठसे कहने लगी कि, हे भगवन् ! कहिये, हम आपका कौनसा काम करें ॥ १५ ॥

तामुवाच मुनिः क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय ।
यावदेनं निहन्म्यद्य तच्छ्रुत्वा व्यथिता नदी ॥ १६ ॥

तब क्रुद्ध विश्वामित्र मुनि उनसे बोले, वसिष्ठको शीघ्र यहां तुम अपने पानीमें बहा लावो, जिससे आज मैं उनको मार डालूंगा। उनके वचन सुन सरस्वती नदी व्यथित हो गई ॥१६॥

साञ्जलिं तु ततः कृत्वा पुण्डरीकनिभेक्षणा ।
विव्यथे सुविरूढेव लता वायुसमीरिता ॥ १७ ॥

वह कमलके समान नेत्रवाली सरस्वती हाथ जोडकर पवनसे हिलाई गई लताके समान कांपने लगी और व्यथित हुई ॥ १७ ॥

तथागतां तु तां दृष्ट्वा वेपमानां कृताञ्जलिम् ।
विश्वामित्रोऽब्रवीत्क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय ॥ १८ ॥

उसको इस प्रकार प्रणाम करती, काँपती आ गयी देखकर क्रोधित विश्वामित्र बोले– वसिष्ठको तुरंत ले आओ ॥ १८ ॥

ततो भीता सरिच्छ्रेष्ठा चिन्तयामास भारत ।
उभयोः शापयोर्भीता कथमेतद्भविष्यति ॥ १९ ॥

हे भारत, तब भयभीत हो गयी हुई नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती दोनोंके शापसे भयभीत हो, अब कैसे होगा इसकी चिन्ता करने लगी ॥ १९ ॥

साभिगम्य वसिष्ठं तु इममर्थमचोदयत् ।
यदुक्ता सरितां श्रेष्ठा विश्वामित्रेण धीमता ॥ २० ॥

उस नदीने वसिष्ठके पास जाकर बुद्धिमान् विश्वामित्रने जो कुछ उस नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीको कहा था, वह सब वचन उनसे कह सुनाये ॥ २० ॥

उभयोः शापयोर्भीता वेपमाना पुनः पुनः ।
चिन्तयित्वा महाशापमृषिवित्रासिता भृशम् ॥ २१ ॥

वह दोनोंके शापसे डरती हुई बारंबार कांप रही थी। महाशापका विचार करके विश्वामित्र ऋषिके भयसे बहुत डर गयी थी ॥ २१ ॥

तां कृशां च विवर्णां च दृष्ट्वा चिन्तासमन्विताम् ।
उवाच राजन्धर्मात्मा वसिष्ठो द्विपदां वरः ॥ २२ ॥

राजन्! उसे कृश, कांतिहीन और चिंतामग्न देखकर मनुष्योंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा वसिष्ठने कहा ॥२२॥

त्राह्यात्मानं सरिच्छ्रेष्ठे वह मां शीघ्रगामिनी ।
विश्वामित्रः शपेद्धि त्वां मा कृथास्त्वं विचारणाम् ॥ २३ ॥

हे नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती! तुम अपनी रक्षा करो और शीघ्र गतिसे प्रवाहित होकर, हमें बहाकर विश्वामित्रके पास ले चलो, इसलिये तुम दूसरा कुछ विचार मत करो, नहीं तो विश्वामित्र तुम्हें शाप दे देंगे ॥ २३ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित् ।
चिन्तयामास कौरव्य किं कृतं सुकृतं भवेत् ॥ २४ ॥
कुरुनन्दन ! कृपाशील वसिष्ठ मुनिके ऐसे वचन सुन नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती शोचने लगी कि अब कौनसा काम करनेसे हमारा कल्याण होगा ॥ २४ ॥

तस्याश्चिन्ता समुत्पन्ना वसिष्ठो मय्यतीव हि ।
कृतवान्हि दयां नित्यं तस्य कार्यं हितं मया ॥ २५ ॥
फिर उसने विचार किया कि वसिष्ठने मेरे ऊपर बहुत ही कृपा की है, इसलिये जिसमें उनका कल्याण हो सो काम करना मुझे सदा उचित है ॥ २५ ॥

अथ कूले स्वके राजञ्जपन्तमृषिसत्तमम् ।
जुह्वानं कौशिकं प्रेक्ष्य सरस्वत्यभ्यचिन्तयत् ॥ २६ ॥
राजन् ! एक दिन सरस्वतीने महामुनि विश्वामित्रको अपने तटपर होम और जप करते देखकर विचार किया कि, ॥ २६ ॥

इदमन्तरमित्येव ततः सा सरितां वरा ।
कूलापहारमकरोत्स्वेन वेगेन सा सरित् ॥ २७ ॥
यह समय ही अच्छा है । ऐसा विचार कर उन्होंने अपना तट तोड दिया और अपने वेगसे वसिष्ठको बहा ले चली ॥ २७ ॥

तेन कूलापहारेण मैत्रावरुणिरौह्यत ।
उह्यमानश्च तुष्टाव तदा राजन्सरस्वतीम् ॥ २८ ॥
उस बहते हुए किनारेके साथ मित्रावरुणके पुत्र वसिष्ठ भी बहने लगे । राजन् ! बहते समय वसिष्ठ सरस्वतीकी स्तुति करने लगे ॥ २८ ॥

पितामहस्य सरसः प्रवृत्तासि सरस्वति ।
व्याप्तं चेदं जगत्सर्वं तवैवाम्भोभिरुत्तमैः ॥ २९ ॥
हे सरस्वती ! तुम पितामह ब्रह्माके तलावसे निकली हो, यह सब जगत् तुम्हारे उत्तम जलसे पूरित है ॥ २९ ॥

त्वमेवाकाशगा देवि मेघेषूत्सृजसे पयः ।
सर्वाश्चापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहे ॥ ३० ॥
देवि ! तुम आकाशमें जाकर मेघोंको जलसे पूरित करती हो, तुम सब जलोंका रूप हो, तुम्हारे ही प्रतापसे हम ऋषि लोग वेद पढते हैं ॥ ३० ॥

पुष्टिर्द्युतिस्तथा कीर्तिः सिद्धिर्बुद्धिरुमा तथा ।
त्वमेव वाणी स्वाहा त्वं त्वय्यायत्तमिदं जगत् ।
त्वमेव सर्वभूतेषु वससीह चतुर्विधा ॥ ३१ ॥

तुम पुष्टि, द्युति, कीर्ति, सिद्धि, बुद्धि, उमा, वाणी और स्वाहा हो। यह सब जगत् तुम्हारे आधीन हैं । तुम सब प्राणिमात्रमें चार प्रकारके रूप धारण करके बसती हो ॥ ३१ ॥

एवं सरस्वती राजन्स्तूयमाना महर्षिणा ।
वेगेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति ।
न्यवेदयत चाभीक्ष्णं विश्वामित्राय तं मुनिम् ॥ ३२ ॥

राजन् ! महर्षि वसिष्ठकी ऐसी स्तुति सुन सरस्वती वेगसे बहने लगी और उन ब्रह्मर्षिको विश्वामित्रके आश्रमको पहुंचा दिया फिर विश्वामित्रसे बार बार कह दिया, मैं वसिष्ठको ले आई ॥ ३२ ॥

तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः ।
अथान्वेषत्प्रहरणं वसिष्ठान्तकरं तदा ॥ ३३ ॥

सरस्वतीके द्वारा वसिष्ठको अपने पास लाये हुए देख, विश्वामित्रको बहुत क्रोध हुआ और वसिष्ठको मारनेके लिये अस्त्र ढूंढने लगे ॥ ३३ ॥

तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्महत्याभयान्नदी ।
अपोवाह वसिष्ठं तु प्राचीं दिशमतन्द्रिता ।
उभयोः कुर्वती वाक्यं वञ्चयित्वा तु गाधिजम् ॥ ३४ ॥

विश्वामित्रको क्रोधित देख ब्रह्महत्याके भयसे वसिष्ठको सरस्वती नदीने आलस्य छोड सावधान होकर दोनोंकी आज्ञाका पालन करके विश्वामित्रको धोका देकर पुनः पूर्वकी ओर वेगसे बहा दिया ॥ ३४ ॥

ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
अब्रवीदथ संक्रुद्धो विश्वामित्रो ह्यमर्षणः ॥ ३५ ॥

मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठको फिर अपनेसे दूर बहते देख, क्रोधी विश्वामित्र दुःखसे अत्यंत क्रोध करके बोले ॥ ३५ ॥

यस्मान्मा त्वं सरिच्छ्रेष्ठे वञ्चयित्वा पुनर्गता ।
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणिसंमतम् ॥ ३६ ॥

हे नदियोंमें श्रेष्ठ कल्याणमयी सरस्वती ! तू हमसे छल करके फिर चली गई, इसलिये तेरा जल रुधिर हो जाय जो राक्षसोंको प्रिय है ॥ ३६ ॥

ततः सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता ।
अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा ॥ ३७ ॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रके ऐसे शाप देनेपर ही सरस्वतीका जल रुधिर हो गया और वह एक वर्षतक रुधिरमिश्रित पानी बहाती रही ॥ ३७ ॥

अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
सरस्वतीं तथा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः ॥ ३८ ॥

तब सरस्वतीकी यह दशा देख ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सरा आदि सब अत्यन्त दुःखी हो गये ॥ ३८ ॥

एवं वसिष्ठापवाहो लोके ख्यातो जनाधिप ।
आगच्छच्च पुनर्मार्गं स्वमेव सरितां वरा ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ २१५८ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! इसी प्रकार उसी दिनसे इस तीर्थका नाम जगत्में वसिष्ठापवाह तीर्थसे प्रख्यात हुआ । वसिष्ठको बहानेके बाद नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती फिर अपने पहले मार्गपर ही बहने लगी ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें एकतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ २१५८ ॥

: ४२ :

वैशंपायन उवाच

सा शप्ता तेन क्रुद्धेन विश्वामित्रेण धीमता ।
तस्मिंस्तीर्थवरे शुभ्रे शोणितं समुपावहत् ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् ! जनमेजय ! क्रोध भरे बुद्धिमान् विश्वामित्रका शाप होनेसे, सरस्वती उस उज्ज्वल और श्रेष्ठ तीर्थमें रुधिरकी धारा बहाने लगी ॥ १ ॥

अथाजग्मुस्ततो राजन्राक्षसास्तत्र भारत ।
तत्र ते शोणितं सर्वे पिबन्तः सुखमासते ॥ २ ॥

भारत ! अनन्तर कई राक्षस उस शुद्ध तीर्थपर आये और सब उस रुधिरको पीकर बहुत प्रसन्न होकर वहां रहने लगे ॥ २ ॥

तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतज्वराः ।
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा ॥ ३ ॥

उस रुधिरसे बहुत तृप्त, सुखी और निश्चिन्त हो वे नाचने और हंसने लगे, मानो उन्होंने स्वर्गलोक ही जीत लिया है ॥ ३ ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य ऋषयः सुतपोधनाः ।
तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां महीपते ॥ ४ ॥

पृथ्वीपते ! किसी एक दिन अनेक तपस्वी मुनि सरस्वतीके किनारेपर तीर्थयात्राके लिये आये ॥ ४ ॥

तेषु सर्वेषु तीर्थेषु आप्लुत्य मुनिपुंगवाः ।
प्राप्य प्रीतिं परां चापि तपोलुब्धा विशारदाः ।
प्रययुर्हि ततो राजन्येन तीर्थं हि तत्तथा ॥ ५ ॥

सब तीर्थोंमें स्नान करते करते वे तपस्वी ज्ञानी मुनि अत्यंत प्रसन्न चित्त होकर, उस रुधिर बहानेवाले तीर्थमें जा पहुंचे ॥ ५ ॥

अथागम्य महाभागास्तत्तीर्थं दारुणं तदा ।
दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्याः शोणितेन परिप्लुतम् ।
पीयमानं च रक्षोभिर्बहुभिर्नृपसत्तम ॥ ६ ॥

हे राजेन्द्र ! वहां आकर महातपस्वी और महाभाग मुनियोंने सरस्वतीके उस तीर्थकी दारुण दशा हो गयी है, नदीका पानी रुधिरसे भरा है और उसका अनेक राक्षस पान कर रहे हैं, ऐसा देख ॥ ६ ॥

तान्दृष्ट्वा राक्षसान्राजन्मुनयः संशितव्रताः ।
परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे ॥ ७ ॥

राजन् ! उन राक्षसोंको देखकर कठोर तपस्या करनेवाले मुनियोंने सरस्वतीके उस तीर्थके उद्धारका महान् यत्न किया ॥ ७ ॥

ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः ।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन् ॥ ८ ॥

अनन्तर उन सभी महाव्रतधारी और महाभाग मुनियोंने नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीको बुलाकर पूछा ॥ ८ ॥

कारणं ब्रूहि कल्याणि किमर्थं ते ह्रदो ह्ययम् ।
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वा पास्यामहे वयम् ॥ ९ ॥

हे कल्याणी ! तुम्हारा यह तालाव ऐसा रुधिरसे मिश्रित क्यों हो गया है ? इसका कारण हमसे कहो, सो सुनकर हम लोग कुछ उपाय करेंगे ॥ ९ ॥

ततः सा सर्वमाचष्ट यथावृत्तं प्रवेपती ।
दुःखितामथ तां दृष्ट्वा त ऊचुर्वै तपोधनाः ॥ १० ॥

तब ऋषियोंके वचन सुन कांपती हुई सरस्वतीने सब वृत्तान्त कह सुनाया । सरस्वतीको दुःखित देख तपस्वी मुनि बोले ॥ १० ॥

कारणं श्रुतमस्माभिः शापश्चैव श्रुतोऽनघे ।
करिष्यन्ति तु यत्प्राप्तं सर्व एव तपोधनाः ॥ ११ ॥

हे निष्पाप सरस्वती ! शाप और उसका कारण हम लोगोंने सुना, ये सब तपोधन ऋषि इसके लिये अब कुछ उपाय करेंगे ॥ ११ ॥

एवमुक्त्वा सरिच्छ्रेष्ठामूचुस्तेऽथ परस्परम् ।
विमोचयामहे सर्वे शापादेतां सरस्वतीम् ॥ १२ ॥

नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीसे ऐसा कहकर ऋषियोंने परस्पर विचार किया कि, हम सबको सरस्वतीको इस शापसे छुडाना उचित है ॥ १२ ॥

तेषां तु वचनादेव प्रकृतिस्था सरस्वती ।
प्रसन्नसलिला जज्ञे यथा पूर्वं तथैव हि ।
विमुक्ता च सरिच्छ्रेष्ठा विबभौ सा यथा पुरा ॥ १३ ॥

उन ब्राह्मणोंके वचनसे सरस्वती प्रकृतिस्थ हुई और उसका जल पहिलेके समान निर्मल हो गया और शापमुक्त हुई नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती पहिलेके समान बहकर शोभा पाने लगी ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या मुनिभिस्तैस्तथा कृतम् ।
कृताञ्जलीस्ततो राजन्राक्षसाः क्षुधयार्दिताः ।
ऊचुस्तान्वै मुनीन्सर्वान्कृपायुक्तान्पुनः पुनः ॥ १४ ॥

उन मुनियोंके द्वारा सरस्वतीका जल निर्मल किया गया देखकर, राजन् ! भूखसे पीडित हुए राक्षस तब हाथ जोडकर उन सब दयावान् मुनियोंके शरण गये और बार बार कहने लगे ॥ १४ ॥

वयं हि क्षुधिताश्चैव धर्माद्धीनाश्च शाश्वतात् ।
न च नः कामकारोऽयं यद्वयं पापकारिणः ॥ १५ ॥

हम लोग सनातन धर्मसे भ्रष्ट होकर राक्षस हुए हैं और अब भूखसे व्याकुल हो रहे हैं, अब हम लोग जो पापका आचरण करते हैं, वह हम स्वेच्छासे नहीं करते हैं ॥ १५ ॥

युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा ।
पक्षोऽयं वर्धतेऽस्माकं यतः स्म ब्रह्मराक्षसाः ॥ १६ ॥

आप जैसे धर्मात्माओंकी हमपर कृपा नहीं हुई और हम सदा दुष्कर्म करते रहें । इसलिये हमारे पापकी सदैव वृद्धि होती रही और हम ब्रह्म राक्षस हो गये हैं ॥ १६ ॥

एवं हि वैश्यशूद्राणां क्षत्रियाणां तथैव च ।
ये ब्राह्मणान्प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः ॥ १७ ॥

इसी प्रकार जो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, वे जगत्में हमारे ही समान राक्षस होते हैं ॥ १७ ॥

आचार्यमृत्विजं चैव गुरुं वृद्धजनं तथा ।
प्राणिनो येऽवमन्यन्ते ते भवन्तीह राक्षसाः ।
योषितां चैव पापानां योनिदोषेण वर्धते ॥ १८ ॥

जो मानव, आचार्य, ऋत्विज, गुरु और बूढेका अपमान करते हैं । वे भी यहां राक्षस होते हैं । पापी स्त्रियोंके योनिदोष जनित पापके कारण बढते हैं ॥ १८ ॥

तत्कुरुध्वमिहास्माकं कारुण्यं द्विजसत्तमाः ।
शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे ॥ १९ ॥

इसलिये, हे मुनीश्वरों ! तुम लोग सब लोगोंका उद्धार करनेमें समर्थ हो, इसलिये हम लोगोंका भी यहां उद्धार कीजिये ॥ १९ ॥

तेषां ते मनुष्यः श्रुत्वा तुष्टुवुस्तां महानदीम् ।
मोक्षार्थं रक्षसां तेषामूचुः प्रयतमानसाः ॥ २० ॥

उन राक्षसोंके वचन सुनकर एकचित्त ऋषियोंने उनकी मुक्तिके लिये महा नदीकी स्तुति की और कहा ॥ २० ॥

क्षुतकीटावपन्नं च यचोच्छिष्टाशितं भवेत् ।
केशावपन्नमाधूतमारुग्णमपि यद्भवेत् ।
श्वभिः संस्पृष्टमन्नं च भागोऽसौ रक्षसामिह ॥ २१ ॥

जो अन्न सडा, कीडोंसे खाया, जूठा, बालयुक्त तिरस्कारपूर्वक प्राप्त रोगी हुए मनुष्यसे दिया और कुत्तोंसे छू दिया हुआ अन्न इस जगत्में राक्षसोंका भाग होगा ॥ २१ ॥

तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वानेतान्यन्नानि वर्जयेत् ।
राक्षसान्नमसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते ह्यन्नमीदृशम् ॥ २२ ॥

इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य इसको जानकर, यत्नपूर्वक विचार करके इन अन्नोंको छोड देवे, जो इस अन्नको खायगा, वह मानो राक्षसोंका अन्न खानेवाला होगा ॥ २२ ॥

शोधयित्वा ततस्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः ।
मोक्षार्थं राक्षसानां च नदीं तां प्रत्यचोदयन् ॥ २३ ॥

अनन्तर उन तपोधन ऋषियोंने उस तीर्थकी शुद्धि करके उन उन राक्षसोंकी मुक्तिके लिये सरस्वतीसे वरदान मांगा ॥ २३ ॥

महर्षीणां मतं ज्ञात्वा ततः सा सरितां वरा ।
अरुणामानयामास स्वां तनुं पुरुषर्षभ ॥ २४ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! ऋषियोंकी यह सम्मति जानकर नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती अरुणा नामक अपनी दूसरी धाराको ले आयी ॥ २४ ॥

तस्यां ते राक्षसाः स्नात्वा तनूस्त्यक्त्वा दिवं गताः ।
अरुणायां महाराज ब्रह्महत्यापहा हि सा ॥ २५ ॥

महाराज ! राक्षसोंने उसमें स्नान किया और वे अपना शरीर छोडकर स्वर्गमें चले गये । कारण कि अरुणामें स्नान करनेसे ब्रह्महत्या छूट जाती है ॥ २५ ॥

एतमर्थमभिज्ञाय देवराजः शतक्रतुः ।
तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा विमुक्तः पाप्मना किल ॥ २६ ॥

राजन् ! यह विचार जानकर देवराज इन्द्रने उस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान किया और ब्रह्महत्याके पापसे छूट गये ॥ २६ ॥

जनमेजय उवाच

किमर्थं भगवाञ्शक्रो ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ।
कथमस्मिंश्च तीर्थे वै आप्लुत्याकल्मषोऽभवत् ॥ २७ ॥

राजा जनमेजय बोले– हे ब्रह्मन् ! भगवान् इन्द्रको ब्रह्महत्याका पाप क्यों लगा था ? और इस तीर्थमें स्नान करनेसे वे पापरहित कैसे हो गये ? ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणुष्वैतदुपाख्यानं यथावृत्तं जनेश्वर ।
यथा बिभेद समयं नमुचेर्वासवः पुरा ॥ २८ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे महाराज ! पहिलेके समयमें जिस प्रकार इन्द्रने नमुचिके साथ की हुई प्रतिज्ञाको तोडकर विश्वासघात किया था, सो कथा जैसी हुई थी हम तुमसे कहते हैं तुम सुनो ॥ २८ ॥

नमुचिर्वासवाद्भीतः सूर्यरश्मिं समाविशत् ।
तेनेन्द्रः सख्यमकरोत्समयं चेदमब्रवीत् ॥ २९ ॥

पहिले समयमें नमुचि इन्द्रके भयसे डरकर सूर्यकी किरणोंमें घुस गये, तब इन्द्रने उससे मित्रता कर ली और उसके सङ्ग यह प्रतिज्ञा की ॥ २९ ॥

नार्द्रेण त्वा न शुष्केण न रात्रौ नापि चाहनि ।
वधिष्याम्यसुरश्रेष्ठ सखे सत्येन ते शपे ॥ ३० ॥

हे राक्षसश्रेष्ठ मित्र ! हम सत्यकी शपथ खाकर तुमसे कहते हैं कि तुम्हें न गीले, न सूखे हथियारसे मारेंगे । न दिनको और न रातको मारेंगे ॥ ३० ॥

एवं स कृत्वा समयं दृष्ट्वा नीहारमीश्वरः ।
चिच्छेदास्य शिरो राजन्नपां फेनेन वासवः ॥ ३१ ॥
राजन् ! इस प्रतिज्ञाको नमुचिने भी स्वीकार कर लिया और एक दिन इन्द्रने पानीमें फेना देखा, तब उसहीसे कुहर पडनेके समय उसका शिर काट दिया ॥ ३१ ॥

तच्छिरो नमुचेश्छिन्नं पृष्ठतः शक्रमन्वयात् ।
हे मित्रहन्पाप इति ब्रुवाणं शक्रमन्तिकात् ॥ ३२ ॥
वह कटा हुआ नमुचिका शिर इन्द्रके पीछे लग गया और वह उनके पास जाकर बोला– अरे मित्रको मारनेवाले पापी ! ॥ ३२ ॥

एवं स शिरसा तेन चोद्यमानः पुनः पुनः ।
पितामहाय संतप्त एतमर्थं न्यवेदयत् ॥ ३३ ॥
ऐसा बार बार कहता हुआ इन्द्रके बहुत पीछे दौडा । इन्द्र उससे व्याकुल और संतप्त होकर ब्रह्माके पास गये और यह सब समाचार कह सुनाया ॥ ३३ ॥

तमब्रवील्लोकगुरुररुणायां यथाविधि ।
इष्ट्वोपस्पृश देवेन्द्र ब्रह्महत्यापहा हि सा ॥ ३४ ॥
तब लोगगुरू ब्रह्माने उनसे कहा कि, हे देवेन्द्र ! अरुणातीर्थ ब्रह्महत्याके पापको दूर करनेवाला है, इसलिये तुम वहां जाकर विधिपूर्वक यज्ञ करो और अरुणाके जलका स्पर्श करो ॥ ३४ ॥

इत्युक्तः स सरस्वत्याः कुञ्जे वै जनमेजय ।
इष्ट्वा यथावद्बलभिदरुणायामुपास्पृशत् ॥ ३५ ॥
जनमेजय ! ब्रह्माके ऐसे वचन कहनेपर इन्द्रने सरस्वतीके तीर्थमें जाकर विधिके अनुसार यज्ञ किया और उसमें स्नान किया ॥ ३५ ॥

स मुक्तः पाप्मना तेन ब्रह्महत्याकृतेन ह ।
जगाम संहृष्टमनास्त्रिदिवं त्रिदशेश्वरः ॥ ३६ ॥
तब उस ब्रह्महत्याके पापसे छुटकर और अत्यन्त प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र स्वर्गको चले गये ॥ ३६ ॥

शिरस्तच्चापि नमुचेस्तत्रैवाप्लुत्य भारत ।
लोकान्कामदुघान्प्राप्तमक्षयान्राजसत्तम ॥ ३७ ॥
भारत ! राजश्रेष्ठ ! नमुचिका वह शिर भी उस तीर्थमें स्नान करके मनोवाञ्छित फल देनेवाले अक्षय लोगोंको चला गया ॥ ३७ ॥

तत्राप्युपस्पृश्य बलो महात्मा दत्त्वा च दानानि पृथग्विधानि ।
अवाप्य धर्मं परमार्यकर्मा जगाम सोमस्य महत्स तीर्थम् ॥ ३८ ॥
श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— उस तीर्थमें भी उत्तम आर्य कर्म करनेवाले महात्मा बलरामने स्नान करके नाना प्रकारकी वस्तुओंका बहुत दान करके धर्मका फल प्राप्त कर फिर वहांसे सोम तीर्थको चले गये ॥ ३८ ॥

यत्रायजद्राजसूयेन सोमः साक्षात्पुरा विधिवत्पार्थिवेन्द्र ।
अत्रिर्धीमान्विप्रमुख्यो बभूव होता यस्मिन्क्रतुमुख्ये महात्मा ॥ ३९ ॥
हे राजेन्द्र ! इस ही तीर्थमें पहिले समयमें साक्षात् चन्द्रमाने विधिपूर्वक राजसूय यज्ञ किया था; उस श्रेष्ठ यज्ञमें ब्राह्मणश्रेष्ठ बुद्धिमान् महात्मा अत्रि होता था ॥ ३९ ॥

यस्यान्तेऽभूत्सुमहान्दानवानां दैतेयानां राक्षसानां च देवैः ।
स संग्रामस्तारकाख्यः सुतीव्रो यत्र स्कन्दस्तारकाख्यं जघान ॥ ४० ॥
इसी यज्ञके अन्तमें देवताओंके साथ दानव, दैत्य और राक्षसोंका महान् तारकामय घोर युद्ध हुआ था, इसी युद्धमें कार्त्तिकेयने तारकासुरको मारा था ॥ ४० ॥

सेनापत्यं लब्धवान्देवतानां महासेनो यत्र दैत्यांतकर्ता ।
साक्षाच्चात्र न्यवसत्कार्त्तिकेयः सदा कुमारो यत्र स प्लक्षराजः ॥ ४१ ॥
॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ २१९९ ॥
इसी स्थानपर दैत्योंके नाश करनेवाले महासेन स्वामि कार्त्तिकेयको देव सेनापति पद मिला था, यहीं साक्षात् कुमार स्वामि कार्त्तिकेय श्रेष्ठ प्लक्षके वृक्षके नीचे सदा निवास करते हैं ॥ ४१ ॥
॥ महाभारतके शल्यपर्वमें बयालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥ २१९९ ॥

: ४३ :

जनमेजय उवाच

सरस्वत्याः प्रभावोऽयमुक्तस्ते द्विजसत्तम ।
कुमारस्याभिषेकं तु ब्रह्मन्व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥
राजा जनमेजय बोले— हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आपने हमसे सरस्वतीका महात्म्य कहा, अब कुमार कार्त्तिकेयके अभिषेककी कथा हमसे कहिये ॥ १ ॥

यस्मिन्काले च देशे च यथा च वदतां वर ।
यैश्चाभिषिक्तो भगवान्विधिना येन च प्रभुः ॥ २ ॥
हे कहनेवालोंमें श्रेष्ठ ! भगवान् कार्त्तिकेयका किस समय, किस देशमें किन लोगोंने किस किस विधिसे अभिषेक किया था ॥ २ ॥

स्कंदो यथा च दैत्यानामकरोत्कदनं महत् ।
तथा मे सर्वमाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥

स्कन्द किस प्रकार दैत्योंका महान् नाश किया था ? यह सब कथा सुननेकी हमारी बहुत इच्छा है, आप कहिये ॥ ३ ॥

वैशंपायन उवाच

कुरुवंशस्य सदृशमिदं कौतूहलं तव ।
हर्षमुत्पादयत्येतद्वचो मे जनमेजय ॥ ४ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् जनमेजय ! तुम्हारा यह कुतुहल कुरुकुलके अनुसार ही है । तुम्हारा यह कहना मेरे मनमें आनन्द उत्पन्न कर रहा है ॥ ४ ॥

हन्त ते कथयिष्यामि शृण्वानस्य जनाधिप ।
अभिषेकं कुमारस्य प्रभावं च महात्मनः ॥ ५ ॥

जनाधिप ! हम महात्मा कुमार कार्त्तिकेयका अभिषेक और प्रभाव तुमसे वर्णन करते हैं, उसे लक्ष्यपूर्वक सुनो ॥ ५ ॥

तेजो माहेश्वरं स्कन्नमग्नौ प्रपतितं पुरा ।
तत्सर्वभक्षो भगवान्नाशकद्दग्धुमक्षयम् ॥ ६ ॥

पहिले समयमें भगवान् शिवका तेज (वीर्य) अग्निमें गिरा था, यद्यपि भगवान् अग्नि सब वस्तुको खा सकते हैं, तौ भी उस अक्षय वीर्यको भस्म न कर सके ॥ ६ ॥

तेनासीदति तेजस्वी दीप्तिमान्हव्यवाहनः ।
न चैव धारयामास गर्भं तेजोमयं तदा ॥ ७ ॥

तब उस वीर्यके कारण अग्निका तेज बहुत बढ गया, वे तेजस्वी, दीप्तिमान् हो गये, तौ भी अग्नि उस तेजसे भरे गर्भको धारण न कर सके ॥ ७ ॥

स गङ्गामभिसंगम्य नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभुः ।
गर्भमाहितवान्दिव्यं भास्करोपमतेजसम् ॥ ८ ॥

अनन्तर अग्निने ब्रह्माकी आज्ञासे वह सूर्यके समान तेजस्वी दिव्य गर्भ गङ्गामें डाल दिया ॥ ८ ॥

अथ गङ्गापि तं गर्भमसहन्ती विधारणे ।
उत्ससर्ज गिरौ रम्ये हिमवत्यमरार्चिते ॥ ९ ॥

परन्तु गङ्गा भी उस गर्भको धारण न कर सकी और गंगाने उसे देवपूजित सुरम्य हिमालय पर्वतपर छोड दिया ॥ ९ ॥

स तत्र ववृधे लोकानावृत्य ज्वलनात्मजः ।
ददृशुर्ज्वलनाकारं तं गर्भमथ कृत्तिकाः ॥ १० ॥
शरस्तम्बे महात्मानमनलात्मजमीश्वरम् ।
ममायमिति ताः सर्वाः पुत्रार्थिन्योऽभिचक्रमुः ॥ ११ ॥

वह अग्निका तेजस्वी पुत्र वहीं बढने लगा और सब लोक उसके तेजसे पूरित हो गये। एक दिन उस सरकंडेके वनमें पडे अग्निके समान प्रकाशित महात्मा अग्निपुत्र भगवान्‌को नवजात शिशुके रूपमें कृत्तिका नक्षत्रोंने देखा, तब पुत्रकी आकांक्षा करनेवाली उन सबने उन्हें पुत्र बनानेके लिये कहा कि ये हमारे पुत्र हैं ॥ १०–११ ॥

तासां विदित्वा भावं तं मातॄणां भगवान्प्रभुः ।
प्रस्नुतानां पयः षड्भिर्वदनैरपिबत्तदा ॥ १२ ॥

भगवान् कार्त्तिकेय भी उन माताओंका वात्सल्यका अभिप्राय जानकर अपने छः मुख बनाकर उन छःहोंके स्तनोंसे झरते हुए दूधको पीने लगे ॥ १२ ॥

तं प्रभावं समालक्ष्य तस्य बालस्य कृत्तिकाः ।
परं विस्मयमापन्ना देव्यो दिव्यवपुर्धराः ॥ १३ ॥

दिव्य शरीर धारण करनेवाली कृत्तिका देवियां उस बालकका वह प्रभाव देखकर अत्यंत विस्मित हो गईं ॥ १३ ॥

यत्रोत्सृष्टः स भगवान्गङ्गया गिरिमूर्धनि ।
स शैल काञ्चनः सर्वः संबभौ कुरुसत्तम ॥ १४ ॥

हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! जहांपर गङ्गाने उस गर्भको त्याग दिया था, वह पर्वत शिखर सब सोनेका हो गया ॥ १४ ॥

वर्धता चैव गर्भेण पृथिवी तेन रञ्जिता ।
अतश्च सर्वे संवृत्ता गिरयः काञ्चनाकराः ॥ १५ ॥

बढते बढते उस शिशुने अपना तेज सब जगत्‌में फैला दिया । इसलिये वहांके सब पर्वत भी भर गये और उनमेंसे सोना निकलने लगा ॥ १५ ॥

कुमारश्च महावीर्यः कार्त्तिकेय इति स्मृतः ।
गाङ्गेयः पूर्वमभवन्महायोगबलान्वितः ॥ १६ ॥

उसी दिनसे और वह महाशक्तिशाली कुमार कार्त्तिकेय नामसे प्रसिद्ध हुए, वह महायोगी बलवान् कार्त्तिकेय पहले गंगाके पुत्र थे ॥ १६ ॥

*

स देवस्तपसा चैव वीर्येण च समन्वितः ।
ववृधेऽतीव राजेन्द्र चन्द्रवत्प्रियदर्शनः ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! तब अपने शम, तपस्या और वीर्यके बलसे वह कुमार शीघ्र ही बढने लगा । वह चन्द्रमाके समान प्रियदर्शी था ॥ १७ ॥

स तस्मिन्काञ्चने दिव्ये शरस्तम्बे श्रिया वृतः ।
स्तूयमानस्तदा शेते गन्धर्वैर्मुनिभिस्तथा ॥ १८ ॥

और उस दिव्य सुवर्णमय सरकण्डेके वनमें वह शोभायमान् बालक सदैव गन्धर्वों और मुनियोंसे अपनी स्तुति सुनता हुआ सो रहा था ॥ १८ ॥

तथैनमन्वनृत्यन्त देवकन्याः सहस्रशः ।
दिव्यवादित्रनृत्तज्ञाः स्तुवन्त्यश्चारुदर्शनाः ॥ १९ ॥

तदनन्तर दिव्य बाजे और नृत्यकला जाननेवाली सुन्दर रूपवाली सहस्रों गन्धर्व और देवताओंकी कन्याएं उनके पास आके नाचने, गाने और उनकी स्तुति करने लगीं ॥१९॥

अन्वास्ते च नदी देवं गङ्गा वै सरितां वरा ।
दधार पृथिवी चैनं बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २० ॥

नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा भी उस दिव्य बालकके पास आती थी, पृथ्वीने उत्तम रूप धारण करके उन्हें धारण किया ॥ २० ॥

जातकर्मादिकास्तस्य क्रियाश्चक्रे बृहस्पतिः ।
वेदश्चैनं चतुर्मूर्तिरुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥ २१ ॥

अनन्तर बृहस्पतिने उनका जातकर्म आदि संस्कार किये थे। चारों वेद हाथ जोडकर उनके पास आये ॥ २१ ॥

धनुर्वेदश्चतुष्पादः शस्त्रग्रामः ससंग्रहः ।
तत्रैनं समुपातिष्ठत्साक्षाद्वाणी च केवला ॥ २२ ॥

चारों उपवेद, चरण, शस्त्र और संग्रह ग्रन्थोंके सहित धनुर्वेद, इसी प्रकार साक्षात् सरस्वती भी उनके पास पहुंच गई ॥ २२ ॥

स ददर्श महावीर्यं देवदेवमुमापतिम् ।
शैलपुत्र्या सहासीनं भूतसंघशतैर्वृतम् ॥ २३ ॥

एक दिन कार्त्तिकेयने गिरिराज पुत्री पार्वतीके साथ अनेक प्रकारके रूपधारी सैकडों भूतोंसे घिरे हुए देवाधिदेव उमापति महाबलवान् शिवको बैठे हुए देखा ॥ २३ ॥

निकाया भूतसंघानां परमाद्भुतदर्शनाः ।
विकृता विकृताकारा विकृताभरणध्वजाः ॥ २४ ॥

शिवके सङ्गके भूतोंके शरीर दिखनेमें विकृत, महान् विकराल और अद्भुत थे, कोई विचित्र ध्वजावाले, कोई विचित्र आभूषणवाले थे ॥ २४ ॥

व्याघ्रसिंहर्क्षवदना बिडालमकराननाः ।
वृषदंशमुखाश्चान्ये गजोष्ट्रवदनास्तथा ॥ २५ ॥

उनमेंसे किसीके बाघ, सिंह और रींछके समान मुंह थे, तो किसीके बिल्ली और मगरके समान मुंह थे, किसीके वन-बिलावोंके समान मुंह थे। कितनेहीके हाथी और ऊंटके समान मुंह थे ॥ २५ ॥

उलूकवदनाः केचिद्गृध्रगोमायुदर्शनाः ।
क्रौञ्चपारावतनिभैर्वदनै राङ्कवैरपि ॥ २६ ॥

किसीके उल्लू, किसीके गीध और गिदड, किसीके क्रौञ्च और कबूतर और किसीके रंकु मृगके समान मुख थे ॥ २६ ॥

श्वाविच्छल्यकगोधानां खरैडकगवां तथा ।
सदृशानि वपूंष्यन्ये तत्र तत्र व्यधारयन् ॥ २७ ॥

किसीके शरीर भेडिये, किसीके साही, किसीके गोह, किसीके बकरी, किसीके भेड, और किसीके गायोंके समान थे ॥ २७ ॥

केचिच्छैलाम्बुदप्रख्याश्चक्रालातगदायुधाः ।
केचिदञ्जनपुञ्जाभाः केचिच्छ्वेताचलप्रभाः ॥ २८ ॥

कोई पर्वतों और मेघोंके समान शरीरवाले थे। कोई चक्र और कोई गदा लिये थे, कोई अञ्जनके समान काले और कोई सफेद पर्वतके समान सुन्दर थे ॥ २८ ॥

सप्तमातृगणाश्चैव समाजग्मुर्विशां पते ।
साध्या विश्वेऽथ मरुतो वसवः पितरस्तथा ॥ २९ ॥

हे पृथ्वीनाथ! शिवके सङ्ग सातों मातृगण, साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण, वसु, पितर ॥ २९ ॥

रुद्रादित्यास्तथा सिद्धा भुजगा दानवाः खगाः ।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्सपुत्रः सह विष्णुना ॥ ३० ॥

रुद्र, आदित्य, सिद्ध, सर्प, दानव, पक्षी, पुत्र सहित स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा, विष्णु ॥ ३० ॥

शक्रस्तथाऽभ्ययाद्द्रष्टुं कुमारवरमच्युतम् ।
नारदप्रमुखाश्चापि देवगन्धर्वसत्तमाः ॥ ३१ ॥

और इन्द्र अच्युत श्रेष्ठ कुमारको देखनेके लिये आये थे। देवताओं और गन्धर्वोंमें श्रेष्ठ नारदादिक ॥ ३१ ॥

देवर्षयश्च सिद्धाश्च बृहस्पतिपुरोगमाः ।
ऋभवो नाम वरदा देवानामपि देवताः ।
तेऽपि तत्र समाजग्मुर्यामा धामाश्च सर्वशः ॥ ३२ ॥

देव मुनि, बृहस्पत्यादि सिद्ध, वरदायी और देवताओंके देवता ऋभु और सब यामा, धामा, आदि देवतोंके देवता भी उस अविनाशी बालकको देखने आये ॥ ३२ ॥

स तु बालोऽपि भगवान्महायोगबलान्वितः ।
अभ्याजगाम देवेशं शूलहस्तं पिनाकिनम् ॥ ३३ ॥

उनको देख बालक होते हुए भी बलवान्, महायोगी कार्त्तिकेय भी त्रिशूल और पिनाकधारी देवेश शिवके पासको चले ॥ ३३ ॥

तमाव्रजन्तमालक्ष्य शिवस्यासीन्मनोगतम् ।
युगपच्छैलपुत्र्याश्च गङ्गायाः पावकस्य च ॥ ३४ ॥

कार्त्तिकेयको आते देख शिव, गिरिराजपुत्री पार्वती, गङ्गा और अग्नि इन चारोंके मनमें एक साथ ही यह बात उठी कि ॥ ३४ ॥

किं नु पूर्वमयं बालो गौरवादभ्युपैष्यति ।
अपि मामिति सर्वेषां तेषामासीन्मनोगतम् ॥ ३५ ॥

यह बालक गौरव प्रदान करनेके लिये पहले किसके पास आयेगा ? यह बालक पहिले हमारे ही पास आवेंगे यह बात उन सबके मनमें उठी ॥ ३५ ॥

तेषामेतमभिप्रायं चतुर्णामुपलक्ष्य सः ।
युगपद्योगमास्थाय ससर्ज विविधास्तनूः ॥ ३६ ॥

तब उन चारोंका यह अभिप्राय जान भगवान् कार्त्तिकेयने एक ही साथ अपने योगबलसे अनेक शरीर बना लिये ॥ ३६ ॥

ततोऽभवच्चतुर्मूर्तिः क्षणेन भगवान्प्रभुः ।
स्कन्दः शाखो विशाखश्च नैगमेषश्च पृष्ठतः ॥ ३७ ॥

अनन्तर क्षणभरमें भगवान् कार्त्तिकेय चार रूपोंमें प्रगट हुए । उन चारोंके ये नाम हैं, स्कन्द, शाख, विशाख और नैगमेष ॥ ३७ ॥

एवं स कृत्वा ह्यात्मानं चतुर्धा भगवान्प्रभुः ।
यतो रुद्रस्ततः स्कन्दो जगामाद्भुतदर्शनः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार स्वयंको चार रूपोंमें प्रगट करके अद्भुतदर्शी भगवान् स्कन्द जिधर रुद्र थे उधर गये ॥ ३८ ॥

विशाखस्तु ययौ येन देवी गिरिवरात्मजा।
शाखो ययौ च भगवान्वायुमूर्तिर्विभावसुम्।
नैगमेषोऽगमद्गङ्गां कुमारः पावकप्रभः ॥ ३९ ॥

विशाख जिधर गिरिराज पुत्री पार्वती देवी थी उधर उनके पास गये, भगवान् वायुमूर्त्ति शाख अग्निके पास और अग्निके समान तेजस्वी नैगमेष गङ्गाके पास गये ॥ ३९ ॥

सर्वे भास्वरदेहास्ते चत्वारः समरूपिणः।
तान्समभ्ययुरव्यग्रास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४० ॥

ये चारों महातेजस्वी शरीरवाले और समान रूपवाले थे, वे चारों एक ही समय उन चारोंके पास गये, वह एक अद्भुत कार्य हुआ ॥ ४० ॥

हाहाकारो महानासीद्देवदानवरक्षसाम्।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यमद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ ४१ ॥

यह महान् आश्चर्यकारक, अद्भुत और रोमांचकारी बात देखकर देवता, दानव और राक्षस विस्मय करके हाहाकार करने लगे ॥ ४१ ॥

ततो रुद्रश्च देवी च पावकश्च पितामहम्।
गङ्गया सहिताः सर्वे प्रणिपेतुर्जगत्पतिम् ॥ ४२ ॥

तब शिव, पार्वती, अग्नि और गङ्गा इन सबने मिलकर जगतपति पितामह ब्रह्माको प्रणाम किया ॥ ४२ ॥

प्रणिपत्य ततस्ते तु विधिवद्राजपुंगव।
इदमूचुर्वचो राजन्कार्तिकेयप्रियेप्सया ॥ ४३ ॥

राजश्रेष्ठ ! और विधिवत् प्रणाम करके कार्तिकेयका प्रिय करनेकी इच्छासे वे सब ऐसा वचन बोले ॥ ४३ ॥

अस्य बालस्य भगवन्नाधिपत्यं यथेप्सितम्।
अस्मत्प्रियार्थं देवेश सदृशं दातुमर्हसि ॥ ४४ ॥

हे भगवन् ! देवेश ! आप हम लोगोंकी प्रसन्नताके लिये इस बालकको यथायोग्य इच्छानुरूप कहींका स्वामी बना दीजिये ॥ ४४ ॥

ततः स भगवान्धीमान्सर्वलोकपितामहः।
मनसा चिन्तयामास किमयं लभतामिति ॥ ४५ ॥

उनके वचन सुन सर्वलोकपितामह भगवान् बुद्धिमान् ब्रह्मा मनसे शोचने लगे कि इस बालकको क्या देना चाहिये ॥ ४५ ॥

ऐश्वर्याणि हि सर्वाणि देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
भूतयक्षविहंगानां पन्नगानां च सर्वशः ॥ ४६ ॥
पूर्वमेवादिदेशासौ निकायेषु महात्मनाम् ।
समर्थं च तमैश्वर्ये महामतिरमन्यत ॥ ४७ ॥

जगत्के सब पदार्थोंपर पहिले ही देवता, गन्धर्व, राक्षस, भूत, यक्ष, पक्षी और सर्पोंको आधिपत्य दे चुके हैं और सब ऐश्वर्य भी सब पा चुके हैं। फिर भी ब्रह्माने उन्हें सब ऐश्वर्य भोगनेमें समर्थ समझा ॥ ४६–४७ ॥

ततो मुहूर्तं स ध्यात्वा देवानां श्रेयसि स्थितः ।
सेनापत्यं ददौ तस्मै सर्वभूतेषु भारत ॥ ४८ ॥

भारत ! और देवताओंका कल्याण करनेवाले ब्रह्माने थोडे समयतक विचार करके, सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ कार्तिकेयको देवताओंका सेनापति बना दिया ॥ ४८ ॥

सर्वदेवनिकायानां ये राजानः परिश्रुताः ।
तान्सर्वान्व्यादिदेशास्मै सर्वभूतपितामहः ॥ ४९ ॥

फिर देवताओंके सब राजाओंको बुलाकर सर्वभूतपितामह ब्रह्माने कुमारके अधीन रहनेकी यह आज्ञा सुना दी ॥ ४९ ॥

ततः कुमारमादाय देवा ब्रह्मपुरोगमाः ।
अभिषेकार्थमाजग्मुः शैलेन्द्रं सहितास्ततः ॥ ५० ॥
पुण्यां हैमवतीं देवीं सरिच्छ्रेष्ठां सरस्वतीम् ।
समन्तपञ्चके या वै त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ ५१ ॥

अनन्तर ब्रह्मादिक देवता कार्त्तिकेयको सङ्ग लेकर इनका अभिषेक करनेके लिये एक साथ गिरिराज हिमालयपर वहांसे निकली हुई सब नदियोंमें श्रेष्ठ पवित्र सरस्वती देवीके तटपर गये जो समंतपञ्चक नामक तीर्थमें प्रवाहित होकर तीनों लोकोंमें विख्यात है ॥ ५०–५१ ॥

तत्र तीरे सरस्वत्याः पुण्ये सर्वगुणान्विते ।
निषेदुर्देवगन्धर्वाः सर्वे सम्पूर्णमानसाः ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ २२५१ ॥

वहां सब गुणोंसे भरे सरस्वतीके पवित्र तटपर सब देवता और गन्धर्व पूर्ण मनोरथ हो प्रसन्न होकर बैठे ॥ ५२ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें तिरालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥ २२५१ ॥

: ४४ :

वैशंपायन उवाच

ततोऽभिषेकसंभारान्सर्वान्संभृत्य शास्त्रतः ।
बृहस्पतिः समिद्धेऽग्नौ जुहावाज्यं यथाविधि ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले—हे राजन्! जनमेजय! तब बृहस्पति अभिषेककी सब सामग्री इकट्ठी करके शास्त्रमें लिखी विधिके अनुसार प्रज्वलित की हुई अग्निमें घृत डालकर होम करने लगे ॥१॥

ततो हिमवता दत्ते मणिप्रवरशोभिते ।
दिव्यरत्नाचिते दिव्ये निषण्णः परमासने ॥ २ ॥

अनन्तर हिमाचलके दिये उत्तम मणियोंसे शोभित और दिव्य रत्नोंसे जटित दिव्य सिंहासन पर कार्त्तिकेय बैठ गये ॥ २ ॥

सर्वमङ्गलसंभारैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ।
आभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ॥ ३ ॥

सब मङ्गलकी उपकरणोंसहित सामग्री रखकर, विधि और मन्त्रोचारणपूर्वक सब अभिषेक द्रव्य लेकर सब देवता वहां उपस्थित हुए ॥ ३ ॥

इन्द्राविष्णू महावीर्यौ सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ ॥ ४ ॥

महापराक्रमी इन्द्र और विष्णु, सूर्य और चन्द्रमा, धाता और विधाता, वायु और अग्नि ॥४॥

पूष्णा भगेनार्यम्णा च अंशेन च विवस्वता ।
रुद्रश्च सहितो धीमान्मित्रेण वरुणेन च ॥ ५ ॥

पूषा, भग, अर्यमागण, अंश, विवस्वान्, मित्र और वरुणके साथ धीमान रुद्र ॥ ५ ॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां च वृतः प्रभुः ।
विश्वेदेवैर्मरुद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह ॥ ६ ॥

रुद्रगण वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार, ये सब भगवान् कार्तिकेयको घेरकर स्थित हुए विश्वेदेव, मरुत्, साध्य, पितर ॥ ६ ॥

गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ।
देवर्षिभिरसंख्येयैस्तथा ब्रह्मर्षिभिर्वरैः ॥ ७ ॥

गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, सांप, असंख्य देवऋषि, श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि ॥ ७ ॥

वैखानसैर्वालखिल्यैर्वाय्वाहारैर्मरीचिपैः ।
भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च यतिभिश्च महात्मभिः ।
सर्वैर्विद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धैस्तथा वृतः ॥ ८ ॥

वैखानस, वालखिल्य, वायुभक्षी, किरणभक्षी, भृगु, अङ्गिरादि, महात्मा यति, सब विद्याधर, आदि पवित्र योगी सिद्ध भी कार्तिकेयको घेरे हुए थे ॥ ८ ॥

पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ।
अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च ॥ ९ ॥

पृथ्वीपते ! ब्रह्मा, पुलस्त्य, महातपस्वी पुलह, अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु ॥ ९ ॥

क्रतुर्हरः प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च ।
ऋतवश्च ग्रहाश्चैव ज्योतींषि च विशां पते ॥ १० ॥

क्रतु, हर, प्रचेता, मनु, दक्ष, ऋतु, ग्रह, तारे ॥ १० ॥

मूर्तिमत्यश्च सरितो वेदाश्चैव सनातनाः ।
समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।
पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च जनाधिप ॥ ११ ॥

हे राजन् ! मूर्त्तिमती नदियाँ, मूर्तिमान् सनातन वेद, समुद्र, तालाव, अनेक प्रकारके तीर्थ, पृथ्वी, आकाश, दिशा, वृक्ष ॥ ११ ॥

अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती ।
उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः ।
राका च धिषणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम् ॥ १२ ॥

देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती, उमा, शची, सिनीवाली, अनुमती, कुहू, राका, धिषणा, देवताओंकी अन्य पत्नियां ॥ १२ ॥

हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ।
ऐरावतः सानुचरः कलाः काष्ठास्तथैव च ।
मासार्धमासा ऋतवस्तथा रात्र्यहनी नृप ॥ १३ ॥

राजन् ! हिमाचल, विन्ध्याचल, अनेक शृङ्गोंके सहित सुमेरु, सेवकोंके सहित ऐरावत, कला, काष्ठा, महीना, पक्ष, ऋतु, रात्रि, दिन ॥ १३ ॥

उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वामनः ।
अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चौषधिभिः सह ॥ १४ ॥

घोडोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा, नागराज, वामन, अरुण, गरुड, औषधियोंका वृक्ष ॥ १४ ॥

धर्मश्च भगवान्देवः समाजग्मुर्हि संगताः ।
कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये ॥ १५ ॥

भगवान् धर्म, काल, यमराज और सेवकों सहित मृत्यु आदि सब देवता सब एक साथ पधारे थे ॥ १५ ॥

बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः ।
ते कुमाराभिषेकार्थं समाजग्मुस्ततस्ततः ॥ १६ ॥

अनेक होनेके कारण जिनके नाम नहीं बताये गये हैं, वे भी इधर-उधरसे कुमार कार्तिकेयके अभिषेकके लिये आये थे ॥ १६ ॥

जगृहुस्ते तदा राजन्सर्व एव दिवौकसः ।
आभिषेचनिकं भाण्डं मङ्गलानि च सर्वशः ॥ १७ ॥

राजन् ! उस समय उन सभी देवताओंने अभिषेकके लिये जलके घडे भरकर और मङ्गलकी सामग्री हाथोंमें ले रक्खी थी ॥ १७ ॥

दिव्यसंभारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनैर्नृप ।
सरस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव तु ॥ १८ ॥
अभ्यषिञ्चन्कुमारं वै संप्रहृष्टा दिवौकसः ।
सेनापतिं महात्मानमसुराणां भयावहम् ॥ १९ ॥

फिर आनंदित, प्रफुल्लित देवताओंने प्रसन्न होकर, सातों सरस्वती नदियोंके पवित्र और दिव्य जलसे भरे हुए, दिव्य सामाग्रियोंसे संपन्न, सोनेके घडोंसे राक्षसोंको भय देनेवाले महात्मा कार्त्तिकेयका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया ॥ १८–१९ ॥

पुरा यथा महाराज वरुणं वै जलेश्वरम् ।
तथाभ्यषिञ्चद्भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
कश्यपश्च महातेजा ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ २० ॥

महाराज ! जैसे पहिले समयमें जलराज वरुणका अभिषेक हुआ था, ऐसे लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने और महातेजस्वी कश्यप और दूसरे विश्वप्रख्यात ऋषियोंने कार्त्तिकेयका अभिषेक किया ॥ २० ॥

तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो बलिनो वातरंहसः ।
कामवीर्यधरान्सिद्धान्महापारिषदान्प्रभुः ॥ २१ ॥

फिर ब्रह्माने प्रसन्न होकर कार्तिकेयको वायुके समान शीघ्र चलनेवाले इच्छानुसार बलधारी, बलवान् और सिद्ध महान् पार्षद दिये ॥ २१ ॥

×

नन्दिषेणं लोहिताक्षं घण्टाकर्णं च संमतम् ।
चतुर्थमस्यानुचरं ख्यातं कुमुदमालिनम् ॥ २२ ॥

ब्रह्माने कार्त्तिकेयको नन्दिषेण, लोहिताक्ष, प्रिय घण्टाकर्ण और उनका चौथा अनुचर कुमुदमाली नामसे विख्यात था ॥ २२ ॥

ततः स्थाणुं महावेगं महापारिषदं क्रतुम् ।
मायाशतधरं कामं कामवीर्यबलान्वितम् ।
ददौ स्कन्दाय राजेन्द्र सुरारिविनिवर्हणम् ॥ २३ ॥

राजेन्द्र ! भगवान् शिवने महावेगवान् स्थित बुद्धिमान्, सैकड़ों मायाओंको जाननेवाला इच्छानुसार बल–पराक्रम प्रकट करनेवाला, दानवोंका नाश करनेमें समर्थ एक पार्षद स्कन्दको दिया ॥ २३ ॥

स हि देवासुरे युद्धे दैत्यानां भीमकर्मणाम् ।
जघान दोर्भ्यां संक्रुद्धः प्रयुतानि चतुर्दश ॥ २४ ॥

उसीने देवासुरसंग्राममें क्रोध करके भयानक कर्म करनेवाले चौदह प्रयुत राक्षसोंको अपने भुजाओंसे पीस दिया था ॥ २४ ॥

तथा देवा ददुस्तस्मै सेनां नैर्ऋतसंकुलाम् ।
देवशत्रुक्षयकरीमजय्यां विश्वरूपिणीम् ॥ २५ ॥

अनन्तर देवताओंने दानवोंका नाश करनेवाली, किसीसे न हारनेवाली विश्वरूपिणी नैऋत सेना उनको दे दी ॥ २५ ॥

जयशब्दं ततश्चक्रुर्देवाः सर्वे सवासवाः ।
गन्धर्वयक्षरक्षांसि मुनयः पितरस्तथा ॥ २६ ॥

तब इन्द्रादिक सब देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मुनि और पितर उनकी जय जय पुकारने लगे ॥ २६ ॥

यमः प्रादादनुचरौ यमकालोपमावुभौ ।
उन्माथं च प्रमाथं च महावीर्यौ महाद्युती ॥ २७ ॥

तदनन्तर यमने यमकालके समान महापराक्रमी और महातेजस्वी उन्माथ और प्रमाथ नामके दो अनुचर उन्हें दिये ॥ २७ ॥

सुभ्राजो भास्करश्चैव यौ तौ सूर्यानुयायिनौ ।
तौ सूर्यः कार्तिकेयाय ददौ प्रीतः प्रतापवान् ॥ २८ ॥

अनन्तर प्रतापवान् सूर्यने प्रसन्न होकर अपने सङ्ग रहनेवाले शुभ्राज और भास्कर नामक दो अनुचर दिये ॥ २८ ॥

कैलासशृङ्गसंकाशौ श्वेतमाल्यानुलेपनौ ।
सोमोऽप्यनुचरौ प्रादान्मणिं सुमणिमेव च ॥ २९ ॥

चन्द्रमाने भी कैलासके शिखरके समान सुन्दर, श्वेतमाला और श्वेत चंदनधारी मणि और सुमणि नामक दो अनुचर दिये ॥ २९ ॥

ज्वालाजिह्वं तथा ज्योतिरात्मजाय हुताशनः ।
ददावनुचरौ शूरौ परसैन्यप्रमाथिनौ ॥ ३० ॥

अग्निने अपने पुत्र कार्त्तिकेयको शत्रुओंकी सेनाको नाश करनेवाले, महावीर ज्वालाजिह्व और ज्योति नामक दो सेवक दिये ॥ ३० ॥

परिघं च वटं चैव भीमं च सुमहाबलम् ।
दहतिं दहनं चैव प्रचण्डौ वीर्यसंमतौ ।
अंशोऽप्यनुचरान्पञ्च ददौ स्कन्दाय धीमते ॥ ३१ ॥

अंशनामक देवताने बुद्धिमान् कार्त्तिकेयको परिघ, वट, महाबलवान् भीम, प्रचण्ड और महावीर दहति और दहन नामक पांच सभासद दिये ॥ ३१ ॥

उत्क्रोशं पङ्कजं चैव वज्रदण्डधरावुभौ ।
ददावनलपुत्राय वासवः परवीरहा ।
तौ हि शत्रून्महेन्द्रस्य जघ्नतुः समरे बहून् ॥ ३२ ॥

शत्रुवीर नाशन इन्द्रने अग्निपुत्र स्कन्दको वज्रधारी उत्क्रोश और दण्डधारी पञ्चक नामक दो सेवक दिये । उन्होंने युद्धमें इन्द्रके अनेक दानवोंका नाश किया था ॥ ३२ ॥

चक्रं विक्रमकं चैव संक्रमं च महाबलम् ।
स्कन्दाय त्रीननुचरान्ददौ विष्णुर्महायशाः ॥ ३३ ॥

महायशस्वी विष्णुने स्कन्दको चक्र, विक्रम और महाबलवान् संक्रम नामक तीन सभासद दिये ॥ ३३ ॥

वर्धनं नंदनं चैव सर्वविद्याविशारदौ ।
स्कन्दाय ददतुः प्रीतावश्विनौ भरतर्षभ ॥ ३४ ॥

हे श्रेष्ठ भरतवंशी ! वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमारोंने प्रसन्न होकर स्कन्दको सब विद्याओंसे पूर्ण वर्धन और नंदन नामक दो पारिषद दिये ॥ ३४ ॥

कुन्दनं कुसुमं चैव कुमुदं च महायशाः ।
डम्बराडम्बरौ चैव ददौ धाता महात्मने ॥ ३५ ॥

महात्मा कार्त्तिकेयको महायशस्वी धाताने कुंद, कुसुम, कुमुद, डम्बर और आडम्बर नामक सेवक दिये ॥ ३५ ॥

वक्रानुवक्रौ बलिनौ मेषवक्त्रौ बलोत्कटौ ।
ददौ त्वष्टा महामायौ स्कन्दायानुचरौ वरौ ॥ ३६ ॥

त्वष्टाने बली, मेषमुखी, महाबलवान्, माया जाननेवाले बक्र और अनुवक्र नामक दो अनुचर स्कन्दको दिये ॥ ३६ ॥

सुव्रतं सत्यसंधं च ददौ मित्रो महात्मने ।
कुमाराय महात्मानौ तपोविद्याधरौ प्रभुः ॥ ३७ ॥

महात्मा कुमार कार्त्तिकेयको भगवान् मित्रने महामनस्वी सुव्रत और सत्यसन्ध नामक दो बलवान् पार्षद दिये, ये दोनों पार्षद विद्या और तपसे भरे थे ॥ ३७ ॥

सुदर्शनीयौ वरदौ त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ ।
सुप्रभं च महात्मानं शुभकर्माणमेव च ।
कार्त्तिकेयाय संप्रादाद्विधाता लोकविश्रुतौ ॥ ३८ ॥

और वे दोनों देखनेमें अत्यन्त सुंदर, वर देनेमें समर्थ और तीनों लोकोंमें प्रख्यात थे । विधाताने कार्तिकेयको महात्मा सुप्रभ और शुभकर्मा नामक जगविख्यात दो सेवक दिये ॥ ३८ ॥

पालितकं कालिकं च महामायाविनावुभौ ।
पूषा च पार्षदौ प्रादात्कार्तिकेयाय भारत ॥ ३९ ॥

भारत ! पूषाने कार्त्तिकेयको सब माया जाननेवाले, पालितक और कालिक नामक दो पार्षद दिये ॥ ३९ ॥

बलं चातिबलं चैव महावक्त्रौ महाबलौ ।
प्रददौ कार्तिकेयाय वायुर्भरतसत्तम ॥ ४० ॥

हे भरतकुल श्रेष्ठ ! वायुने कार्त्तिकेयको बडे बलवाले और बडे मुखवाले बल और अतिबल नामक दो पार्षद दिये ॥ ४० ॥

घसं चातिघसं चैव तिमिवक्त्रौ महाबलौ ।
प्रददौ कार्तिकेयाय वरुणः सत्यसंगरः ॥ ४१ ॥

सत्यवादी वरुणने तिमि मुखवाले और बडे बलवाले घस और अतिघस नामक दो पार्षद कार्तिकेयको दिये ॥ ४१ ॥

सुवर्चसं महात्मानं तथैवाप्यतिवर्चसम् ।
हिमवान्प्रददौ राजन्हुताशनसुताय वै ॥ ४२ ॥

राजन् ! अग्निके पुत्र कार्त्तिकेयको हिमालयने महात्मा सुवर्चा और अतिवर्चा नामक दो अनुचर दिये ॥ ४२ ॥

काञ्चनं च महात्मानं मेघमालिनमेव च ।
ददावनुचरौ मेरुरग्निपुत्राय भारत ॥ ४३ ॥

भारत ! मेरु पर्वतने अग्निपुत्रको महात्मा कांचन और मेघमाली नामक दो अनुचर दिये ॥ ४३ ॥

स्थिरं चातिस्थिरं चैव मेरुरेवापरौ ददौ ।
महात्मनेऽग्निपुत्राय महाबलपराक्रमौ ॥ ४४ ॥

फिर मेरुने स्थित और अतिस्थिर नामक दो अनुचर महात्मा अग्निपुत्र कार्तिकेयको और दिये । वे दोनों महाबलवान् और पराक्रमी थे ॥ ४४ ॥

उच्छ्रितं चातिश्रृङ्गं च महापाषाणयोधिनौ ।
प्रददावग्निपुत्राय विन्ध्यः पारिषदावुभौ ॥ ४५ ॥

विन्ध्याचलने अग्निपुत्रको बडे बडे पत्थरोंसे युद्ध करनेवाले महापराक्रमी उच्छ्रित और अतिश्रृङ्ग नामक दो अनुचर दिये ॥ ४५ ॥

संग्रहं विग्रहं चैव समुद्रोऽपि गदाधरौ ।
प्रददावग्निपुत्राय महापारिषदावुभौ ॥ ४६ ॥

समुद्रने भी अग्निपुत्रके गदाधारी संग्रह और विग्रह नामक दो अनुचर दिये ॥ ४६ ॥

उन्मादं पुष्पदन्तं शङ्कुकर्णं तथैव च ।
प्रददावग्निपुत्राय पार्वती शुभदर्शना ॥ ४७ ॥

सुन्दरी पार्वतीने अग्निपुत्रको उन्माद, पुष्पदन्त और शंकुकर्ण नामक सेवक दिये ॥ ४७ ॥

जयं महाजयं चैव नागौ ज्वलनसूनवे ।
प्रददौ पुरुषव्याघ्र वासुकिः पन्नगेश्वरः ॥ ४८ ॥

पुरुषसिंह ! सर्पराज वासुकिने अग्निपुत्रको जय और महाजय नामक दो सर्प दिये ॥ ४८ ॥

एवं साध्याश्च रुद्राश्च वसवः पितरस्तथा ।
सागराः सरितश्चैव गिरयश्च महाबलाः ॥ ४९ ॥

इसी प्रकार साध्य, रुद्र, वसु, पितर, समुद्र, नदी और महाबली पर्वतोंने ॥ ४९ ॥

ददुः सेनागणाध्यक्षाञ्छूलपट्टिशधारिणः ।
दिव्यप्रहरणोपेतान्नानावेषविभूषितान् ॥ ५० ॥

कार्त्तिकेयको अनेक सेनापति दिये जो शूल और पट्टिशधारी और नाना प्रकारके दिव्य आयुध धारण किये हुए और अनेक प्रकारकी वेशभूषासे विभूषित थे ॥ ५० ॥

श्रृणु नामानि चान्येषां येऽन्ये स्कन्दस्य सैनिकाः ।
विविधायुधसंपन्नाश्चित्राभरणवर्मिणः ॥ ५१ ॥

अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न और विचित्र भूषणधारी जो स्कन्दके अन्य सैनिक थे, उनके नाम भी तुम सुनो ॥ ५१ ॥

शङ्कुकर्णो निकुम्भश्च पद्मः कुमुद एव च ।
अनन्तो द्वादशभुजस्तथा कृष्णोपकृष्णकौ ॥ ५२ ॥

शंकुकर्ण, निकुम्भ, पद्म, कुमुद, अनन्त, द्वादशभुज, कृष्ण, उपकृष्ण ॥ ५२ ॥

द्रोणश्रवाः कपिस्कन्धः काञ्चनाक्षो जलंधमः ।
अक्षसंतर्जनो राजन्कुनदीकस्तमोभ्रकृत् ॥ ५३ ॥

द्रोणश्रवा, कपिस्कन्ध, कांचनाक्ष, जलन्धम, अक्षसन्तर्जन, कुनदीक, तमोभ्रकृत् ॥ ५३ ॥

एकाक्षो द्वादशाक्षश्च तथैवैकजटः प्रभुः ।
सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः ॥ ५४ ॥

एकाक्ष, द्वादशाक्ष, एकजट, प्रभु, सहस्रबाहु, विकट, व्याघ्राक्ष, क्षितिकम्पन ॥ ५४ ॥

पुण्यनामा सुनामा च सुवक्त्रः प्रियदर्शनः ।
परिश्रुतः कोकनदः प्रियमाल्यानुलेपनः ॥ ५५ ॥

पुण्यनामा, सुनामा, सुवक्त्र, प्रियदर्शन, परिश्रुत, कोकनद, प्रियमाल्यानुलेपन ॥ ५५ ॥

अजोदरो गजशिराः स्कंधाक्षः शतलोचनः ।
ज्वालाजिह्वः करालश्च सितकेशो जटी हरिः ॥ ५६ ॥

अजोदर, गजशिरा, स्कन्धाक्ष, शतलोचन, ज्वालाजिह्व, कराल, सितकेश, जटी, हरि ॥५६॥

चतुर्दंष्ट्रोऽष्टजिह्वश्च मेघनादः पृथुश्रवाः ।
विद्युदक्षो धनुर्वक्त्रो जाठरो मारुताशनः ॥ ५७ ॥

चतुर्दंष्ट्र, अष्टजिह्व, मेघनाद, पृथुश्रवा, विद्युदक्ष, धनुर्वक्त्र, जाठर, मारुताशन ॥ ५७ ॥

उदराक्षो झषाक्षश्च वज्रनाभो वसुप्रभः ।
समुद्रवेगो राजेन्द्र शैलकम्पी तथैव च ॥ ५८ ॥

उदराक्ष, झषाक्ष, वज्रनाभ, वसुप्रभ, समुद्रवेग, शैलकम्पी ॥ ५८ ॥

पुत्रमेषः प्रवाहश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ।
धूम्रः श्वेतः कलिङ्गश्च सिद्धार्थो वरदस्तथा ॥ ५९ ॥

पुत्रमेष, प्रवाह, नन्द, उपनन्द, धूम्र, श्वेत, कलिङ्ग, सिद्धार्थ, वरद ॥ ५९ ॥

प्रियकश्चैव नन्दश्च गोनन्दश्च प्रतापवान् ।
आनन्दश्च प्रमोदश्च स्वस्तिको ध्रुवकस्तथा ॥ ६० ॥

प्रियक, नन्द, प्रतापी गोनन्द, आनन्द, प्रमोद, स्वस्तिक, ध्रुवक ॥ ६० ॥

क्षेमवापः सुजातश्च सिद्धयात्रश्च भारत ।
गोव्रजः कनकापीडो महापारिषदेश्वरः ॥ ६१ ॥

क्षेमवाप, सुजात, सिद्धयात्र, गोव्रज, कनकापीड, महापारिषदेश्वर ॥ ६१ ॥

गायनो हसनश्चैव बाणः खड्गश्च वीर्यवान् ।
वैताली चातितालो च तथा कतिकवातिकौ ॥ ६२ ॥
गायन, हसन, बाण, वीर्यवान् खड्ग, वैताली, चातिताली, कतिक, वातिक ॥ ६२ ॥

हंसजः पङ्कदिग्धाङ्गः समुद्रोन्मादनश्च ह ।
रणोत्कटः प्रहासश्च श्वेतशीर्षश्च नन्दकः ॥ ६३ ॥
हंसज, पङ्कदिग्धाङ्ग, समुद्रोन्मादन, रणोत्कट, प्रहास, श्वेतशीर्ष, नन्दक ॥ ६३ ॥

कालकण्ठः प्रभासश्च तथा कुम्भाण्डकोऽपरः ।
कालकाक्षः सितश्चैव भूतलोन्मथनस्तथा ॥ ६४ ॥
कालकण्ठ, प्रभास, कुम्भाण्डकोपर, कालकाक्ष, सित, भूतमथन ॥ ६४ ॥

यज्ञवाहः प्रवाहश्च देवयाजी च सोमपः ।
सजालश्च महातेजाः क्रथक्राथौ च भारत ॥ ६५ ॥
यज्ञवाह, प्रवाह, देवयाजी, सोमप, सजाल, महातेजा, कथ, क्राथ ॥ ६५ ॥

तुहनश्च तुहानश्च चित्रदेवश्च वीर्यवान् ।
मधुरः सुप्रसादश्च किरीटी च महाबलः ॥ ६६ ॥
तुहन, तुहान्, बलवान् चित्रदेव, मधुर, सुप्रसाद, किरीटी, महाबल ॥ ६६ ॥

वसनो मधुवर्णश्च कलशोदर एव च ।
धमन्तो मन्मथकरः सूचीवक्त्रश्च वीर्यवान् ॥ ६७ ॥
वसनो, मधुवर्ण, कलशोदर, धर्मद, मन्मथकर, बलवान् सूचीवक्त्र ॥ ६७ ॥

श्वेतवक्त्रः सुवक्त्रश्च चारुवक्त्रश्च पाण्डुरः ।
दण्डबाहुः सुबाहुश्च रजः कोकिलकस्तथा ॥ ६८ ॥
श्वेतवक्त्र, सुवक्त्र, चारुवक्त्र, पांडुर, दण्डबाहु, सुबाहु, रज, कोकिलक ॥ ६८ ॥

अचलः कनकाक्षश्च बालानामयिकः प्रभुः ।
संचारकः कोकनदो गृध्रवक्त्रश्च जम्बुकः ॥ ६९ ॥
अचल, कनकाक्ष, बालाप्रभु, सञ्चारक, कोकनद, गृध्रवक्त्र, जम्बुक ॥ ६९ ॥

लोहाशवक्त्रो जठरः कुम्भवक्त्रश्च कुण्डकः ।
मद्गुग्रीवश्च कृष्णौजा हंसवक्त्रश्च चन्द्रभाः ॥ ७० ॥
लोहाशवक्त्र, जठर, कुम्भवक्त्र, कुण्डक, मानुग्रीव, कृष्णौजा, हंसवक्त्र, चन्द्रभा ॥ ७० ॥

पाणिकूर्मा च शम्बूकः पञ्चवक्त्रश्च शिक्षकः ।
चाषवक्त्रश्च जम्बूकः शाकवक्त्रश्च कुण्डकः ॥ ७१ ॥
पाणिकूर्मा, शम्बूक, पञ्चवक्त्र, शिक्षक, चापवक्त्र, जम्बूक, शाकवक्त्र और कुण्डक ॥ ७१ ॥

योगयुक्ता महात्मानः सततं ब्राह्मणप्रियाः ।
पैतामहा महात्मानो महापारिषदाश्च ह ।
यौवनस्थाश्च बालाश्च वृद्धाश्च जनमेजय ॥ ७२ ॥

जनमेजय ! ये सब पार्षद योगयुक्त, महामना और सदा ब्राह्मणोंके प्यारे हैं । इनके सिवा पितामह ब्रह्माने दिये हुए श्रेष्ठ महान् पार्षद हैं, वे बालक और तरुण और वृद्ध हैं ॥ ७२ ॥

सहस्रशः पारिषदाः कुमारमुपतस्थिरे ।
वक्त्रैर्नानाविधैर्ये तु शृणु तान्जनमेजय ॥ ७३ ॥

सहस्रों परिषद कुमारकी सेवामें उपस्थित हुए । जनमेजय ! अब उनके अनेक प्रकारके मुखोंका वर्णन सुनो ॥ ७३ ॥

कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ।
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ॥ ७४ ॥

कोई कछुवे, कोई मुर्गे, कोई खरगोश, कोई उल्लू, कोई गधे, कोई ऊंट, कोई सूअरके समान मुखवाले थे ॥ ७४ ॥

मनुष्यमेषवक्त्राश्च सृगालवदनास्तथा ।
भीमा मकरवक्त्राश्च शिंशुमारमुखास्तथा ॥ ७५ ॥

कोई मनुष्य तथा भैंसे जैसे मुँहवाले, कोई सियार जैसे मुखवाले, कोई भयंकर मगर जैसे मुँहवाले तथा शिंशुमार मुखवाले थे ॥ ७५ ॥

मार्जारशशवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च भारत ।
नकुलोलूकवक्त्राश्च श्ववक्त्राश्च तथापरे ॥ ७६ ॥

भारत ! कोई बिल्ली तथा खरगोशके समान मुखवाले थे, किसीका लम्बा मुख था; कोई नेवले उल्लू, कुत्तेके समान मुखवाले थे ॥ ७६ ॥

आखुबभ्रुकवक्त्राश्च मयूरवदनास्तथा ।
मत्स्यमेषाननाश्चान्ये अजाविमहिषाननाः ॥ ७७ ॥

कोई चूहे, बभ्रु तथा मोर, मछली, मेंढा, बकरी, भेड, भैंस ॥ ७७ ॥

ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च द्वीपिसिंहाननास्तथा ।
भीमा गजाननाश्चैव तथा नक्रमुखाः परे ॥ ७८ ॥

रीछ, शार्दूल, गैंडा, सिंह, भयानक हाथी, मगर ॥ ७८ ॥

गरुडाननाः खड्गमुखा वृककाकमुखास्तथा ।
गोखरोष्ट्रमुखाश्चान्ये वृषदंशमुखास्तथा ॥ ७९ ॥

गरुड, खड्ग, भेडिया, कौवे, गाय, गधा, ऊंट और चीतेके समान मुखवाले थे ॥ ७९ ॥

महाजठरपादाङ्गारतारकाक्षाश्च भारत ।
पारावतमुखाश्चान्ये तथा वृषमुखाः परे ॥ ८० ॥

भारत ! किसीके पेट, पैर और दूसरे अङ्ग भी विशाल थे; किसीके नेत्र तारोंके समान थे, किसीका मुख परे, वा किसीका बैल ॥ ८० ॥

कोकिलावदनाश्चान्ये श्येनतित्तिरिकाननाः ।
कृकलासमुखाश्चैव विरजोम्बरधारिणः ॥ ८१ ॥

किसीका कोकिला, किसीका बाज, किसीका तीतर, किसीका गिर्गटके समान मुख था । ये सब उस समय निर्मल वस्त्र धारण किये थे ॥ ८१ ॥

व्यालवक्त्राः शूलमुखाश्चण्डवक्त्राः शताननाः ।
आशीविषाश्चीरधरा गोनासावरणास्तथा ॥ ८२ ॥

किसीका सांप और किसीका शूलके समान भयानक मुख था, किन्हींके मुखसे क्रोध टपकता था और कोई सैंकडो मुखवाले थे । कुछ विषधर सर्पोंके समान थे, कोई चीर धारण किये हुए थे और किन्हींके मुख गायके नथुनोंके समान दीखते थे ॥ ८२ ॥

स्थूलोदराः कृशाङ्गाश्च स्थूलाङ्गाश्च कृशोदराः ।
ह्रस्वग्रीवा महाकर्णा नानाव्यालविभूषिताः ॥ ८३ ॥

किसीका शरीर बहुत दुबला और पेट बहुत बडा था, किसीका शरीर बहुत मोटा और पेट छोटा था । किसीकी गर्दन छोटी थी, और कान भारी थे, नाना प्रकारके सांपोंको उन्होंने आभूषण जैसा धारण किया था ॥ ८३ ॥

गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ।
स्कन्धेमुखा महाराज तथा ह्युदरतोमुखाः ॥ ८४ ॥

कोई हाथीका चमडा ओढ रहा था, और कोई मृगछाला ओढ रहा था । महाराज ! किसीका मुख कंधेमें था, तो किसीका पेटमें ॥ ८४ ॥

पृष्ठेमुखा हनुमुखास्तथा जङ्घामुखा अपि ।
पार्श्वाननाश्च बहवो नानादेशमुखास्तथा ॥ ८५ ॥

किसीका पीठमें, किसीका ठोडीमें और किसीका जांघमें ही मुख था । और बहुतसे ऐसे भी थे जिनके मुख पार्श्वभागमें थे । किसीके शरीरके विभिन्न प्रदेशोंमें मुख थे ॥ ८५ ॥

तथा कीटपतंगानां सदृशास्या गणेश्वराः ।
नानाव्यालमुखाश्चान्ये बहुबाहुशिरोधराः ॥ ८६ ॥

विभिन्न गणोंके प्रमुख कीट पतंगोंके समान मुख धारण किये हुए थे। किसीके शरीरमें अनेक और सांपोंके मुख लगे थे, किसीके अनेक हाथ और किसीके अनेक शिर थे ॥ ८६ ॥

नानावृक्षभुजाः केचित्कटिशीर्षास्तथापरे ।
भुजंगभोगवदना नानागुल्मनिवासिनः ॥ ८७ ॥
किसीके अनेक वृक्षोंके समान हाथ थे और किसी"ा कमरमें सिर था। किसीका मुख सांपके फणोंके समान था, कोई नाना प्रकारके गुल्मों और लताओंसे आच्छादित थे ॥ ८७ ॥

चीरसंवृतगात्राश्च तथा फलकवाससः ।
नानावेषधराश्चैव चर्मवाससः एव च ॥ ८८ ॥
कोई चीर वस्त्रसे अपनेको ढके हुए थे और कोई नाना प्रकारके फलोंके वस्त्र धारण किये थे। कोई अनेक प्रकारके वेश और वस्त्र धारण किये थे, कोई चमडा ओढे थे ॥ ८८ ॥

उष्णीषिणो मुकुटिनः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः ।
किरीटिनः पञ्चशिखास्तथा कठिनमूर्धजाः ॥ ८९ ॥
कोई मस्तकपर पगडी बांधे थे, कोई मुकुट बांधे थे, कोई सुन्दर कंठवाले और कोई महा-तेजस्वी अंगकांतिवाले थे, कोई किरीट बांधे थे, किसीके पांच शिखा थीं, किसीके सिरके वाल कठिन थे ॥ ८९ ॥

त्रिशिखा द्विशिखाश्चैव तथा सप्तशिखाः परे ।
शिखण्डिनो मुकुटिनो मुण्डाश्च जटिलास्तथा ॥ ९० ॥
किसीके तीन शिखा थीं, किसीके दो शिखा थीं और किसीके सात शिखा थीं, किसीके माथेपर मोरपंख और किसीके सिरपर मुकुट धारण किया हुआ था। किसीका शिर मुडा था और किसीकी जटा बढी थी ॥ ९० ॥

चित्रमाल्यधराः केचित्केचिद्रोमाननास्तथा ।
दिव्यमाल्याम्बरधराः सततं प्रियविग्रहाः ॥ ९१ ॥
कोई विचित्र माला पहिने थे, किसीके मुखपर बडे बडे वाल थे, कोई दिव्यमाला धारण किये हुए थे और उन सबको निरन्तर लडाई-झगडे ही प्यारे थे ॥ ९१ ॥

कृष्णा निर्मांसवक्त्राश्च दीर्घपृष्ठा निरूदराः ।
स्थूलपृष्ठा ह्रस्वपृष्ठाः प्रलम्बोदरमेहनाः ॥ ९२ ॥
कोई काले थे, कोई मांसरहित मुखवाले थे, कोई वडे पीठवाले थे और कोई जांघमें पेट धंसे हुए थे। किसीकी कमर वडी भारी और किसीकी कमर छोटी थी, किसीका पेट वडा और किसीका लिङ्ग वडा भारी था ॥ ९२ ॥

महाभुजा ह्रस्वभुजा ह्रस्वगात्राश्च वामनाः ।
कुब्जाश्च दीर्घजङ्घाश्च हस्तिकर्णशिरोधराः ॥ ९३ ॥
किसीके हाथ वडे और किसीके छोटे छोटे थे, कोई वहुत छोटे अंगोंवाले और कोई बौने ही थे, कोई कुबडे और कोई वडे जांघवाले थे। किसीका कान और किसीका शिर हाथीके समान था ॥ ९३ ॥

हस्तिनासाः कूर्मनासा वृकनासास्तथापरे ।
दीर्घोष्ठा दीर्घजिह्वाश्च विकराला ह्यधोमुखाः ॥ ९४ ॥

किसीकी नाक हाथी जैसी और किसीकी कछुवेके समान थी, किसीकी नाक भेडियेके समान थी, कोई लम्बे होठवाले थे, किसीकी जिह्वा बडी भारी थी, किसीका मुख बडा भयानक और नीचेको था ॥ ९४ ॥

महादंष्ट्रा ह्रस्वदंष्ट्राश्चतुर्दंष्ट्रास्तथापरे ।
वारणेन्द्रनिभाश्चान्ये भीमा राजन्सहस्रशः ॥ ९५ ॥

हे राजन् ! किसीकी बडी बडी दाढें, किसीको छोटी और किसीकी चार थीं । दूसरे भी हजारों पार्षद हाथीके समान बडे शरीरवाले और भयंकर थे ॥ ९५ ॥

सुविभक्तशरीराश्च दीप्तिमन्तः स्वलंकृताः ।
पिङ्गाक्षाः शङ्कुकर्णाश्च वक्रनासाश्च भारत ॥ ९६ ॥

उनके शरीरके अंग सुंदर और विभागपूर्वक थे । कोई दीप्तिमान् और उत्तम आभूषण पहिने थे, भारत ! किसीके नेत्र पिंगलवर्णके थे, किसीके कान शंखके समान थे किसीकी नाक टेढी थी ॥ ९६ ॥

पृथुदंष्ट्रा महादंष्ट्राः स्थूलौष्ठा हरिमूर्धजाः
नानापादौष्ठदंष्ट्राश्च नानाहस्तशिरोधराः ।
नानावर्मभिराच्छन्ना नानाभाषाश्च भारत ॥ ९७ ॥

किसीकी दाढें बडी और किसीकी मोटी थीं । किसीके मोटे मोटे ओठ और सिरके बाल नीले–नीले थे, किसीके अनेक चरण किसीके अनेक ओठ, किसीकी अनेक दाढें किसीके अनेक हाथ और किसीके अनेक शिर थे । भारत ! कोई अनेक प्रकारके वर्म वस्त्र ओढे और अनेक भाषाको जाननेवाले थे ॥ ९७ ॥

कुशला देशभाषासु जल्पन्तोऽन्योन्यमीश्वराः ।
हृष्टाः परिपतन्ति स्म महापारिषदास्तथा ॥ ९८ ॥

ये सब गणदेशकी सभी भाषाओंमें कुशल और परस्पर वार्तालाप करनेमें समर्थ थे । वे सब महापार्षदगण प्रसन्न होकर चारों ओरसे आये ॥ ९८ ॥

दीर्घग्रीवा दीर्घनखा दीर्घपादशिरोभुजाः ।
पिङ्गाक्षा नीलकण्ठाश्च लम्बकर्णाश्च भारत ॥ ९९ ॥

उनकी ग्रीवा, नाखून, पैर, मस्तक और हाथ सभी बडे बडे थे । भारत ! किसीकी आंखें भूरी थीं, किसीके गले नीले थे, किसीके लम्बे लम्बे कान थे ॥ ९९ ॥

वृकोदरनिभाश्चैव केचिदञ्जनसंनिभाः
श्वेताङ्गा लोहितग्रीवाः पिङ्गाक्षाश्च तथापरे ।
कल्माषा बहवो राजंश्चित्रवर्णाश्च भारत ॥ १०० ॥

किसीका भेडियेके समान पेट था, कोई अञ्जनके समान काले शरीरवाला था, किसीका शरीर सफेद और गला लाल था, किसीके पिङ्गलवर्ण नेत्र थे। हे भारत राजन्! बहुतसे विचित्र रङ्गवाले और चितकबरे थे ॥ १०० ॥

चामरापीडकनिभाः श्वेतलोहितराजयः ।
नानावर्णाः सवर्णाश्च मयूरसदृशप्रभाः ॥ १०१ ॥

किसीके शरीर चमर तथा फूलोंके मुकुटके समान रंगवाले थे, किसीके शरीरपर लाल और सफेद रंगोंके बिन्दु थे, कुछ पार्षद एक दूसरेसे भिन्न रंगके थे, कोई समान रंगवाले ही थे, और किसीका रंग मोरके समान था ॥ १०१ ॥

पुनः प्रहरणान्येषां कीर्त्यमानानि मे शृणु ।
शेषैः कृतं पारिषदैरायुधानां परिग्रहम् ॥ १०२ ॥

अब तुम शेष पार्षदोंने जो जो आयुध लिये थे, उनके नाम मैं कहता हूं, सुनो ॥ १०२ ॥

पाशोद्यतकराः केचिद्व्यादितास्याः खराननाः ।
पृथुवक्षा नीलकण्ठाश्च तथा परिघबाहवः ॥ १०३ ॥

किसीके हाथमें पाश लिया हुआ था, कोई मुंह बाये खडे थे, किसीका मुख गधेके समान, किसीकी पीठमें आंख थीं, किसीका कण्ठ नीला था। किसीके हाथमें परिघ थे ॥ १०३ ॥

शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः ।
शूलासिहस्ताश्च तथा महाकाया महाबलाः ॥ १०४ ॥

भारत! किसीके हाथोंमें शतघ्नी, किसीके चक्र, किसीके मुशल, शूल, तलवार हाथमें लिए हुए तथा महान् शरीर व बलवाले थे ॥ १०४ ॥

गदाभुशुण्डिहस्ताश्च तथा तोमरपाणयः ।
असिमुद्गरहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च भारत ॥ १०५ ॥

भारत! किसीके गदा, किसीके भुशुण्डी और किसीके हाथमें तोमर था। किसीके खड्ग, किसीके मुद्गर और किसीके दण्ड हाथमें थे ॥ १०५ ॥

आयुधैर्विविधैर्घोरैर्महात्मानो महाजवाः ।
महाबला महावेगा महापारिषदास्तथा ॥ १०६ ॥

महावेगवाले महात्मा महाबलवान् महापार्षदगणोंके हाथमें और भी अनेक प्रकारके भयंकर शस्त्र थे ॥ १०६ ॥

अभिषेकं कुमारस्य दृष्ट्वा हृष्टा रणप्रियाः ।
घण्टाजलिपिनद्धाङ्गा नन्तृतुस्ते महौजसः ॥ १०७ ॥

प्रारम्भसे कार्त्तिकेयका अभिषेक देखकर यह सब युद्ध करनेवाले वीर बहुत प्रसन्न हुए, फिर महान् ओजस्वी वे अपने अंगोंमें छोटी छोटी घण्टियां बांधकर नांचने लगे ॥ १०७ ॥

एते चान्ये च बहवो महापारिषदा नृप ।
उपतस्थुर्महात्मानं कार्तिकेयं यशस्विनम् । ॥ १०८ ॥

हे नृप! ये तथा और भी अनेक महापारिषद यशस्वी महात्मा कार्त्तिकेयके पास उनकी सेवाके लिये आये ॥ १०८ ॥

दिव्याश्चाप्यान्तरिक्षाश्च पार्थिवाश्चानिलोपमाः ।
व्यादिष्टा दैवतैः शूराः स्कन्दस्यानुचराभवन् ॥ १०९ ॥

देवताओंकी आज्ञासे देवलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वीमें रहनेवाले वायुके समान वेगवान् शूरवीर पारिषद स्कन्दके अनुचर हुए थे ॥ १०९ ॥

तादृशानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
अभिषिक्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ११० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ॥ २३६१ ॥

ऐसे हजारों, लाखों, करोडों और पद्मों पार्षद्गण अभिषेक होते हुए कार्त्तिकेयके चारों ओर उनको घेरकर खडे हो गये ॥ ११० ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ २३६१ ॥

: ४५ :

वैशंपायन उवाच

शृणु मातृगणान्राजन्कुमारानुचरानिमान् ।
कीर्त्यमानान्मया वीर सपत्नगणसूदनान् ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् वीर जनमेजय! अब हम कार्तिकेयके सङ्ग रहनेवाली, शत्रुनाशिनी मातृगणोंका वर्णन करते हैं। तुम सुनो ॥ १ ॥

यशस्विनीनां मातृणां शृणु नामानि भारत ।
याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः कल्याणीभिश्चराचराः ॥ २ ॥

हे भारत! तुम उन ही यशस्विनी मातृकाओंके नाम सुनो, जिन कल्याणकारिणी देवियोंने चर–अचर तीनों लोकोंको व्याप्त किया है ॥ २ ॥

प्रभावती विशालाक्षी पलिता गोनसी तथा ।
श्रीमती बहुला चैव तथैव बहुपुत्रिका ॥ ३ ॥
प्रभावती, विशालाक्षी, पलिता, गोनसी, श्रीमती, बहुला, बहुपुत्रिका ॥ ३ ॥

अप्सुजाता च गोपाली बृहदम्बालिका तथा ।
जयावती मालतिका ध्रुवरत्ना भयंकरी ॥ ४ ॥
अप्सुजाता, गोपाली, बृहदम्बलिका, जयावती, मालतिका, ध्रुवरत्ना, अभयङ्करी ॥ ४ ॥

वसुदामा सुदामा च विशोका नन्दिनी तथा ।
एकचूडा महाचूडा चक्रनेमिश्च भारत ॥ ५ ॥
वसुदामा, सुदामा, विशोका, नन्दिनी, एकचूडा, महाचूडा, चक्रनेमि ॥ ५ ॥

उत्तेजनी जयत्सेना कमलाक्ष्यथ शोभना ।
शत्रुंजया तथा चैव क्रोधना शलभी खरी ॥ ६ ॥
उत्तेजनी, जयत्सेना, कमलाक्षी, शोभना, शत्रुंजया, क्रोधना, शलभी, खरी ॥ ६ ॥

माधवी शुभवक्त्रा च तीर्थनेमिश्च भारत ।
गीतप्रिया च कल्याणी कद्रुला चामिताशना ॥ ७ ॥
माधवी, शुभवक्त्रा, तीर्थनेमि गीतप्रिया, कल्याणी, कद्रुला, अमिताशना ॥ ७ ॥

मेघस्वना भोगवती सुभ्रूश्च कनकावती ।
अलाताक्षी वीर्यवती विद्युज्जिह्वा च भारत ॥ ८ ॥
मेघस्वना, भोगवती, सुभ्रू, कनकावती, अलाताक्षी, वीर्यवती, विद्युज्जिह्वा ॥ ८ ॥

पद्मावती सुनक्षत्रा कन्दरा बहुयोजना ।
संतानिका च कौरव्य कमला च महाबला ॥ ९ ॥
पद्मावती, सुनक्षत्रा, कन्दरा, बहुयोजना, सन्तानिका, कमला, महाबला ॥ ९ ॥

सुदामा बहुदामा च सुप्रभा च यशस्विनी ।
नृत्यप्रिया च राजेन्द्र शतोलूखलमेखला ॥ १० ॥
सुदामा, बहुदामा, सुप्रभा, यशस्विनी, नृत्यप्रिया, शता, उलूखलमेखला ॥ १० ॥

शतघण्टा शतानन्दा भगनन्दा च भामिनी ।
वपुष्मती चन्द्रशीता भद्रकाली च भारत ॥ ११ ॥
शतघण्टा, शतानन्दा, भगनन्दा, भामिनी, वपुष्मती, चन्द्रशीता, भद्रकाली ॥ ११ ॥

संकारिका निष्कुटिका भ्रमा चत्वरवासिनी ।
सुमङ्गला स्वस्तिमती वृद्धिकामा जयप्रिया ॥ १२ ॥
संकारिका, निष्कुटिका, भ्रमा, चत्वरवासिनी, सुमङ्गला, स्वस्तिमती, वृद्धिकामा, जयप्रिया ॥ १२ ॥

धनदा सुप्रसादा च भवदा च जलेश्वरी ।
एडी भेडी समेडी च वेतालजननी तथा
कण्डूतिः कालिका चैव देवमित्रा च भारत ॥ १३ ॥
धनदा, सुप्रसादा, भवदा, जलेश्वरी, एडी, भेडी, समेडी, वेतालजननी, कण्डूति, कालिका, देवमित्रा ॥ १३ ॥

लम्बसी केतकी चैव चित्रसेना तथा बला ।
कुक्कुटिका शङ्खनिका तथा जर्जरिका नृप ॥ १४ ॥
लम्बसी केतकी, चित्रसेना, बला, कुक्कुटिका, शङ्खलिका, जर्जरिका ॥ १४ ॥

कुण्डारिका कोकलिका कण्डरा च शतोदरी ।
उत्क्राथिनी जरेणा च महावेगा च कङ्कणा ॥ १५ ॥
कुण्डारिका, कोकलिका, कण्डरा, शतोदरी, उत्क्राथिनी, जरेणा, महावेगा, कङ्कणा ॥ १५ ॥

मनोजवा कण्टकिनी प्रघसा पूतना तथा ।
खशया चुर्व्युटिर्वामा क्रोशनाथ तडित्प्रभा ॥ १६ ॥
मनोजवा, कण्टकिनी, प्रघसा, पूतना, खशया, चुर्व्युटि, वामा, क्रोशनाथ, तडित्प्रभा ॥१६॥

मण्डोदरी च तुण्डा च कोटरा मेघवासिनी ।
सुभगा लम्बिनी लम्बा वसुचूडा विकत्थनी ॥ १७ ॥
मन्डोदरी, तुण्डा, कोटरा, मेघवासिनी, सुभगा, लम्बिनी, लम्बा, वसुचूडा, विकत्थनी ॥१७॥

ऊर्ध्ववेणीधरा चैव पिङ्गाक्षी लोहमेखला ।
पृथुवक्त्रा मधुरिका मधुकुम्भा तथैव च ॥ १८ ॥
ऊर्ध्ववेणीधरा, पिंगाक्षी, लोहमेखला, पृथुवक्त्रा, मधुरिका, मधुकुम्भा ॥ १८ ॥

पक्षालिका मन्थनिका जरायुर्जर्जरानना ।
ख्याता दहदहा चैव तथा धमधमा नृप ॥ १९ ॥
पक्षालिका, मन्थनिका, जरायु, जर्जरानना, ख्याता, दहदहा, धमधमा ॥ १९ ॥

खण्डखण्डा च राजेन्द्र पूषणा मणिकुण्डला ।
अमोचा चैव कौरव्य तथा लम्बपयोधरा ॥ २० ॥
खण्डखण्डा, पूषणा, मणिकुण्डला, अमोचा, लम्बपयोधरा ॥ २० ॥

वेणुवीणाधरा चैव पिङ्गाक्षी लोहमेखला ।
शशोलूकमुखी कृष्णा खरजङ्घा महाजवा ॥ २१ ॥
वेणुवीणाधरा, पिंगाक्षी, लोहमेखला, शशोलूकमुखी, कृष्णा, खरजङ्घा, महाजवा ॥ २१ ॥

शिशुमारमुखी श्वेता लोहिताक्षी विभीषणा।
जटालिका कामचरी दीर्घजिह्वा बलोत्कटा ॥ २२ ॥

शिशुमारमुखी, श्वेता, लोहिताक्षी, विभीषणा, जटालिका, कामचरी, दीर्घजिह्वा, बलोत्कटा ॥ २२ ॥

कालेडिका वामनिका मुकुटा चैव भारत।
लोहिताक्षी महाकाया हरिपिण्डी च भूमिप ॥ २३ ॥

कालेडिका, वामनिका, मुकुटा, लोहिताक्षी, महाकाया, हरिपिण्डी भूमिप ॥ २३ ॥

एकाक्षरा सुकुसुमा कृष्णकर्णी च भारत।
क्षुरकर्णी चतुष्कर्णी कर्णप्रावरणा तथा ॥ २४ ॥

एकाक्षरा, सुकुसुमा, कृष्णकर्णी, क्षुरकर्णी, चतुष्कर्णी, कर्णप्रावरणा ॥ २४ ॥

चतुष्पथनिकेता च गोकर्णी महिषानना।
खरकर्णी महाकर्णी भेरीस्वनमहास्वना ॥ २५ ॥

चतुष्पथनिकेता, गोकर्णी, महिषानना, खरकर्णी, महाकर्णी, भेरीस्वनमहास्वना ॥ २५ ॥

शङ्खकुम्भस्वना चैव भङ्गदा च महाबला।
गणा च सुगणा चैव तथाभीत्यथ कामदा ॥ २६ ॥

शङ्खकुम्भस्वना, भंगदा, महाबला, गणा, सुगणा, अभीति, कामदा ॥ २६ ॥

चतुष्पथरता चैव भूतितीर्थान्यगोचरा।
पशुदा वित्तदा चैव सुखदा च महायशाः।
पयोदा गोमहिषदा सुविषाणा च भारत ॥ २७ ॥

चतुष्पथरता, भूतितीर्था, अन्यगोचरा, पशुदा, वित्तदा, सुखदा, महायशा, पयोदा, गोमहिषदा, सुविषाणा ॥ २७ ॥

प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा च रोचमाना सुरोचना।
गोकर्णी च सुकर्णी च ससिरा स्थेरिका तथा।
एकचक्रा मेघरवा मेघमाला विरोचना ॥ २८ ॥

प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, रोचमाना, सुरोचना, गोकर्णी, सुकर्णी, ससिरा, स्थेरिका, एकचक्रा, मेघरवा, मेघमाला और विरोचना ॥ २८ ॥

एताश्चान्याश्च बहवो मातरो भरतर्षभ।
कार्त्तिकेयानुयायिन्यो नानारूपाः सहस्रशः ॥ २९ ॥

हे भरतकुलसिंह! इनको आदि लेकर और भी सहस्रों मातृगण अनेक प्रकारके स्वरूप बनाकर कार्त्तिकेयके संग रहती हैं ॥ २९ ॥

दीर्घनख्यो दीर्घदन्त्यो दीर्घतुण्डयश्च भारत।
सरला मधुराश्चैव यौवनस्थाः स्वलंकृताः ॥ ३० ॥

इन सबके बडे बडे नख, दांत और बडे बडे मुख हैं। सब बल, मधुरता, यौवन और वस्त्र भूषणोंसे विभूषित हैं ॥ ३० ॥

माहात्म्येन च संयुक्ताः कामरूपधरास्तथा।
निर्मांसगात्र्यः श्वेताश्च तथा काञ्चनसंनिभाः ॥ ३१ ॥

और ये महात्म्यसे भरी हैं। ये इच्छानुसार रूप धारण कर सकती हैं, किसीके शरीरमें मांस नहीं है, कुछ श्वेत वर्णकी हैं। किसीका सोनेके समान रङ्ग है ॥ ३१ ॥

कृष्णमेघनिभाश्चान्या धूम्राश्च भरतर्षभ।
अरुणाभा महाभागा दीर्घकेश्यः सिताम्बराः ॥ ३२ ॥

भरतर्षभ! कोई मेघके समान काली, कोई धूवेंके समान सुन्दर वर्णकी हैं। और कोई अरूण रङ्गवाली है। वे सभी महान् भाग्यशाली हैं। सब बडे बालशाली और सफेद वस्त्र धारिणी हैं ॥ ३२ ॥

ऊर्ध्ववेणीधराश्चैव पिङ्गाक्ष्यो लम्बमेखलाः।
लम्बोदर्यो लम्बकर्णास्तथा लम्बपयोधराः ॥ ३३ ॥

वे ऊपरकी ओर वेणी धारण करनेवाली, पिङ्गवर्ण नेत्रवाली और लंबी मेखलासे अलंकृत हैं। उनमेंसे किसीके बडे बडे पेट, लम्बे लम्बे कान और दोनों स्तन लम्बे लम्बे हैं ॥ ३३ ॥

ताम्राक्ष्यस्ताम्रवर्णाश्च हर्यक्ष्यश्च तथापराः।
वरदाः कामचारिण्यो नित्यप्रमुदितास्तथा ॥ ३४ ॥

कोई ताम्बेके समान लाल नेत्रवाली, किसीकी शरीरकी कान्ति ताम्रवर्णकी है। बहुतोंकी आंखें काले रंगकी हैं। ये सब वरदान देनेमें समर्थ हैं, सब इच्छानुसार घूमती हैं और सदा प्रसन्न रहनेवाली हैं ॥ ३४ ॥

याम्यो रौद्र्यस्तथा सौम्याः कौबेर्योऽथ महाबलाः।
वारुण्योऽथ च माहेन्द्र्यस्तथाग्नेय्यः परंतप ॥ ३५ ॥

हे परन्तप! उनमेंसे कोई यम, रुद्र, चन्द्रमा, कुबेर, कोई वरुण, कोई देवराज इन्द्र और कोई अग्निकी शक्तियां हैं। वे सब महान् बलसे संपन्न हैं ॥ ३५ ॥

वायव्यश्चाथ कौमार्यो ब्राह्म्यश्च भरतर्षभ।
रूपेणाप्सरसां तुल्या जवे वायुसमास्तथा ॥ ३६ ॥

भरतर्षभ! उसी तरह कुछ वायु, कुमार कार्तिकेय, ब्रह्माकी शक्तियां हैं। ये रूपमें अप्सराओंके तुल्य हैं और वेगमें वायुके समान हैं ॥ ३६ ॥

*

परपुष्टोपमा वाक्ये तथर्द्धया धनदोपमाः ।
शक्रवीर्योपमाश्चैव दीप्त्या वह्निसमास्तथा ॥ ३७ ॥

इनकी बडी मीठी वाणी कोयल जैसी है, ये धनसमृद्धिमें कुबेरके समान हैं। युद्ध करने और बलमें इन्द्रके समान और तेजमें अग्निके समान हैं ॥ ३७ ॥

वृक्षचत्वरवासिन्यश्चतुष्पथनिकेतनाः ।
गुहाश्मशानवासिन्यः शैलप्रस्रवणालयाः ॥ ३८ ॥

ये सब वृक्ष, चबूतर, चौराहे, गुफा, स्मशान, पर्वत और झरनेमें रहती हैं ॥ ३८ ॥

नानाभरणधारिण्यो नानामाल्याम्बरास्तथा ।
नानाविचित्रवेषाश्च नानाभाषास्तथैव च ॥ ३९ ॥

अनेक प्रकारके आभूषण, पुष्पमाला और वस्त्र धारण करती हैं। अनेक प्रकारके विचित्र वेष बनाती हैं और अनेक प्रकारकी भाषा बोलती हैं ॥ ३९ ॥

एते चान्ये च बहवो गणाः शत्रुभयंकराः ।
अनुजग्मुर्महात्मानं त्रिदशेन्द्रस्य संमते ॥ ४० ॥

इनको आदि लेकर और भी सहस्रों शत्रुओंको भयभीत करनेवाले बहुत गण देवराज इन्द्रकी संमतिसे महात्मा कार्तिकेयका अनुसरण करने लगे ॥ ४० ॥

ततः शक्त्यस्त्रमददद्भगवान्पाकशासनः ।
गुहाय राजशार्दूल विनाशाय सुरद्विषाम् ॥ ४१ ॥

राजश्रेष्ठ ! भगवान् पाकशासनने देवद्रोही दानवोंका नाश करनेके लिये एक शक्ति नामक अस्त्र कार्तिकेयको दिया ॥ ४१ ॥

महास्वनां महाघण्टां द्योतमानां सितप्रभाम् ।
तरुणादित्यवर्णां च पताकां भरतर्षभ ॥ ४२ ॥

भरतर्षभ ! साथ ही उन्होंने बडे शब्दवाली एक विशाल घंटा जो अपने तेजसे प्रकाश करता था प्रदान की। और प्रातःकालके सूर्यके समान प्रकाशमानवाली एक पताका दे दी ॥४२॥

ददौ पशुपतिस्तस्मै सर्वभूतमहाचमूम् ।
उग्रां नानाप्रहरणां तपोवीर्यबलान्विताम् ॥ ४३ ॥

भगवान् पशुपतिने संपूर्ण भूतगणोंकी महान् सेना प्रदान की। वह सेना भयंकर थी और सभी सैनिक अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, तप, पराक्रम और बलसे सम्पन्न थे ॥ ४३ ॥

विष्णुर्ददौ वैजयन्तीं मालां बलविवर्धिनीम् ।
उमा ददौ चारजसी वाससी सूर्यसप्रभे ॥ ४४ ॥

विष्णुने बल बढानेवाली वैजयन्तीमाला और पार्वतीने सूर्यके समान दो निर्मल वस्त्र प्रदान की ॥ ४४ ॥

गङ्गा कमण्डलुं दिव्यममृतोद्भवमुत्तमम् ।
ददौ प्रीत्या कुमाराय दण्डं चैव बृहस्पतिः ॥ ४५ ॥

गङ्गाने एक दिव्य, अमृतसे उत्पन्न हुआ उत्तम कमण्डलु और बृहस्पतिने प्रसन्न होकर कुमारको दण्ड प्रदान किया ॥ ४५ ॥

गरुडो दयितं पुत्रं मयूरं चित्रबर्हिणम् ।
अरुणस्ताम्रचूडं च प्रददौ चरणायुधम् ॥ ४६ ॥

गरुडने विचित्र पङ्खवाला अपना प्यारा पुत्र मोर और अरुणने लाल चोटीवाला मुर्गा जिसका पैर ही आयुध था, अर्पण किया ॥ ४६ ॥

पाशं तु वरुणो राजा बलवीर्यसमन्वितम् ।
कृष्णाजिनं तथा ब्रह्मा ब्रह्मण्याय ददौ प्रभुः ।
समरेषु जयं चैव प्रददौ लोकभावनः ॥ ४७ ॥

राजा वरुणने बल और वीर्य संपन्न एक सांप और भगवान् ब्रह्माने ब्राह्मणोंका हित चाहनेवाले कुमारको काला मृगचर्म और युद्धमें जय होनेका आशीर्वाद दिया ॥ ४७ ॥

सेनापत्यमनुप्राप्य स्कन्दो देवगणस्य ह ।
शुशुभे ज्वलितोऽर्चिष्मान्द्वितीय इव पावकः ।
ततः पारिषदैश्चैव मातृभिश्च समन्वितः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार कार्त्तिकेय देवताओंके सेनापति बनकर, उस पर्वतके ऊपर अपने तेजसे प्रज्वलित हो दूसरे अग्निदेवके समान फिर अपने पार्षद और मातृगणके सहित प्रकाशित होने लगे ॥४८॥

सा सेना नैर्ऋती भीमा सघण्टोच्छ्रितकेतना ।
सभेरीशङ्खमुरजा सायुधा सपताकिनी ।
शारदी द्यौरिवाभाति ज्योतिर्भिरुपशोभिता ॥ ४९ ॥

फिर उस भयानक नैऋती सेनामें घंटा, भेरी, शङ्ख और मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे । ध्वजा उडने लगी । जैसे शरत्कालके आकाशमें तारे चमकते हैं ऐसे अस्त्रशस्त्र और पताकाओंसे संपन्न वह विशाल सेना सुशोभित होती थी ॥ ४९ ॥

ततो देवनिकायास्ते भूतसेनागणास्तथा ।
वादयामासुरव्यग्रा भेरीशङ्खांश्च पुष्कलान् ॥ ५० ॥
पटहाञ्झर्झरांश्चैव कृकचान्गोविषाणिकान् ।
आडम्बरान्गोमुखांश्च डिण्डिमांश्च महास्वनान् ॥ ५१ ॥

तदनन्तर देवताओंने और सब भूतगणोंने सावधान होकर अनेक भेरी, शङ्ख, पटह, झांझ, कृकच, गोशृंग, आडम्बर, गोमुख और बडे शब्दवाले डिण्डिम आदि बाजे बजाये ॥५०-५१॥

तुष्टुवुस्ते कुमारं च सर्वे देवाः सवासवाः ।
जगुश्च देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५२ ॥

फिर इन्द्रादिक सब देवता कुमार कार्त्तिकेयकी स्तुति करने लगे; गन्धर्व और देवता गाने लगे और अप्सराएं नाचने लगीं ॥ ५२ ॥

ततः प्रीतो महासेनस्त्रिदशेभ्यो वरं ददौ ।
रिपून्हन्तास्मि समरे ये वो वधचिकीर्षवः ॥ ५३ ॥

अनन्तर महासेन कार्त्तिकेयने प्रसन्न होकर देवताओंको वरदान दिया कि जो शत्रु तुम लोगोंको मारना चाहते हैं आपके उन शत्रुओंका हम समरमें नाश करेंगे ॥ ५३ ॥

प्रतिगृह्य वरं देवास्तस्माद्विबुधसत्तमात् ।
प्रीतात्मानो महात्मानो मेनिरे निहतान्रिपून् ॥ ५४ ॥

सुरश्रेष्ठ कार्त्तिकेयसे वरदान पाकर, महात्मा देवता बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने शत्रुओंको मरा हुआ जान लिया ॥ ५४ ॥

सर्वेषां भूतसंघानां हर्षान्नादः समुत्थितः ।
अपूरयत लोकांस्त्रीन्वरे दत्ते महात्मना ॥ ५५ ॥

महात्मा कार्त्तिकेयका वरदान सुनकर सब प्राणी प्रसन्न होकर गर्जने लगे । यह शब्द तीनों लोकोंमें पूरित हो गया ॥ ५५ ॥

स निर्ययौ महासेनो महत्या सेनया वृतः ।
वधाय युधि दैत्यानां रक्षार्थं च दिवौकसाम् ॥ ५६ ॥

अनन्तर उस विशाल सेनासे घिरे हुए महासेन कार्त्तिकेय युद्धमें दैत्योंका नाश और देवताओंकी रक्षा करनेको चले ॥ ५६ ॥

व्यवसायो जयो धर्मः सिद्धिर्लक्ष्मीर्धृतिः स्मृतिः ।
महासेनस्य सैन्यानामग्रे जग्मुर्नराधिप ॥ ५७ ॥

हे राजन् ! उस समय पुरुषार्थ, विजय, धर्म, सिद्धि, लक्ष्मी, धारणाशक्ति और स्मरणशक्ति ये सब महासेनके सैनिकोंके आगे चलने लगे ॥ ५७ ॥

स तया भीमया देवः शूलमुद्गरहस्तया ।
गदामुसलनाराचशक्तितोमरहस्तया ।
दृप्तसिंहनिनादिन्या विनद्य प्रययौ गुहः ॥ ५८ ॥

वह सेना भयंकर थी । उसने हाथोंमें शूल, मुद्गर, गदा, मुसल, नाराच, शक्ति और तोमर धारण किये थे । कार्त्तिकेयके सेनाके वीर मतवाले सिंहके समान गर्जने लगे । उस सेनाके साथ सिंहनाद करके कार्त्तिकेय युद्धके लिये निकले ॥ ५८ ॥

तं दृष्ट्वा सर्वदैतेया राक्षसा दानवास्तथा ।
व्यद्रवन्त दिशः सर्वा भयोद्विग्नाः समन्ततः ।
अभ्यद्रवन्त देवास्तान्विविधायुधपाणयः ॥ ५९ ॥

कार्त्तिकेयको सेनाके साथ आते देख सब दैत्य, राक्षस और दानव सब ओरसे व्याकुल होकर इधर उधरको भागने लगे । देवता भी अपने हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर उनके पीछे दौडे ॥ ५९ ॥

दृष्ट्वा च स ततः क्रुद्धः स्कन्दस्तेजोबलान्वितः ।
शक्त्यस्त्रं भगवान्भीमं पुनः पुनरवासृजत् ।
आदधच्चात्मनस्तेजो हविषेद्ध इवानलः ॥ ६० ॥

तब यह सब देखकर तेज और बलसे भरे भगवान् कार्तिकेयको भी बहुत क्रोध हुआ और बार बार भयानक शक्ति अस्त्र चलाने लगे, उस समय कार्त्तिकेयका ऐसा तेज बढा जैसे आहुती जलाते हुए अग्निका ॥ ६० ॥

अभ्यस्यमाने शक्त्यस्त्रे स्कन्देनामिततेजसा ।
उल्काज्वाला महाराज पपात वसुधातले ॥ ६१ ॥

हे महाराज! जिस समय अनन्त तेजस्वी कार्त्तिकेयने बार बार शक्ति चलाई, उस समय पृथ्वीमें आकाशसे प्रज्वलित उल्का गिरने लगी ॥ ६१ ॥

संह्रादयन्तश्च तथा निर्घाताश्चापतन्क्षितौ ।
यथान्तकालसमये सुघोराः स्युस्तथा नृप ॥ ६२ ॥

अनेक तारे टूट टूट गर्जनाके साथ इस प्रकार गिरने लगे कि जैसे प्रलयके समय अत्यन्त भयंकर वज्र गडगडाहटके साथ पृथ्वीपर गिरते हैं ॥ ६२ ॥

क्षिप्ता ह्येका तथा शक्तिः सुघोरानलसूनुना ।
ततः कोटयो विनिष्पेतुः शक्तीनां भरतर्षभ ॥ ६३ ॥

हे भरतर्षभ! जब अग्निकुमार कार्त्तिकेयने जब एक बार अत्यंत भयंकर शक्ति छोडी, तब उसी समय उससे करोडों शक्ति निकलने लगीं ॥ ६३ ॥

स शक्त्यस्त्रेण संग्रामे जघान भगवान्प्रभुः ।
दैत्येन्द्रं तारकं नाम महाबलपराक्रमम् ।
वृतं दैत्यायुतैर्वीरैर्बलिभिर्दशभिर्नृप ॥ ६४ ॥

तब भगवान् कार्त्तिकेय प्रभुने प्रसन्न होकर युद्धमें उन्हीं शक्ति अस्त्रसे एक लाख बलवान् वीर दैत्योंसे घिरे हुए महापराक्रमी महाबली दैत्यराज तारकको मारा ॥ ६४ ॥

महिषं चाष्टभिः पद्मैर्वृतं संख्ये निजघ्निवान् ।
त्रिपादं चायुतशतैर्जघान दशभिर्वृतम् ॥ ६५ ॥

साथ ही आठ पद्म दैत्योंसे घिरे हुए महिषासुरको मारा, दस लाख असुरोंसे सुरक्षित त्रिपाद नामक दानवको मारा ॥ ६५ ॥

ह्रदोदरं निखर्वैश्च वृतं दशभिरीश्वरः ।
जघानानुचरैः सार्धं विविधायुधपाणिभिः ॥ ६६ ॥

और दस निखर्व दानवोंसे घिरे हुए ह्रदोदर नामक दानवको भी अनेक प्रकारके आयुधोंसे संपन्न अनुयायियोंसहित मारा ॥ ६६ ॥

तत्राकुर्वन्त विपुलं नादं वध्यत्सु शत्रुषु ।
कुमारानुचरा राजन्पूरयन्तो दिशो दश ॥ ६७ ॥

राजन् ! जब शत्रुओंका संहार होने लगा, तब कुमारके अनुचर दसों दिशाओंको निनादित करते हुए बडे जोरसे गर्जने लगे ॥ ६७ ॥

शक्त्यस्त्रस्य तु राजेन्द्र ततोऽर्चिर्भिः समन्ततः ।
दग्धाः सहस्रशो दैत्या नादैः स्कन्दस्य चापरे ॥ ६८ ॥

हे राजेन्द्र ! उस समय कार्त्तिकेयकी शक्तिकी सब ओर फैलती हुई ज्वालाओंसे सहस्रों दानव जलकर भस्म हो गये, सहस्रों कार्त्तिकेयके शब्दसे मर गये ॥ ६८ ॥

पताकयावधूताश्च हताः केचित्सुरद्विषः ।
केचिद्घण्टारवत्रस्ता निपेतुर्वसुधातले ।
केचित्प्रहरणैश्छिन्ना विनिपेतुर्गतासवः ॥ ६९ ॥

और कुछ देवोंसे द्वेष करनेवाले उनकी ध्वजाकी हवासे ही मर गये । कोई उनको घण्टेका शब्द सुनकर भयसे पृथ्वीमें गिर गये और कोई उनके शस्त्रोंसे कटकर मर गये ॥ ६९ ॥

एवं सुरद्विषोऽनेकान्बलवानाततायिनः ।
जघान समरे वीरः कार्तिकेयो महाबलः ॥ ७० ॥

इस प्रकार महा बलवान् शक्तिशाली वीर कार्त्तिकेयने युद्धमें अनेक दुष्ट आततायी देवद्वेषी दानवोंको मार डाला ॥ ७० ॥

बाणो नामाथ दैतेयो बलेः पुत्रो महाबलः ।
क्रौञ्चं पर्वतमासाद्य देवसंघानबाधत ॥ ७१ ॥

अनन्तर राजा बलीका बेटा महा बलवान् बाण नामक दानव क्रौञ्च पर्वतका आश्रय लेकर देवताओंको कष्ट देता था ॥ ७१ ॥

तमभ्ययान्महासेनः सुरशत्रुमुदारधीः ।
स कार्तिकेयस्य भयात्क्रौञ्चं शरणमेयिवान्　　॥ ७२ ॥

तब उदार बुद्धि महासेनने उस देवताओंके शत्रुपर आक्रमण किया, तब वह उस कार्त्तिकेयसे डरकर क्रौञ्च पर्वतमें छिप गया ॥ ७२ ॥

ततः क्रौञ्चं महामन्युः क्रौञ्चनादनिनादितम् ।
शक्त्या बिभेद भगवान्कार्तिकेयोऽग्निदत्तया　　॥ ७३ ॥

तब भगवान् कार्तिकेयने क्रोध करके क्रौञ्चपक्षियोंके शब्दसे भरे, उस पर्वतको अग्निकी दी हुई शक्तिसे तोड दिया ॥ ७३ ॥

सशालस्कन्धसरलं त्रस्तवानरवारणम् ।
पुलिनत्रस्तविहगं विनिष्पतितपन्नगम्　　॥ ७४ ॥

उस पर्वतके टूटनेसे बडे शालके वृक्ष टूटने लगे। वहांके बन्दर और हाथी संत्रस्त हो गये। तीरपर रहनेवाले पक्षी भयसे व्याकूल होकर उड गये, सर्प जमीनपर गिर गये ॥ ७४ ॥

गोलाङ्गूलर्क्षसंघैश्च द्रवद्भिरनुनादितम् ।
कुरङ्गगतिनिर्घोषमुद्भ्रान्तसृमराचितम्　　॥ ७५ ॥

लंगूर और रीछोंके समुदाय इधर उधरको भागकर चिल्लाने लगे उससे पर्वत गूंज उठा, हरिन घबडाकर भागने और आर्तनाद करने लगे ॥ ७५ ॥

विनिष्पतद्भिः शरभैः सिंहैश्च सहसा द्रुतैः ।
शोच्यामपि दशां प्राप्तो रराजैव स पर्वतः　　॥ ७६ ॥

शरभ और सिंह गुफासे सहसा निकलकर इधर उधर दौडने लगे। इस कारण वह पर्वत शोचनीय दशामें था, तो भी वह सुशोभित ही दीखता है ॥ ७६ ॥

विद्याधराः समुत्पेतुस्तस्य शृङ्गनिवासिनः ।
किंनराश्च समुद्विग्नाः शक्तिपातरवोद्धताः　　॥ ७७ ॥

उसके शिखरोंपर रहनेवाले विद्याधर और किन्नर शक्तिका आघातजनित शब्द सुनकर उद्विग्न होकर आकाशमें उड गये ॥ ७७ ॥

ततो दैत्या विनिष्पेतुः शतशोऽथ सहस्रशः ।
प्रदीप्तात्पर्वतश्रेष्ठाद्विचित्राभरणस्रजः　　॥ ७८ ॥

अनन्तर उस जलते हुए श्रेष्ठ पर्वतसे विचित्र माला और आभूषण पहिने सैकडों और सहस्रों दानव निकले ॥ ७८ ॥

तान्निजघ्नुरतिक्रम्य कुमारानुचरा मृधे ।
बिभेद शक्त्या क्रौञ्चं च पावकिः परवीरहा ॥ ७९ ॥

उन सबको कुमार कार्त्तिकेयके वीरोंने आक्रमण करके युद्धमें मार डाला । शत्रुनाशन अग्निपुत्र कार्तिकेयने शक्ति छोडकर पर्वतके टुकडे कर दिये ॥ ७९ ॥

बहुधा चैकधा चैव कृत्वात्मानं महात्मना ।
शक्तिः क्षिप्ता रणे तस्य पाणिमेति पुनः पुनः ॥ ८० ॥

महात्मा कार्त्तिकयके अपने आपको एक और अनेक रूपोंमें प्रकट करके रणभूमिमें हाथसे वारबार चलाई हुई उनकी शक्ति फिर उन्हींके हाथमें लौट कर आ जाती थी ॥ ८० ॥

एवंप्रभावो भगवानतो भूयश्च पावकिः ।
क्रौञ्चस्तेन विनिर्भिन्नो दैत्याश्च शतशो हताः ॥ ८१ ॥

भगवान् अग्निपुत्र कार्त्तिकेयका ऐसा ही प्रभाव है, इतना ही नहीं इससे भी बढकर है । इस प्रकार उन्होंने क्रौञ्च नामक पर्वतको तोडकर सहस्रों देवताओंके शत्रु दानवोंको मार दिया ॥८१॥

ततः स भगवान्देवो निहत्य विबुधद्विषः ।
सभाज्यमानो विबुधैः परं हर्षमवाप ह ॥ ८२ ॥

तदनन्तर इस प्रकार देवशत्रु दानवोंका नाश करके भगवान् कार्त्तिकेय देवताओंसे सेवित हो बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८२ ॥

ततो दुन्दुभयो राजन्नेदुः शङ्खाश्च भारत ।
मुमुचुर्देवयोषाश्च पुष्पवर्षमनुत्तमम् ॥ ८३ ॥

हे राजन् भारत ! देवता शङ्ख और नगारे बजाने लगे, देवाङ्गनाएं उत्तम फूल बर्षाने लगीं ॥८३॥

दिव्यगन्धमुपादाय ववौ पुण्यश्च मारुतः ।
गन्धर्वास्तुष्टुवुश्चैनं यज्वानश्च महर्षयः ॥ ८४ ॥

स्वामी कार्त्तिकेयकी ओर दिव्य फूलोंकी सुगन्धी लेकर वायु चलने लगी । गन्धर्व और यज्ञ करनेवाले महाऋषी इनकी स्तुति करने लगे ॥ ८४ ॥

केचिदेनं व्यवस्यन्ति पितामहसुतं प्रभुम् ।
सनत्कुमारं सर्वेषां ब्रह्मयोनिं तमग्रजम् ॥ ८५ ॥

इन्हीं कार्त्तिकेयको कोई ब्रह्माका पुत्र, सबके अग्रज और ब्रह्मयोनि सनत्कुमार हैं ऐसा मानते हैं ॥ ८५ ॥

केचिन्महेश्वरसुतं केचित्पुत्रं विभावसोः ।
उमायाः कृत्तिकानां च गङ्गायाश्च वदन्त्युत ॥ ८६ ॥

उन्हें कोई शिवका पुत्र, कोई अग्निका पुत्र, कोई पार्वतीका पुत्र, कोई कृत्तिकाओंका पुत्र और कोई गंगाका पुत्र है ऐसा बोलने लगे ॥ ८६ ॥

एकधा च द्विधा चैव चतुर्धा च महाबलम् ।
योगिनामीश्वरं देवं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८७ ॥

उन महाबलवान् योगेश्वर कार्त्तिकेयको लोग कोई एक, कोई दो, कोई चार और को
तथा सहस्रों रूपोंमें मानते हैं ॥ ८७ ॥

एतत्ते कथितं राजन्कार्तिकेयाभिषेचनम् ।
शृणु चैव सरस्वत्यास्तीर्थवंशस्य पुण्यताम् ॥ ८८ ॥

हे राजन् ! हमने देवता और योगियोंके स्वामी कार्त्तिकेयके अभिषेककी कथा तुमसे
अब सरस्वतीके उस पवित्र तीर्थकी कथा सुनो ॥ ८८ ॥

बभूव तीर्थप्रवरं हतेषु सुरशत्रुषु ।
कुमारेण महाराज त्रिविष्टपमिवापरम् ॥ ८९ ॥

महाराज ! जब कुमार कार्त्तिकेयने देवशत्रु दानवोंको मारा, तभीसे यह श्रेष्ठ तीर्थ स्वर्गके स
हो गया ॥ ८९ ॥

ऐश्वर्याणि च तत्रस्थो ददावीशः पृथक्पृथक् ।
तदा नैर्ऋतमुख्येभ्यस्त्रैलोक्ये पावकात्मजः ॥ ९० ॥

वहीं रहकर कार्त्तिकेयने सबको अलग अलग ऐश्वर्य बांट दिये, अग्निकुमारने प्रधान नैऋ
तीनों लोक दिये ॥ ९० ॥

एवं स भगवांस्तस्मिंस्तीर्थे दैत्यकुलान्तकः ।
अभिषिक्तो महाराज देवसेनापतिः सुरैः ॥ ९१ ॥

हे महाराज ! इस प्रकार दैत्योंके वंशनाशक देव सेनापति भगवान् कार्त्तिकेयका इस ती
देवताओं द्वारा अभिषेक हुआ था ॥ ९१ ॥

औजसं नाम तत्तीर्थं यत्र पूर्वमपां पतिः ।
अभिषिक्तः सुरगणैर्वरुणो भरतर्षभ ॥ ९२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इस तीर्थका नाम औजस तीर्थ है, यहींपर देवताओंने जलके स्वामी वरुणका अभि
किया था ॥ ९२ ॥

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा स्कन्दं चाभ्यर्च्य लाङ्गली ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ रुक्मं वासांस्याभरणानि च ॥ ९३ ॥

उस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करके हलधारी बलदेवने कार्त्तिकेयकी पूजा की और प्रसन्न हो
ब्राह्मणोंको सुवर्ण, वस्त्र और आभूषण दान किये ॥ ९३ ॥

×

उषित्वा रजनीं तत्र माधवः परवीरहा ।
पूज्य तीर्थवरं तच्च स्पृष्ट्वा तोयं च लाङ्गली ।
हृष्टः प्रीतमनाश्चैव ह्यभवन्माधवोत्तमः ॥ ९४ ॥

फिर शत्रुनाशन मधुवंशी हलधर वहां एक रात रहे और उस श्रेष्ठ तीर्थकी पूजा की और उस तीर्थमें स्नान करके प्रसन्न हो गये। यदुश्रेष्ठ बलरामवामन वहां प्रसन्न हो गया ॥ ९४ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
यथाभिषिक्तो भगवान्स्कन्दो देवैः समागतैः ॥ ९५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ २४५६ ॥

हे राजन् ! तुमने जो हमसे पूछा था, सो हमने सब कहा, इस प्रकार सब देवताओंने आकर भगवान् कार्त्तिकेयका अभिषेक किया था ॥ ९५ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें पैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥ २४५६ ॥

: ४६ :

जनमेजय उवाच

अत्यद्‍भुतमिदं ब्रह्मञ्श्रुतवानस्मि तत्त्वतः ।
अभिषेकं कुमारस्य विस्तरेण यथाविधि ॥ १ ॥

राजा जनमेजय बोले— हे ब्रह्मन् ! आपने हमसे विधिपूर्वक कुमार कार्त्तिकेयके अभिषेककी अद्‍भुत कथा कही जिसको हमने यथार्थरूपसे और विस्तारपूर्वक सुना है ॥ १ ॥

यच्छ्रुत्वा पूतमात्मानं विजानामि तपोधन ।
प्रहृष्टानि च रोमाणि प्रसन्नं च मनो मम ॥ २ ॥

तपोधन ! उसे सुनकर मैंने अपने शरीरको पवित्र माना। हर्षसे हमारे रोंये खडे हो गये और मन प्रसन्न हो गया ॥ २ ॥

अभिषेकं कुमारस्य दैत्यानां च वधं तथा ।
श्रुत्वा मे परमा प्रीतिर्भूयः कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥

कुमार कार्त्तिकेयका अभिषेक और दैत्योंका नाश सुनकर हमें बडा आनन्द प्राप्त हुआ और फिर हमारे मनमें इस विषयको सुननेके लिये कौतुहल उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥

अपां पतिः कथं ह्यस्मिन्नभिषिक्तः सुरासुरैः ।
तन्मे ब्रूहि महाप्राज्ञ कुशलो ह्यसि सत्तम ॥ ४ ॥

हे महा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! आप सब विषयोंमें निपुण हो और मुझे कथा सुननेमें परमप्रीति और इच्छा है। इसलिये आप हमसे पहले देवताओंने किस प्रकार जलके राजा वरुणको अभिषेक किया था, यह कथा कहिये ॥ ४ ॥

वैशंपायन उवाच

शृणु राजन्निदं चित्रं पूर्वकल्पे यथातथम् ।
आदौ कृतयुगे तस्मिन्वर्तमाने यथाविधि ।
वरुणं देवताः सर्वाः समेत्येदमथाब्रुवन् ॥ ५ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् ! अब यह पहिले कल्पकी अद्भुत कथा तुमसे कहते हैं सुनो । पहिले आदि कृतयुगमें सब देवताओंने वरुणके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥

यथास्मान्सुरराट् शक्रो भयेभ्यः पाति सर्वदा।
तथा त्वमपि सर्वासां सरितां वै पतिर्भव ॥ ६ ॥

हे देव ! जैसे देवराज इन्द्र भयसे सदा हम लोगोंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही आप भी सब नदियोंके स्वामी होकर रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥

वासश्च ते सदा देव सागरे मकरालये ।
समुद्रोऽयं तव वशे भविष्यति नदीपतिः ॥ ७ ॥

देव ! आपको सदा रहनेके लिये मकरालयका स्थान समुद्र मिलेगा, नद और नदियोंका स्वामी समुद्र तुम्हारे वशमें रहेगा ॥ ७ ॥

सोमेन सार्धं च तव हानिवृद्धी भविष्यतः ।
एवमस्त्विति तान्देवान्वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

तुम्हारी हानि और वृद्धि चन्द्रमाके घटने और बढनेके अनुसार हुआ करेगी, अर्थात् चन्द्रमाके बढनेसे बढोगे और घटनेसे घटोगे । देवताओंके वचन सुन उन देवताओंसे वरुणने कहा कि बहुत अच्छा ॥ ८ ॥

समागम्य ततः सर्वे वरुणं सागरालयम् ।
अपां पतिं प्रचक्रुर्हि विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ९ ॥

तब सब देवता मिलकर समुद्रके तटपर आये और शास्त्रमें लिखी विधिके अनुसार समुद्र-निवासी वरुणको जलका स्वामी बनाया ॥ ९ ॥

अभिषिच्य ततो देवा वरुणं यादसां पतिम् ।
जग्मुः स्वान्येव स्थानानि पूजयित्वा जलेश्वरम् ॥ १० ॥

फिर जलजन्तुओंके पति जलेश्वर वरुणका अभिषेक और पूजन करके सब देवता अपने अपने घरको चले गए ॥ १० ॥

अभिषिक्तस्ततो देवैर्वरुणोऽपि महायशाः ।
सरितः सागरांश्चैव नदांश्चैव सरांसि च ।
पालयामास विधिना यथा देवाञ्शतक्रतुः ॥ ११ ॥

देवताओं द्वारा अभिषिक्त होकर महायशस्वी वरुण भी जलका अधिकार पाकर नदी, समुद्र, नद और तालावोंकी इस प्रकार विधिपूर्वक रक्षा करने लगे, जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं ॥ ११ ॥

ततस्तत्राप्युपस्पृश्य दत्त्वा च विविधं वसु ।
अग्नितीर्थं महाप्राज्ञः स जगाम प्रलम्बहा ।
नष्टो न दृश्यते यत्र शमीगर्भे हुताशनः ॥ १२ ॥

प्रलम्बासुरनाशक महाज्ञानी बलराम उस तीर्थमें भी स्नान करके, अनेक प्रकारके दान देकर अग्नितीर्थको चले गये । हे पापरहित जनमेजय ! इस ही तीर्थमें अग्नि शमी गर्भमें आकर छिपे थे और उनका दर्शन नहीं हो रहा था ॥ १२ ॥

लोकालोकविनाशे च प्रादुर्भूते तदानघ ।
उपतस्थुर्महात्मानं सर्वलोकपितामहम् ॥ १३ ॥

अनघ ! उस समय सब जगत् नष्ट होनेको उपस्थित हो गया था । तब सब देवता सर्वलोक पितामह महात्मा ब्रह्माके पास जाकर बोले कि ॥ १३ ॥

अग्निः प्रनष्टो भगवान्कारणं च न विद्महे ।
सर्वलोकक्षयो मा भूत्संपादयतु नोऽनलम् ॥ १४ ॥

हे जगत्पते ! न जाने, भगवान् अग्निका किस कारण नाश हो गया है, इस सब जगत्का नाश न हो जाय, इसलिये अब आप अग्निको सम्पादन कीजिये ॥ १४ ॥

जनमेजय उवाच

किमर्थं भगवानग्निः प्रनष्टो लोकभावनः ।
विज्ञातश्च कथं देवैस्तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः ॥ १५ ॥

राजा जनमेजय बोले– हे भगवन् ! जगत्पूज्य भगवान् अग्नि कैसे नष्ट हो गये थे ? और फिर देवताओंने उन्हें कैसे जाना ? यह कथा आप हमसे यथार्थतासे कहिये ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

भृगोः शापाद्भृशं भीतो जातवेदाः प्रतापवान् ।
शमीगर्भमथासाद्य ननाश भगवांस्ततः ॥ १६ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– एक समय भृगुके शापसे प्रतापवान् भगवान् अग्नि बहुत डरकर शमी नामक लकडीके भीतर घुस गये और वहीं नष्ट हो गये ॥ १६ ॥

प्रनष्टे तु तदा वह्नौ देवाः सर्वे सवासवाः ।
अन्वेषन्त तदा नष्टं ज्वलनं भृशदुःखिताः ॥ १७ ॥

उस समय अग्निको नष्ट हुए देख इन्द्रसहित सब देवता बहुत घबडाये और अत्यन्त दुःखित होकर इन्द्रादिक उन्हें ढूंढने लगे ॥ १७ ॥

ततोऽग्नितीर्थमासाद्य शमीगर्भस्थमेव हि ।
ददृशुर्ज्वलनं तत्र वसमानं यथाविधि ॥ १८ ॥

फिर अग्नितीर्थमें आकर देवताओंने देखा कि अग्नि शमी वृक्षके भीतर विधिके अनुसार वास करते हैं ॥ १८ ॥

देवाः सर्वे नरव्याघ्र बृहस्पतिपुरोगमाः ।
ज्वलनं तं समासाद्य प्रीताभूवन्सवासवाः ।
पुनर्यथागतं जग्मुः सर्वभक्षश्च सोऽभवत् ॥ १९ ॥

हे पुरुषसिंह ! इन्द्रसहित सब देवता बृहस्पतिको आगे करके अग्निके समीप आये और उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए और फिर वे जैसे आये थे वैसे अपने अपने घरको चले गये । अग्नि भी सब वस्तु खानेवाले हो गये ॥ १९ ॥

भृगोः शापान्महीपाल यदुक्तं ब्रह्मवादिना ।
तत्राप्याप्लुत्य मतिमान्ब्रह्मयोनिं जगाम ह ॥ २० ॥

पृथ्वीपते ! भृगुके शापसे अग्नि सर्व भक्षी हो गये । उन ब्रह्मवादी मुनिने जैसा कहा था, वैसा ही हुआ । उस तीर्थमें भी स्नान करके बुद्धिमान् बलराम ब्रह्मयोनि तीर्थको चले गये ॥ २० ॥

ससर्ज भगवान्यत्र सर्वलोकपितामहः ।
तत्राप्लुत्य ततो ब्रह्मा सह देवैः प्रभुः पुरा ।
ससर्ज चान्नानि तथा देवतानां यथाविधि ॥ २१ ॥

हे राजन् ! जहां सर्व लोकपितामह ब्रह्माने सृष्टि की थी । देवताओंसहित भगवान् ब्रह्माने पहिले इसी तीर्थमें स्नान करके विधिपूर्वक देवताओंके और अन्नोंके तीर्थ बनाये थे ॥ २१ ॥

तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वसूनि विविधानि च ।
कौबेरं प्रययौ तीर्थं तत्र तप्त्वा महत्तपः ।
धनाधिपत्यं संप्राप्तो राजन्नैलबिलः प्रभुः ॥ २२ ॥

बलदेव वहां भी स्नान करके और नाना प्रकारके धनका दान करके कौबेर नामक तीर्थको चले गये । हे राजन् ! इसी स्थानमें बडी तपस्या करनेसे इलविलाके पुत्र भगवान् कुबेर धनपति हुए थे ॥ २२ ॥

तत्रस्थमेव तं राजन्धनानि निधयस्तथा ।
उपतस्थुर्नरश्रेष्ठ तत्तीर्थं लाङ्गली ततः ।
गत्वा स्नात्वा च विधिवद्ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ २३ ॥

राजन् ! इनको वहीं धन और निधि प्राप्त हुई थी, नरश्रेष्ठ ! हलधारी बलरामने उस तीर्थमें जाकर स्नान करके विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको बहुत धनदान किया ॥ २३ ॥

ददृशे तत्र तत्स्थानं कौबेरे काननोत्तमे ।
पुरा यत्र तपस्तप्तं विपुलं सुमहात्मना ॥ २४ ॥

और उन्होंने वहां एक उत्तम वनमें कुबेरका वह स्थान देखा, जहां पहिले महात्मा कुबेरने बडी भारी तपस्या की ॥ २४ ॥

यत्र राजा कुबेरेण वरा लब्धाश्च पुष्कलाः ।
धनाधिपत्यं सख्यं च रुद्रेणामिततेजसा ॥ २५ ॥

और जहां राजा कुबेरने अनेक वर प्राप्त किये थे। कुबेरने वहां धनपतिका पद और महातेजस्वी शिवसे मित्रता पाई थी ॥ २५ ॥

सुरत्वं लोकपालत्वं पुत्रं च नलकूबरम् ।
यत्र लेभे महाबाहो धनाधिपतिरञ्जसा ॥ २६ ॥

महाबाहो ! वहीं कुबेर धनपति देवता और लोकपाल बने थे, और वहीं अनायास उनके नलकूबर नामक पुत्र हुआ था ॥ २६ ॥

अभिषिक्तश्च तत्रैव समागम्य मरुद्गणैः ।
वाहनं चास्य तद्दत्तं हंसयुक्तं मनोरमम् ।
विमानं पुष्पकं दिव्यं नैर्ऋतैश्वर्यमेव च ॥ २७ ॥

वहीं आकर देवताओंने उनका अभिषेक किया था। वहीं उन्हें बहुत सुंदर हंसयुक्त पुष्पक नामक दिव्य विमान दिया था, और वहीं वे निर्ऋत कुलके स्वामी बने थे ॥ २७ ॥

तत्राप्लुत्य बलो राजन्दत्त्वा दायांश्च पुष्कलान् ।
जगाम त्वरितो रामस्तीर्थं श्वेतानुलेपनः ॥ २८ ॥
निषेवितं सर्वसत्त्वैर्नाम्ना बदरपाचनम् ।
नानर्तुकवनोपेतं सदापुष्पफलं शुभम् ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ २४८५ ॥

राजन् ! वहां स्नान करके और अनेक प्रकारके दान करके, सफेद चन्दनधारी बलराम शीघ्रता सहित अनेक जन्तुओंसे भरे, सब ऋतुओंकी शोभासे सम्पन्न वनोंसे युक्त और सदा फलने और फूलनेवाले वृक्षोंसे शोभित बदरपाचन नामक तीर्थको चले गये ॥ २८-२९ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें छयालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ २४८५ ॥

: ४७ :

वैशंपायन उवाच

ततस्तीर्थवरं रामो ययौ बदरपाचनम् ।
तपस्विसिद्धचरितं यत्र कन्या धृतव्रता ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् जनमेजय ! वहांसे चलकर बलराम बदरपाचन नामक श्रेष्ठ तीर्थमें पहुंचे, इसी स्थानमें तपस्वी और सिद्ध विचरण करते हैं और एक कन्याने व्रत धारण करके तप किया था ॥ १ ॥

भरद्वाजस्य दुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
स्रुचावती नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारिणी ॥ २ ॥

स्रुचावती नामक कन्या भरद्वाज मुनिकी पुत्री जगत्में असाधारण रूपवती और बालकहीसे ब्रह्मचारिणी थी ॥ २ ॥

तपश्चचार सात्युग्रं नियमैर्बहुभिर्नृप ।
भर्ता मे देवराजः स्यादिति निश्चित्य भामिनी ॥ ३ ॥

हे महाराज ! वह भामिनी देवराज इन्द्रको अपना पति बनानेका निश्चय करके अनेक नियमोंका पालन करके, अत्यंत घोर तप कर रही थी ॥ ३ ॥

समास्तस्या व्यतिक्रान्ता बह्वयः कुरुकुलोद्वह ।
चरन्त्या नियमांस्तांस्तान्स्त्रीभिस्तीव्रान्सुदुश्चरान् ॥ ४ ॥

कुरुकुरु भूषण ! इस प्रकार स्त्रियोंसे न होने योग्य अनेक घोर और दुष्कर नियमोंका पालन करते करते उस कुमारी कन्याको बहुत वर्ष बीत गये ॥ ४ ॥

तस्यास्तु तेन वृत्तेन तपसा च विशां पते ।
भक्त्या च भगवान्प्रीतः परया पाकशासनः ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! उसके इस प्रकार तप, भक्ति, नियम, प्रेम और आचरण देखकर, देवताओंके स्वामी भगवान् इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥ ५ ॥

आजगामाश्रमं तस्यास्त्रिदशाधिपतिः प्रभुः ।
आस्थाय रूपं विप्रर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ६ ॥

और शक्तिशाली देवेन्द्र ब्रह्मर्षि महात्मा वशिष्ठका रूप बनाकर उसके आश्रममें आये ॥ ६ ॥

सा तं दृष्ट्वोग्रतपसं वसिष्ठं तपतां वरम् ।
आचारैर्मुनिभिर्दृष्टैः पूजयामास भारत ॥ ७ ॥

हे भारत ! महातपस्वी श्रेष्ठ वशिष्ठको अपने यहां आये देख, उस कन्याने शास्त्रकी विधिके अनुसार उनकी पूजा की ॥ ७ ॥

उवाच नियमज्ञा च कल्याणी सा प्रियंवदा ।
भगवन्मुनिशार्दूल किमाज्ञापयसि प्रभो ॥ ८ ॥

फिर वह नियम जाननेवाली कल्याणभरी कन्या मीठे वचन बोली, हे भगवन् ! हे मुनिश्रेष्ठ ! हे प्रभो ! आप क्या आज्ञा देनेको मेरे पास आये हैं ॥ ८ ॥

सर्वमस्य यथाशक्ति तव दास्यामि सुव्रत ।
शक्रभक्त्या तु ते पाणिं न दास्यामि कथंचन ॥ ९ ॥

हे सुव्रत ! आपकी जो आज्ञा होगी सो मैं सत्यके अनुसार यथाशक्ति सब पूरी करूंगी, परन्तु मेरी भक्ति इन्द्रमें अधिक है, इसलिये मैं अपना हाथ आपको किसी प्रकार नहीं दे सकूंगी ॥ ९ ॥

व्रतैश्च नियमैश्चैव तपसा च तपोधन ।
शक्रस्तोषयितव्यो वै मया त्रिभुवनेश्वरः ॥ १० ॥

हे तपोधन ! मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि व्रत, नियम और तपसे तीन लोकोंके स्वामी भगवान् इन्द्रको प्रसन्न करूंगी ॥ १० ॥

इत्युक्तो भगवान्देवः स्मयन्निव निरीक्ष्य ताम् ।
उवाच नियमज्ञां तां सान्त्वयन्निव भारत ॥ ११ ॥

हे भारत ! भगवान् इन्द्र उस कन्याके ऐसे वचन सुन, हंसकर उसकी ओर देखने लगे और उसके नियम जानकर उसे सान्त्वना देते हुए बोले ॥ ११ ॥

उग्रं तपश्चरसि वै विदिता मेऽसि सुव्रते ।
यदर्थमयमारम्भस्तव कल्याणि हृद्गतः ॥ १२ ॥

हे कल्याणि ! हे उत्तम व्रतधारिणी ! तुम घोर तप कर रही हो; हम जानते हैं । तुमने जो इच्छा धारण करके और हृदयमें जो संकल्प करके यह व्रत किया है ॥ १२ ॥

तच्च सर्वं यथाभूतं भविष्यति वरानने ।
तपसा लभ्यते सर्वं सर्वं तपसि तिष्ठति ॥ १३ ॥

सुमुखि ! वह सब वैसे ही सिद्ध होगा; जगत्में तपसे सब कुछ मिल सकता है, सब तपमें ही समाविष्ट हैं ॥ १३ ॥

यानि स्थानानि दिव्यानि विबुधानां शुभानने ।
तपसा तानि प्राप्यानि तपोमूलं महत्सुखम् ॥ १४ ॥

शुभानने ! देवताओंके जो दिव्य स्थान हैं, वे तपसे ही प्राप्त होते हैं । महान् सुखका मूल कारण तप ही है ॥ १४ ॥

इह कृत्वा तपो घोरं देहं संन्यस्य मानवाः ।
देवत्वं यान्ति कल्याणि शृणु चेदं वचो मम ॥ १५ ॥

कल्याणि ! यह विचारकर भी मनुष्य यहाँ घोर तप करके शरीर छोडते हैं और देवत्व प्राप्त कर लेते हैं । अब हम तुमसे जो वचन कहते हैं, सो सुनिये ॥ १५ ॥

पचस्वैतानि सुभगे बदराणि शुभव्रते ।
पचेत्युक्त्वा स भगवाञ्जगाम बलसूदनः ॥ १६ ॥

सुभगे ! शुभव्रते ! ये पांच बैर तुम्हारे पास हम धरे जाते हैं, तुम इनको पकावो, ऐसा कहकर भगवान् इन्द्र वहांसे चले गये ॥ १६ ॥

आमन्त्र्य तां तु कल्याणीं ततो जप्यं जजाप सः ।
अविदूरे ततस्तस्मादाश्रमात्तीर्थ उत्तमे ।
इन्द्रतीर्थे महाराज त्रिषु लोकेषु विश्रुते ॥ १७ ॥

उस कल्याणीसे पूछकर आश्रमसे थोडी दूरपर स्थित तीनों लोकोंमें विदित उत्तम इन्द्रतीर्थमें जाकर जप करने लगे ॥ १७ ॥

तस्या जिज्ञासनार्थं स भगवान्पाकशासनः ।
बदराणामपचनं चकार विबुधाधिपः ॥ १८ ॥

और उस कन्याकी परीक्षा करनेके लिये देवराज भगवान् पाकशासनने ऐसी माया की, कि उन बेरोंको पकने नहीं दिया ॥ १८ ॥

ततः सा प्रयता राजन्वाग्यता विगतक्लमा ।
तत्परा शुचिसंवीता पावके समधिश्रयत् ।
अपचद्राजशार्दूल बदराणि महाव्रता ॥ १९ ॥

हे राजन् ! तब शुद्ध आचार संपन्न उस कन्याने पवित्र और सावधान होकर मौनभावसे आगमें उन बेरोंको पकाना आरम्भ किया । राजसिंह ! फिर वह महाव्रता तत्परतासे उन बेरोंको पकाने लगी ॥ १९ ॥

तस्याः पचन्त्याः सुमहान्कालोऽगात्पुरुषर्षभ ।
न च स्म तान्यपच्यन्त दिनं च क्षयमभ्यगात् ॥ २० ॥

पुरुषश्रेष्ठ ! परन्तु पकाते पकाते उसका बहुत समय व्यतीत हो गया । और वे बेर न पके सब दिन बीत गया ॥ २० ॥

हुताशनेन दग्धश्च यस्तस्याः काष्ठसंचयः ।
अकाष्ठमग्निं सा दृष्ट्वा स्वशरीरमथादहत् ॥ २१ ॥

जब उसके सब लकडियोंका संचय भी अग्निमें जल चुकी, तब बहुत घबडाई और अग्निको काष्ठरहित देख आगमें अपने शरीरको जलाना आरंभ किया ॥ २१ ॥

पादौ प्रक्षिप्य सा पूर्वं पावके चारुदर्शना ।
दग्धौ दग्धौ पुनः पादावुपावर्तयतानघा ॥ २२ ॥

अनघा, सुन्दरी सुचावतीने पहिले आगमें अपने दोनों पैर जलाये । जलते हुए पैरोंको बार बार वह आगके भीतर बढाती थी ॥ २२ ॥

×

चरणौ दह्यमानौ च नाचिन्तयदनिन्दिता ।
दुःखं कमलपत्राक्षी महर्षेः प्रियकाम्यया ॥ २३ ॥

इस प्रकार निन्दारहित कमलाक्षी सुचावतीने वशिष्ठके प्रसन्न करनेके लिये ऐसा घोर कर्म किया, और जलते हुए चरणोंके दुःखका कुछ विचार नहीं किया ॥ २३ ॥

अथ तत्कर्म दृष्ट्वास्याः प्रीतस्त्रिभुवनेश्वरः ।
ततः संदर्शयामास कन्यायै रूपमात्मनः ॥ २४ ॥

तब उसका यह कर्म देखकर तीन लोकके स्वामी इन्द्र प्रसन्न हुए और फिर उस कन्याको अपना रूप दिखाया ॥ २४ ॥

उवाच च सुरश्रेष्ठस्तां कन्यां सुदृढव्रताम् ।
प्रीतोऽस्मि ते शुभे भक्त्या तपसा नियमेन च ॥ २५ ॥

अनंतर सुरश्रेष्ठ इन्द्र दृढ व्रतवाली उस कन्यासे बोले—शुभे ! मैं तेरी भक्ति, तप और नियम पालनसे प्रसन्न हुआ हूं ॥ २५ ॥

तस्माद्योऽभिमतः कामः स ते संपत्स्यते शुभे ।
देहं त्यक्त्वा महाभागे त्रिदिवे मयि वत्स्यसि ॥ २६ ॥

हे शुभे ! अब तेरे मनमें जो इच्छा रखी हुई है वह पूरी होगी हे महाभागे ! अब तुम इस शरीरको छोडकर स्वर्गलोकमें हमारे सङ्ग रहोगी ॥ २६ ॥

इदं च ते तीर्थवरं स्थिरं लोके भविष्यति
सर्वपापापहं सुभ्रु नाम्ना बदरपाचनम् ।
विख्यातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्मर्षिभिरभिप्लुतम् ॥ २७ ॥

इस लोकमें यह तुम्हारा श्रेष्ठ तीर्थ स्थिर रहेगा, हे सुन्दर भौंहवाली ! इस सब पापनाशन तीर्थका नाम बदरपाचन होगा । यह तीनों लोकोंमें विख्यात है । इसमें सदा ब्रह्मर्षियोंने स्नान किया है ॥ २७ ॥

अस्मिन्खलु महाभागे शुभे तीर्थवरे पुरा ।
त्यक्त्वा सप्तर्षयो जग्मुर्हिमवन्तमरुन्धतीम् ॥ २८ ॥

महाभाग्यवती ! पहले इस ही मंगलमय श्रेष्ठ तीर्थपर अरुन्धतीको छोडकर सप्तऋषी हिमाचलको चले गये थे ॥ २८ ॥

ततस्ते वै महाभागा गत्वा तत्र सुसंशिताः ।
वृत्त्यर्थं फलमूलानि समाहर्तुं ययुः किल ॥ २९ ॥

वहां जाकर कठोरव्रती वे महाभाग मुनि निर्वाहके लिये फल, मूल लानेके लिये वनमें गये ॥ २९ ॥

तेषां वृत्त्यर्थिनां तत्र वसतां हिमवद्वने ।
अनावृष्टिरनुप्राप्ता तदा द्वादशवार्षिकी ॥ ३० ॥

जब हिमालयके वनमें जीविकाकी इच्छासे रहते थे, तब हिमाचलपर बारह वर्षोंतक जलवर्षा ही नहीं हुई ॥ ३० ॥

ते कृत्वा चाश्रमं तत्र न्यवसन्त तपस्विनः ।
अरुन्धत्यपि कल्याणी तपोनित्याभवत्तदा ॥ ३१ ॥

परन्तु ये तपस्वी मुनि वहां आश्रम बनाकर रहते ही रहे । भगवती कल्याणी अरुन्धती भी यहां रहकर सदा तप करने लगी ॥ ३१ ॥

अरुन्धतीं ततो दृष्ट्वा तीव्रं नियममास्थिताम् ।
अथागमत्रिनयनः सुप्रीतो वरदस्तदा ॥ ३२ ॥

अरुन्धतीको कठोर नियमोंका पालन करके तप करते देख, त्रिनेत्रधारी वरदान देनेवाले शिव प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥

ब्राह्मं रूपं ततः कृत्वा महादेवो महायशाः ।
तामभ्येत्याब्रवीद्देवो भिक्षामिच्छाम्यहं शुभे ॥ ३३ ॥

अनन्तर महायशस्वी महादेव ब्राह्मणका वेष बनाकर उसके पास आये और कहने लगे कि, हे सुन्दरी ! हम तुमसे भिक्षा चाहते हैं ॥ ३३ ॥

प्रत्युवाच ततः सा तं ब्राह्मणं चारुदर्शना ।
क्षीणोऽन्नसंचयो विप्र बदराणीह भक्षय ।
ततोऽब्रवीन्महादेवः पचस्वैतानि सुव्रते ॥ ३४ ॥

तब सुन्दरी अरुन्धती उस ब्राह्मणसे बोली, हे ब्राह्मण ! हमारे यहां अन्न घट गया है, ये बेर खाइये । तब महादेव बोले, हे उत्तम व्रतधारिणी ! इनको पका दो ॥ ३४ ॥

इत्युक्ता सापचत्तानि ब्राह्मणप्रियकाम्यया ।
अधिश्रित्य समिद्धेऽग्नौ बदराणि यशस्विनी ॥ ३५ ॥

शिवके वचन सुन यशस्विनी अरुन्धती ब्राह्मणको प्रसन्न करनेके लिये जलती हुई अग्निमें उन बेरोंको पकाने लगी ॥ ३५ ॥

दिव्या मनोरमाः पुण्याः कथाः शुश्राव सा तदा ।
अतीता सा त्वनावृष्टिर्घोरा द्वादशवार्षिकी ॥ ३६ ॥

और उस समय उसे दिव्य मनोहारिणी और पवित्र कथा सुनायी देने लगी । वह बारह वर्षोंकी भयंकर अनावृष्टि समाप्त हो गयी ॥ ३६ ॥

अनश्नन्त्याः पचन्त्याश्च शृण्वन्त्याश्च कथाः शुभाः।
अहःसमः स तस्यास्तु कालोऽतीतः सुदारुणः ॥ ३७ ॥
कुछ न खाते, पकाते और मंगलमयी कथाएं सुनती रही। अरुन्धतीको वह बारह वर्षका अकाल एक दिनके समान बीत गया ॥ ३७ ॥

ततस्ते मुनयः प्राप्ताः फलान्यादाय पर्वतात्।
ततः स भगवान्प्रीतः प्रोवाचारुन्धतीं तदा ॥ ३८ ॥
तब वे सप्तऋषी भी फल लेकर पर्वतसे वहां लौटे; तब भगवान् शिवने प्रसन्न होकर अरुन्धतीसे कहा ॥ ३८ ॥

उपसर्पस्व धर्मज्ञे यथापूर्वमिमानृषीन्।
प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञे तपसा नियमेन च ॥ ३९ ॥
हे धर्म जाननेवाली धर्मज्ञे! अब तुम जैसे पहिले इन मुनियोंके सङ्ग जाती थीं वैसे ही जाओ। हम तुम्हारे तप और नियमसे बहुत प्रसन्न हुए हैं ॥ ३९ ॥

ततः संदर्शयामास स्वरूपं भगवान्हरः।
ततोऽब्रवीत्तदा तेभ्यस्तस्यास्तच्चरितं महत् ॥ ४० ॥
फिर भगवान् शिवने अपना रूप दिखाया और उन सप्तर्षियोंसे अरुन्धतीका महान् चरित्र सुनाया ॥ ४० ॥

भवद्भिर्हिमवत्पृष्ठे यत्तपः समुपार्जितम्।
अस्याश्च यत्तपो विप्रा न समं तन्मतं मम ॥ ४१ ॥
और कहा कि हे विप्रवरो! तुम लोगोंने जो हिमाचलमें तप किया और अरुन्धतीने जो घरमें रहकर तप किया, सो हमारे सम्मतिमें दोनों समान नहीं हुए ॥ ४१ ॥

अनया हि तपस्विन्या तपस्तप्तं सुदुश्चरम्।
अनश्नन्त्या पचन्त्या च समा द्वादश पारिताः ॥ ४२ ॥
तपस्विनी अरुन्धतीने घोर तप किया, इसने बारह वर्षतक कुछ नहीं खाया और बेर पकाकर समय बिता दिया ॥ ४२ ॥

ततः प्रोवाच भगवांस्तामेवारुन्धतीं पुनः।
वरं वृणीष्व कल्याणि यत्तेऽभिलषितं हृदि ॥ ४३ ॥
अनन्तर भगवान् शिव फिर प्रसन्न होकर अरुन्धतीसे बोले, हे कल्याणि! तेरे मनमें जो इच्छा हो सो वरदान हमसे मांगो ॥ ४३ ॥

साब्रवीत्पृथुताम्राक्षी देवं सप्तर्षिसंसदि ।
भगवान्यदि मे प्रीतस्तीर्थं स्यादिदमुत्तमम् ।
सिद्धदेवर्षिदयितं नाम्ना बदरपाचनम् ॥ ४४ ॥

महादेवके वचन सुन, बडे बडे लाल नेत्रवाली अरुन्धती सप्तऋषियोंके बीचमें बोली, यदि आप मुझसे प्रसन्न हुए हैं, तब यह वरदान दीजिये कि इस उत्तम तीर्थका फल अद्भुत हो जाय। सिद्ध, देवता और ऋषि इससे प्रेम करें और इसका नाम बदरपाचन तीर्थ हो ॥ ४४ ॥

तथास्मिन्देवदेवेश त्रिरात्रमुषितः शुचिः ।
प्राप्नुयादुपवासेन फलं द्वादशवार्षिकम् ।
एवमस्त्विति तां चोक्त्वा हरो यातस्तदा दिवम् ॥ ४५ ॥

हे देवदेवेश्वर ! जो तीन राततक पवित्र होकर इस तीर्थमें रहे और उपवास करे, उसे बारह वर्षोंके उपवासका फल मिले। तब 'ऐसा ही होगा' ऐसा उसको कहकर शिव स्वर्गलोकमें चले गये ॥ ४५ ॥

ऋषयो विस्मयं जग्मुस्तां दृष्ट्वा चाप्यरुन्धतीम् ।
अश्रान्तां चाविवर्णां च क्षुत्पिपासासहां सतीम् ॥ ४६ ॥

अरुन्धती भूख और प्याससे युक्त होनेपर भी न थकी हुई और अविवर्ण थी। उस भूख–प्यास सहनेवाली सतीको देखकर ऋषियोंको विस्मय हुआ ॥ ४६ ॥

एवं सिद्धिः परा प्राप्ता अरुंधत्या विशुद्धया ।
यथा त्वया महाभागे मदर्थं संशितव्रते ॥ ४७ ॥

हे कठोर व्रताचरणवाली महाभागे ! इस प्रकार पतिव्रता अरुन्धतीको इस तीर्थमें परमसिद्धि प्राप्ति हुई थी, हे कल्याणि ! तुमने भी हमारे लिये ऐसा ही व्रत किया ॥ ४७ ॥

विशेषो हि त्वया भद्रे व्रते ह्यस्मिन्समर्पितः ।
तथा चेदं ददाम्यद्य नियमेन सुतोषितः ॥ ४८ ॥
विशेषं तव कल्याणि प्रयच्छामि वरं वरे ।
अरुन्धत्या वरस्तस्या यो दत्तो वै महात्मना ॥ ४९ ॥

भद्रे ! परन्तु तुमने इस व्रतमें कुछ विशेष आत्मसमर्पण किया है। इसलिये हे कल्याणि ! हम तुम्हारे नियमसे प्रसन्न होकर आज यह अधिक वर देते हैं, अरुन्धतीको महात्मा शिवने जो वरदान दिया था ॥ ४८–४९ ॥

तस्य चाहं प्रसादेन तव कल्याणि तेजसा ।
प्रवक्ष्याम्यपरं भूयो वरमत्र यथाविधि ॥ ५० ॥

उसके प्रसाद और तुम्हारे तेजसे हम यह दूसरा बढकर वरदान देते हैं ॥ ५० ॥

यस्त्वेकां रजनीं तीर्थे वत्स्यते सुसमाहितः ।
स स्नात्वा प्राप्स्यते लोकान्देहन्यासाच्च दुर्लभान् ॥ ५१ ॥

जो मनुष्य सावधान होकर इस तीर्थमें एक रात रहेगा और स्नान करेगा, वह मरनेके बाद दुर्लभ लोकोंको जायेगा ॥ ५१ ॥

इत्युक्त्वा भगवान्देवः सहस्राक्षः प्रतापवान् ।
स्रुचावतीं ततः पुण्यां जगाम त्रिदिवं पुनः ॥ ५२ ॥

पुण्यमयी स्रुचावतीसे ऐसा कहकर देवताओंके स्वामी सहस्राक्ष प्रतापवान् भगवान् इन्द्र पुनः स्वर्गको चले गये ॥ ५२ ॥

गते वज्रधरे राजंस्तत्र वर्षं पपात ह ।
पुष्पाणां भरतश्रेष्ठ दिव्यानां दिव्यगन्धिनाम् ॥ ५३ ॥

हे राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! वज्रधारी इन्द्रके जाते ही वहां पवित्र सुगन्ध भरे दिव्य फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ५३ ॥

नेदुर्दुन्दुभयश्चापि समन्तात्सुमहास्वनाः ।
मारुतश्च ववौ युक्त्या पुण्यगन्धो विशां पते ॥ ५४ ॥

सब ओरसे आकाशमें बडे शब्द करनेवाली दुन्दुभियां बजने लगीं । पृथ्वीपते ! उत्तम पवित्र और सुगन्धिभरा वायु चलने लगी ॥ ५४ ॥

उत्सृज्य तु शुभं देहं जगामेन्द्रस्य भार्यताम् ।
तपसोग्रेण सा लब्ध्वा तेन रेमे सहाच्युत ॥ ५५ ॥

फिर स्रुचावती अपने शुभ शरीरको त्यागकर इन्द्रकी भार्या बनी । अच्युत ! वह अपने उग्र तपके प्रभावसे उनको पाकर उनके संग विहार करने लगी ॥ ५५ ॥

जनमेजय उवाच

का तस्या भगवन्माता क संवृद्धा च शोभना ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि मे ॥ ५६ ॥

राजा जनमेजय बोले—हे भगवन् ! सुन्दरी स्रुचावतीकी माता कौन थी ? और वह कहां पली थी ? ब्रह्मन् ! यह कथा आप हमसे कहो, हमें सुननेकी बहुत इच्छा है ॥ ५६ ॥

वैशंपायन उवाच

भारद्वाजस्य विप्रर्षेः स्कन्नं रेतो महात्मनः ।
दृष्ट्वाप्सरसमायान्तीं घृताचीं पृथुलोचनाम् ॥ ५७ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— एक दिन महात्मा भरद्वाजके आश्रमके पासको विशालनैनी घृताची आ रही थी, उसको देखकर मुनिका वीर्य गिर गया ॥ ५७ ॥

स तु जग्राह तद्रेतः करेण जपतां वरः ।
तदापतत्पर्णपुटे तत्र सा संभवच्छुभा ॥ ५८ ॥

मुनीश्वरने उस वीर्यको अपने हाथमें ले लिया, परंतु वह दोनामें गिर गया, उससे यह सुंदर कन्या उत्पन्न हो गई ॥ ५८ ॥

तस्यास्तु जातकर्मादि कृत्वा सर्वं तपोधनः ।
नाम चास्याः स कृतवान्भारद्वाजो महामुनिः ॥ ५९ ॥
स्रुचावतीति धर्मात्मा तदर्षिगणसंसदि ।
स च तामाश्रमे न्यस्य जगाम हिमवद्वनम् ॥ ६० ॥

तपोधन भगवान् महामुनि भरद्वाजने उसका जातकर्म आदि सब संस्कार करके, ऋषियोंकी सभामें उसका नाम स्रुचावती रक्खा, फिर उसे अपने आश्रममें छोडकर हिमाचलके वनमें तपस्या करनेको चले गये ॥ ५९–६० ॥

तत्राप्युपस्पृश्य महानुभावो वसूनि दत्त्वा च महाद्विजेभ्यः ।
जगाम तीर्थं सुसमाहितात्मा शक्रस्य वृष्णिप्रवरस्तदानीम् ॥ ६१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ॥ २५४६ ॥

वृष्णि कुलश्रेष्ठ महानुभाव बलवान् उस तीर्थमें स्नान करके, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बहुत दान देकर, उस समय एकाग्रचित्त हो वहांसे इन्द्रतीर्थको चले गये ॥ ६१ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें सडतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥ २५४६ ॥

ः ४८ ः

वैशंपायन उवाच

इन्द्रतीर्थं ततो गत्वा यदूनां प्रवरो बली ।
विप्रेभ्यो धनरत्नानि ददौ स्नात्वा यथाविधि ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् जनमेजय ! यदुकुलश्रेष्ठ महाबलवान् बलदेव वहांसे चलकर इन्द्र तीर्थपर पहुंचे और वहां स्नान करके ब्राह्मणोंको अनेक रत्न और धन विधि-पूर्वक दान किये ॥ १ ॥

तत्र ह्यमरराजोऽसावीजे क्रतुशतेन ह ।
बृहस्पतेश्च देवेशः प्रददौ विपुलं धनम् ॥ २ ॥

इस ही स्थानपर देवेश्वर देवराज इन्द्रने सौ यज्ञ किये थे और बृहस्पतिको बहुत धन दिया था ॥ २ ॥

निरर्गलान्सजारूथ्यान्सर्वान्विविधदक्षिणान् ।
आजहार क्रतूंस्तत्र यथोक्तान्वेदपारगैः ॥ ३ ॥

इन्द्रने उन सब शास्त्रविधियुक्त यज्ञोंको सर्वांग सम्पन्न और अनेक दक्षिणाओंसे युक्त वेदपाठी विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ विधिपूर्वक किसी विघ्नके विना पूर्ण किया था ॥ ३ ॥

तान्क्रतून्भरतश्रेष्ठ शतकृत्वो महाद्युतिः ।
पूरयामास विधिवत्ततः ख्यातः शतक्रतुः ॥ ४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! महातेजस्वी इन्द्रने उन यज्ञोंको सौ बार विधिपूर्वक पूर्ण किया इसलिये उसी दिनसे इन्द्रका नाम शतक्रतु अर्थात् सौ यज्ञ करनेवाला ऐसा विख्यात हुआ ॥ ४ ॥

तस्य नाम्ना च तत्तीर्थं शिवं पुण्यं सनातनम् ।
इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ५ ॥

उन्हींके नामसे यह कल्याणकारी, सनातन और प्रसिद्ध पुण्यतीर्थ, इन्द्रतीर्थ भी हो गया, इसपर जानेसे सब प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं ॥ ५ ॥

उपस्पृश्य च तत्रापि विधिवन्मुसलायुधः ।
ब्राह्मणान्पूजयित्वा च पानाच्छादनभोजनैः ।
शुभं तीर्थवरं तस्माद्रामतीर्थं जगाम ह ॥ ६ ॥

वहांपर मुसलधारी बलदेवने विधिपूर्वक स्नान और उत्तम भोजन और वस्त्रादिक दानोंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करके वहांसे शुभ श्रेष्ठ रामतीर्थकी यात्रा की ॥ ६ ॥

यत्र रामो महाभागो भार्गवः सुमहातपाः ।
असकृत्पृथिवीं सर्वां हतक्षत्रियपुंगवाम् ॥ ७ ॥

इस ही तीर्थपर भृगुवंशी महाभागी महातपस्वी परशुरामने बार बार उत्तम क्षत्रिय नरेशोंका नाश करके पृथ्वीको जीतनेके बाद ॥ ७ ॥

उपाध्यायं पुरस्कृत्य कश्यपं मुनिसत्तमम् ।
अयजद्वाजपेयेन सोऽश्वमेधशतेन च ।
प्रददौ दक्षिणार्थं च पृथिवीं वै ससागराम् ॥ ८ ॥

मुनियोंमें श्रेष्ठ कश्यपको पुरोहित बनाकर वाजपेय यज्ञ और सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे और वहीं उन्होंने दक्षिणा रूपमें समुद्रोंसहित सब पृथ्वी दान कर दी थी ॥ ८ ॥

रामो दत्त्वा धनं तत्र द्विजेभ्यो जनमेजय ।
उपस्पृश्य यथान्यायं पूजयित्वा तथा द्विजान् ॥ ९ ॥

हे जनमेजय ! वहां बलरामने ब्राह्मणोंको धन देकर तथा विधिवत् स्नान करके ब्राह्मणोंका पूजन करके योग्य सत्कार किया ॥ ९ ॥

पुण्ये तीर्थे शुभे देशे वसु दत्त्वा शुभाननः ।
मुनींश्चैवाभिवाद्याथ यमुनातीर्थमागमत् ॥ १० ॥

पुण्यमय शुभ तीर्थस्थानमें धन देकर सुन्दर मुखवाले बलराम मुनियोंको प्रणाम करके उस तीर्थसे यमुना तीर्थकी ओर गये ॥ १० ॥

यत्रानयामास तदा राजसूयं महीपते ।
पुत्रोऽदितेर्महाभागो वरुणो वै सितप्रभः ॥ ११ ॥

महीपते ! इसी तीर्थमें अदितीके महाभाग पुत्र गौरवर्णवाले वरुणने राजसूय यज्ञ किया था ॥ ११ ॥

तत्र निर्जित्य संग्रामे मानुषान्दैवतांस्तथा ।
वरं क्रतुं समाजह्रे वरुणः परवीरहा ॥ १२ ॥

शत्रुनाशन वरुणने युद्धमें मनुष्यों और देवताओंको जीतकर इस श्रेष्ठ यज्ञको किया था ॥ १२ ॥

तस्मिन्क्रतुवरे वृत्ते संग्रामः समजायत ।
देवानां दानवानां च त्रैलोक्यस्य क्षयावहः ॥ १३ ॥

वह श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ शुरू होते ही तीनों लोकोंका नाश करनेवाला देवता और दानवोंका घोर युद्ध हुआ था ॥ १३ ॥

राजसूये क्रतुश्रेष्ठे निवृत्ते जनमेजय ।
जायते सुमहाघोरः संग्रामः क्षत्रियान्प्रति ॥ १४ ॥

जनमेजय ! क्रतुश्रेष्ठ राजसूय यज्ञ पूर्ण होनेपर, उस देशके क्षत्रियोंमें अत्यंत घोर युद्ध होता है ॥ १४ ॥

सीरायुधस्तदा रामस्तस्मिंस्तीर्थवरे तदा ।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च द्विजेभ्यो वसु माधवः ॥ १५ ॥

अनन्तर हलधारी मधुवंशी बलरामने उस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको धन दिया ॥ १५ ॥

वनमाली ततो हृष्टः स्तूयमानो द्विजातिभिः ।
तस्मादादित्यतीर्थं च जगाम कमलेक्षणः ॥ १६ ॥

तदनन्तर वनमालाधारी कमलनेत्र बलराम ब्राह्मणोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए प्रसन्न होकर वहांसे चले और आदित्य तीर्थपर पहुंचे ॥ १६ ॥

यत्रेष्ट्वा भगवाञ्ज्योतिर्भास्करो राजसत्तम ।
ज्योतिषामाधिपत्यं च प्रभावं चाभ्यपद्यत ॥ १७ ॥

हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! वहीं यज्ञ करनेसे ज्योतिर्मय भगवान् सूर्यको तेज और नक्षत्रोंका राज्य और प्रभुत्व मिला है ॥ १७ ॥

*

तस्या नद्यास्तु तीरे वै सर्वे देवाः सवासवाः ।
विश्वेदेवाः समरुतो गन्धर्वाप्सरसश्च ह ॥ १८ ॥

इसी तीर्थपर रहनेसे इन्द्रादिक सब देवता, विश्वेदेव, मरुत, गन्धर्व, अप्सरा ॥ १८ ॥

द्वैपायनः शुकश्चैव कृष्णश्च मधुसूदनः ।
यक्षाश्च राक्षसाश्चैव पिशाचाश्च विशां पते ॥ १९ ॥

पृथ्वीपते ! वेदव्यास, शुकदेव, मधुनाशक कृष्ण, यक्ष, राक्षस और अनेक पिशाच ॥१९॥

एते चान्ये च बहवो योगसिद्धाः सहस्रशः ।
तस्मिंस्तीर्थे सरस्वत्याः शिवे पुण्ये परंतप ॥ २० ॥

ये और अन्य अनेक सहस्रों लोग योगसिद्ध हो गये हैं । परंतप ! यह सरस्वतीका तीर्थ बहुत ही पवित्र और कल्याणदायक है ॥ २० ॥

तत्र हत्वा पुरा विष्णुरसुरौ मधुकैटभौ ।
आप्लुतो भरतश्रेष्ठ तीर्थप्रवर उत्तमे ॥ २१ ॥

इस ही तीर्थमें पहिले समयमें विष्णुने मधु और कैटभ नामक दानवोंको मारा था, भरतश्रेष्ठ ! और इसी उत्तम श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान किया था ॥ २१ ॥

द्वैपायनश्च धर्मात्मा तत्रैवाप्लुत्य भारत ।
संप्राप्तः परमं योगं सिद्धिं च परमां गतः ॥ २२ ॥

भारत ! धर्मात्मा वेदव्यासने भी इसी तीर्थमें स्नान किया था । इस कारण उनको परम योग और उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई थी ॥ २२ ॥

असितो देवलश्चैव तस्मिन्नेव महातपाः ।
परमं योगमास्थाय ऋषिर्योगमवाप्तवान् ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ २५६९ ॥

इसी तीर्थमें महातपस्वी असित देवलऋषिने परम योग किया था और सिद्ध हो गये थे ॥२३॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें अडतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ २५६९ ॥

: ४९ :

वैशंपायन उवाच

तस्मिन्नेव तु धर्मात्मा वसति स्म तपोधनः ।
गार्हस्थ्यं धर्ममास्थाय असितो देवलः पुरा ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् जनमेजय ! पहिले समयमें इस तीर्थमें गृहस्थ धर्म धारण करके महातपस्वी धर्मात्मा असित देवलमुनि रहते थे ॥ १ ॥

धर्मनित्यः शुचिर्दान्तो न्यस्तदण्डो महातपाः ।
कर्मणा मनसा वाचा समः सर्वेषु जन्तुषु ॥ २ ॥

वे महातपस्वी मनसे, वचनसे और कर्मसे सब प्राणियोंको समान समझते थे, पवित्र होकर सदा धर्म करते थे, इन्द्रियोंको सदा वशमें रखते थे और न किसीको दण्ड देनेवाले थे ॥२॥

अक्रोधनो महाराज तुल्यनिन्दाप्रियाप्रियः ।
काञ्चने लोष्टके चैव समदर्शी महातपाः ॥ ३ ॥

महाराज ! कभी क्रोध नहीं करते थे, अपनी निन्दा और स्तुतिको समान ही मानते थे, प्रिय और अप्रियको एकसा मानते थे, सोना और मिट्टीका ढेला महातपस्वी देवल दोनोंको समान ही देखते थे ॥ ३ ॥

देवताः पूजयन्नित्यमतिथींश्च द्विजैः सह ।
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं सदा धर्मपरायणः ॥ ४ ॥

सदा देवता और ब्राह्मणोंसहित अतिथियोंकी पूजा किया करते थे, सदा ब्रह्मचर्य धारण और धर्ममें तत्पर रहते थे ॥ ४ ॥

ततोऽभ्येत्य महाराज योगमास्थाय भिक्षुकः ।
जैगीषव्यो मुनिर्धीमांस्तस्मिंस्तीर्थे समाहितः ॥ ५ ॥

हे महाराज ! एक दिन उनके पास जैगीषव्य नामक बुद्धिमान् योगी मुनि उस तीर्थमें आये और एकचित्त होकर वहां रहने लगे ॥ ५ ॥

देवलस्याश्रमे राजन्न्यवसत्स महाद्युतिः ।
योगनित्यो महाराज सिद्धिं प्राप्तो महातपाः ॥ ६ ॥

राजन् ! महाराज ! महातेजस्वी और महातपस्वी उन मुनिने सदा योगयुक्त होकर सिद्धि प्राप्त की थी और देवलके आश्रममें रहते थे ॥ ६ ॥

तं तत्र वसमानं तु जैगीषव्यं महामुनिम् ।
देवलो दर्शयन्नेव नैवायुञ्जत धर्मतः ॥ ७ ॥

महामुनि जैगीषव्य उस आश्रममें रहते थे, तो भी देवलमुनि उन्हें दिखाकर धर्मके अनुसार साधना नहीं करते थे ॥ ७ ॥

एवं तयोर्महाराज दीर्घकालो व्यतिक्रमत् ।
जैगीषव्यं मुनिं चैव न ददर्शाथ देवलः ॥ ८ ॥

महाराज ! इस प्रकार इन दोनोंको रहते रहते बहुत समय बीत गया । अनन्तर देवलने हर समय जैगीषव्य मुनिको नहीं देखा ॥ ८ ॥

आहारकाले मतिमान्परिव्राड् जनमेजय ।
उपातिष्ठत धर्मज्ञो भैक्षकाले स देवलम् ॥ ९ ॥

जनमेजय ! धर्मज्ञ बुद्धिमान् संन्यासी महामुनि जैगीषव्य केवल भोजन या भिक्षाके समय देवलऋषिके आश्रममें आते थे ॥ ९ ॥

स दृष्ट्वा भिक्षुरूपेण प्राप्तं तत्र महामुनिम् ।
गौरवं परमं चक्रे प्रीतिं च विपुलां तथा ॥ १० ॥

संन्यासीके रूपमें आये हुए महामुनि जैगीषव्यको अपने आश्रममें आया देख, देवल बहुत प्रसन्न होकर उनका प्रेमपूर्वक बहुत आदर किया करते थे ॥ १० ॥

देवलस्तु यथाशक्ति पूजयामास भारत ।
ऋषिदृष्टेन विधिना समा बह्वयः समाहितः ॥ ११ ॥

भारत ! देवल विधिपूर्वक एकाग्रचित्त हो शक्तिके अनुसार उनकी पूजा भी करते थे। बहुत वर्षोंतक उन्होंने ऐसा ही किया ॥ ११ ॥

कदाचित्तस्य नृपते देवलस्य महात्मनः ।
चिन्ता सुमहती जाता मुनिं दृष्ट्वा महाद्युतिम् ॥ १२ ॥

नृप ! एक दिन महातेजस्वी मुनिको देखकर महात्मा देवलके मनमें बडी चिन्ता उत्पन्न हो गयी ॥ १२ ॥

समास्तु समतिक्रान्ता बह्वयः पूजयतो मम ।
न चायमलसो भिक्षुरभ्यभाषत किंचन ॥ १३ ॥

मैं कई वर्षोंसे इस अतिथीकी पूजा करता हूं । ऐसे बहुत वर्ष बीत गये । परन्तु ये आलसी भिक्षु कुछ भी नहीं बोले ॥ १३ ॥

एवं विगणयन्नेव स जगाम महोदधिम् ।
अन्तरिक्षचरः श्रीमान्कलशं गृह्य देवलः ॥ १४ ॥

ऐसा विचार करते हुए श्रीमान् देवलमुनि हाथमें घडा लेकर आकाशमार्गसे समुद्रकी ओर चले ॥ १४ ॥

गच्छन्नेव स धर्मात्मा समुद्रं सरितां पतिम् ।
जैगीषव्यं ततोऽपश्यद्गतं प्रागेव भारत ॥ १५ ॥

भारत ! वहां नदियोंके स्वामी समुद्रके पास जाकर महात्मा देवलने देखा कि जैगीषव्य पहलेसे ही गये हैं ॥ १५ ॥

ततः सविस्मयाश्चिन्तां जगामाथासितः प्रभुः ।
कथं भिक्षुरयं प्राप्तः समुद्रे स्नात एव च ॥ १६ ॥

मुनिश्रेष्ठ देवलको बहुत आश्चर्य और चिन्ता उत्पन्न हुई और विचार करने लगे कि यह भिक्षु यहां कैसे आ गये और इन्होंने समुद्रमें स्नान भी किया है ॥ १६ ॥

इत्येवं चिंतयामास महर्षिरसितस्तदा ।
स्नात्वा समुद्रे विधिवच्छुचिर्जप्यं जजाप ह ॥ १७ ॥

इस प्रकार महर्षि असित देवल चिन्ता करने लगे । फिर उन्होंने विधिपूर्वक समुद्रमें स्नान करके पवित्र होकर नित्य कर्म और जप किया ॥ १७ ॥

कृतजप्याह्निकः श्रीमानाश्रमं च जगाम ह ।
कलशं जलपूर्णं वै गृहीत्वा जनमेजय ॥ १८ ॥
ततः स प्रविशन्नेव स्वमाश्रमपदं मुनिः ।
आसीनमाश्रमे तत्र जैगीषव्यमपश्यत ॥ १९ ॥

जनमेजय ! जप आदि नित्यकर्म पूरा करके श्रीमान् देवल घडेमें जल भरकर, अपने आश्रमको चले आये । जब देवलमुनिने अपने आश्रममें प्रवेश किया तब देखा तो जैगीषव्य वहीं बैठे हैं ॥ १८–१९ ॥

न व्याहरति चैवैनं जैगीषव्यः कथंचन ।
काष्ठभूतोऽऽश्रमपदे वसति स्म महातपाः ॥ २० ॥

परन्तु जैगीषव्य उसी समय उनसे कुछ भी बोले नहीं और महातपस्वी मुनि आश्रमपर केवल काष्ठके समान बैठे हुए हैं ॥ २० ॥

तं दृष्ट्वा चाप्लुतं तोये सागरे सागरोपमम् ।
प्रविष्टमाश्रमं चापि पूर्वमेव ददर्श सः । ॥ २१ ॥

समुद्रके समान गंभीर जैगीषव्यको समुद्रके जलमें स्नान करके अपनेसे पहले ही आश्रममें आये हुए देखकर ॥ २१ ॥

असितो देवलो राजंश्चिन्तयामास बुद्धिमान् ।
दृष्टः प्रभावं तपसो जैगीषव्यस्य योगजम् ॥ २२ ॥

राजन् ! बुद्धिमान् असित देवलमुनिको बहुत चिन्ता हुई । उन्होंने जैगीषव्यको तपस्याका योगप्रभाव देखा ॥ २२ ॥

चिन्तयामास राजेन्द्र तदा स मुनिसत्तमः ।
मया दृष्टः समुद्रे च आश्रमे च कथं स्वयम् ॥ २३ ॥

राजेन्द्र ! मुनिश्रेष्ठ देवल फिर विचार करने लगे कि मैंने इन्हें अभी समुद्रतटपर देखा था, अब ये यहां आश्रममें कैसे आ गये ? ॥ २३ ॥

एवं विगणयन्नेव स मुनिर्मन्त्रपारगः ।
उत्पपाताश्रमात्तस्मादन्तरिक्षं विशां पते ।
जिज्ञासार्थं तदा भिक्षोर्जैगीषव्यस्य देवलः ॥ २४ ॥

पृथ्वीपते ! ऐसा विचार करते हुए वे मंत्रशास्त्र पारंगत देवलमुनि उस आश्रमसे भिक्षु जैगीषव्यकी परीक्षा करनेकी इच्छासे फिर आकाशको उडे ॥ २४ ॥

सोऽन्तरिक्षचरान्सिद्धान्समपश्यत्समाहितान् ।
जैगीषव्यं च तैः सिद्धैः पूज्यमानमपश्यत ॥ २५ ॥

उन्होंने आकाशमें अन्तरिक्षचारी सावधान चित्तवाले सिद्धोंको देखा । उन सिद्धोंसे पूजे जाते जैगीषव्य मुनिको भी देखा ॥ २५ ॥

ततोऽसितः सुसंरब्धो व्यवसायी दृढव्रतः ।
अपश्यद्वै दिवं यान्तं जैगीषव्यं स देवलः ॥ २६ ॥

अनन्तर दृढव्रतधारी महापरिश्रमी असित देवल क्रोधित हो गये और उन्होंने जैगीषव्यको स्वर्गलोकमें जाते देखा ॥ २६ ॥

तस्माच्च पितृलोकं तं व्रजन्तं सोऽन्वपश्यत ।
पितृलोकाच्च तं यान्तं याम्यं लोकमपश्यत ॥ २७ ॥

वहांसे उन्हें पितरलोकको जाते उन्होंने देखा और पितरलोकसे यमलोकको जाते देखा ॥२७॥

तस्मादपि समुत्पत्य सोमलोकमभिष्टुतम् ।
व्रजन्तमन्वपश्यत्स जैगीषव्यं महामुनिम् ॥ २८ ॥

वहांसे भी ऊपर उडकर उन्होंने महामुनि जैगीषव्यको जलमय चन्द्रलोकको जाते देखा ॥२८॥

लोकान्समुत्पतन्तं च शुभानेकान्तयाजिनाम् ।
ततोऽग्निहोत्रिणां लोकांस्तेभ्यश्चाप्युत्पपात ह ॥ २९ ॥

वहांसे एकान्तमें यज्ञ करनेवाले मुनियोंके उत्तम लोकोंको और फिर वे वहांसे अग्निहोत्रियोंके लोकोंको उडकर गये ॥ २९ ॥

दर्शं च पौर्णमासं च ये यजन्ति तपोधनाः ।
तेभ्यः स ददृशे धीमाँल्लोकेभ्यः पशुयाजिनाम् ।
व्रजन्तं लोकममलमपश्यद्देवपूजितम् ॥ ३० ॥

वहांसे दर्श और पौर्णमास यज्ञ करनेवाले तपोधनोंके लोकों, वहांसे पशुओंसे यज्ञ करनेवालोंके लोकमें वे बुद्धिमान् मुनि जाते दिखाई दिये । वहांसे देवताओंसे पूजित विमललोकको जाते देखा ॥ ३० ॥

चातुर्मास्यैर्बहुविधैर्यजन्ते ये तपोधनाः ।
तेषां स्थानं तथा यान्तं तथाग्निष्टोमयाजिनाम् ॥ ३१ ॥

वहांसे नानाप्रकारके चातुर्मास्य यज्ञ करनेवाले तपोधनोंके लोकमें, फिर वहांसे अग्निष्टोम यज्ञ करनेवालोंके लोकमें जाते देखा ॥ ३१ ॥

अग्निष्टुतेन च तथा ये यजन्ति तपोधनाः ।
तत्स्थानमनुसंप्राप्तमन्वपश्यत देवलः ॥ ३२ ॥

वहां अग्निष्टुत यज्ञ करनेवाले तपोधनोंके लोकमें पहुंचे हुए जैगीषव्यको देवलमुनिने देखा ॥ ३२ ॥

वाजपेयं क्रतुवरं तथा बहुसुवर्णकम् ।
आहरन्ति महाप्राज्ञास्तेषां लोकेष्वपश्यत ॥ ३३ ॥

वहांसे बहुत सुवर्ण दक्षिणायुक्त क्रतुश्रेष्ठ वाजपेय यज्ञ करनेवाले महाप्राज्ञोंके लोकमें देखा ॥ ३३ ॥

यजन्ते पुण्डरीकेण राजसूयेन चैव ये ।
तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ॥ ३४ ॥

वहांसे पुण्डरीक और राजसूय यज्ञ करनेवाले महाबुद्धिमानोंके लोकमें देवलने जैगीषव्यको देखा ॥ ३४ ॥

अश्वमेधं क्रतुवरं नरमेधं तथैव च ।
आहरन्ति नरश्रेष्ठास्तेषां लोकेष्वपश्यत ॥ ३५ ॥

वहांसे क्रतुश्रेष्ठ अश्वमेध और नरमेध यज्ञ करनेवाले नरश्रेष्ठोंके लोकमें उनको देखा ॥ ३५ ॥

सर्वमेधं च दुष्प्रापं तथा सौत्रामणिं च ये ।
तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ॥ ३६ ॥

वहांसे अत्यन्त दुर्लभ सर्वमेध और सौत्रामणि यज्ञ करनेवालोंके लोकमें देवलने जैगीषव्यको देखा ॥ ३६ ॥

द्वादशाहैश्च सत्रैर्ये यजन्ते विविधैर्नृप ।
तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ॥ ३७ ॥

नृप ! वहांसे अनेक प्रकारके द्वादशाह यज्ञ करनेवालोंके लोकमें भी देवलने जैगीषव्यको देखा ॥ ३७ ॥

मित्रावरुणयोर्लोकानादित्यानां तथैव च ।
सलोकतामनुप्राप्तमपश्यत ततोऽसितः ॥ ३८ ॥

फिर वहांसे मित्रावरुणोंके लोकमें, वहांसे आदित्य लोकमें पहुंचे हुए जैगीषव्यको असित देवलने देखा ॥ ३८ ॥

रुद्राणां च वसूनां च स्थानं यच्च बृहस्पतेः ।
तानि सर्वाण्यतीतं च समपश्यत्ततोऽसितः ॥ ३९ ॥

वहांसे रुद्रलोक, वसुलोक और बृहस्पति लोक, ये सब स्थान लांघकर ऊपर गये जैगीषव्यको असित देवलने देखा ॥ ३९ ॥

आरुह्य च गवां लोकं प्रयान्तं ब्रह्मसत्रिणाम् ।
लोकानपश्यद्गच्छन्तं जैगीषव्यं ततोऽसितः ॥ ४० ॥

अनन्तर गौओंके लोकमें जाकर ब्रह्मसत्र करनेवालोंके लोकमें जाते हुए जैगीषव्यको असितने देखा ॥ ४० ॥

त्रीँल्लोकानपरान्विप्रमुत्पतन्तं स्वतेजसा ।
पतिव्रतानां लोकांश्च व्रजन्तं सोऽन्यपश्यत ॥ ४१ ॥

तदनन्तर विप्रश्रेष्ठ जैगीषव्य अपने तेजसे ऊपरके तीन लोकोंको लांघकर पतिव्रताओंके लोकमें जा रहे हैं, ऐसा देवलने देखा ॥ ४१ ॥

ततो मुनिवरं भूयो जैगीषव्यमथासितः ।
नान्वपश्यत योगस्थमन्तर्हितमरिंदम ॥ ४२ ॥

अरिंदम ! उसके पश्चात् महामुनि जैगीषव्य अन्तर्धान हो गये और देवल उन्हें फिर किसी लोकमें न देख सके ॥ ४२ ॥

सोऽचिन्तयन्महाभागो जैगीषव्यस्य देवलः ।
प्रभावं सुव्रतत्वं च सिद्धिं योगस्य चातुलाम् ॥ ४३ ॥

तब महाभाग देवल जैगीषव्यके प्रभाव, उत्तम व्रत और अतुल योगसिद्धि बलका विचार करने लगे ॥ ४३ ॥

असितोऽपृच्छत तदा सिद्धाँल्लोकेषु सत्तमान् ।
प्रयतः प्राञ्जलिर्भूत्वा धीरस्तान्ब्रह्मसत्रिणः ॥ ४४ ॥

अनन्तर महाधीरधारी असित देवलने उन लोकोंमें रहनेवाले ब्रह्मयाजी उत्तम सिद्ध और साधुओंसे हाथ जोडकर प्रयत्नपूर्वक पूछा ॥ ४४ ॥

जैगीषव्यं न पश्यामि तं शंसत महौजसम् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ॥ ४५ ॥

हे सिद्धों ! हम महातेजस्वी जैगीषव्यको नहीं देखते हैं, तुम उनके विषयमें कहो। हम उनके विषयमें सुनना चाहते हैं । हमें यह सुननेकी बहुत इच्छा है ॥ ४५ ॥

सिद्धा ऊचुः

शृणु देवल भूतार्थं शंसतां नो दृढव्रत ।
जैगीषव्यो गतो लोकं शाश्वतं ब्रह्मणोऽव्ययम् ॥ ४६ ॥

सिद्ध बोले— हे दृढ व्रतधारी देवल ! सुनो ! हम तुम्हें जो हो चुकी है वह बात बता रहे हैं । जैगीषव्य सनातन अव्यय ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ४६ ॥

स श्रुत्वा वचनं तेषां सिद्धानां ब्रह्मसत्रिणाम् ।
असितो देवलस्तूर्णमुत्पपात पपात च ॥ ४७ ॥

ब्रह्मयज्ञ करनेवाले सिद्धोंके वचन सुन देवलमुनि शीघ्रतासहित ब्रह्मलोकको चलने लगे, परन्तु नीचे गिर पडे ॥ ४७ ॥

ततः सिद्धास्त ऊचुर्हि देवलं पुनरेव ह ।
न देवल गतिस्तत्र तव गन्तुं तपोधन ।
ब्रह्मणः सदनं विप्र जैगीषव्यो यदाप्तवान् ॥ ४८ ॥

तब वे सिद्ध फिर देवलसे बोले— हे तपोधन देवल ! विप्र ! तुममें उस ब्रह्मलोकमें जानेकी शक्ति नहीं है, वहां जानेकी शक्ति जैगीषव्यहीको है ॥ ४८ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सिद्धानां देवलः पुनः ।
आनुपूर्व्येण लोकांस्तान्सर्वानवततार ह ॥ ४९ ॥

सिद्धोंके वचन सुन महामुनि देवल पुनः क्रमसे उन्हीं लोकोंमें होते हुए नीचे उतर आये ॥४९॥

स्वमाश्रमपदं पुण्यमाजगाम पतंगवत् ।
प्रविशन्नेव चापश्यज्जैगीषव्यं स देवलः ॥ ५० ॥

पक्षीकी तरह उडते हुए वे अपने पवित्र आश्रममें आये और अंदर प्रवेश करते ही देवलने देखा कि जैगीषव्य मुनि वहीं बैठे हैं ॥ ५० ॥

ततो बुद्ध्या व्यगणयद्देवलो धर्मयुक्तया ।
दृष्ट्वा प्रभावं तपसो जैगीषव्यस्य योगजम् ॥ ५१ ॥

तब देवलने धर्मयुक्त बुद्धिसे महात्मा जैगीषव्यकी तपस्याके उस योगबलको देखकर उसपर विचार किया ॥ ५१ ॥

ततोऽब्रवीन्महात्मानं जैगीषव्यं स देवलः ।
विनयावनतो राजन्नुपसर्प्य महामुनिम् ।
मोक्षधर्मं समास्थातुमिच्छेयं भगवन्नहम् ॥ ५२ ॥

राजन् ! अनन्तर महात्मा महामुनि जैगीषव्यके पास जाकर विनयसे हाथ जोडकर देवलमुनि बोले— हे भगवन् ! हम मोक्षधर्मका आश्रय लेना चाहते हैं ॥ ५२ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा उपदेशं चकार सः ।
विधिं च योगस्य परं कार्याकार्यं च शास्त्रतः ॥ ५३ ॥

देवलके उस वचनको सुन, महामुनि जैगीषव्यने योगकी उत्तम विधि बताई और शास्त्रके अनुसार कर्तव्याकर्तव्यका उन्हें ज्ञान उपदेश किया ॥ ५३ ॥

संन्यासकृतबुद्धिं तं ततो दृष्ट्वा महातपाः ।
सर्वाश्चास्य क्रियाश्चक्रे विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५४ ॥

फिर तब महामुनि देवलकी विधिपूर्वक संन्यास लेनेकी इच्छा जानकर, उन्होंने शास्त्रीय विधिके अनुसार संन्यास ग्रहण संबंधी सब क्रियाएं की ॥ ५४ ॥

संन्यासकृतबुद्धिं तं भूतानि पितृभिः सह ।
ततो दृष्ट्वा प्ररुरुदुः कोऽस्मान्संविभजिष्यति ॥ ५५ ॥

उन्हें संन्यामी होते देख सब पितर और भूतगण रोकर कहने लगे, कि अब हमें अन्नभाग कौन देगा ? ॥ ५५ ॥

देवलस्तु वचः श्रुत्वा भूतानां करुणं तथा ।
दिशो दश व्याहरतां मोक्षं त्यक्तुं मनो दधे ॥ ५६ ॥

दसों दिशाओंकी ओरसे भूतोंके करुणायुक्त वचन सुन देवलने सन्यास छोडनेकी इच्छा की ॥ ५६ ॥

ततस्तु फलमूलानि पवित्राणि च भारत ।
पुष्पाण्योषधयश्चैव रोरूयन्ते सहस्रशः ॥ ५७ ॥

भारत ! उन्हें संन्यास छोडते देख, फल, मूल, पवित्री कुश, फूल और औषधियां ये सहस्रों रोरोकर कहने लगे ॥ ५७ ॥

पुनर्नो देवलः क्षुद्रो नूनं छेत्स्यति दुर्मतिः ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दत्त्वा नावबुध्यते ॥ ५८ ॥

मूर्ख दुर्मति क्षुद्र देवल अब फिर निश्चय ही हमारा नाश करेगा। इसने पहिले सब प्राणियोंको अभयदान दिया और अब फिर मूर्खता करता है ॥ ५८ ॥

ततो भूयो व्यगणयत्स्वबुद्ध्या मुनिसत्तमः ।
मोक्षे गार्हस्थ्यधर्मे वा किं नु श्रेयस्करं भवेत् ॥ ५९ ॥

तब मुनिश्रेष्ठ देवल फिर अपनी बुद्धिसे विचार करने लगे, कि गृहस्थधर्म और संन्यास इनमें मेरे लिये क्या श्रेयस्कर है ? ॥ ५९ ॥

इति निश्चित्य मनसा देवलो राजसत्तम ।
त्यक्त्वा गार्हस्थ्यधर्मं स मोक्षधर्ममरोचयत् ॥ ६० ॥

हे राजेन्द्र ! तब देवलने मनसे इसपर निश्चित विचार करके गृहस्थाश्रमधर्मको त्यागकर मोक्षधर्मको पसंद किया ॥ ६० ॥

एवमादीनि संचिन्त्य देवलो निश्चयात्ततः ।
प्राप्तवान्परमां सिद्धिं परं योगं च भारत ॥ ६१ ॥

भारत ! इन सब बातोंका पूर्ण विचार करके देवलने संन्यास लेनेका निश्चय किया, इससे उन्हें परमसिद्धि और उत्तम योगसिद्धि प्राप्त हुई ॥ ६१ ॥

ततो देवाः समागम्य बृहस्पतिपुरोगमाः ।
जैगीषव्यं तपश्चास्य प्रशंसन्ति तपस्विनः ॥ ६२ ॥

तब बृहस्पति आदि सब देवता और तपस्वी जैगीषव्यके पास आकर उनके तपकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६२ ॥

अथाब्रवीदृषिवरो देवान्वै नारदस्तदा ।
जैगीषव्ये तपो नास्ति विस्मापयति योऽसितम् ॥ ६३ ॥

तब ऋषिश्रेष्ठ नारद देवताओंको बोले– जैगीषव्यमें कुछ तप नहीं है, इसने अपना प्रभाव दिखाकर असित देवलको भ्रममें डाल दिया ॥ ६३ ॥

तमेवंवादिनं धीरं प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः ।
मैवमित्येव शंसन्तो जैगीषव्यं महामुनिम् ॥ ६४ ॥

तब धीर नारदके ऐसे वचन सुन महामुनि जैगीषव्यकी प्रशंसा करके देवता इस प्रकार बोले, आप महात्मा जैगीषव्यको ऐसे वचन मत कहिये ॥ ६४ ॥

तत्राप्युपस्पृश्य ततो महात्मा दत्त्वा च वित्तं हलभृद्द्विजेभ्यः ।
अवाप्य धर्मं परमार्यकर्मा जगाम सोमस्य महत्स तीर्थम् ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ २६३४ ॥

महात्मा उत्तम आर्य कर्म करनेवाले हलधर बलदेवने वहां भी स्नान करके ब्राह्मणोंको अनेक दान देकर धर्म और अर्थको प्राप्त किया, फिर वहांसे सोमके महान् और उत्तम तीर्थको चले गये ॥ ६५ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें उनपचासवां अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥ २६३४ ॥

: ५० :

वैशंपायन उवाच

यत्रेजिवानुडुपती राजसूयेन भारत ।
तस्मिन्वृत्ते महानासीत्संग्रामस्तारकामयः ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् जनमेजय ! इसी तीर्थपर नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमाने राजसूय यज्ञ किया था और उसी यज्ञमें यहीं तारकासुरसे घोर युद्ध हुआ था ॥ १ ॥

तत्राप्युपस्पृश्य बलो दत्त्वा दानानि चात्मवान् ।
सारस्वतस्य धर्मात्मा मुनेस्तीर्थं जगाम ह ॥ २ ॥
वहां भी स्नान करके और ब्राह्मणोंको दान देकर सावधान धर्मात्मा बलदेव महाऋषि सारस्वतके तीर्थको चले गये ॥ २ ॥

यत्र द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजोत्तमान् ।
वेदानध्यापयामास पुरा सारस्वतो मुनिः ॥ ३ ॥
प्राचीनकालमें इस ही तीर्थपर बारह वर्षके अकालमें, सारस्वत मुनिने उत्तम ब्राह्मणोंको वेद पढाया था ॥ ३ ॥

जनमेजय उवाच
कथं द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां तपोधनः ।
वेदानध्यापयामास पुरा सारस्वतो मुनिः ॥ ४ ॥
राजा जनमेजय बोले– पहिले समयमें जब बारह वर्षका अकाल पडा था, तब सारस्वत मुनिने उत्तम ब्राह्मणोंको कैसे वेद पढाया था ? ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच
आसीत्पूर्वं महाराज मुनिर्धीमान्महातपाः ।
दधीच इति विख्यातो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥
श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे महाराज ! पहिले समयमें महातपस्वी ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और बुद्धिमान् दधीच नामक मुनि थे ॥ ५ ॥

तस्यातितपसः शक्रो बिभेति सततं विभो ।
न स लोभयितुं शक्यः फलैर्बहुविधैरपि ॥ ६ ॥
राजन् ! उनके उग्र तपसे इन्द्र सदा भय करते थे, अनेक प्रकारके फलोंका लोभ दिखलानेपर भी दधीचि मोहित नहीं होते थे ॥ ६ ॥

प्रलोभनार्थं तस्याथ प्राहिणोत्पाकशासनः ।
दिव्यामप्सरसं पुण्यां दर्शनीयामलम्बुसाम् ॥ ७ ॥
तब इन्द्रने सुन्दर पवित्र रूपवती दिव्य अलम्बुसा नामक अप्सराको उनका तप भङ्ग करनेके लिये भेजा ॥ ७ ॥

तस्य तर्पयतो देवान्सरस्वत्यां महात्मनः ।
समीपतो महाराज सोपातिष्ठत भामिनी ॥ ८ ॥
महाराज ! वह भामिनी अप्सरा सरस्वती नदीमें देवताओंका तर्पण करते महात्मा दधीचिके पास जाकर खडी हो गयी ॥ ८ ॥

तां दिव्यवपुषं दृष्ट्वा तस्यर्षेर्भावितात्मनः ।
रेतः स्कन्नं सरस्वत्यां तत्सा जग्राह निम्नगा ॥ ९ ॥
उस दिव्य रूपवाली सुन्दरी अप्सराको देख महात्मा दधीचि महर्षिका वीर्य सरस्वतीमें गिरा, सरस्वतीने उस वीर्यको धारण किया ॥ ९ ॥

कुक्षौ चाप्यदधद्‌दृष्ट्वा तद्रेतः पुरुषर्षभ ।
सा दधार च तं गर्भं पुत्रहेतोर्महानदी ॥ १० ॥
पुरुषर्षभ ! उस महानदीने प्रसन्न होकर पुत्र होनेके लिये उस वीर्यको अपनी कुक्षिमें रखा और इसी प्रकार वह गर्भवती हो गई ॥ १० ॥

सुषुवे चापि समये पुत्रं सा सरितां वरा ।
जगाम पुत्रमादाय तमृषिं प्रति च प्रभो ॥ ११ ॥
राजन् ! कुछ समयमें नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने एक पुत्रको जन्म दिया । तब सरस्वती उस पुत्रको लेकर दधीचिके पास गई ॥ ११ ॥

ऋषिसंसदि तं दृष्ट्वा सा नदी मुनिसत्तमम् ।
ततः प्रोवाच राजेन्द्र ददती पुत्रमस्य तम् ।
ब्रह्मर्षे तव पुत्रोऽयं त्वद्भक्त्या धारितो मया ॥ १२ ॥
राजेन्द्र ! और ऋषियोंके बीचमें बैठे हुए ऋषिश्रेष्ठ दधीचिको देखकर उनका पुत्र उनको समर्पण करती हुई सरस्वती नदी बोली, हे ब्रह्मर्षे ! यह आपका पुत्र है । इसे आपके प्रति भक्ति होनेसे मैंने गर्भमें धारण किया था ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा तेऽप्सरसं रेतो यत्स्कन्नं प्रागलम्बुसाम् ।
तत्कुक्षिणा वै ब्रह्मर्षे त्वद्भक्त्या धृतवत्यहम् ॥ १३ ॥
ब्रह्मर्षे ! पहले जिस समय अलम्बुसा नामक अप्सराको देखकर तुम्हारा वीर्य गिरा था, तब उसे आपपर मेरी भक्ति होनेसे मैंने उस वीर्यको धारण कर लिया था ॥ १३ ॥

न विनाशमिदं गच्छेत्त्वत्तेज इति निश्चयात् ।
प्रतिगृह्णीष्व पुत्रं स्वं मया दत्तमनिन्दितम् ॥ १४ ॥
मेरे मनमें ऐसा विचार आया था कि आपका यह तेज नष्ट न होवे । सो अब उत्तम पुत्र हुआ है । आप मेरे दिये हुए आपके इस अनिन्दनीय पुत्रको लीजिये ॥ १४ ॥

इत्युक्तः प्रतिजग्राह प्रीतिं चावाप उत्तमाम् ।
मन्त्रवच्चोपजिघ्रत्तं मूर्ध्नि प्रेम्णा द्विजोत्तमः ॥ १५ ॥
सरस्वतीके ऐसे वचन सुन दधीचि मुनिने उस पुत्रको ग्रहण किया और वे बहुत प्रसन्न हुए। फिर पुत्रको लेकर उन ब्राह्मणश्रेष्ठने उसको कण्ठसे लगाया और प्रेमसे उसका माथा सूंघा ॥ १५ ॥

परिष्वज्य चिरं कालं तदा भरतसत्तम ।
सरस्वत्यै वरं प्रादात्प्रीयमाणो महामुनिः ॥ १६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! दीर्घकालतक उसको आलिंगन देकर वे प्रसन्न हुए फिर महामुनि दधीचिने सरस्वतीको यह वरदान दिया ॥ १६ ॥

विश्वे देवाः सपितरो गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
तृप्तिं यास्यन्ति सुभगे तर्प्यमाणास्तवाम्भसा ॥ १७ ॥

हे सुभगे सरस्वती ! तुम्हारे जलमें तर्पण करनेसे विश्वेदेव, पितर, अप्सरा और गन्धर्वगण सभी तृप्त होंगे ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वा स तु तुष्टाव वचोभिर्वै महानदीम् ।
प्रीतः परमहृष्टात्मा यथावच्छृणु पार्थिव ॥ १८ ॥

हे राजन् ! ऐसा कहकर दधीचि मुनि प्रसन्न हृदय होकर महानदी सरस्वतीकी प्रेमपूर्वक उत्तम वाणीसे इस प्रकार स्तुति करने लगे । उसको तुम यथावत् सुनो ॥ १८ ॥

प्रसूतासि महाभागे सरसो ब्रह्मणः पुरा ।
जानन्ति त्वां सरिच्छ्रेष्ठे मुनयः संशितव्रताः ॥ १९ ॥

हे महाभागे ! तुम पहिले ब्रह्माके तलावसे निकली हो । हे नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती ! महाव्रतधारी मुनिलोग तुम्हें जानते हैं ॥ १९ ॥

मम प्रियकरी चापि सततं प्रियदर्शने ।
तस्मात्सारस्वतः पुत्रो महांस्ते वरवर्णिनि ॥ २० ॥

हे प्रियदर्शने ! तुमने सदा हमारा भी बहुत प्रिय काम किया है । इसलिये हे वरवर्णिनि ! तुम्हारा यह महान् पुत्र सारस्वत है ॥ २० ॥

तवैव नाम्ना प्रथितः पुत्रस्ते लोकभावनः ।
सारस्वत इति ख्यातो भविष्यति महातपाः ॥ २१ ॥

तुम्हारा यह महातपस्वी लोकपूजित महान् पुत्र तुम्हारे ही नामसे सारस्वत नामसे ऐसा विख्यात होगा ॥ २१ ॥

एष द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजर्षभान् ।
सारस्वतो महाभागे वेदानध्यापयिष्यति ॥ २२ ॥

महाभागे ! ये सारस्वत बारह वर्षके अकालमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वेद पढावेंगे ॥ २२ ॥

पुण्याभ्यश्च सरिद्भ्यस्त्वं सदा पुण्यतमा शुभे ।
भविष्यसि महाभागे मत्प्रसादात्सरस्वति ॥ २३ ॥

शुभे ! महाभागे सारस्वति ! तुम हमारी कृपासे अन्य सब पवित्र नदियोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ हो जावोगी ॥ २३ ॥

एवं सा संस्तुता तेन वरं लब्ध्वा महानदी ।
पुत्रमादाय मुदिता जगाम भरतर्षभ ॥ २४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! ऋषिसे ऐसे प्रशंसित हो और वरदान पाकर महानदी सरस्वती उस पुत्रको लेकर प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चली गई ॥ २४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु विरोधे देवदानवैः ।
शक्रः प्रहरणान्वेषी लोकांस्त्रीन्विचचार ह ॥ २५ ॥

इसी समय देवता और दानवोंका घोर युद्ध होने लगा । तब भगवान् इन्द्र राक्षसोंको मारने योग्य शस्त्र ढूंढनेको तीनों लोकोंमें घूमने लगे ॥ २५ ॥

न चोपलेभे भगवाञ्शक्रः प्रहरणं तदा ।
यद्वै तेषां भवेद्योग्यं वधाय विबुधद्विषाम् ॥ २६ ॥

परन्तु भगवान् इन्द्रको उस समय उन देव द्वेषीयोंके वधके लिये उपयोगी हो सके ऐसा कोई हथियार नहीं मिला ॥ २६ ॥

ततोऽब्रवीत्सुराञ्शक्रो न मे शक्या महासुराः ।
ऋतेऽस्थिभिर्दधीचस्य निहन्तुं त्रिदशद्विषः ॥ २७ ॥

तब इन्द्र देवताओंसे बोले कि, दधीचि मुनिकी हड्डीके विना दूसरे किसी अस्त्रसे हम देवद्रोही महान् दानवोंको नहीं मार सकते ॥ २७ ॥

तस्माद्गत्वा ऋषिश्रेष्ठो याच्यतां सुरसत्तमाः ।
दधीचास्थीनि देहीति तैर्वधिष्यामहे रिपून् ॥ २८ ॥

इसलिये सुरश्रेष्ठगण ! तुम ऋषिश्रेष्ठ दधीचिके पास जाकर उनकी हड्डियां वे हमें दे दें ऐसी मांग करो । हम उन्हींसे हमारे शत्रुका नाश करेंगे ॥ २८ ॥

स देवैर्याचितोऽस्थीनि यत्नादृषिवरस्तदा ।
प्राणत्यागं कुरुष्वेति चकारैवाविचारयन् ।
स लोकानक्षयान्प्राप्तो देवप्रियकरस्तदा ॥ २९ ॥

देवताओंसे प्रयत्नपूर्वक अस्थियोंकी मांग किये जानेपर मुनिश्रेष्ठ दधीचिने विना विचार किये अपने प्राणोंको छोड दिये और देवताओंका कल्याण करनेके लिये वे अक्षय लोकको चले गये ॥ २९ ॥

तस्यास्थिभिरथो शक्रः संप्रहृष्टमनास्तदा ।
कारयामास दिव्यानि नानाप्रहरणान्युत ।
वज्राणि चक्राणि गदा गुरुदण्डांश्च पुष्कलान् ॥ ३० ॥

तब इन्द्रने प्रसन्नचित्त होकर दधीचिकी हड्डियोंसे अनेक वज्र, चक्र, गदा और भारी भारी दण्ड आदि दिव्य आयुध बनाये ॥ ३० ॥

स हि तीव्रेण तपसा संभृतः परमर्षिणा ।
प्रजापतिसुतेनाथ भृगुणा लोकभावनः ॥ ३१ ॥

प्रजापति पुत्र महाऋषि भृगुने बहुत तपस्या कर लोकभावनसे भरे हुए ॥ ३१ ॥

अतिकायः स तेजस्वी लोकसारविनिर्मितः ।
जज्ञे शैलगुरुः प्रांशुर्महिम्ना प्रथितः प्रभुः ।
नित्यमुद्विजते चास्य तेजसा पाकशासनः ॥ ३२ ॥

विशालकाय, महातेजस्वी दधीचिको लोकका सार लेकर बनाया था। ये पर्वतके समान भारी और ऊंचे थे, वे प्रभु अपनी महानतासे विख्यात थे । पाकशासन इन्द्र सदा उनके तेजसे डरते थे ॥ ३२ ॥

तेन वज्रेण भगवान्मन्त्रयुक्तेन भारत ।
भृशं क्रोधविसृष्टेन ब्रह्मतेजोभवेन च ।
दैत्यदानववीराणां जघान नवतीर्नव ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! भगवान् इन्द्रने उस ही ब्राह्मणके तेजसे उत्पन्न हुए वज्रको अत्यन्त क्रोध और मन्त्रसे छोडकर आठ सौ दस दैत्य–दानव वीरोंको मारा ॥ ३३ ॥

अथ काले व्यतिक्रान्ते महत्यतिभयंकरे ।
अनावृष्टिरनुप्राप्ता राजन्द्वादशवार्षिकी ॥ ३४ ॥

राजन् ! जब वह अत्यंत भयानक काल बीत गया तब बारह वर्षका घोर अकाल पडा ॥३४॥

तस्यां द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां महर्षयः ।
वृत्त्यर्थं प्राद्रवन्राजन्क्षुधार्ताः सर्वतोदिशम् ॥ ३५ ॥

हे महाराज ! उस बारह वर्षोंके अकालमें सब बडे बडे ऋषि भूखसे व्याकुल होकर जीविकाके लिये सब दिशाओंमें इधर उधर दौडने लगे ॥ ३५ ॥

दिग्भ्यस्तान्प्रद्रुतान्दृष्ट्वा मुनिः सारस्वतस्तदा ।
गमनाय मतिं चक्रे तं प्रोवाच सरस्वती ॥ ३६ ॥

सब दिशाओंमें इधर उधर भागते जाते देख, सारस्वत मुनिने भी दूसरी जगह जानेकी इच्छा की, तब उनसे सरस्वती बोली ॥ ३६ ॥

न गन्तव्यमितः पुत्र तवाहारमहं सदा ।
दास्यामि मत्स्यप्रवरानुष्यतामिह भारत ॥ ३७ ॥

हे पुत्र ! तुम यहांसे कहीं मत जाओ, हम तुम्हें सदा खानेके लिये प्रतिदिन अच्छी मछली देंगी, अतः तुम उन्हें ही खाओ और यहीं रहो ॥ ३७ ॥

इत्युक्तस्तर्पयामास स पितॄन्देवतास्तथा ।
आहारमकरोन्नित्यं प्राणान्वेदांश्च धारयन् ॥ ३८ ॥

सरस्वतीके ऐसे वचन सुन सारस्वत मुनिने वहीं रहकर देवता और पितरोंका तर्पण किया और प्रतिदिन भोजन करके, अपने प्राणोंकी रक्षा और वेद पढने लगे ॥ ३८ ॥

अथ तस्यामतीतायामनावृष्ट्यां महर्षयः ।
अन्योन्यं परिपप्रच्छुः पुनः स्वाध्यायकारणात् ॥ ३९ ॥

जब वह घोर बारह वर्षोंकी अनावृष्टि बीत गयी तब महर्षि फिर अध्ययनके लिये एक दूसरेसे पूछने लगे ॥ ३९ ॥

तेषां क्षुधापरीतानां नष्टा वेदा विधावताम् ।
सर्वेषामेव राजेन्द्र न कश्चित्प्रतिभानवान् ॥ ४० ॥

राजेन्द्र ! भूखसे व्याकुल होकर इधर उधर भागते सब मुनियोंके वेद भूल गये थे। कोई भी प्रतिभाशाली नहीं था कि जो वेदोंको नहीं भूला ॥ ४० ॥

अथ कश्चिदृषिस्तेषां सारस्वतमुपेयिवान् ।
कुर्वाणं संशितात्मानं स्वाध्यायमृषिसत्तमम् ॥ ४१ ॥

अनन्तर उनमेंसे कुछ ऋषि विशुद्धात्मा ऋषिश्रेष्ठ सारस्वतके पास स्वाध्यायके लिये आये ॥४१॥

स गत्वाचष्ट तेभ्यश्च सारस्वतमतिप्रभम् ।
स्वाध्यायममरप्रख्यं कुर्वाणं विजने जने ॥ ४२ ॥

तब एक मुनिने निर्जन वनमें बैठे वेदपाठी महामुनि सारस्वतको देवताओंके समान कान्तिमान् देखा, तब उसने जाकर सब मुनियोंसे कह दिया ॥ ४२ ॥

ततः सर्वे समाजग्मुस्तत्र राजन्महर्षयः ।
सारस्वतं मुनिश्रेष्ठमिदमूचुः समागताः ॥ ४३ ॥

राजन् ! तब वे सब महर्षि मुनिश्रेष्ठ सारस्वतके पास आये और आकर इस प्रकार बोले ॥४३॥

अस्मानध्यापयस्वेति तानुवाच ततो मुनिः ।
शिष्यत्वमुपगच्छध्वं विधिवद्वो ममेत्युत ॥ ४४ ॥

आप हम लोगोंको वेद पढाइये उनके वचन सुन सारस्वत बोले, तुम सब विधिपूर्वक हमारे शिष्य बन जाओ ॥ ४४ ॥

*

ततोऽब्रवीदृषिगणो बालस्त्वमसि पुत्रक ।
स तानाह न मे धर्मो नश्येदिति पुनर्मुनीन् ॥ ४५ ॥

उनके वचन सुन वहां मुनि बोले, हे पुत्र ! तुम अभी बालक हो, हमें शिष्य कैसे करोगे ? तब फिर सारस्वत मुनि उन ऋपियोंको बोले, हमारा धर्म नष्ट नहीं होना चाहिये ॥ ४५ ॥

यो ह्यधर्मेण विब्रूयाद्‍गृह्णीयाद्वाप्यधर्मतः ।
म्रियतां तावुभौ क्षिप्रं स्यातां वा वैरिणावुभौ ॥ ४६ ॥

जो अधर्मसे वेदोंका प्रवचन करता है और जो अधर्मसे उन वेदमंत्रोंको ग्रहण करता है, उन दोनोंका शीघ्र ही नाश हो जाता है, अथवा दोनों एक दूसरेके शत्रु हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ ४७ ॥

प्राचीन मुनि अधिक अवस्था, बूढे, बाल, धन और बान्धवोंकी सहायतासे तप नहीं करते थे, अर्थात् ब्राह्मणोंमें अधिक अवस्था बूढे, बाल, धन और बन्धुओंसे कोई बडा नहीं कहाता, ऋपियोंने हम लोगोंके लिये यही धर्म कहा है कि हम लोगोंमेंसे जो वेदोंका प्रवचन कर सके, वही बडा कहाता है ॥ ४७ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मुनयस्ते विधानतः ।
तस्माद्वेदाननुप्राप्य पुनर्धर्मं प्रचक्रिरे ॥ ४८ ॥

सारस्वत मुनिके ऐसे वचन सुन वे मुनि विधिपूर्वक उनके शिष्य हो गये और उनसे वेद पढकर धर्मका अनुष्ठान करने लगे ॥ ४८ ॥

षष्टिर्मुनिसहस्राणि शिष्यत्वं प्रतिपेदिरे ।
सारस्वतस्य विप्रर्षेर्वेदस्वाध्यायकारणात् ॥ ४९ ॥

साठ सहस्र मुनियोंने वेदोंका अध्ययन करनेके लिये ब्रह्मर्षि सारस्वतका शिष्यत्व ग्रहण किया था ॥ ४९ ॥

मुष्टिं मुष्टिं ततः सर्वे दर्भाणां तेऽभ्युपाहरन् ।
तस्यासनार्थं विप्रर्षेर्बालस्यापि वशे स्थिताः ॥ ५० ॥

साठ सहस्र ऋपि सारस्वतके आसनके लिये एक एक मुट्ठी कुश लाते थे और उस बालक ऋपिके आज्ञाके वशमें रहते थे ॥ ५० ॥

तत्रापि दत्त्वा वसु रौहिणेयो महाबलः केशवपूर्वजोऽथ ।
जगाम तीर्थं मुदितः क्रमेण ख्यातं महद्‍वृद्धकन्या स्म यत्र ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥ २६८५ ॥

महाबलवान् कृष्णके बडे भाई रोहिणीपुत्र बलदेवने वहां भी स्नान करके, बहुत दान किया और प्रसन्न होकर क्रमशः सब तीर्थोंको जाकर, फिर वहांसे वृद्ध कन्या नामक तीर्थको चले गये ॥ ५१ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें पचासवां अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥ २६८५ ॥

: ५१ :

जनमेजय उवाच

कथं कुमारी भगवंस्तपोयुक्ता ह्यभूत्पुरा ।
किमर्थं च तपस्तेपे को वास्या नियमोऽभवत् ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे भगवन् ! पहले उस स्थानमें रहकर वह कन्या कैसे तपमें संलग्न हुई ? उसने किस लिये और कौन कौन नियमोंसे तप किया था ? ॥ १ ॥

सुदुष्करमिदं ब्रह्मंस्त्वत्तः श्रुतमनुत्तमम् ।
आख्याहि तत्त्वमखिलं यथा तपसि सा स्थिता ॥ २ ॥

ब्रह्मन् ! हमने ये उत्तम और अत्यंत दुष्कर तपकी सविस्तर कथा आपसे सुनी थी, अब आप हमसे यथार्थ वर्णन कीजिये । वह कन्या तपमें क्यों प्रवृत्त हुई ? ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

ऋषिरासीन्महावीर्यः कुणिगार्ग्यो महायशाः ।
स तप्त्वा विपुलं राजंस्तपो वै तपतां वरः ।
मनसीं स सुतां सुभ्रूं समुत्पादितवान्विभुः ॥ ३ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् ! पहिले समयमें एक महातपस्वी महायशस्वी और महावीर्यवान् कुणिर्गर्ग नामक मुनि हुए थे, तप करनेवालोंमें श्रेष्ठ उन्होंने घोर तप करके अपने मनसे सुंदर कन्या उत्पन्न की ॥ ३ ॥

तां च दृष्ट्वा भृशं प्रीतः कुणिगार्ग्यो महायशाः ।
जगाम त्रिदिवं राजन्संत्यज्येह कलेवरम् ॥ ४ ॥

राजन् ! उसको देखकर महायशस्वी मुनि कुणिर्गर्ग बहुत प्रसन्न हुए और अपना यह शरीर छोडकर स्वर्गको चले गये ॥ ४ ॥

सुभ्रूः सा ह्यथ कल्याणी पुण्डरीकनिभेक्षणा ।
महता तपसोग्रेण कृत्वाश्रममनिन्दिता ॥ ५ ॥

कल्याणी कमल नयनी साध्वी सुंदर कन्या आश्रम बनाकर कठोर तप करने लगी ॥ ५ ॥

उपवासैः पूजयन्ती पितृन्देवांश्च सा पुरा ।
तस्यास्तु तपसोग्रेण महान्कालोऽत्यगान्नृप ॥ ६ ॥

पहलेके समयमें वह उपवास और नियमका पालन करके देवता और पितरोंकी पूजा करने लगी । राजन् ! अनन्तर घोर तप करते हुए उस कन्याने बहुत समय विता दिया ॥ ६ ॥

सा पित्रा दीयमानापि भर्त्रे नैच्छदनिन्दिता ।
आत्मनः सदृशं सा तु भर्तारं नान्वपश्यत ॥ ७ ॥

यद्यपि उसके पिताने अपने जीवनमें उसका विवाह करना चाहा, परन्तु उसने अपने योग्य पति न पानेके कारण विवाहकी इच्छा नहीं की ॥ ७ ॥

ततः सा तपसोग्रेण पीडयित्वात्मनस्तनुम् ।
पितृदेवार्चनरता बभूव विजने वने ॥ ८ ॥
और वह घोर तप करके अपने शरीरको क्लेश देकर निर्जन वनमें देवता और पितरोंके पूजनमें मग्न हो गई ॥ ८ ॥

सात्मानं मन्यमानापि कृतकृत्यं श्रमान्विता ।
वार्द्धकेन च राजेन्द्र तपसा चैव कर्शिता ॥ ९ ॥
हे राजन्! बहुत श्रमसे थक जानेपर भी वह स्वयंको कृतार्थ मानती थी। कुछ दिन तप करते करते वह कन्या बूढी हो गई और तपके कारण भी वह दुर्बल हो गयी ॥ ९ ॥

सा नाशकद्यदा गन्तुं पदात्पदमपि स्वयम् ।
चकार गमने बुद्धिं परलोकाय वै तदा ॥ १० ॥
जब वह एक चरण भी चलनेमें समर्थ न रही, तब उसने परलोकमें जानेकी इच्छा की ॥१०॥

मोक्तुकामां तु तां दृष्ट्वा शरीरं नारदोऽब्रवीत् ।
असंस्कृतायाः कन्यायाः कुतो लोकास्तवानघे ॥ ११ ॥
उसकी शरीर छोडनेकी इच्छा देख नारद मुनि बोले, हे अनघे! तुम्हारा विवाह संस्कार नहीं हुआ है, और तुम कन्या हो। फिर तुम्हें पुण्यलोक कैसे मिल सकेगा? ॥ ११ ॥

एवं हि श्रुतमस्माभिर्देवलोके महाव्रते ।
तपः परमकं प्राप्तं न तु लोकास्त्वया जिताः ॥ १२ ॥
हे महाव्रते! हमने देवलोकमें तुम्हारे संबंधमें ऐसा सुना है। यद्यपि तुमने बहुत तपस्या की है, परन्तु पुण्यलोकमें जाने योग्य अधिकार प्राप्त नहीं किया है ॥ १२ ॥

तन्नारदवचः श्रुत्वा साब्रवीदृषिसंसदि ।
तपसोऽर्धं प्रयच्छामि पाणिग्राहस्य सत्तमाः ॥ १३ ॥
नारदके वचन सुन ऋषियोंकी सभामें जाकर वह कन्या बोली– हे मान्यवर! जो मुझसे व्याह करेगा, उसको मैं अपना आधा तप दे दूंगी ॥ १३ ॥

इत्युक्ते चास्या जग्राह पाणिं गालवसंभवः ।
ऋषिः प्राक्शृङ्गवान्नाम समयं चेदमब्रवीत् ॥ १४ ॥
कन्याके वचन सुन गालवके पुत्र शृङ्गवान् मुनिने उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा की और उसके सामने शर्त रक्खी। उन्होंने कहा– ॥ १४ ॥

समयेन तवाद्याहं पाणिं स्प्रक्ष्यामि शोभने ।
यद्येकरात्रं वस्तव्यं त्वया सह मयेति ह ॥ १५ ॥
हे सुन्दरी! हम तुमसे विवाह करते हैं, और एक नियम कर लेते हैं कि विवाहके बाद एक ही रात्रि तुम्हें हमारे सङ्ग रहना होगा ॥ १५ ॥

तथेति सा प्रतिश्रुत्य तस्मै पाणिं ददौ तदा ।
चक्रे च पाणिग्रहणं तस्योद्वाहं च गालविः ॥ १६ ॥

तब 'अच्छा' ऐसा कहकर उस कन्याने मुनिके हाथमें अपना हाथ दे दिया। फिर गावल-पुत्रने उसका पाणिग्रहण और विवाहसंस्कार किया ॥ १६ ॥

सा रात्रावभवद्राजंस्तरुणी देववर्णिनी ।
दिव्याभरणवस्त्रा च दिव्यस्रगनुलेपना ॥ १७ ॥

राजन्! उस रात्रिको वह बडी सुन्दरी युवती हो गई, दिव्य वस्त्र भूषणोंसे विभूषित और दिव्य गन्ध धारण करके अपने पतिके पास गई ॥ १७ ॥

तां दृष्ट्वा गालविः प्रीतो दीपयन्तीमिवात्मना ।
उवास च क्षपामेकां प्रभाते साब्रवीच्च तम् ॥ १८ ॥

उसको अपनी कान्तिसे घरमें चान्दना करते हुये देख, गालवकुमार शृङ्गवान् बडे प्रसन्न हुये और रातभर उसके सङ्ग रहे। प्रातःकाल होते ही वह अपने पतिसे बोली ॥ १८ ॥

यस्त्वया समयो विप्र कृतो मे तपतां वर ।
तेनोषितास्मि भद्रं ते स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥ १९ ॥

हे तपस्वी ऋषियोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण! आपने जो शर्त की थी, उसके अनुसार मैं आपके साथ रह चुकी हूं, आपकी शर्त पूरी हुई है, तुम्हारा मंगल हो, कल्याण हो, अब मैं जाती हूं ॥१९॥

सानुज्ञाताब्रवीद्भूयो योऽस्मिंस्तीर्थे समाहितः ।
वत्स्यते रजनीमेकां तर्पयित्वा दिवौकसः ॥ २० ॥

हे राजन्! ऐसा कहकर वह वहांसे चली गई और चलती चलती फिर कहने लगी, जो मनुष्य अपनेको एकाग्रचित्त करके इस तीर्थमें स्नान और देवताओंका तर्पण करके एक रात्रि रहेगा ॥२०॥

चत्वारिंशतमष्टौ च द्वे चाष्टौ सम्यगाचरेत् ।
यो ब्रह्मचर्यं वर्षाणि फलं तस्य लभेत सः ।
एवमुक्त्वा ततः साध्वी देहं त्यक्त्वा दिवं गता ॥ २१ ॥

उसे अठावन वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करनेका फल मिलेगा, ऐसा कहकर वह साध्वी पतिव्रता शरीरका त्याग करके स्वर्गको चली गई ॥ २१ ॥

ऋषिरप्यभवद्दीनस्तस्या रूपं विचिन्तयन् ।
समयेन तपोऽर्धं च कृच्छ्रात्प्रतिगृहीतवान् ॥ २२ ॥

शृङ्गवान् ऋषि भी उसके दिव्य रूपका विचार करते हुए व्याकुल हो गये और उन्होंने प्रतिज्ञाके अनुसार उसका आधा तप बहुत दुःखसे ग्रहण किया ॥ २२ ॥

साधयित्वा तदात्मानं तस्याः स गतिमन्वयात् ।
दुःखितो भरतश्रेष्ठ तस्या रूपबलात्कृतः ।
एतत्ते वृद्धकन्याया व्याख्यातं चरितं महत्　　॥ २३ ॥

फिर तप करके अपना शरीर छोडके, उसीके रास्तेपर चले गये, भरतश्रेष्ठ! जीवनभर उसके रूपपर आकृष्ट होकर दुःख भोगते रहे । यह हमने तुमसे वृद्ध कन्याके महान् चरित्रका वर्णन किया है ॥ २३ ॥

तत्रस्थश्चापि शुश्राव हतं शल्यं हलायुधः ।
तत्रापि दत्त्वा दानानि द्विजातिभ्यः परंतप ।
शुशोच शल्यं संग्रामे निहतं पांडवैस्तदा　　॥ २४ ॥

वहां भी शत्रुतापन बलरामने ब्राह्मणोंको अनेक दान किये, वहीं हलधारी बलरामने युद्धमें पाण्डवोंसे महावीर शल्यके मारे जानेका समाचार सुना और शोक किया ॥ २४ ॥

समन्तपञ्चकद्वारात्ततो निष्क्रम्य माधवः ।
पप्रच्छर्षिगणान्रामः कुरुक्षेत्रस्य यत्फलम्　　॥ २५ ॥

तब यहांसे चलकर समन्तपञ्चक द्वारसे निकलकर मधुवंशी बलराम ऋषियोंसे कुरुक्षेत्रके सेवनका फल पूंछने लगे ॥ २५ ॥

ते पृष्टा यदुसिंहेन कुरुक्षेत्रफलं विभो ।
समाचख्युर्महात्मानस्तस्मै सर्वं यथातथम्　　॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ २७११ ॥

यदुकुलसिंह शत्रुनाशन बलरामका कुरुक्षेत्रके फलके विषयमें प्रश्न सुन, महात्मा मुनि लोग कुरुक्षेत्रका यथार्थ फल कहने लगे ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें एकावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ २७११ ॥

: ५२ :

ऋषय ऊचुः

प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते सनातना राम समन्तपंचकम् ।
समीजिरे यत्र पुरा दिवौकसो वरेण सत्रेण महावरप्रदाः　　॥ १ ॥

ऋषि बोले– हे राम! यह सनातन समन्तपञ्चक तीर्थ प्रजापति ब्रह्माकी उत्तरवेदी कहा जाता है, यहीं पहले उत्तम वर देनेवाले देवताओंने बहुत बडा यज्ञ किया था ॥ १ ॥

पुरा च राजर्षिवरेण धीमता बहूनि वर्षाण्यमितेन तेजसा ।
प्रकृष्टमेतत्कुरुणा महात्मना ततः कुरुक्षेत्रमितीह पप्रथे　　॥ २ ॥

पहिले समयमें महातेजस्वी राजर्षि श्रेष्ठ बुद्धिमान् महात्मा कुरुने अनेक वर्षोंतक इसमें निवास किया था और इस पृथ्वीको जोता था, इसलिये जगत्में इसका नाम कुरुक्षेत्र हुआ ॥ २ ॥

राम उवाच

किमर्थं कुरुणा कृष्टं क्षेत्रमेतन्महात्मना ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथ्यमानं तपोधनाः ॥ ३ ॥

बलराम बोले– हे तपोधनो ! महात्मा कुरुने इस क्षेत्रको क्यों जोता था ? यह कथा हम आप लोगोंसे सुनना चाहते हैं ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः

पुरा किल कुरुं राम कर्षन्तं सततोत्थितम् ।
अभ्येत्य शक्रस्त्रिदिवात्पर्यपृच्छत कारणम् ॥ ४ ॥

ऋषि बोले– हे राम ! पहिले समयमें सततोद्योगी कुरुको प्रतिदिन यह पृथ्वी जोतते देख, इन्द्र स्वर्गसे आये और इसका कारण पूंछने लगे ॥ ४ ॥

किमिदं वर्तते राजन्प्रयत्नेन परेण च ।
राजर्षे किमभिप्रेतं येनेयं कृष्यते क्षितिः ॥ ५ ॥

हे राजन् राजर्षे ! यह महान् प्रयत्न किस लिये हो रहा है ? आप प्रतिदिन अत्यन्त यत्न करके इस पृथ्वीको क्यों जोतते हैं ? आप क्या चाहते हैं ? ॥ ५ ॥

कुरुरुवाच

इह ये पुरुषाः क्षेत्रे मरिष्यन्ति शतक्रतो ।
ते गमिष्यन्ति सुकृताँल्लोकान्पापविवर्जितान् ॥ ६ ॥

कुरु बोले– हे इन्द्र ! जो मनुष्य यहां मरेंगे, वे पुण्यात्माके पापरहित स्वर्गको जायेंगे ॥ ६॥

अवहस्य ततः शक्रो जगाम त्रिदिवं प्रभुः ।
राजर्षिरप्यनिर्विण्णः कर्षत्येव वसुंधराम् ॥ ७ ॥

इन्द्र उनके वचन सुन बहुत उपहासयुक्त हंसे और स्वर्गको चले गये । राजर्षि कुरु भी उदासीन न होकर उसी प्रकार पृथ्वी जोतते रहे ॥ ७ ॥

आगम्यागम्य चैवैनं भूयो भूयोऽपहस्य च ।
शतक्रतुरनिर्विण्णं पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह । ॥ ८ ॥

इस प्रकार अनेक बार शतक्रतु इन्द्र अविरत कार्य करनेवाले कुरुके पास आये और उनसे पूछकर हंसी उडाकर स्वर्गको चले गये ॥ ८ ॥

यदा तु तपसोग्रेण चकर्ष वसुधां नृपः ।
ततः शक्रोऽब्रवीद्देवान्राजर्षेर्यच्चिकीर्षितम् ॥ ९ ॥

जब इसी प्रकार तप करते करते पृथ्वीको जोतते ही कुरुको बहुत दिन हो गये, तब इन्द्रने देवताओंको बुलाकर राजर्षि कुरुकी यह इच्छा कह सुनाई ॥ ९ ॥

तच्छ्रुत्वा चाब्रुवन्देवाः सहस्राक्षमिदं वचः ।
वरेण च्छन्द्यतां शक्र राजर्षिर्यदि शक्यते ॥ १० ॥

यह वचन सुन सहस्राक्ष इन्द्रसे देवताओंने कहा— शक्र ! यदि शक्य हो तो राजर्षि कुरुको वरदान दीजिये और अपने अनुकूल कीजिये ॥ १० ॥

यदि ह्यत्र प्रमीता वै स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः ।
अस्माननिष्ट्वा क्रतुभिर्भागो नो न भविष्यति ॥ ११ ॥

परन्तु कठिनता यही है कि यदि कुरुक्षेत्रमें मरे सब मनुष्य यज्ञोंसे हमारा पूजन किये विना स्वर्गको चले जायेंगे, तो हमें यज्ञमें भाग नहीं मिलेगा ॥ ११ ॥

आगम्य च ततः शक्रस्तदा राजर्षिमब्रवीत् ।
अलं खेदेन भवतः क्रियतां वचनं मम ॥ १२ ॥

देवताओंके वचन सुन इन्द्र राजर्षि कुरुके पास आकर बोले, आप वृथा परिश्रम कर रहे हैं। हमारे वचन सुनिये ॥ १२ ॥

मानवा ये निराहारा देहं त्यक्ष्यन्त्यतन्द्रिताः ।
युधि वा निहताः सम्यगपि तिर्यग्गता नृप ॥ १३ ॥

जो पशु, पक्षी और मनुष्य इस स्थानमें भोजन छोडकर और सावधान होकर मरेंगे, अथवा युद्धमें मारे जायेंगे ॥ १३ ॥

ते स्वर्गभाजो राजेन्द्र भवन्त्विति महामते ।
तथास्त्विति ततो राजा कुरुः शक्रमुवाच ह ॥ १४ ॥

हे राजेन्द्र ! महामते ! वे स्वर्गके निवासी होंगे । इन्द्रके वचन सुन राजा कुरुने इन्द्रसे कहा बहुत अच्छा ॥ १४ ॥

ततस्तमभ्यनुज्ञाप्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
जगाम त्रिदिवं भूयः क्षिप्रं बलनिषूदनः ॥ १५ ॥

फिर कुरुकी आज्ञा लेकर बलसूदन इन्द्र प्रसन्न होकर शीघ्र ही स्वर्गको चले गये ॥ १५ ॥

एवमेतद्यदुश्रेष्ठ कृष्टं राजर्षिणा पुरा ।
शक्रेण चाप्यनुज्ञातं पुण्यं प्राणान्विमुञ्चताम् ॥ १६ ॥

हे यदुकुलश्रेष्ठ ! इस प्रकार पहिले समयमें राजर्षि कुरुने इस क्षेत्रको जोता था और इन्द्रने इस प्रकार देहत्याग करनेवालोंको वरदान दिया था ॥ १६ ॥

अपि चात्र स्वयं शक्रो जगौ गाथां सुराधिपः ।
कुरुक्षेत्रे निबद्धां वै तां शृणुष्व हलायुध ॥ १७ ॥

हे हलायुध ! स्वयं देवराज इन्द्रने इस कुरुक्षेत्र तीर्थके विषयमें यहां जो कुछ कहा है, उसे आप सुनो ॥ १७ ॥

पांसवोऽपि कुरुक्षेत्राद्वायुना समुदीरिताः ।
अपि दुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमां गतिम् ॥ १८ ॥

कुरुक्षेत्रकी धूलियां वायुसे उडकर जिस मनुष्यके ऊपर गिर जाती हैं, वह महापापी हो तो भी उसे परमगतिको प्राप्त कराती हैं ॥ १८ ॥

सुरर्षभा ब्राह्मणसत्तमाश्च तथा नृगाद्या नरदेवमुख्याः ।
इष्ट्वा महार्हैः क्रतुभिर्नृसिंह संन्यस्य देहान्सुगतिं प्रपन्नाः ॥ १९ ॥

हे पुरुषसिंह ! इस स्थानमें महान् यज्ञका अनुष्ठान करनेसे अनेक देवता, ब्राह्मणश्रेष्ठ और नृग आदि मुख्य मुख्य राजा शरीर छोडकर स्वर्गको चले गये हैं ॥ १९ ॥

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं रामह्रदानां च मचक्रुकस्य ।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते ॥ २० ॥

तरन्तुक, अरन्तुक, रामहूद और मचक्रुक इन तीर्थके बीचकी भूमिका नाम कुरुक्षेत्र, समन्तपञ्चक और ब्रह्माकी उत्तर वेदी है ॥ २० ॥

शिवं महत्पुण्यमिदं दिवौकसां सुसंमतं स्वर्गगुणैः समन्वितम् ।
अतश्च सर्वेऽपि वसुंधराधिपा हता गमिष्यन्ति महात्मनां गतिम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ॥ २७३२ ॥

यह स्वर्ग गुणोंसे भरा देवताओंसे सेवित और कल्याणदायक महान् पुण्यदायक तीर्थ है, इसलिये यहां रणभूमिमें मारे गये पृथ्वीके राजा सब महात्माओंकी परम गतिको जाते हैं ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें बावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥ २७३२ ॥

: ५३ :

वैशंपायन उवाच

कुरुक्षेत्रं ततो दृष्ट्वा दत्त्वा दायांश्च सात्वतः ।
आश्रमं सुमहद्दिव्यमगमज्जनमेजय ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजा जनमेजय ! कुरुक्षेत्रका दर्शन कर वहां सात्वतवंशी बलरामने बहुत दान दिये और वहांसे एक महान् और दिव्य आश्रमको गये ॥ १ ॥

मधूकाम्रवनोपेतं प्लक्षन्यग्रोधसंकुलम् ।
चिरिबिल्वयुतं पुण्यं पनसार्जुनसंकुलम् ॥ २ ॥

वह आश्रम महुआ और आमके वनसे युक्त था । पाकर, वडगद, करञ्जवा, कटहल और इन्द्रजवके वृक्षोंसे पूरित वह पवित्र आश्रम था ॥ २ ॥

×

तं दृष्ट्वा यादवश्रेष्ठः प्रवरं पुण्यलक्षणम् ।
पप्रच्छ तानृषीन्सर्वान्कस्याश्रमवरस्त्वयम् ॥ ३ ॥

वहां जाकर उस पुण्यप्रद लक्षणोंसे युक्त श्रेष्ठ आश्रमका दर्शन करके, यादवश्रेष्ठने उन सब मुनियोंसे पूंछा कि यह पवित्र उत्तम लक्षणोंसे भरा श्रेष्ठ आश्रम किसका है ? ॥ ३ ॥

ते तु सर्वे महात्मानमूचू राजन्हलायुधम् ।
शृणु विस्तरतो राम यस्यायं पूर्वमाश्रमः ॥ ४ ॥

राजन् ! तब वे सब ऋषि महात्मा हलधरसे बोले– हे राम ! पहले यह जिसका आश्रम था, उसकी कथा विस्तारसे सुनो ॥ ४ ॥

अत्र विष्णुः पुरा देवस्तप्तवांस्तप उत्तमम् ।
अत्रास्य विधिवद्यज्ञाः सर्वे वृत्ताः सनातनाः ॥ ५ ॥

यहांपर पहिले देवश्रेष्ठ विष्णुने घोर तप किया था, यहीं उन्होंने अनेक सनातन यज्ञ विधिपूर्वक समाप्त किये थे ॥ ५ ॥

अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा कौमारब्रह्मचारिणी ।
योगयुक्ता दिवं याता तपःसिद्धा तपस्विनी ॥ ६ ॥

यहींसे बाल ब्रह्मचारिणी सिद्ध ब्राह्मणी तपस्विनी योग और तप करके, सिद्ध होकर स्वर्गको गई थी ॥ ६ ॥

बभूव श्रीमती राजञ्शाण्डिल्यस्य महात्मनः ।
सुता धृतव्रता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी ॥ ७ ॥

हे राजन् ! नियमपूर्वक व्रतधारी और ब्रह्मचारिणी वह साध्वी महात्मा शाण्डिल्य मुनिकी पुत्री थी ॥ ७ ॥

सा तु प्राप्य परं योगं गता स्वर्गमनुत्तमम् ।
भुक्त्वाश्रमेऽश्वमेधस्य फलं फलवतां शुभा
गता स्वर्गं महाभागा पूजिता नियतात्मभिः ॥ ८ ॥

ब्रह्मचारिणीने ऐसा वह तो परमयोग प्राप्त करके श्रेष्ठ स्वर्गको गई । आश्रममें अश्वमेधका फल भोगनेवालोंका फल भोगकर सुन्दरी भाग्यवती ऋषियोंका सत्कार पाकर स्वर्गको चली गई ॥ ८ ॥

अभिगम्याश्रमं पुण्यं दृष्ट्वा च यदुपुंगवः ।
ऋषींस्तानभिवाद्याथ पार्श्वे हिमवतोऽच्युतः ।
स्कन्धावाराणि सर्वाणि निवर्त्यारुरुहेऽचलम् ॥ ९ ॥

हे राजन् ! ऋषिवचन सुन यदुश्रेष्ठ बलदेवने आश्रमके पास जाकर उस पुण्यमय आश्रमका दर्शन किया । फिर अच्युत बलरामने हिमालयके पार्श्वभागमें उन ऋषियोंको प्रणाम करके, अपने साथका सब परिवार वापस भेजकर, वे हिमालयपर चढने लगे ॥ ९ ॥

नातिदूरं ततो गत्वा नगं तालध्वजो बली ।
पुण्यं तीर्थवरं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ॥ १० ॥

अनन्तर ताडकी ध्वजावाले बलराम थोडी दूरतक पर्वतके ऊपर चढे, वहां उस पुण्यप्रद उत्तम तीर्थको देखकर वे बहुत आश्चर्य करने लगे ॥ १० ॥

प्रभवं च सरस्वत्याः प्लक्षप्रस्रवणं बलः ।
संप्राप्तः कारपचनं तीर्थप्रवरमुत्तमम् ॥ ११ ॥

वह सरस्वतीकी उत्पत्तिका प्लक्ष प्रस्रवण नामक स्थान था । वहांसे वे कारपचन नामक उत्तम तीर्थको चले गये ॥ ११ ॥

हलायुधस्तत्र चापि दत्त्वा दानं महाबलः ।
आप्लुतः सलिले शीते तस्माच्चापि जगाम ह ।
आश्रमं परमप्रीतो मित्रस्य वरुणस्य च ॥ १२ ॥

महाबलवान् हलधरने वहांके अत्यंत शीतल जलमें स्नान करके अनेक प्रकारके दान दिये और वहांसे वे आगे अत्यंत प्रसन्न होकर मित्र और वरुणके आश्रमको चले गये ॥ १२ ॥

इंद्रोऽग्निरर्यमा चैव यत्र प्राक्प्रीतिमाप्नुवन् ।
तं देशं कारपचनाद्यमुनायां जगाम ह ॥ १३ ॥

इस ही तीर्थमें पहिले इन्द्र, अग्नि और अर्यमाने बहुत प्रसन्नता प्राप्त की थी, यह स्थान यमुनाके तटपर है । कारपचनसे वे उस तीर्थको गये ॥ १३ ॥

स्नात्वा तत्रापि धर्मात्मा परां तुष्टिमवाप्य च ।
ऋषिभिश्चैव सिद्धैश्च सहितो वै महाबलः ।
उपविष्टः कथाः शुभ्राः शुश्राव यदुपुंगवः ॥ १४ ॥

महाबलवान् धर्मात्मा बलदेवने वहां जाकर स्नान करके बडी प्रसन्नता प्राप्त की । फिर ऋषि और सिद्धोंके सहित वहां बैठकर यदुश्रेष्ठ ऋषियोंसे उत्तम उत्तम कथा सुनने लगे ॥ १४ ॥

तथा तु तिष्ठतां तेषां नारदो भगवानृषिः ।
आजगामाथ तं देशं यत्र रामो व्यवस्थितः ॥ १५ ॥

उसी समय जहां वे सब ठहरे हुए थे और जहां बलराम उपस्थित थे, देवर्षि भगवान् नारद उसी स्थानपर आ गये ॥ १५ ॥

जटामण्डलसंवीतः स्वर्णचीरी महातपाः ।
हेमदण्डधरो राजन्कमण्डलुधरस्तथा ॥ १६ ॥

राजन् ! महातपस्वी नारद जटामण्डलसे युक्त, सोनेके समान वस्त्र पहिने, सोनेका दण्डा हाथमें लिये, कमण्डलु धारण किये ॥ १६ ॥

कच्छपीं सुखशब्दां तां गृह्य वीणां मनोरमाम् ।
नृत्ये गीते च कुशलो देवब्राह्मणपूजितः ॥ १७ ॥

सुखद शब्द करनेवाली कच्छपी नामक मनोहर वीणा भी ले रक्खी थी । नृत्यमें नाचते और गानेमें निपुण, देवता और ब्राह्मणोंसे पूजित ॥ १७ ॥

प्रकर्ता कलहानां च नित्यं च कलहप्रियः ।
तं देशमगमद्यत्र श्रीमान्रामो व्यवस्थितः ॥ १८ ॥

सदा कलह करानेवाले, सदा कलहके प्रेमी भगवान् नारदऋषि जहां श्रीमान् बलराम बैठे थे, उसी स्थानपर गये ॥ १८ ॥

प्रत्युत्थाय तु ते सर्वे पूजयित्वा यतव्रतम् ।
देवर्षिं पर्यपृच्छन्त यथावृत्तं कुरून्प्रति ॥ १९ ॥

उनको देखकर वे सब खडे हो गये और महाव्रतधारी देवर्षि नारदका यथायोग्य पूजन करके, उनसे कौरवोंका समाचार पूछने लगे ॥ १९ ॥

ततोऽस्याकथयद्राजन्नारदः सर्वधर्मवित् ।
सर्वमेव यथावृत्तमतीतं कुरुसंक्षयम् ॥ २० ॥

राजन् ! अनन्तर सर्वधर्मविद् नारदने कुरुकुलका अत्यंत नाश हो गया है, यह सब वृत्त यथावत् बता दिया ॥ २० ॥

ततोऽब्रवीद्रौहिणेयो नारदं दीनया गिरा ।
किमवस्थं तु तत्क्षत्रं ये च तत्राभवन्नृपाः ॥ २१ ॥

तब रोहिणीपुत्र बलरामने नारदसे दीन वाणीसे पूछा, कुरुक्षेत्रमें जो क्षत्रिय और राजा इकट्ठे हुए थे उन सबकी क्या दशा हुई है ? ॥ २१ ॥

श्रुतमेतन्मया पूर्वं सर्वमेव तपोधन ।
विस्तरश्रवणे जातं कौतूहलमतीव मे ॥ २२ ॥

हे तपोधन ! यह सब समाचार मैंने पहले ही सुना है, तो भी विस्तारसे जाननेके लिये मेरे मनमें कुतुहल हुआ है ॥ २२ ॥

नारद उवाच

पूर्वमेव हतो भीष्मो द्रोणः सिन्धुपतिस्तथा ।
हतो वैकर्तनः कर्णः पुत्राश्चास्य महारथाः ॥ २३ ॥

नारद बोले– हे रोहिणीपुत्र ! पहले ही भीष्म मारे गये, फिर द्रोणाचार्य, सिंधुराज जयद्रथ, वैकर्तन कर्ण और उसके महारथी पुत्र भी मारे गये हैं ॥ २३ ॥

भूरिश्रवा रौहिणेय मद्रराजश्च वीर्यवान् ।
एते चान्ये च बहवस्तत्र तत्र महाबलाः ॥ २४ ॥
भूरिश्रवा और महापराक्रमी मद्रराज शल्य भी मारे गये । ये और भी अनेक महाबलवान् ॥ २४ ॥

प्रियान्प्राणान्परित्यज्य प्रियार्थं कौरवस्य वै ।
राजानो राजपुत्राश्च समरेष्वनिवर्तिनः ॥ २५ ॥
राजा और राजपुत्र अपने प्यारे प्राणोंको छोडकर स्वर्गको चले गये, उन सब युद्धसे न हटनेवाले वीरोंने कुरुराज दुर्योधनका प्रिय करनेके लिये प्राण दिये ॥ २५ ॥

अहतांस्तु महाबाहो शृणु मे तत्र माधव ।
धार्तराष्ट्रबले शेषाः कृपो भोजश्च वीर्यवान् ।
अश्वत्थामा च विक्रान्तो भग्नसैन्या दिशो गताः ॥ २६ ॥
हे महाबाहु माधव ! जो नहीं मारे गये, उनके नाम भी मुझसे सुनो । अब दुर्योधनकी सेनामें कृपाचार्य, वीर्यशाली भोजराज कृतवर्मा और पराक्रमी अश्वत्थामा ये ही तीन रहे हैं, और वे भी भागती हुई सेनाकी दिशामें गये हैं ॥ २६ ॥

दुर्योधनो हते सैन्ये प्रद्रुतेषु कृपादिषु ।
ह्रदं द्वैपायनं नाम विवेश भृशदुःखितः ॥ २७ ॥
सैन्यका विनाश होनेपर और कृपाचार्य आदि वीरोंके भागनेपर राजा दुर्योधन दुःखसे अत्यंत व्याकुल होकर द्वैपायन नामक तालावमें घुस गये ॥ २७ ॥

शयानं धार्तराष्ट्रं तु स्तम्भिते सलिले तदा ।
पाण्डवाः सह कृष्णेन वाग्भिरुग्राभिरार्दयन् ॥ २८ ॥
उस स्तम्भन किये हुए जलमें दुर्योधनको सोते सुन, श्रीकृष्णके सहित पाण्डव आये और उसे चारों ओरसे कठोर वचनरूपी कोडे मारने लगे ॥ २८ ॥

स तुद्यमानो बलवान्वाग्भी राम समन्ततः ।
उत्थितः प्राग्घ्रदाद्वीरः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ २९ ॥
बलराम ! जब सब ओरसे कठोर वाणीसे वह व्यथित होने लगे, तब बलवान् महावीर दुर्योधन भी भारी गदा लेकर तालावसे निकले ॥ २९ ॥

स चाप्युपगतो युद्धं भीमेन सह सांप्रतम् ।
भविष्यति च तत्सद्यस्तयो राम सुदारुणम् ॥ ३० ॥
और अब भीमसे घोर युद्ध करनेके लिये उनके पास जाकर पहुंचा । राम ! आज उन दोनोंमें घोर युद्ध होगा ॥ ३० ॥

यदि कौतूहलं तेऽस्ति व्रज माधव मा चिरम् ।
पश्य युद्धं महाघोरं शिष्ययोर्यदि मन्यसे ॥ ३१ ॥

माधव ! यदि अपने दोनों शिष्योंका घोर युद्ध देखनेकी आपको इच्छा हो तो शीघ्र जाइये और ठीक समझेंगे तो यह भयानक युद्ध देख लो ॥ ३१ ॥

वैशंपायन उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा तानभ्यर्च्य द्विजर्षभान् ।
सर्वान्विसर्जयामास ये तेनाभ्यागताः सह ।
गम्यतां द्वारकां चेति सोऽन्वशादनुयायिनः ॥ ३२ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– नारदके ऐसे वचन सुन बलदेवने अपने साथ आये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें विदा किया और अपने सङ्गियोंसे कहा कि तुम सब द्वारिकाको जावो ॥ ३२ ॥

सोऽवतीर्याचलश्रेष्ठात्प्लक्षप्रस्रवणाच्छुभात् ।
ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वा तीर्थफलं महत् ।
विप्राणां संनिधौ श्लोकमगायदिममच्युतः ॥ ३३ ॥

अनन्तर बार बार सरस्वतीको देखते हुए प्लक्षप्रस्रवण शुभ पर्वतशिखरसे नीचे उतरे और तीर्थ सेवनका महान् फल सुनकर प्रसन्न होकर अच्युत बलराम ब्राह्मणोंके आगे नीचे लिखे अर्थका पद्य गाने लगे ॥ ३३ ॥

सरस्वतीवाससमा कुतो रतिः सरस्वतीवाससमाः कुतो गुणाः ।
सरस्वतीं प्राप्य दिवं गता जनाः सदा स्मरिष्यन्ति नदीं सरस्वतीम् ॥३४॥

सरस्वती नदीके तटपर निवास करनेके समान सुख अन्यत्र कहां हो सकता है और सरस्वती नदीके तटपर निवास करनेके गुणोंके समान भी गुण कहां हैं ? सरस्वती नदीको प्राप्त होकर जन स्वर्गको प्राप्त होते हैं, और वे सदा सरस्वती नदीका स्मरण करते हैं ॥ ३४ ॥

सरस्वती सर्वनदीषु पुण्या सरस्वती लोकसुखावहा सदा ।
सरस्वतीं प्राप्य जनाः सुदुष्कृताः सदा न शोचन्ति परत्र चेह च ॥३५॥

सरस्वती सब नदियोंमें पुण्यकारण है, सरस्वती सब लोगोंका सुख बढानेवाली है । सरस्वती नदीको प्राप्त होकर सब लोग इह और परलोकमें कभी पापोंके लिये शोक नहीं करते हैं॥३५॥

ततो मुहुर्मुहुः प्रीत्या प्रेक्षमाणः सरस्वतीम् ।
हयैर्युक्तं रथं शुभ्रमातिष्ठत परंतपः ॥ ३६ ॥

अनन्तर यदुकुलश्रेष्ठ शत्रुतापन बलराम बारंबार प्रसन्न मनसे सरस्वती नदीकी ओर देखकर घोडोंसे जुते हुए तेजस्वी रथपर चढे ॥ ३६ ॥

स शीघ्रगामिना तेन रथेन यदुपुंगवः।
दिदृक्षुरभिसंप्राप्तः शिष्ययुद्धमुपस्थितम् ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ॥ २७६९ ॥ समाप्तं तीर्थयात्रापर्व ॥

उसी शीघ्र चलनेवाले रथसे सत्वर उपस्थित हुए दोनों शिष्योंका युद्ध देखनेके लिए यदुश्रेष्ठ बलराम उसके समीप पहुंचे ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें तिरपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ २७६९ ॥ तीर्थयात्रापर्व समाप्त हुआ ॥

: ५४ :

वैशंपायन उवाच

एवं तदभवद्युद्धं तुमुलं जनमेजय।
यत्र दुःखान्वितो राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् जनमेजय! इस प्रकार वह घोर युद्ध होना आरम्भ हुआ, तब राजा धृतराष्ट्रने दुःखमें भरकर सञ्जयसे इस संबंधमें ऐसा पूछा ॥ १ ॥

रामं संनिहितं दृष्ट्वा गदायुद्ध उपस्थिते।
मम पुत्रः कथं भीमं प्रत्ययुध्यत संजय ॥ २ ॥

हे सञ्जय! गदायुद्ध शुरू होनेपर बलरामको निकट आया देख, तब हमारे पुत्र दुर्योधनने भीमसेनके सङ्ग कैसे युद्ध किया? ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच

रामसांनिध्यमासाद्य पुत्रो दुर्योधनस्तव।
युद्धकामो महाबाहुः समहृष्यत वीर्यवान् ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज! बलदेवको अपने पास आया देख, युद्धकी इच्छा करनेवाले तुम्हारे पुत्र महाबलवान् महाबाहु दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा लाङ्गलिनं राजा प्रत्युत्थाय च भारत।
प्रीत्या परमया युक्तो युधिष्ठिरमथाब्रवीत् ॥ ४ ॥

भारत! महाराज युधिष्ठिर भी हलधारी बलरामको देखते ही प्रसन्नता सहित खडे हुये और हलधारी राम बडे प्रेमसे युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले– ॥ ४ ॥

समन्तपञ्चकं क्षिप्रमितो याम विशां पते ।
प्रथितोत्तरवेदी सा देवलोके प्रजापतेः ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीपते ! इसलिये हम सब लोग शीघ्र ही समन्तपञ्चक तीर्थमें चलें, वह देवलोकमें प्रजापतिकी उत्तरवेदी नामसे ख्यात है ॥ ५ ॥

तस्मिन्महापुण्यतमे त्रैलोक्यस्य सनातने ।
संग्रामे निधनं प्राप्य ध्रुवं स्वर्गो भविष्यति ॥ ६ ॥

त्रैलोक्यके उस अत्यंत पुण्यमय सनातन तीर्थमें जो मनुष्य युद्धमें मरेगा, वह स्वर्गको जायगा ॥ ६ ॥

तथेत्युक्त्वा महाराज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
समन्तपञ्चकं वीरः प्रायादभिमुखः प्रभुः ॥ ७ ॥

हे राजन् ! तब अच्छा ऐसा कहकर जगत्के हितेच्छु महावीर राजा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर उनके वचन सुनकर समन्तपञ्चककी ओर चले ॥ ७ ॥

ततो दुर्योधनो राजा प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
पद्भ्याममर्षाद्द्युतिमानगच्छत्पाण्डवैः सह ॥ ८ ॥

पाण्डवोंके सङ्ग ही अमर्षमें भरा हुआ तेजस्वी राजा दुर्योधन भी भारी गदा लेकर पैदल ही चला ॥ ८ ॥

तथा यान्तं गदाहस्तं वर्मणा चापि दंशितम् ।
अन्तरिक्षगता देवाः साधु साध्वित्यपूजयन्
वातिकाश्च नरा येऽत्र दृष्ट्वा ते हर्षमागताः ॥ ९ ॥

कुरुराज दुर्योधनको उनके सङ्ग कवच धारण किये और गदा हाथमें धारण किये पैरोंपैरों सावधान चलते देख, अन्तरिक्ष और वायु मण्डलमें घूमनेवाले देवता और सिद्ध साधु साधु और धन्य धन्य कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे । वातिक और मनुष्य भी उन्हे देखकर आनन्दित हुए ॥ ९ ॥

स पाण्डवैः परिवृतः कुरुराजस्तवात्मजः ।
मत्तस्येव गजेन्द्रस्य गतिमास्थाय सोऽव्रजत् ॥ १० ॥

पाण्डवोंसे घिरा हुआ तुम्हारा पुत्र कुरुराज दुर्योधन मतवाले हाथीके समान चालसे चलता था ॥ १० ॥

ततः शङ्खनिनादेन भेरीणां च महास्वनैः ।
सिंहनादैश्च शूराणां दिशः सर्वाः प्रपूरिताः ॥ ११ ॥

तब सेनामें शङ्ख और भेर आदि बाजे जोरसे बजने लगे । सब शूरवीर सिंहोंके समान गर्जने लगे । यह शब्द सब दिशाओंमें पूरित हो गया ॥ ११ ॥

प्रतीच्यभिमुखं देशं यथोद्दिष्टं सुतेन ते ।
गत्वा च तैः परिक्षिप्तं समन्तात्सर्वतोदिशम् ॥ १२ ॥

तदनन्तर उन सबसे चारों दिशाओंकी ओरसे घिरे हुए तुम्हारे पुत्रके साथ पश्चिमामुख चलकर पहले निर्देश किए हुए कुरुक्षेत्रमें आये ॥ १२ ॥

दक्षिणेन सरस्वत्याः स्वयनं तीर्थमुत्तमम् ।
तस्मिन्देशे त्वनिरिणे तत्र युद्धमरोचयन् ॥ १३ ॥

वह सद्गति देनेवाला उत्तम तीर्थ सरस्वतीके दक्षिण तटपर था। उस समयानुसार अर्थात् ऊसर रहित पृथ्वीमें युद्ध करना उन्होंने पसंद किया ॥ १३ ॥

ततो भीमो महाकोटिं गदां गृह्याथ वर्मभृत् ।
बिभ्रद्रूपं महाराज सदृशं हि गरुत्मतः ॥ १४ ॥

महाराज ! तब भीमसेन कवच पहनकर भारी नोकवाली गदा लेकर गरुडके समान शीघ्रतासे युद्धभूमिमें आये ॥ १४ ॥

अवबद्धशिरस्त्राणः संख्ये काञ्चनवर्मभृत् ।
रराज राजन्पुत्रस्ते काञ्चनः शैलराडिव ॥ १५ ॥

इधरसे तुम्हारा पुत्र दुर्योधन भी सिरपर टोप और सोनेका कवच पहनकर, सोनेके पर्वत-राज मेरुके समान अचल होकर युद्धभूमिमें विराजमान हुए ॥ १५ ॥

वर्मभ्यां संवृतौ वीरौ भीमदुर्योधनावुभौ ।
संयुगे च प्रकाशेते संरब्धाविव कुञ्जरौ ॥ १६ ॥

ये दोनों वीर पुरुषसिंह दुर्योधन और भीमसेन कवच पहनकर समरमें दो मतवाले हाथियोंके समान प्रकाशित होकर उपस्थित हुए ॥ १६ ॥

रणमण्डलमध्यस्थौ भ्रातरौ तौ नरर्षभौ ।
अशोभेतां महाराज चन्द्रसूर्याविवोदितौ ॥ १७ ॥

हे महाराज ! उस समय रणमण्डलके बीचमें खडे हुए ये दोनों नरश्रेष्ठ वीर भाई ऐसे शोभायमान थे, जैसे एक समय उदय हुए चन्द्रमा और सूर्य ॥ १७ ॥

+

तावन्योन्यं निरीक्षेतां क्रुद्धाविव महाद्विपौ ।
दहन्तौ लोचनै राजन्परस्परवधैषिणौ ॥ १८ ॥

राजन् ! क्रोधित हुए दो बडे हाथियोंके समान एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे एक दूसरेको इस प्रकार देखने लगे, मानों आंखोंसे परस्पर भस्म कर देंगे ॥ १८ ॥

संप्रहृष्टमना राजन्गदामादाय कौरवः ।
सृक्किणी संलिहन्राजन्क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् ॥ १९ ॥

राजन् ! अनन्तर क्रोधसे लाल नेत्र करके, दांत चबाकर, लंबी सांस लेते हुए कुरुवंशी राजा दुर्योधनने प्रसन्नचित्त हो हाथमें गदा उठाई ॥ १९ ॥

ततो दुर्योधनो राजा गदामादाय वीर्यवान् ।
भीमसेनमभिप्रेक्ष्य गजो गजमिवाह्वयत् ॥ २० ॥

और भीमसेनकी ओर देखकर हाथमें गदा लेकर बलवान् राजा दुर्योधनने ऐसे ललकारा जैसे एक हाथी दूसरे हाथीको ललकारता है ॥ २० ॥

अद्रिसारमयीं भीमस्तथैवादाय वीर्यवान् ।
आह्वयामास नृपतिं सिंहः सिंहं यथा वने ॥ २१ ॥

अनन्तर वीर्यवान् भीमसेनने भी पहाडके समान लोहेकी भारी गदा उठाकर, राजा दुर्योधनको इस प्रकार पुकारा जैसे वनमें एक सिंह दूसरे सिंहको पुकारता है ॥ २१ ॥

तावुद्यतगदापाणी दुर्योधनवृकोदरौ ।
संयुगे स्म प्रकाशेते गिरी सशिखराविव ॥ २२ ॥

दुर्योधन और भीमसेन दोनों अपनी गदाएं ऊपरको उठाकर रणभूमिमें शिखरयुक्त दो पर्वतोंके समान प्रकाशित होते थे ॥ २२ ॥

तावुभावभिसंक्रुद्धावुभौ भीमपराक्रमौ ।
उभौ शिष्यौ गदायुद्धे रौहिणेयस्य धीमतः ॥ २३ ॥

दोनों अत्यन्त क्रोधित हुए थे । वे दोनों भयंकर पराक्रमी थे । दोनों ही गदायुद्धमें बुद्धिमान् रोहिणीपुत्र बलरामके शिष्य थे ॥ २३ ॥

उभौ सदृशकर्माणौ यमवासवयोरिव ।
तथा सदृशकर्माणौ वरुणस्य महाबलौ ॥ २४ ॥

ये दोनों गरुडके समान वीर यम, इन्द्र और वरुणके समान युद्धमें खडे हुए ॥ २४ ॥

वासुदेवस्य रामस्य तथा वैश्रवणस्य च ।
सदृशौ तौ महाराज मधुकैटभयोर्युधि ॥ २५ ॥

ये दोनों युद्धमें श्रीकृष्ण, बलदेव, कुबेर, मधु, कैटभके समान थे ॥ २५ ॥

उभौ सदृशकर्माणौ रणे सुन्दोपसुन्दयोः ।
तथैव कालस्य समौ मृत्योश्चैव परंतपौ ॥ २६ ॥

ये दोनों सुन्द, उपसुन्दके समान पराक्रम करनेवाले थे । काल और मृत्युके समान शत्रुओंको संताप देनेवाले दीखते थे ॥ २६ ॥

अन्योन्यमभिधावन्तौ मत्ताविव महाद्विपौ ।
वाशितासंगमे दृप्तौ शरदीव मदोत्कटौ ॥ २७ ॥

जैसे शरदृऋतुमें संगमकी इच्छावाली हाथिनीसे मीलन करनेके लिये दो मतवाले हाथी मत होकर एक दूसरेपर धावा करते हैं उसी प्रकार वे दीखते थे ॥ २७ ॥

मत्ताविव जिगीषन्तौ मातङ्गौ भरतर्षभौ ।
उभौ क्रोधविषं दीप्तं वमन्तावुरगाविव ॥ २८ ॥

विजयकी इच्छा करनेवाले मतवाले दो हाथीके समान वे भरतवंशी दो वीर सांपोंके समान क्रोधरूपी विष छोडने लगे ॥ २८ ॥

अन्योन्यमभिसंरब्धौ प्रेक्षमाणावरिंदमौ ।
उभौ भरतशार्दूलौ विक्रमेण समन्वितौ ॥ २९ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों वीर परस्पर धावा करके एक दूसरेके तरफ क्रोधपूर्वक देखने लगे । भरतवंशके वे दोनों सिंह पराक्रमसे युक्त थे ॥ २९ ॥

सिंहाविव दुराधर्षौ गदायुद्धे परंतपौ ।
नखदंष्ट्रायुधौ वीरौ व्याघ्राविव दुरुत्सहौ ॥ ३० ॥

दोनों सिंहोंके समान दुर्जय, गदायुद्धमें शत्रुसंतापन, दोनों नखून और दांत रूपी शस्त्रसे आक्रमण करनेवाले दो सिंहोंके समान शत्रुओंके लिये दुःसह थे ॥ ३० ॥

प्रजासंहरणे क्षुब्धौ समुद्राविव दुस्तरौ ।
लोहिताङ्गाविव क्रुद्धौ प्रतपन्तौ महारथौ ॥ ३१ ॥

दोनों प्रलयकालमें प्रक्षुब्ध हुए दो समुद्रोंके समान दुस्तर और दोनों महारथी क्रुद्ध हुए दो मंगल ग्रहोंके समान परस्पर ताप दे रहे थे ॥ ३१ ॥

रश्मिमन्तौ महात्मानौ दीप्तिमन्तौ महाबलौ ।
ददृशाते कुरुश्रेष्ठौ कालसूर्याविवोदितौ ॥ ३२ ॥

दोनों महातेजस्वी, महात्मा, महादीप्तमान्, महाबलवान् कुरुकुलश्रेष्ठ दुर्योधन और भीमसेन प्रलयकालमें उगे हुए दो सूर्योंके समान दीखने लगे ॥ ३२ ॥

व्याघ्राविव सुसंरब्धौ गर्जन्ताविव तोयदौ ।
जहृषाते महाबाहू सिंहौ केसरिणाविव ॥ ३३ ॥
क्रोधित हुए दो बाघ, गरजते हुए दो मेघ और गर्जना करते हुए दो सिंहोंके समान वे दोनों महाबाहु वीर आनन्दित हो रहे थे ॥ ३३ ॥

गजाविव सुसंरब्धौ ज्वलिताविव पावकौ ।
ददृशुस्तौ महात्मानौ सशृङ्गाविव पर्वतौ ॥ ३४ ॥
दोनों गदाधारी महात्मा वीर एक दूसरेपर क्रुद्ध हुए दो हाथी, प्रज्वलित हुई दो अग्नि और शिखरधारी दो पर्वतोंके समान दीखने लगे ॥ ३४ ॥

रोषात्प्रस्फुरमाणोष्ठौ निरीक्षन्तौ परस्परम् ।
तौ समेतौ महात्मानौ गदाहस्तौ नरोत्तमौ ॥ ३५ ॥
और दोनोंके ओठ क्रोधसे फरकने लगे । वे दोनों मनुष्य श्रेष्ठ एक दूसरेकी ओर देखने लगे, दोनों उत्तम पुरुष महात्मा वीर गदा लेकर युद्धमें परस्पर धावा करनेके लिये तैयार हुए ॥३५॥

उभौ परमसंहृष्टावुभौ परमसंमतौ ।
सदश्वाविव हेषन्तौ बृंहन्ताविव कुञ्जरौ ॥ ३६ ॥
और दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुए थे । दोनों बडे सन्मानित वीर थे । वे दोनों हिनहिनाते हुए दो उत्तम घोडोंके समान, चिंघाडते हुए दो मतवाले हाथियोंके समान ॥ ३६ ॥

वृषभाविव गर्जन्तौ दुर्योधनवृकोदरौ ।
दैत्याविव बलोन्मत्तौ रेजतुस्तौ नरोत्तमौ ॥ ३७ ॥
गर्जते हुए दो बैलोंके समान और बलसे उन्मत हुए दो दैत्योंके समान वे मनुष्योंमें श्रेष्ठ दुर्योधन और भीमसेन शोभायमान दीखने लगे ॥ ३७ ॥

ततो दुर्योधनो राजन्निदमाह युधिष्ठिरम् ।
सृञ्जयैः सह तिष्ठन्तं तपन्तमिव भास्करम् ॥ ३८ ॥
राजन् ! तदनन्तर दुर्योधन सूर्यके समान प्रकाशित, सृञ्जयोंके साथ खडे हुए युधिष्ठिरको इस प्रकार बोला– ॥ ३८ ॥

इदं व्यवसितं युद्धं मम भीमस्य चोभयोः ।
उपोपविष्टाः पश्यध्वं विमर्दं नृपसत्तमाः ॥ ३९ ॥
आज तुम सब श्रेष्ठ राजाओंके सहित बैठकर हमारा और भीमसेनका जो यह गदायुद्ध यहां निश्चित हुआ है वह और मुझे उसका नाश करते हुए देखिये ॥ ३९ ॥

ततः समुपविष्टं तत्सुमहद्राजमण्डलम् ।
विराजमानं ददृशे दिवीवादित्यमण्डलम् ॥ ४० ॥

फिर वह राजाओंका विशाल समूह वहाँ बैठ गया । उस समय वह युधिष्ठिरकी राजसभा ऐसी सुन्दर दीखती थी, जैसे आकाशमें सूर्यका मण्डल ॥ ४० ॥

तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान्केशवपूर्वजः ।
उपविष्टो महाराज पूज्यमानः समन्ततः ॥ ४१ ॥

महाराज ! उस सभाके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णके बडे भाई तेजस्वी महाबाहु बलराम सब ओरसे पूजित होते हुए बैठे थे ॥ ४१ ॥

शुशुभे राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः ।
नक्षत्रैरिव संपूर्णो वृतो निशि निशाकरः ॥ ४२ ॥

नील वस्त्रधारी, गोरे वर्णवाले, श्रीमान् बलराम राजाओंके बीचमें ऐसे शोभायमान दीखते थे, जैसे नक्षत्रोंके बीचमें रात्रिको पूर्ण चन्द्रमा ॥ ४२ ॥

तौ तथा तु महाराज गदाहस्तौ दुरासदौ ।
अन्योन्यं वाग्भिरुग्राभिस्तक्षमाणौ व्यवस्थितौ ॥ ४३ ॥

हे महाराज ! उस समय गदा हाथमें लिये ये दोनों दुर्धष महापराक्रमी वीर एक दूसरेको कठोर वचन कहकर पीडा देने लगे ॥ ४३ ॥

अप्रियाणि ततोऽन्योन्यमुक्त्वा तौ कुरुपुंगवौ ।
उदीक्षन्तौ स्थितौ वीरौ वृत्रशक्राविवाहवे ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ २८१३ ॥

परस्पर कठोर वचन कहकर वे दोनों कुरुकुलके श्रेष्ठ वीर वहाँ युद्धमें एक दूसरेको इस प्रकार देखने लगे और युद्धके लिये तैयार हो गये, जैसे वृत्रासुर और इन्द्र ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें चौपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥ २८१३ ॥

: ५५ :

वैशंपायन उवाच

ततो वाग्युद्धमभवत्तुमुलं जनमेजय ।
यत्र दुःखान्वितो राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् जनमेजय ! तदनन्तर भीमसेन और दुर्योधनका घोर वाग् युद्ध हुआ। तब यह सुनकर राजा धृतराष्ट्र दुःखित होकर सञ्जयसे इस प्रकार बोले ॥ १ ॥

धिगस्तु खलु मानुष्यं यस्य निष्ठेयमीदृशी ।
एकादशचमूभर्ता यत्र पुत्रो ममाभिभूः ॥ २ ॥

मनुष्यके जन्मको धिक्कार है, जिसका फल ऐसा दुःखद होता है। देखो, जो मेरा पुत्र किसी समय ग्यारह अक्षौहिणियोंका स्वामी था, वह पराभूत हो गया ॥ २ ॥

आज्ञाप्य सर्वान्नृपतीन्भुक्त्वा चेमां वसुंधराम् ।
गदामादाय वेगेन पदातिः प्रस्थितो रणम् ॥ ३ ॥

जिसकी आज्ञामें सब राजा चलते थे, जो इस सारी पृथ्वीका अकेले ही उपभोग करता था, वही आज गदा लेकर अकेला ही वेगपूर्वक पैरोंसे युद्ध करनेको चला ॥ ३ ॥

भूत्वा हि जगतो नाथो ह्यनाथ इव मे सुतः ।
गदामुद्यम्य यो याति किमन्यद्भागधेयतः ॥ ४ ॥

जो मेरा पुत्र इस जगत्का स्वामी था, वे ही अनाथ जैसा आज गदा लेकर अकेला पैरोंसे युद्ध करनेको चला जाता है। यह देखकर हम प्रारब्धको बलवान् न कहें तो किसको कहें? ॥४॥

अहो दुःखं महत्प्राप्तं पुत्रेण मम संजय ।
एवमुक्त्वा स दुःखार्तो विरराम जनाधिपः ॥ ५ ॥

हाय! संजय! हमारा पुत्र घोर आपत्तिमें पडा है, ऐसा कहकर महाराज धृतराष्ट्र दुःखसे व्याकुल होकर चुप हो गये ॥ ५ ॥

सञ्जय उवाच

स मेघनिनदो हर्षाद्विनदन्निव गोवृषः ।
आजुहाव ततः पार्थं युद्धाय युधि वीर्यवान् ॥ ६ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज! अनन्तर युद्धमें मेघके समान गर्जना करनेवाले महावीर्यवान् दुर्योधनने प्रसन्नतासे मतवाले बैलके समान जोरसे गर्जकर युद्ध करनेके लिये कुन्तीपुत्र भीमसेनको ललकारा ॥ ६ ॥

भीममाह्वयमाने तु कुरुराजे महात्मनि ।
प्रादुरासन्सुघोराणि रूपाणि विविधान्युत ॥ ७ ॥

जिस समय महात्मा कुरुराज दुर्योधनने भीमसेनको पुकारा उस समय नाना प्रकारके घोर अशकुन होने लगे ॥ ७ ॥

ववुर्वाताः सनिर्घाताः पांसुवर्षं पपात च ।
बभूवुश्च दिशः सर्वास्तिमिरेण समावृताः ॥ ८ ॥

बिजलीकी गडगडाहटके साथ घोर वायु चलने लगी, आकाशसे धूलि बर्षने लगी, सब दिशाओंमें अन्धकार हो गया ॥ ८ ॥

महास्वनाः सनिर्घातास्तुमुला लोमहर्षणाः ।
पेतुस्तथोल्काः शतशः स्फोटयन्त्यो नभस्तलम् ॥ ९ ॥

आकाशसे घोर शब्द और गडगडाहटके साथ रोंगटे खडे कर देनेवाली सैकडों भयंकर उल्काएं पृथ्वीको विदीर्ण करके गिरने लगीं ॥ ९ ॥

राहुश्चाग्रसदादित्यमपर्वणि विशां पते ।
चकम्पे च महाकम्पं पृथिवी सवनद्रुमा ॥ १० ॥

पृथ्वीपते ! अमावस्याके विना समय ही राहु सूर्यका ग्रास करने लगा, वन और वृक्षोंके सहित पृथ्वी जोरसे कांपने लगी ॥ १० ॥

रूक्षाश्च वाताः प्रववुर्नीचैः शर्करवर्षिणः ।
गिरीणां शिखराण्येव न्यपतन्त महीतले ॥ ११ ॥

नीचे धूल और कंकडकी वर्षा करनेवाली सुखी हवा चलने लगी । पर्वतोंके शिखर टूट टूटकर पृथ्वीमें गिर गये ॥ ११ ॥

मृगा बहुविधाकाराः संपतन्ति दिशो दश ।
दीप्ताः शिवाश्चाप्यनदन्घोररूपाः सुदारुणाः ॥ १२ ॥

अनेक प्रकारकी आकृतिवाले मृग चारों ओर घूमने लगे । अत्यंत घोर रूपवाली शियारिनें मुखसे आग निकालती हुई, चारों ओर घूमने लगीं और अमंगल बोली बोलने लगीं ॥ १२ ॥

निर्घाताश्च महाघोर बभूवुर्लोमहर्षणाः ।
दीप्तायां दिशि राजेन्द्र मृगाश्चाशुभवादिनः ॥ १३ ॥

राजेन्द्र ! महाघोर और रोंगटे खडे करनेवाले शब्द हो रहे थे । दिशाएं मानो प्रदीप्त हुई थीं और हरिन किसी अपशकुनका चिन्ह देने लगे ॥ १३ ॥

उदपानगताश्चापो व्यवर्धन्त समन्ततः ।
अशरीरा महानादाः श्रूयन्ते स्म तदा नृप ॥ १४ ॥

नृप ! अनेक प्रकारके शरीर रहित भूतोंके शब्द जोरसे सुनाई देने लगे और कुओंका जल सब ओरसे अपने आप ही बढने लगा ॥ १४ ॥

एवमादीनि दृष्ट्वाथ निमित्तानि वृकोदरः ।
उवाच भ्रातरं ज्येष्ठं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार और भी अनेक अपशकुन देखकर भीमसेन बडे भाई धर्मराज युधिष्ठिरसे बोले ॥ १५ ॥

नैष शक्तो रणे जेतुं मन्दात्मा मां सुयोधनः ।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निगूढं हृदये चिरम् ।
सुयोधने कौरवेन्द्रे खाण्डवे पावको यथा ॥ १६ ॥

मूर्ख दुर्योधन मुझे युद्धमें नहीं जीत सकता । आज मैं बहुत दिनसे अपने हृदयमें छिपाए हुए क्रोधको कौरवराज दुर्योधनपर छोडूंगा, जैसे खाण्डव वनमें अर्जुनने अग्निको छोडा था ॥ १६॥

शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डव हृच्छयम् ।
निहत्य गदया पापमिमं कुरुकुलाधमम् ॥ १७ ॥

हे पांडव ! आज मैं इस कुरुकुलाधम दुष्ट पापी दुर्योधनको अपनी गदासे मारकर आपके हृदयका शल्य निकालूंगा ॥ १७ ॥

अद्य कीर्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्याम्यहं त्वयि ।
हत्वेमं पापकर्माणं गदया रणमूर्धनि ॥ १८ ॥

और आज इस पापकर्म करनेवालेका युद्धमें वध करके आपके गलेमें विजय कीर्त्तिकी माला पहिनाऊंगा ॥ १८ ॥

अद्यास्य शतधा देहं भिनद्मि गदयानया ।
नायं प्रवेष्टा नगरं पुनर्वारणसाह्वयम् ॥ १९ ॥

आज इस गदासे युद्धमें इस पापीके शरीरके सौ सौ टुकडे करूंगा, अब यह फिर कभी हस्तिनापुरमें प्रवेश नहीं करेगा ॥ १९ ॥

सर्पोत्सर्गस्य शयने विषदानस्य भोजने ।
प्रमाणकोट्यां पातस्य दाहस्य जतुवेश्मनि ॥ २० ॥

इसने मेरी शय्यापर सांप छोडा था, भोजनमें विष दिया था, यमुनाके जलमें मुझे डूबाया था, लाक्षागृहमें जलानेका प्रयत्न किया था ॥ २० ॥

सभायामवहासस्य सर्वस्वहरणस्य च ।
वर्षमज्ञातवासस्य वनवासस्य चानघ ॥ २१ ॥

सभामें उपहास किया था, कपटसे सर्वस्व छिन लिया था, हे अनघ ! और एक वर्ष छिपकर रहने और बारह वर्ष वनमें रहनेके लिये विवश किया था ॥ २१ ॥

अद्यान्तमेषां दुःखानां गन्ता भरतसत्तम ।
एकाह्ना विनिहत्येमं भविष्याम्यात्मनोऽनृणः ॥ २२ ॥

भरतसत्तम ! आदि सब दुःखोंके आज मैं पार जाऊंगा । इसने हमें इतने दिनोंतक दुःख दिया है सो मैं आज एक दिनमें इसे मारकर अपने आपसे उऋण हो जाऊंगा ॥ २२ ॥

अद्यायुर्धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेरकृतात्मनः ।
समाप्तं भरतश्रेष्ठ मातापित्रोश्च दर्शनम् ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! आज पापी दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी आयु समाप्त हो गई है, अब इस पापीको मातापिताका दर्शन भी नहीं होगा ॥ २३ ॥

अद्यायं कुरुराजस्य शांतनोः कुलपांसनः ।
प्राणाञ्छ्रियं च राज्यं च त्यक्त्वा शेष्यति भूतले ॥ २४ ॥

यह कुरुराजश्रेष्ठ शान्तनुके कुलका यह कलङ्क दुर्योधन आज अपने प्राण, लक्ष्मी और राज्य छोडकर पृथ्वीमें सोयेगा ॥ २४ ॥

राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं मया हतम् ।
स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् ॥ २५ ॥

आज अपने पुत्रको मेरे द्वारा मारा हुआ सुनकर राजा धृतराष्ट्र भी अपने अशुभ कर्मोंको याद करेंगे, जो उन्होंने शकुनिकी सलाहसे किये थे ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा राजशार्दूल गदामादाय वीर्यवान् ।
अवातिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन् ॥ २६ ॥

हे राजशार्दूल ! ऐसा कहकर पराक्रमी भीमसेनने गदा उठाई और युद्धके लिये खडे हो गये और जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको पुकारा था, ऐसे उन्होंने दुर्योधनको ललकारा ॥ २६ ॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव श्रृङ्गिणम् ।
भीमसेनः पुनः क्रुद्धो दुर्योधनमुवाच ह ॥ २७ ॥

अनन्तर गदा उठाये दुर्योधनको शिखरधारी कैलासपर्वतके समान देख, पुनः क्रोध करके भीमसेन बोले– ॥ २७ ॥

राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य तथा त्वमपि चात्मनः ।
स्मर तद्दुष्कृतं कर्म यद्वृत्तं वारणावते ॥ २८ ॥

अरे दुर्बुद्धे ! तू अपने और राजा धृतराष्ट्रके पापोंका स्मरण कर जो हमारे सङ्ग वारणावत नगरमें किये थे ॥ २८ ॥

द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभायां यद्रजस्वला ।
द्यूते च वञ्चितो राजा यत्त्वया सौबलेन च ॥ २९ ॥

तुझको स्मरण है कि सभामें रजस्वला द्रौपदीको कैसे दुःख दिये थे, सभामें तूने और सुबल-पुत्र शकुनिने राजा युधिष्ठिरको जूएमें ठग लिया था ॥ २९ ॥

+

वने दुःखं च यत्प्राप्तमस्माभिस्त्वत्कृतं महत् ।
विराटनगरे चैव योन्यन्तरगतैरिव ।
तत्सर्वं यातयाम्यद्य दिष्ट्या दृष्टोऽसि दुर्मते ॥ ३० ॥

हमने वनमें तुम्हारे कारण कैसे कैसे महान् दुःख उठाये थे, विराटनगरमें हमको ऐसा जान पडता था कि, मानो जन्म ही दूसरा हुआ है, अर्थात् हमें दूसरी योनिमें गये हुए प्राणियोंके समान रहना पडा था, आज वह सब क्रोध तुझपर डालूंगा। हे दुर्मते ! आज तुझे मैंने प्रारब्धहीसे देखा है ॥ ३० ॥

त्वत्कृतेऽसौ हतः शेते शरतल्पे प्रतापवान् ।
गाङ्गेयो रथिनां श्रेष्ठो निहतो याज्ञसेनिना ॥ ३१ ॥

तेरे ही कारण महारथी प्रतापी गङ्गापुत्र भीष्म याज्ञसेनीके द्रुपदकुमार शिखण्डीके द्वारा मरकर शरशय्यापर सोते हैं ॥ ३१ ॥

हतो द्रोणश्च कर्णश्च तथा शल्यः प्रतापवान् ।
वैराग्नेरादिकर्ता च शकुनिः सौबलो हतः ॥ ३२ ॥

तेरे ही लिये द्रोणाचार्य, कर्ण और प्रतापी शल्य मारे गये और इस वैररूपी अग्निको जलानेवाला सुवलपुत्र शकुनि भी मारा गया ॥ ३२ ॥

प्रातिकामी तथा पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः ।
भ्रातरस्ते हताः सर्वे शूरा विक्रान्तयोधिनः ॥ ३३ ॥

द्रौपदीको क्लेश देनेवाला पापी प्रातिकामी भी मारा गया और पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाले तेरे सब शूरवीर भाई भी मारे जा चुके हैं ॥ ३३ ॥

एते चान्ये च बहवो निहतास्त्वत्कृते नृपाः ।
त्वामद्य निहनिष्यामि गदया नात्र संशयः ॥ ३४ ॥

ये तथा और भी अनेक राजा तेरे लिये युद्धमें मारे गये हैं। अब आज तुझे भी गदासे निःसन्देह मारूंगा ॥ ३४ ॥

इत्येवमुच्चै राजेन्द्र भाषमाणं वृकोदरम् ।
उवाच वीतभी राजन्पुत्रस्ते सत्यविक्रमः ॥ ३५ ॥

हे राजेन्द्र ! ऊंचे स्वरसे बोलनेवाले भीमसेनके ऐसे वचन सुन सत्यपराक्रमी तुम्हारे पुत्र दुर्योधन बेडर होकर बोले— ॥ ३५ ॥

किं कत्थितेन बहुधा युध्यस्व त्वं वृकोदर ।
अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां कुलाधम ॥ ३६ ॥

रे वृकोदर ! रे कुलाधम ! क्यों वृथा बहुत बक बक करता है ? तू मेरे साथ युद्ध कर आज मैं तेरी युद्धकी श्रद्धा मिटा दूंगा ॥ ३६ ॥

नैव दुर्योधनः क्षुद्र केनचित्त्वद्विधेन वै ।
शक्यस्त्रासयितुं वाचा यथान्यः प्राकृतो नरः ॥ ३७ ॥
रे क्षुद्र ! तुझे ऐसे कोई भी साधारण मनुष्योंके वचनोंसे और अन्य प्राकृत मनुष्योंके समान दुर्योधन नहीं डरेगा ॥ ३७ ॥

चिरकालेप्सितं दिष्ट्या हृदयस्थमिदं मम ।
त्वया सह गदायुद्धं त्रिदशैरुपपादितम् ॥ ३८ ॥
बहुत दिनोंसे मेरे हृदयमें यह इच्छा थी कि तेरा और मेरा गदायुद्ध हो, सो आज प्रारब्धसे वही समय आ गया, यह बात देवताओंने भी ऐसे ही रची थी ॥ ३८ ॥

किं वाचा बहुनोक्तेन कत्थितेन च दुर्मते ।
वाणी संपद्यतामेषा कर्मणा मा चिरं कृथाः ॥ ३९ ॥
रे दुर्बुद्धे ! बहुत कहनेसे और शेखी बघारनेसे क्या होता है ? जो तूने बचन कहा है, उसे शीघ्र ही कर्म करके सत्य कर ॥ ३९ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्व एवाभ्यपूजयन् ।
राजानः सोमकाश्चैव ये तत्रासन्समागताः ॥ ४० ॥
दुर्योधनके यह बचन सुन वहां आये हुए सब सोमकवंशी क्षत्रिय और सब राजाओंने उनकी प्रशंसा की ॥ ४० ॥

ततः संपूजितः सर्वैः संप्रहृष्टतनूरुहः ।
भूयो धीरं मनश्चक्रे युद्धाय कुरुनन्दनः ॥ ४१ ॥
तब सबसे अपनी प्रशंसा सुन कुरुराजके रोंये खडे हो गये और कुरुनन्दन दुर्योधन युद्ध करनेका स्थिर मनसे निश्चय करने लगे ॥ ४१ ॥

तं मत्तमिव मातङ्गं तलतालैर्नराधिपाः ।
भूयः संहर्षयांचक्रुर्दुर्योधनममर्षणम् ॥ ४२ ॥
मतवाले हाथीके समान अमर्षशील दुर्योधनको ताली बजाकर नरेशोंने पुनः हर्ष और उत्साहसे पूरित करना शुरू किया ॥ ४२ ॥

तं महात्मा महात्मानं गदामुद्यम्य पाण्डवः ।
अभिदुद्राव वेगेन धार्तराष्ट्रं वृकोदरः ॥ ४३ ॥
अनन्तर महात्मा पाण्डुपुत्र भीमसेन गदा उठाकर वेगसे धृतराष्ट्रपुत्र महात्मा दुर्योधनकी ओर वेगसे दौडे ॥ ४३ ॥

बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र हया हेषन्ति चासकृत् ।
शस्त्राणि चाप्यदीप्यन्त पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ २८५७ ॥

उस समय हाथी वारंवार चिंघाडने लगे, घोडे हीचने लगे और विजयाभिलापी पाण्डवोंके शस्त्र चमकने लगे ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें पचपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ २८५७ ॥

: ५६ :

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भीमसेनं तथागतम् ।
प्रत्युद्ययावदीनात्मा वेगेन महता नदन् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– राजन् ! फिर भीमसेनको अपनी ओर इस प्रकार आक्रमणके लिये आते देख, प्रसन्न दुर्योधन भी गर्जते हुए बडे वेगसे उनकी ओर दौडे ॥ १ ॥

समापेततुरानद्य शृङ्गिणौ वृषभाविव ।
महानिर्घातघोषश्च संप्रहारस्तयोरभूत् ॥ २ ॥

ये दोनों महात्मा इस प्रकार लडने लगे, जैसे दो सींगवाले बैल लडते हैं । उनके प्रहारोंकी आवाज अत्यंत भयंकर होने लगी ॥ २ ॥

अभवच्च तयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
जिगीषतोर्युधान्योन्यमिन्द्रप्रह्लादयोरिव ॥ ३ ॥

इन दोनों एक दूसरेपर विजय चाहनेवाले वीरोंका ऐसा घोर और रोमांचकारी युद्ध हुआ, जैसा इन्द्र और प्रह्लादका हुआ था । इस युद्धको देखकर वीरोंके रोंये खडे होने लगे ॥३॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ गदाहस्तौ मनस्विनौ ।
ददृशाते महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥

अनन्तर दोनों गदाधारी मनस्वी महात्मा वीर रुधिरमें भीगकर फूले हुए टेसू वृक्षोंके समान दीखने लगे ॥ ४ ॥

तथा तस्मिन्महायुद्धे वर्तमाने सुदारुणे ।
खद्योतसंघैरिव खं दर्शनीयं व्यरोचत ॥ ५ ॥

उस अत्यंत दारुण महायुद्धके शुरू होनेपर दोनोंकी गदाओंके आघातसे आगके पतङ्गे निकलने लगे और उनसे आकाश ऐसा शोभित हो गया जैसा जुगुनुओंके दलसे ॥ ५ ॥

तथा तस्मिन्वर्तमाने संकुले तुमुले भृशम् ।
उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावरिंदमौ ॥ ६ ॥

दोनों शत्रुनाशन वीर थोडे समयतक ऐसा घोर घमासान युद्ध करके थक गये ॥ ६ ॥

तौ मुहूर्तं समाश्वस्य पुनरेव परंतपौ ।
अभ्यहारयतां तत्र संप्रगृह्य गदे शुभे ॥ ७ ॥

फिर मुहूर्त मात्र विश्राम लेकर, दोनों शत्रुतापन वीरोंने सुंदर गदाएं उठाईं और एक दूसरेको मारने लगे ॥ ७ ॥

तौ तु दृष्ट्वा महावीर्यौ समाश्वस्तौ नरर्षभौ ।
बलिनौ वारणौ यद्वद्वाशितार्थे मदोत्कटौ ॥ ८ ॥
अपारवीर्यौ संप्रेक्ष्य प्रगृहीतगदावुभौ ।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवगन्धर्वदानवाः ॥ ९ ॥

दोनों महापराक्रमी पुरुषसिंह वीर थोडे समयतक विश्राम लेकर फिर इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे एक मैथुनकी इच्छावाली हथिनीके लिये दो बलवान् और मतवाले हाथी लडते हैं। उन दोनोंको गदा धारण किये और समान बलवान् देखकर देवता, गन्धर्व और दानव सभी अत्यन्त आश्चर्य करने लगे ॥ ८-९ ॥

प्रगृहीतगदौ दृष्ट्वा दुर्योधनवृकोदरौ ।
संशयः सर्वभूतानां विजये समपद्यत ॥ १० ॥

दुर्योधन और भीमसेनको फिर गदा उठाये देख, उनमेंसे किसी एककी विजयके बारेमें सब प्राणियोंमें बहुत सन्देह उत्पन्न होने लगा ॥ १० ॥

समागम्य ततो भूयो भ्रातरौ बलिनां वरौ ।
अन्योन्यस्यान्तरप्रेप्सू प्रचक्रातेऽन्तरं प्रति ॥ ११ ॥

अनन्तर ये दोनों बलवानोंमें श्रेष्ठ भाई एक दूसरेको मारनेके लिये परस्पर अन्तर देखने लगे और अनेक प्रकारकी गतिसे चलने लगे ॥ ११ ॥

यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिमिवोद्यताम् ।
ददृशुः प्रेक्षका राजन्रौद्रीं विशसनीं गदाम् ॥ १२ ॥

राजन्! उस समय युद्धमें जब भीमसेन अपनी गदा घुमाने लगे, तब प्रेक्षकोंने देखा, भीमसेनकी भारी गदा यमराजके दण्डके समान भयानक और इन्द्रके वज्रके समान ऊपर उठी हुई और शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ है ॥ १२ ॥

आविध्यतो गदां तस्य भीमसेनस्य संयुगे ।
शब्दः सुतुमुलो घोरो मुहूर्तं समपद्यत ॥ १३ ॥

जिस समय युद्धमें भीमसेन अपनी गदा ऊपर उठाकर चलाते थे तब मुहूर्तभर उसीका घोर और भयंकर शब्द सुनाई देता था ॥ १३ ॥

आविध्यन्तमभिप्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रोऽथ पाण्डवम् ।
गदामलघुवेगां तां विस्मितः संबभूव ह ॥ १४ ॥

इसी प्रकार तुम्हारा पुत्र दुर्योधन अपने शत्रु पाण्डुपुत्र भीमसेनको वह महावेगवाली गदा चलाते देख, आश्चर्य करने लगा ॥ १४ ॥

चरंश्च विविधान्मार्गान्मण्डलानि च भारत ।
अशोभत तदा वीरो भूय एव वृकोदरः ॥ १५ ॥

हे भारत ! अनेक प्रकारके मार्ग और मण्डलोंसे चलते हुये वीर भीमसेनकी फिर शोभा बहुत बढी ॥ १५ ॥

तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यरक्षणे ।
मार्जाराविव भक्षार्थे ततक्षाते मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥

ये दोनों वीर परस्पर भिडकर एक दूसरेसे अपनी अपनी रक्षा करते हुए बार बार इस प्रकार युद्ध करने लगे, जैसे खानेके टुकडोंके लिये दो बिलाव लडते हैं ॥ १६ ॥

अचरद्भीमसेनस्तु मार्गान्बहुविधांस्तथा ।
मण्डलानि विचित्राणि स्थानानि विविधानि च ॥ १७ ॥

तब भीमसेन अनेक प्रकारके मार्गोंसे अनेक प्रकारसे विचित्र मण्डल करने लगे । वे कभी अनेक प्रकारके स्थानोंका (शस्त्र मारने योग्य मर्म स्थानोंको देखना) प्रदर्शन करते थे ॥१७॥

गोमूत्रिकाणि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ।
परिमोक्षं प्रहाराणां वर्जनं परिधावनम् ॥ १८ ॥

वे कभी विचित्र गोमत्रि यन्त्र (किसी मर्मको देखकर अस्त्र मारना अथवा शत्रुके शस्त्रसे अपने शस्त्रको बचाना) करते थे । वे कभी गत (शत्रुके सन्मुख जाना), कभी प्रत्यागत (शत्रुके आगेसे बिनामुख फेरे पीछेको लौटना), होते थे । वे दोनों परिमोक्ष (शस्त्रको वृथा कर देना), प्रहार वर्जन (शत्रुके शस्त्रसे बचना), परिधावन (शीघ्रतासे दहिने बाये जाना), करते थे ॥ १८ ॥

अभिद्रवणमाक्षेपमवस्थानं सविग्रहम्
परावर्तनसंवर्तमवप्लुतमथाप्लुतम् ।
उपन्यस्तमपन्यस्तं गदायुद्धविशारदौ ॥ १९ ॥

अभिद्रवण (शीघ्रतासे एक दूसरेके आगे जाना), आक्षेप (शत्रुके हाथसे चले हुये शस्त्रको अथवा उसके यन्त्रका वृथा करनेका उपाय करना), अवस्थान (सावधान और स्थिर होकर आगे खडा रहना), विग्रह (खडे हुए शत्रुसे युद्ध करना), परावर्तन (सब ओरसे घूमकर शत्रुको मारना), सम्वर्तन (शत्रुके शस्त्रको रोकना), अवप्लुत (शत्रुके शस्त्रसे नीचा होकर बचना), उपप्लुत (उछलकर बचना), उपन्यस्त (पास आकर शस्त्र मारना), और अपन्यस्त (घूमकर पीठकी ओर हाथ करके शत्रुको मारना), आदि अनेक प्रकारकी गती दिखलाने लगे । दोनों गदायुद्ध विद्या जाननेवाले थे ॥ १९ ॥

एवं तौ विचरन्तौ तु न्यघ्नतां वै परस्परम् ।
वञ्चयन्तौ पुनश्चैव चेरतुः कुरुसत्तमौ ॥ २० ॥

दोनों कुरुकुलश्रेष्ठ वीर इस प्रकार पैंतरे बदलते हुए वे एक दूसरेपर आघात करते थे और फिर अपने शत्रुको चकमा देते थे ॥ २० ॥

विक्रीडन्तौ सुबलिनौ मण्डलानि प्रचेरतुः ।
गदाहस्तौ ततस्तौ तु मण्डलावस्थितौ बली ॥ २१ ॥

दोनों महापराक्रमी अनेक प्रकारके मण्डल करते हुए युद्धमें चारों ओर खेलने लगे । दोनों ही बलवान् हाथमें गदा लेकर मण्डलाकार युद्धस्थलमें खडे थे ॥ २१ ॥

दक्षिणं मण्डलं राजन्धार्तराष्ट्रोऽभ्यवर्तत ।
सव्यं तु मण्डलं तत्र भीमसेनोऽभ्यवर्तत ॥ २२ ॥

हे महाराज ! इस प्रकार इस घोर गदायुद्धमें तुम्हारे पुत्र दुर्योधन दहिने और भीमसेन बायें मण्डलमें खडे थे ॥ २२ ॥

तथा तु चरतस्तस्य भीमस्य रणमूर्धनि ।
दुर्योधनो महाराज पार्श्वदेशेऽभ्यताडयत् ॥ २३ ॥

हे महाराज ! युद्धके अग्रभागमें बायें मण्डलमें घूमते हुए भीमसेनकी पसलीमें तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने एक गदा मारी ॥ २३ ॥

आहतस्तु तदा भीमस्तव पुत्रेण भारत ।
आविध्यत गदां गुर्वीं प्रहारं तमचिन्तयन् ॥ २४ ॥

भारत ! परन्तु तुम्हारे पुत्रसे प्रहार किये गये भीमसेनने उसका कुछ भी विचार न किया और अपनी भारी गदा घुमाने लगे ॥ २४ ॥

इन्द्राशनिसमां घोरां यमदण्डमिवोद्यताम् ।
दद‍ृशुस्ते महाराज भीमसेनस्य तां गदाम् ॥ २५ ॥

महाराज ! भीमसेनकी उस भयंकर गदाको प्रेक्षकोंने यमराजके दण्डके समान तथा इन्द्रके वज्रके समान उठी हुई देखा ॥ २५ ॥

आविध्यन्तं गदां दृष्ट्वा भीमसेनं तवात्मजः ।
समुद्यम्य गदां घोरां प्रत्यविध्यदरिंदमः ॥ २६ ॥

अनन्तर तुम्हारे पुत्र शत्रुदमन दुर्योधनने भी भीमसेनको गदा घुमाते देख अपनी घोर गदाको उठाकर उनकी गदापर मारी ॥ २६ ॥

गदामारुतवेगेन तव पुत्रस्य भारत ।
शब्द आसीत्सुतुमुलस्तेजश्च समजायत ॥ २७ ॥

भारत ! तुम्हारे पुत्रकी वायुके समान गदाके वेगसे उस गदाके आघातसे बडे जोरका शब्द हुआ और दोनों गदाओंसे अग्निकण निकलने लगे ॥ २७ ॥

स चरन्विविधान्मार्गान्मण्डलानि च भागशः ।
समशोभत तेजस्वी भूयो भीमात्सुयोधनः ॥ २८ ॥

उस समय महातेजस्वी दुर्योधन गदाको घुमाते हुए अनेक मार्गों और मण्डलोंसे चलने लगे। तब उनका तेज भीमसेनसे बहुत अधिक हो गया ॥ २८ ॥

आविद्धा सर्ववेगेन भीमेन महती गदा ।
सधूमं सार्चिषं चाग्निं मुमोचोग्रा महास्वना ॥ २९ ॥

तब भीमसेन भी अधिक वेग और बलसे अपनी बडी गदा घुमाने लगे । और उससे घोर शब्द, आगकी चिनगारी तथा धुआं निकलने लगा ॥ २९ ॥

आधूतां भीमसेनेन गदां दृष्ट्वा सुयोधनः ।
अद्रिसारमयीं गुर्वीमाविध्यन्बह्वशोभत ॥ ३० ॥

भीमसेनके द्वारा घुमायी गयी गदाको देखकर दुर्योधन भी अपनी लोहेकी भारी गदाको बलसे घुमाने लगे और अधिक शोभायमान दीखने लगे ॥ ३० ॥

गदामारुतवेगं हि दृष्ट्वा तस्य महात्मनः ।
भयं विवेश पाण्डूंस्तान्सर्वानेव ससोमकान् ॥ ३१ ॥

महात्मा दुर्योधनकी वायु समान गदाके वेगको देखकर सोमकवंशी क्षत्रियों सहित सब पाण्डव डरने लगे ॥ ३१ ॥

तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः ।
गदाभ्यां सहसान्योन्यमाजघ्नतुररिंदमौ ॥ ३२ ॥

समरमें सब ओरसे युद्धक्रीडा दिखाते हुए उन दोनों शत्रुदमन वीरोंने एकाएक गदाओंसे परस्पर प्रहार किया ॥ ३२ ॥

तौ परस्परमासाद्य दंष्ट्राभ्यां द्विरदौ यथा ।
अशोभेतां महाराज शोणितेन परिप्लुतौ ॥ ३३ ॥

महाराज ! अनन्तर ये दोनों वीर एक दूसरेको गदासे इस प्रकार मारने लगे और रुधिरमें भीगकर शोभायमान हो गये, जैसे अपने दांतोंसे दो हाथी परस्पर मारते हैं ॥ ३३ ॥

एवं तदभवद्युद्धं घोररूपमसंवृतम् ।
परिवृत्तेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव ॥ ३४ ॥

यह युद्ध उस दिनकी समाप्तितक उन दोनोंमें ऐसा घोर रूपसे हुआ, जैसे इन्द्र और वृत्रासुरका हुआ था ॥ ३४ ॥

दृष्ट्वा व्यवस्थितं भीमं तव पुत्रो महाबलः ।
चरंश्चित्रतरान्मार्गान्कौन्तेयमभिदुद्रुवे ॥ ३५ ॥

हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र बलवान् दुर्योधन कुन्तीपुत्र भीमसेनको अपने आगे खडा देख, विचित्र मार्गोंसे चलकर उनकी ओर दौडे ॥ ३५ ॥

तस्य भीमो महावेगां जाम्बूनदपरिष्कृताम् ।
अभिक्रुद्धस्य क्रुद्धस्तु ताडयामास तां गदाम् ॥ ३६ ॥

तब क्रोध भरे भीमसेनने अत्यंत क्रुद्ध हुए दुर्योधनकी सोनेसे जडी महावेगवती गदामें एक गदा मारी ॥ ३६ ॥

सविस्फुलिङ्गो निर्ह्रादस्तयोस्तत्राभिघातजः ।
प्रादुरासीन्महाराज सृष्टयोर्वज्रयोरिव ॥ ३७ ॥

महाराज ! उसके लगते ही दोनों गदाओंमेंसे भयंकर शब्द हुआ और आगके पतङ्गे निकलने लगे । और दोनों ओरसे छोडे गये दो वज्र लडनेके समान घोर शब्द उठा ॥ ३७ ॥

वेगवत्या तया तत्र भीमसेनप्रमुक्तया ।
निपतन्त्या महाराज पृथिवी समकम्पत ॥ ३८ ॥

राजेन्द्र ! जब भीमसेनने अपनी वेगवती गदा दुर्योधनकी गदामें मारी, तब पृथ्वी कांपने लगी ॥ ३८ ॥

तां नामृष्यत कौरव्यो गदां प्रतिहतां रणे ।
मत्तो द्विप इव क्रुद्धः प्रतिकुञ्जरदर्शनात् ॥ ३९ ॥

युद्धमें अपनी गदाको प्रतिहत हुई देख, कुरुवंशी दुर्योधन सहन न कर सके और भीमसेनको खडा देख उनको ऐसा क्रोध हुआ, जैसे मतवाले क्रुद्ध हाथीको देखकर दूसरे हाथीको क्रोध होता है ॥ ३९ ॥

स सव्यं मण्डलं राजन्नुद्भ्राम्य कृतनिश्चयः ।
आजघ्ने मूर्ध्नि कौन्तेयं गदया भीमवेगया ॥ ४० ॥

राजन् ! अनन्तर राजा दुर्योधनने दृढ निश्चय करके शीघ्रतासे मंडलकी बाईं ओर आकर कुन्तीपुत्र भीमसेनके शिरपर अपनी अत्यंत वेगवती गदा मारी ॥ ४० ॥

तया त्वभिहतो भीमः पुत्रेण तव पाण्डवः
नाकम्पत महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥

महाराज ! परन्तु पाण्डुपुत्र भीमसेन तुम्हारे पुत्रके आघातसे पीडित होनेपर कुछ भी कम्पित न हुये, वह अद्भुत जैसी घटना हुई ॥ ४१ ॥

आश्चर्यं चापि तद्राजन्सर्वसैन्यान्यपूजयन् ।
यद्गदाभिहतो भीमो नाकम्पत पदात्पदम् ॥ ४२ ॥

राजन् ! गदाका प्रहार होनेपर भी भीमसेन एक पाव भी इधर–उधर नहीं हुए, इस महान् आश्चर्यको देखकर, सब सेनाके वीर आश्चर्य और भीमसेनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४२ ॥

ततो गुरुतरां दीप्तां गदां हेमपरिष्कृताम् ।
दुर्योधनाय व्यसृजद्भीमो भीमपराक्रमः ॥ ४३ ॥

अनन्तर अत्यंत पराक्रमी भीमसेनने सोनेसे मढी प्रकाशसे भरी बडी भारी गदा दुर्योधनको फेंकके मारी ॥ ४३ ॥

तं प्रहारमसंभ्रान्तो लाघवेन महाबलः ।
मोघं दुर्योधनश्चक्रे तत्राभूद्विस्मयो महान् ॥ ४४ ॥

परन्तु महाबलवान् दुर्योधन इससे बिलकुल नहीं घबराये । उसने सौकर्यतासे उस गदाको व्यर्थ कर दिया, दुर्योधनकी इस विद्याको देखकर सब सेनाके लोग आश्चर्य करने लगे ॥४४॥

सा तु मोघा गदा राजन्पतन्ती भीमचोदिता ।
चालयामास पृथिवीं महानिर्घातनिस्वना ॥ ४५ ॥

राजन् ! वह भीमसेनके हाथसे छूटी हुई गदा जब व्यर्थ होकर गिरने लगी, तब उस गदाने महावज्रपातके समान महान् शब्द करके सब पृथ्वीको हिला दिया ॥ ४५ ॥

आस्थाय कौशिकान्मार्गानुत्पतन्स पुनः पुनः ।
गदानिपातं प्रज्ञाय भीमसेनमवञ्चयत् ॥ ४६ ॥
जब दुर्योधनने देखा कि भीमसेनकी गदा नीचे गिर गयी है और उनका प्रहार व्यर्थ हुआ है, तब उसने कौशिक मार्गोंका अनुसरण करके बार बार उछलकर भीमसेनपर प्रहार किया ॥ ४६ ॥

वञ्चयित्वा तथा भीमं गदया कुरुसत्तमः ।
ताडयामास संक्रुद्धो वक्षोदेशे महाबलः ॥ ४७ ॥
कुरुश्रेष्ठ महाबलवान् दुर्योधनने क्रुद्ध होकर भीमसेनको धोका देकर उनकी छातीमें गदा मारी ॥ ४७ ॥

गदयाभिहतो भीमो मुह्यमानो महारणे ।
नाभ्यमन्यत कर्तव्यं पुत्रेणाभ्याहतस्तव ॥ ४८ ॥
उस गदाके महासमरमें तुम्हारे पुत्रको गदा लगनेसे भीमसेन मूर्च्छित हो गये और उन्हें अपने करने और न करने योग्य कार्मोंका कुछ भी ध्यान न रहा ॥ ४८ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने राजन्सोमकपाण्डवाः ।
भृशोपहतसंकल्पा नहृष्टमनसोऽभवन् ॥ ४९ ॥
राजन् ! भीमसेनकी यह दशा देख सोमक और पाण्डवोंके सब सङ्कल्प नष्ट हो गये और सब अत्यन्त दुःखी–उदास हो गये ॥ ४९ ॥

स तु तेन प्रहारेण मातङ्ग इव रोषितः ।
हस्तिवद्धस्तिसंकाशमभिदुद्राव ते सुतम् ॥ ५० ॥
परन्तु उस प्रहारसे भीमसेनको मतवाले हाथीके समान अत्यन्त क्रोध हुआ और जैसे एक हाथी दूसरे हाथीपर धावा करता है, वैसे ही उन्होंने तुम्हारे पुत्रपर धावा किया ॥ ५० ॥

ततस्तु रभसो भीमो गदया तनयं तव ।
अभिदुद्राव वेगेन सिंहो वनगजं यथा ॥ ५१ ॥
अनन्तर भीमसेन आवेशसे गदा उठाकर तुम्हारे पुत्रकी ओर बडे वेगसे ऐसे दौडे, जैसे सिंह जंगली हाथीकी ओर दौडता है ॥ ५१ ॥

उपसृत्य तु राजानं गदामोक्षविशारदः ।
आविध्यत गदां राजन्समुद्दिश्य सुतं तव ॥ ५२ ॥
राजन् ! अनन्तर गदा प्रहारमें निपुण भीमसेनने दौडकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनके पास पहुंचकर, उसे मारनेके उद्देश्यसे इस प्रकार भीमसेनने दुर्योधनकी पसलीमें गदाका आघात किया ॥ ५२ ॥

अताडयद्भीमसेनः पार्श्वे दुर्योधनं तदा।
स विह्वलः प्रहारेण जानुभ्यामगमन्महीम् ॥ ५३ ॥

उसके लगनेसे दुर्योधनने व्याकुल होकर भीमसेनके पास ही अपने घुटने पृथ्वीमें टेक दिये ॥ ५३ ॥

तस्मिंस्तु भरतश्रेष्ठं जानुभ्यामवनीं गते।
उदतिष्ठत्ततो नादः सृञ्जयानां जगत्पते ॥ ५४ ॥

हे पृथ्वीपते ! भरतश्रेष्ठ दुर्योधनके पृथ्वीपर घुटने टेक देनेपर सृञ्जयवंशी क्षत्रिय हर्षसे गर्जने लगे ॥ ५४ ॥

तेषां तु निनदं श्रुत्वा सञ्जयानां नरर्षभः।
अमर्षाद्भरतश्रेष्ठ पुत्रस्ते समकुप्यत ॥ ५५ ॥

परन्तु भरतश्रेष्ठ ! उन सृंजयोंका वह सिंहनाद सुनकर नरश्रेष्ठ तुम्हारा पुत्र दुर्योधन उस गर्जनेको क्षमा न कर सका और अमर्षसे क्रोधमें भर गया ॥ ५५ ॥

उत्थाय तु महाबाहुः क्रुद्धो नाग इव श्वसन्।
दिधक्षन्निव नेत्राभ्यां भीमसेनमवैक्षत ॥ ५६ ॥

और महाबाहु दुर्योधन खडा होकर क्रुद्ध सांपके समान फुंकार करने लगा। उसने दोनों आंखोंसे भीमसेनकी ओर इस प्रकार देखा, मानो इन्हें भस्म कर देना चाहता है ॥ ५६ ॥

ततः स भरतश्रेष्ठो गदापाणिरभिद्रवत्।
प्रमथिष्यन्निव शिरो भीमसेनस्य संयुगे ॥ ५७ ॥

अनन्तर भरतश्रेष्ठ दुर्योधन गदा हाथमें लेकर युद्धमें भीमसेनकी ओर इस प्रकारसे दौडे, मानो अभी इनका शिर कुचल डालेंगे ॥ ५७ ॥

स महात्मा महात्मानं भीमं भीमपराक्रमः।
अताडयच्छङ्खदेशे च चचालाचलोपमः ॥ ५८ ॥

फिर महात्मा भीम पराक्रमी उसने एक गदा महामना भीमसेनकी कनपटीमें मारी, परन्तु भीमसेन उसके लगनेसे पर्वतके समान खडे ही रहे ॥ ५८ ॥

स भूयः शुशुभे पार्थस्ताडितो गदया रणे।
उद्भिन्नरुधिरो राजन्प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ५९ ॥

राजन् ! समरमें उस गदाके आघातसे पृथापुत्र भीमसेनके मस्तकसे रुधिरकी धारा बहने लगी और रुधिरके बहनेसे उनकी ऐसी शोभा बढी जैसे मद बहते हुए हाथीकी ॥ ५९ ॥

ततो गदां वीरहणीमयस्मयीं प्रगृह्य वज्राशनितुल्यनिस्वनाम् ।
अताडयच्छत्रुममित्रकर्शनो बलेन विक्रम्य धनंजयाग्रजः ॥ ६० ॥

अनन्तर अर्जुनके बडे भाई शत्रुनाशन भीमसेनने बलपूर्वक पराक्रम करके शत्रुओंका नाश करनेवाली, लोहेकी बनी, वज्र और बिजलीके समान घोर शब्द करनेवाली गदा लेकर अपने शत्रु दुर्योधनके शरीरमें मारी ॥ ६० ॥

स भीमसेनाभिहतस्तवात्मजः पपात संकम्पितदेहबन्धनः ।
सुपुष्पितो मारुतवेगताडितो महावने साल इवावघूर्णितः ॥ ६१ ॥

भीमसेनकी गदा लगनेसे तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके शरीरकी सन्धि ढीली हो गई और इस प्रकार चक्कर खाकर कांपते हुए पृथ्वीमें गिर पडे, जैसे महावनमें आंधी लगनेसे फला हुआ सालका वृक्ष टूटकर गिरता है ॥ ६१ ॥

ततः प्रणेदुर्जहृषुश्च पाण्डवाः समीक्ष्य पुत्रं पतितं क्षितौ तव ।
ततः सुतस्ते प्रतिलभ्य चेतनां समुत्पपात द्विरदो यथा ह्रदात् ॥ ६२ ॥

तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको पृथ्वीमें पडा देख पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए और सिंहनाद करने लगे। फिर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन चैतन्य होकर इस प्रकार उछलकर उठे, जैसे मतवाला हाथी तालाबसे निकलता है ॥ ६२ ॥

स पार्थिवो नित्यममर्षितस्तदा महारथः शिक्षितवत्परिभ्रमन् ।
अताडयत्पाण्डवमग्रतः स्थितं स विह्वलाङ्गो जगतीमुपास्पृशत् ॥ ६३ ॥

महारथी राजा दुर्योधनने उठकर, शिक्षित योद्धाके समान नित्य अमर्ष रहनेवाले विचरते हुए और अपने आगे खडे हुये, भीमसेनके शरीरमें एक गदा मारी। उसके लगते ही भीमसेन विह्वलांग होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ६३ ॥

स सिंहनादान्विननाद कौरवो निपात्य भूमौ युधि भीममोजसा ।
बिभेद चैवाशनितुल्यतेजसा गदानिपातेन शरीररक्षणम् ॥ ६४ ॥

भीमसेनको युद्धमें अपने बलसे भूमिपर गिराकर कुरुवंशी दुर्योधन सिंहके समान गर्जने लगे। उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगाकर चलाई हुई गदासे भीमसेनका वज्रके समान दृढ कवच तोड दिया ॥ ६४ ॥

ततोऽन्तरिक्षे निनदो महानभूद्दिवौकसामप्सरसां च नेदुषाम् ।
पपात चोच्चैरमरप्रवेरितं विचित्रपुष्पोत्करवर्षमुत्तमम् ॥ ६५ ॥

उस समय आकाशमें देवताओं और अप्सराओंका आनन्द व्यक्त करनेवाला महान् शब्द प्रकट और हुआ। और देवताओंसे ऊंचेसे की हुई विचित्र फूलोंकी उत्तम वर्षा हुई ॥ ६५ ॥

ततः परानाविशदुत्तमं भयं समीक्ष्य भूमौ पतितं नरोत्तमम् ।
अहीयमानं च बलेन कौरवं निशाम्य भेदं च दृढस्य वर्मणः ॥ ६६ ॥

अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ भीमसेनका सुदृढ कवच छिन्नभिन्न हो गया है और भीम पृथ्वीपर गिर गये हैं, कुरुराज दुर्योधनका बल क्षीण नहीं होता है, यह देख, सोमक, सृञ्जय और पाण्डवोंको बहुत भय हुआ ॥ ६६ ॥

ततो मुहूर्तादुपलभ्य चेतनां प्रमृज्य वक्त्रं रुधिरार्द्रमात्मनः ।
धृतिं समालम्ब्य विवृत्तलोचनो बलेन संस्तभ्य वृकोदरः स्थितः ॥ ६७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ २९२४ ॥

अनन्तर एक मुहूर्तमें भीमसेनने चैतन्य होकर रुधिरसे भीगा अपना मूंह पोंछा; बलपूर्वक अपनेको संभालकर धैर्यसे आंख खोलीं और सावधान होकर फिर बलसे युद्धके लिये खडे हुए ॥ ६७ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥ २९२४ ॥

: ५७ :

संजय उवाच

समुदीर्णं ततो दृष्ट्वा संग्रामं कुरुमुख्ययोः ।
अथाब्रवीदर्जुनस्तु वासुदेवं यशस्विनम् ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् धृतराष्ट्र ! जब इन दोनों कुरुकुलश्रेष्ठ वीरोंका इस प्रकार घोर युद्ध होने लगा, तब वह देखकर, अर्जुनने यशस्वी कृष्णसे पूछा ॥ १ ॥

अनयोर्वीरयोर्युद्धे को ज्यायान्भवतो मतः ।
कस्य वा को गुणो भूयानेतद्वद जनार्दन ॥ २ ॥

हे जनार्दन ! ये दोनों वीर युद्ध कर रहे हैं, आपकी सम्मतिसे इन दोनोंमेंसे कौन अधिक श्रेष्ठ है ? और किसमें कौन गुण अधिक है ? सो आप हमसे कहिये ॥ २ ॥

वासुदेव उवाच

उपदेशोऽनयोस्तुल्यो भीमस्तु बलवत्तरः ।
कृतयत्नतरस्त्वेष धार्तराष्ट्रो वृकोदरात् ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण बोले– हे अर्जुन ! इन दोनोंको विद्या समान ही मिली है, परन्तु भीमसेन बलमें अधिक है वैसे ही दुर्योधन भीमसेनसे चतुर, सावधान और प्रयत्नमें अधिक है ॥ ३ ॥

भीमसेनस्तु धर्मेण युध्यमानो न जेष्यति ।
अन्यायेन तु युध्यन्वै हन्यादेष सुयोधनम् ॥ ४ ॥

इसलिये भीमसेन धर्मपूर्वक किये युद्धसे इसको नहीं जीत सकेंगे, परन्तु यदि अन्यायसे युद्ध करेंगे तो अवश्य ही दुर्योधनको मार डालेंगे ॥ ४ ॥

मायया निर्जिता देवैरसुरा इति नः श्रुतम् ।
विरोचनश्च शक्रेण मायया निर्जितः सखे ।
मायया चाक्षिपत्तेजो वृत्रस्य बलसूदनः ॥ ५ ॥

हे मित्र ! हमने सुना है कि देवताओंने पहले मायासे ही दानवोंको जीता है, इन्द्रने विरोचनको मायासे ही जीता था, बलसूदन इन्द्रने वृत्रासुरका तेज मायासे नष्ट किया था ॥ ५ ॥

प्रतिज्ञातं तु भीमेन द्यूतकाले धनंजय ।
ऊरू भेत्स्यामि ते संख्ये गदयेति सुयोधनम् ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! भीमसेनने जुवेके समय भी प्रतिज्ञा की थी और दुर्योधनसे कहा था कि मैं युद्धमें गदासे तेरी जङ्घें तोड़ूंगा ॥ ६ ॥

सोऽयं प्रतिज्ञां तां चापि पारयित्वारिकर्शनः ।
मायाविनं च राजानं माययैव निकृन्ततु ॥ ७ ॥

सो अब शत्रुनाशन भीम मायावी राजा दुर्योधनके सङ्ग माया करके उसको नष्ट करें और अपनी प्रतिज्ञाका पालन करें ॥ ७ ॥

यद्येष बलमास्थाय न्यायेन प्रहरिष्यति ।
विषमस्थस्ततो राजा भविष्यति युधिष्ठिरः ॥ ८ ॥

यदि भीमसेन केवल अपने बलके भरोसे न्यायसे प्रहार करते रहेंगे, तो राजा युधिष्ठिरको पुनः घोर आपत्तिमें पडना पडेगा ॥ ८ ॥

पुनरेव च वक्ष्यामि पाण्डवेदं निबोध मे ।
धर्मराजापराधेन भयं नः पुनरागतम् ॥ ९ ॥

हे पाण्डव ! अब हम फिर तुमसे और बात करते हैं, सो तुम ध्यान देकर सुनो । धर्मराज युधिष्ठिरके अपराधसे अब हम लोगोंको फिर भी घोर भयमें पडना हुआ ॥ ९ ॥

कृत्वा हि सुमहत्कर्म हत्वा भीष्ममुखान्कुरून् ।
जयः प्राप्तो यशश्चाग्र्यं वैरं च प्रतियातितम् ।
तदेवं विजयः प्राप्तः पुनः संशयितः कृतः ॥ १० ॥

भीष्मादिक कौरव वीरोंको मारकर महान् कर्म करके जय और उत्तम यश प्राप्त किया, तथा वैरका बदला चुकाया गया, परन्तु अब वही प्राप्त हुई विजय फिर उन्होंने सन्देहमें डाल दी ॥ १० ॥

अबुद्धिरेषा महती धर्मराजस्य पाण्डव ।
यदेकविजये युद्धं पणितं कृतमीदृशम् ।
सुयोधनः कृती वीर एकायनगतस्तथा ॥ ११ ॥

हे पाण्डुपुत्र ! धर्मराज युधिष्ठिरने यह बडी भूल की जो दुर्योधनसे यह कह दिया कि, एककी हारजीतसे सबकी हारजीत होगी, यह नियम करके जो उन्होंने इस युद्धको जूएका दाव बना दिया । दुर्योधन चतुर, वीर और एकायनगत अर्थात् मरने या विजय होनेकी निश्चय कर चुका है ॥ ११ ॥

अपि चोशनसा गीतः श्रूयतेऽयं पुरातनः ।
श्लोकस्तत्त्वार्थसहितस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १२ ॥

इस विषयमें शुक्राचार्यका उनकी नीतिमें कहा हुआ एक प्राचीन श्लोक सुननेमें आता है, वह शास्त्रार्थसे भरा हुआ है, उसे कहता हूं, सो तुम सुनो ॥ १२ ॥

पुनरावर्तमानानां भग्नानां जीवितैषिणाम् ।
भेतव्यमरिशेषाणामेकायनगता हि ते ॥ १३ ॥

जो शत्रु मरनेसे बचे हुए युद्धमें जीवित रक्षण करनेकी इच्छासे भागकर, फिर युद्ध करनेको लौटे, तो उनसे सदा डरते रहना चाहिये, क्योंकि वे एक निश्चयपर पहुंचे होते हैं, इसे अपने हारने और मरनेका कुछ भय नहीं होता ॥ १३ ॥

सुयोधनमिमं भग्नं हतसैन्यं ह्रदं गतम् ।
पराजितं वनप्रेप्सुं निराशं राज्यलम्भने ॥ १४ ॥

इस दुर्योधनकी सब सेना मारी गई थी, वह युद्धमें हारकर युद्ध छोडकर भागा था, इसलिये तालावमें छिपा था, अब राज्य मिलनेसे निराश हो वनमें जानेकी इच्छा करता था ॥ १४ ॥

को न्वेष संयुगे प्राज्ञः पुनर्द्वन्द्वे समाह्वयेत् ।
अपि वो निर्जितं राज्यं न हरेत सुयोधनः ॥ १५ ॥

ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो युद्धमें ऐसे शत्रुको द्वन्द्व युद्ध करनेको बुलावे ? अब हमको यह सन्देह हो गया है, कि ऐसा न हो कि दुर्योधन हमारा जीता हुआ राज्य फिर छीन ले ॥ १५ ॥

यस्त्रयोदशवर्षाणि गदया कृतनिश्रमः ।
चरत्यूर्ध्वं च तिर्यक्च भीमसेनजिघांसया ॥ १६ ॥

क्योंकि इसने तेरह वर्षोंतक गदासे युद्ध करनेका सदा अभ्यास और कष्ट किया है । यह भीमसेनको मारनेके लिये इधर उधर, नीचे ऊपर घूम रहा है ॥ १६ ॥

एवं चेन्न महाबाहुरन्यायेन हनिष्यति ।
एष वः कौरवो राजा धार्तराष्ट्रो भविष्यति ॥ १७ ॥

यदि महाबाहु भीमसेन इसे अन्यायसे नहीं मारेंगे, तो अवश्य ही यह धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन तुम्हारा और कौरवोंका राजा हो जायेगा ॥ १७ ॥

धनंजयस्तु श्रुत्वैतत्केशवस्य महात्मनः ।
प्रेक्षतो भीमसेनस्य हस्तेनोरुमताडयत् ॥ १८ ॥

महात्मा श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन अर्जुनने भीमसेनके दिखते अपनी जांघमें हाथ मारा ॥ १८ ॥

गृह्य संज्ञां ततो भीमो गदया व्यचरद्रणे ।
मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च ॥ १९ ॥

उस चिन्हको देखकर भीमसेन भी चैतन्य हो गए और गदा लेकर युद्धमें यमक और अनेक प्रकारके विचित्र मण्डल करने लगे ॥ १९ ॥

दक्षिणं मण्डलं सव्यं गोमूत्रकमथापि च ।
व्यचरत्पाण्डवो राजन्नरिं संमोहयन्निव ॥ २० ॥

राजन् ! पाण्डुपुत्र भीमसेन दक्षिण, वाम और गोमूत्रक आदि अनेक मण्डलोंसे घूमते हुये अपने शत्रु दुर्योधनको मोहित करने लगे ॥ २० ॥

तथैव तव पुत्रोऽपि गदामार्गविशारदः ।
व्यचरल्लघु चित्रं च भीमसेनजिघांसया ॥ २१ ॥

उसी प्रकार गदायुद्ध विशारद तुम्हारे पुत्र दुर्योधन भी भीमसेनके वधकी इच्छासे द्रुतगतिसे अनेक प्रकारकी गतियोंसे घूमने लगे ॥ २१ ॥

+

आधुन्वन्तौ गदे घोरे चन्दनागरुरूषिते ।
वैरस्यान्तं परीप्सन्तौ रणे क्रुद्धाविवान्तकौ ॥ २२ ॥
ये दोनों वीर समरमें यमराजके समान क्रोध करके वैर समाप्त करनेके लिये चन्दन और अगुरु लगी घोर गदाओंको घुमाने लगे ॥ २२ ॥

अन्योन्यं तौ जिघांसन्तौ प्रवीरौ पुरुषर्षभौ ।
युयुधाते गरुत्मन्तौ यथा नागामिषैषिणौ ॥ २३ ॥
वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ प्रमुख वीर एक दूसरेको मारनेके लिये इस प्रकार आपसमें लडने लगे, जैसे दो गरुड किसी सांपका मांस खानेके लिये युद्ध करते हैं ॥ २३ ॥

मण्डलानि विचित्राणि चरतोर्नृपभीमयोः ।
गदासंपातजास्तत्र प्रजज्ञुः पावकार्चिषः ॥ २४ ॥
चारों ओर विचित्र मण्डलोंसे घूमकर राजा दुर्योधन और भीमसेन गदा घुमाने लगे । गदामें गदा लगनेसे आगके पतङ्गे निकलने लगे ॥ २४ ॥

समं प्रहरतोस्तत्र शूरयोर्बलिनोर्मृधे ।
क्षुब्धयोर्वायुना राजन्द्वयोरिव समुद्रयोः ॥ २५ ॥
राजन् ! दोनों बलवान् शूरवीर उस घोर युद्धमें इस प्रकार उछलकर प्रहार करने लगे, जैसे वायुसे प्रक्षुब्ध हुए दो समुद्र ॥ २५ ॥

तयोः प्रहरतोस्तुल्यं मत्तकुञ्जरयोरिव ।
गदानिर्घातसंह्रादः प्रहाराणामजायत ॥ २६ ॥
दोनोंके प्रहार समान ही चलते थे, इन दोनों मतवाले हाथियोंके समान परस्पर लडते हुवे वीरोंकी गदाओंका शब्द गिरती हुई बिजलीके समान सुनाई देता था ॥ २६ ॥

तस्मिंस्तदा संप्रहारे दारुणे संकुले भृशम् ।
उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावरिंदमौ ॥ २७ ॥
थोडे समयमें उस अत्यन्त दारुण युद्धमें दोनों शत्रुदमन वीर परस्पर लडाई करते करते बहुत थक गए ॥ २७ ॥

तौ मुहूर्तं समाश्वस्य पुनरेव परंतपौ ।
अभ्यहारयतां क्रुद्धौ प्रगृह्य महती गदे ॥ २८ ॥
फिर शत्रुतापन दोनों क्षणभर विश्रान्त लेकर पुनः क्रोधमें भरकर विशाल गदाएं लेकर घोर युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥

तयोः समभवद्युद्धं घोररूपमसंवृतम् ।
गदानिपातै राजेन्द्र तक्षतोर्वै परस्परम् ॥ २९ ॥

हे राजेन्द्र ! गदाके प्रहारसे परस्पर घायल करते हुए उन दोनोंमें भयंकर और घोर युद्ध हो रहा था ॥ २९ ॥

व्यायामप्रद्रुतौ तौ तु वृषभाक्षौ तरस्विनौ ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ पङ्कस्थौ महिषाविव ॥ ३० ॥

हे राजेन्द्र ! बैलके समान आंखवाले ये दोनों वेगवान् वीर प्रयत्नपूर्वक धावा करके कीचडमें रहे हुए दो भैंसोंके समान परस्पर आघात करके घोर युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥

जर्जरीकृतसर्वाङ्गौ रुधिरेणाभिसंप्लुतौ ।
ददृशाते हिमवति पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ३१ ॥

अनन्तर दोनोंके समस्त शरीर फूटने और रुधिरमें भीगनेके कारण, ऐसे दीखने लगे जैसे हिमाचलपर फूले हुये टेसूके वृक्ष ॥ ३१ ॥

दुर्योधनेन पार्थस्तु विवरे संप्रदर्शिते ।
ईषदुत्स्मयमानस्तु सहसा प्रससार ह ॥ ३२ ॥

अनन्तर जब दुर्योधनने अर्जुनको संकेत करके तिरछी नजरसे देखा, तब वह हंसकर सहसा भीमसेनकी ओर बढा ॥ ३२ ॥

तमभ्याशगतं प्राज्ञो रणे प्रेक्ष्य वृकोदरः ।
अवाक्षिपद्गदां तस्मै वेगेन महता बली ॥ ३३ ॥

समरमें उसे नजिक आया देख प्राज्ञ, बलवान् वृकोदरने उसपर बडे वेगसे गदा चलायी ॥ ३३ ॥

अवक्षेपं तु तं दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशां पते ।
अपासर्पत्ततः स्थानात्सा मोघा न्यपतद्भुवि ॥ ३४ ॥

पृथ्वीपते ! उन्हें गदा चलाते देख तुम्हारा पुत्र दुर्योधन सहसा उस स्थानसे हटकर उसने उस गदाको वृथा कर दिया, वह गदा पृथ्वीमें गिर पडी ॥ ३४ ॥

मोक्षयित्वा प्रहारं तं सुतस्तव स संभ्रमात् ।
भीमसेनं च गदया प्राहरत्कुरुसत्तमः ॥ ३५ ॥

कुरुसत्तम ! अनन्तर उस प्रहारसे स्वयंको बचाकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने बडे वेगसे एक गदा भीमसेनके शरीरमें मारी ॥ ३५ ॥

तस्य विष्यन्दमानेन रुधिरेणामितौजसः ।
प्रहारगुरुपाताच्च मूर्छेव समजायत ॥ ३६ ॥

तब उसके आघातसे महातेजस्वी भीमसेनके शरीरसे रुधिर बहने लगा और उस प्रहारके गहरे आघातसे उन्हें मूर्च्छा सी आ गई ॥ ३६ ॥

दुर्योधनस्तं न वेद पीडितं पाण्डवं रणे ।
धारयामास भीमोऽपि शरीरमतिपीडितम् ॥ ३७ ॥

परन्तु दुर्योधन यह न समझ सके, कि पाण्डुपुत्र भीमसेन युद्धमें अत्यन्त व्याकुल हो गये हैं। उनके शरीरमें अत्यन्त वेदना हो रही थी, तो भी भीमसेन उसे सहन कर रहे थे ॥ ३७ ॥

अमन्यत स्थितं ह्येनं प्रहरिष्यन्तमाहवे ।
अतो न प्राहरत्तस्मै पुनरेव तवात्मजः ॥ ३८ ॥

उन्होंने यही समझा कि युद्धमें ये हमको गदा मारनेके लिये खडे हैं। इसी लिये तुम्हारे पुत्रने पुनः उनको दूसरी गदा नहीं मारी ॥ ३८ ॥

ततो मुहूर्तमाश्वस्य दुर्योधनमवस्थितम् ।
वेगेनाभ्यद्रवद्राजन्भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ३९ ॥

राजन्! थोडे ही समयमें सावधान होकर, प्रतापी भीमसेन गदा लेकर वेगसे निकट आये हुए दुर्योधनकी ओर दौडे ॥ ३९ ॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य संरब्धममितौजसम् ।
मोघमस्य प्रहारं तं चिकीर्षुर्भरतर्षभ ॥ ४० ॥

भरतश्रेष्ठ! महातेजस्वी भीमसेनको क्रोधित होकर अपनी ओर आक्रमणके लिये आते देख, दुर्योधनने उनके उस प्रहारको व्यर्थ करनेकी इच्छा की ॥ ४० ॥

अवस्थाने मतिं कृत्वा पुत्रस्तव महामनाः ।
इयेषोत्पतितुं राजंश्छलयिष्यन्वृकोदरम् ॥ ४१ ॥

राजन्! तुम्हारे महामना पुत्रने भीमसेनको छलनेके लिये पहले स्थिर खडा रहनेका विचार करके, फिर उछलकर दूर हटजाना चाहा ॥ ४१ ॥

अबुध्यद्भीमसेनस्तद्राज्ञस्तस्य चिकीर्षितम् ।
अथास्य समभिद्रुत्य समुत्क्रम्य च सिंहवत् ॥ ४२ ॥

भीमसेनने भी राजा दुर्योधनके मनकी वात जान ली और सिंहके समान गर्जकर उनकी ओर आक्रमणके लिये दौडे ॥ ४२ ॥

सृत्या वञ्चयतो राजन्पुनरेवोत्पतिष्यतः ।
ऊरुभ्यां प्राहिणोद्राजन्गदां वेगेन पाण्डवः ॥ ४३ ॥

राजन्! पैंतरेसे छलने और फिर ऊपर उछलनेकी इच्छावाले दुर्योधनकी जांघोंपर वडे वेगसे पांडुपुत्र भीमने गदा मारी ॥ ४३ ॥

सा वज्रनिष्पेषसमा प्रहिता भीमकर्मणा।
ऊरू दुर्योधनस्याथ बभञ्ज प्रियदर्शनौ ॥ ४४ ॥

वह वज्रपातके समान भयावह कर्म करनेवाले भीमसेनकी गदा लगते ही दुर्योधनकी अत्यन्त सुन्दर दोनों जङ्घा टूट गई ॥ ४४ ॥

स पपात नरव्याघ्रो वसुधामनुनादयन्।
भग्नोरुर्भीमसेनेन पुत्रस्तव महीपते ॥ ४५ ॥

हे महीपते! भीमसेनने उसकी जांघे जब तोड डालीं तब तुम्हारे पुत्र नरव्याघ्र दुर्योधन पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए गिर पडे ॥ ४५ ॥

वबुर्वाताः सनिर्घाताः पांसुवर्षं पपात च।
चचाल पृथिवी चापि सवृक्षक्षुपपर्वता ॥ ४६ ॥

उस समय बिजलीकी गडगडाहटके साथ भयानक वायु चलने लगा, आकाशसे धूलि और रुधिर बर्षने लगा, वृक्ष, वन और पर्वतों सहित पृथ्वी कांपने लगी ॥ ४६ ॥

तस्मिन्निपतिते वीरे पत्यौ सर्वमहीक्षिताम्।
महास्वना पुनर्दीप्ता सनिर्घाता भयंकरी
पपात चोल्का महती पतिते पृथिवीपतौ ॥ ४७ ॥

सब राजाओंके स्वामी पृथ्वीपति वीर दुर्योधनके पृथ्वीमें गिर जानेपर, आकाशसे फिर बडा शब्द और बिजलीके गर्जनके साथ प्रज्वलित, भयंकर और महान् उल्का पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ४७ ॥

तथा शोणितवर्षं च पांसुवर्षं च भारत।
ववर्ष मघवांस्तत्र तव पुत्रे निपातिते ॥ ४८ ॥

भारत! तुम्हारे पुत्रके गिर जानेपर वहां इन्द्रने रक्त और धूलिकी वर्षा की ॥ ४८ ॥

यक्षाणां राक्षसानां च पिशाचानां तथैव च।
अन्तरिक्षे महानादः श्रूयते भरतर्षभ ॥ ४९ ॥

भरतश्रेष्ठ! यक्ष, राक्षस और पिशाच आकाशमें महान् शब्द करके गर्जने लगे ॥ ४९ ॥

तेन शब्देन घोरेण मृगाणामथ पक्षिणाम्।
जज्ञे घोरतमः शब्दो बहूनां सर्वतोदिशम् ॥ ५० ॥

उस घोर शब्दके साथ पशु और पक्षियोंका भी घोरतम शब्द सब दिशाओंमें सुनाई देने लगे ॥ ५० ॥

ये तत्र वाजिनः शेषा गजाश्च मनुजैः सह ।
मुमुचुस्ते महानादं तव पुत्रे निपातिते ॥ ५१ ॥

वहां जो बचे हुये घोडे, हाथी और वीर पुरुष थे, वे सब तुम्हारे पुत्रके गिर जानेपर महान् शब्द करने लगे ॥ ५१ ॥

भेरीशङ्खमृदङ्गानामभवच्च स्वनो महान् ।
अन्तर्भूमिगतश्चैव तव पुत्रे निपातिते ॥ ५२ ॥

तुम्हारा पुत्र इस भूमिपर गिरा हुआ देख, भेरी, शङ्ख और मृदङ्गोंका महान् ध्वनि होने लगी ॥ ५२ ॥

बहुपादैर्बहुभुजैः कबन्धैर्घोरदर्शनैः ।
नृत्यद्भिर्भयदैर्व्याप्ता दिशस्तत्राभवन्नृप ॥ ५३ ॥

नृप ! चारों ओरसे नाचते हुए अनेक पैर और अनेक हाथवाले भयानक रूपवाले और भय देनेवाले कबन्ध व्याप्त हो रहे थे ॥ ५३ ॥

ध्वजवन्तोऽस्त्रवन्तश्च शस्त्रवन्तस्तथैव च ।
प्राकम्पन्त ततो राजंस्तव पुत्रे निपातिते ॥ ५४ ॥

राजन् ! तुम्हारे पुत्रके गिर जानेपर वहां ध्वज और अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले सब वीर कांपने लगे ॥ ५४ ॥

ह्रदाः कूपाश्च रुधिरमुद्वेमुर्नृपसत्तम ।
नद्यश्च सुमहावेगाः प्रतिस्रोतोवहाभवन् ॥ ५५ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! तालाव और कुएं सब रुधिरसे भरकर बहने लगे । अत्यंत वेगशालिनी नदियां अपने उद्गमकी ओर उल्टी बहने लगीं ॥ ५५ ॥

पुल्लिङ्गा इव नार्यस्तु स्त्रीलिङ्गाः पुरुषाभवन् ।
दुर्योधने तदा राजन्पतिते तनये तव ॥ ५६ ॥

राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके गिर जानेपर पुरुष-स्त्री और स्त्री-पुरुषोंके समान दिखाई देने लगे ॥ ५६ ॥

दृष्ट्वा तानद्भुतोत्पातान्पाञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
आविग्नमनसः सर्वे बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ५७ ॥

भरतर्षभ ! इन अद्भुत घोर उत्पातोंको देखकर पाण्डवोंके साथ सब पाञ्चाल बहुत उद्विग्न मनके हो गये ॥ ५७ ॥

ययुर्देवा यथाकामं गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
कथयन्तोऽद्भुतं युद्धं सुतयोस्तव भारत ॥ ५८ ॥

हे भारत ! अनन्तर देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ तुम्हारे दोनों पुत्रोंके अद्भुत युद्धका वर्णन करते हुए अपने स्थानको चले गये ॥ ५८ ॥

तथैव सिद्धा राजेन्द्र तथा वातिकचारणाः ।
नरसिंहौ प्रशंसन्तौ विप्रजग्मुर्यथागतम् ॥ ५९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शैल्यपर्वणि सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ २९८३ ॥

राजेन्द्र ! उसी प्रकार सिद्ध वातिक और चारण उन दोनों पुरुषसिंहोंकी प्रशंसा करते हुए जैसे आये थे, वैसे अपने घरको चले गये ॥ ५९ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ २९८३ ॥

: ५८ :

संजय उवाच

तं पातितं ततो दृष्ट्वा महाशालमिवोद्गतम् ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे बभूवुस्तत्र पाण्डवाः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! दुर्योधनको कटे हुए महान् शाल वृक्षके समान पृथ्वीमें गिराया गया देख सब पाण्डव अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुए ॥ १ ॥

उन्मत्तमिव मातङ्गं सिंहेन विनिपातितम् ।
ददृशुर्हृष्टरोमाणः सर्वे ते चापि सोमकाः ॥ २ ॥

जैसे मतवाला हाथी सिंहसे मरकर पृथ्वीमें गिर जाता है, ऐसे ही दुर्योधनको भूमिपर पडा देख, सब सोमकवंशी क्षत्रिय अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥ २ ॥

ततो दुर्योधनं हत्वा भीमसेनः प्रतापवान् ।
पतितं कौरवेन्द्रं तमुपगम्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

हे महाराज ! इस प्रकार दुर्योधनको गिराकर पृथ्वीमें पडे हुए कौरवराज दुर्योधनके पास जाकर, प्रतापवान् भीमसेन बोले ॥ ३ ॥

गौर्गौरिति पुरा मन्द द्रौपदीमेकवाससम् ।
यत्सभायां हसन्नस्मांस्तदा वदसि दुर्मते
तस्यावहासस्य फलमद्य त्वं समवाप्नुहि ॥ ४ ॥

रे दुर्बुद्धे ! रे मूर्ख ! तूने पहले एक वस्त्रधारिणी द्रौपदीको सभामें बुलाकर हमारा उपहास करके हमको बैल बैल कहा था, यह उसी उपहासका फल आज तुझको प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

एवमुक्त्वा स वामेन पदा मौलिमुपास्पृशत् ।
शिरश्च राजसिंहस्य पादेन समलोडयत् ॥ ५ ॥
ऐसा कहकर भीमसेनने अपना बायां पैर दुर्योधनके मुकुटपर रख दिया और फिर राजसिंह दुर्योधनके शिरको अपने पैरसे ठकराया ॥ ५ ॥

तथैव क्रोधसंरक्तो भीमः परबलार्दनः ।
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं यत्तच्छृणु नराधिप ॥ ६ ॥
नराधिप ! अनन्तर शत्रुसेना नाशन भीमसेनने क्रोधित होकर लाल आंखें करके फिर जो बात की, वह सुनो ॥ ६ ॥

येऽस्मान्पुरोऽपनृत्यन्त पुनर्गौरिति गौरिति ।
तान्वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति ॥ ७ ॥
जो मूर्ख पहिले हमको बैल बैल कहकर नाचते थे, अब हम भी उन्हें बैल बैल कहकर बार बार नाचते हैं ॥ ७ ॥

नास्माकं निकृतिर्वह्निर्नाक्षद्यूतं न वञ्चना ।
स्वबाहुबलमाश्रित्य प्रबाधामो वयं रिपून् ॥ ८ ॥
हम लोग छल, अग्नि, फांसे जुआ और कपटसे किसीको जीतना नहीं चाहते, परन्तु हम अपने बाहुबलसे शत्रुओंको दुःख देते हैं ॥ ८ ॥

सोऽवाप्य वैरस्य परस्य पारं वृकोदरः प्राह शनैः प्रहस्य ।
युधिष्ठिरं केशवसृञ्जयांश्च धनंजयं माद्रवतीसुतौ च ॥ ९ ॥
हे राजन् ! इस वैरको समाप्त करके भीमसेन धीरे धीरे हंसकर युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, सृंजयगण, अर्जुन और माद्रीपुत्र नकुल-सहदेवसे बोले ॥ ९ ॥

रजस्वलां द्रौपदीमानयन्ये ये चाप्यकुर्वन्त सदस्यवस्त्राम् ।
तान्पश्यध्वं पाण्डवैर्धार्तराष्ट्रान्रणे हतांस्तपसा याज्ञसेन्याः ॥ १० ॥
जिन मूर्खोंने रजस्वला द्रौपदीको सभामें बुलाकर उसका वस्त्र खींचकर उसे वहां नंगी करनेका प्रयत्न किया था, उन धृतराष्ट्रके पुत्रोंको पाण्डवोंने युद्धमें मारा। देखो यह द्रौपदीके तपका फल है ॥ १० ॥

ये नः पुरा षण्ढतिलानवोचन्क्रूरा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य पुत्राः ।
ते नो हताः सगणाः सानुबन्धाः कामं स्वर्गं नरकं वा व्रजामः ॥ ११ ॥
जिन राजा धृतराष्ट्रके दुष्ट पुत्रोंने हमें पहिले तिलोंके समान नपुंसक कहा था, उनको हमने बन्धु और सेनाके सहित मारा, अब हम चाहे स्वर्गमें जांय और चाहे नरकमें ॥ ११ ॥

पुनश्च राज्ञः पतितस्य भूमौ स तां गदां स्कन्धगतां निरीक्ष्य ।
वामेन पादेन शिरः प्रमृद्य दुर्योधनं नैकृतिकेत्यवोचत् ॥ १२ ॥

अनन्तर भीमसेन फिर पृथ्वीपर पडे हुए राजा दुर्योधनके पास जाकर, उनके कन्धेसे लगी हुई उनकी गदा हाथसे पकडकर और बायें पैरसे उनका शिर कुचल कर कहा कि यही छली दुर्योधन है ॥ १२ ॥

हृष्टेन राजन्कुरुपार्थिवस्य क्षुद्रात्मना भीमसेनेन पादम् ।
दृष्ट्वा कृतं मूर्धनि नाभ्यनन्दन्धर्मात्मानः सोमकानां प्रबर्हाः ॥ १३ ॥

राजन् ! क्षुद्र बुद्धिवाले भीमसेनने आनन्दित होकर जो कुरुकुलश्रेष्ठ दुर्योधनके शिरपर बायां पैर रखा, उनके इस कर्मको देख, धर्मात्मा श्रेष्ठ सोमकवंशी क्षत्रिय प्रसन्न नहीं हुए और उनका उन्होंने अभिनन्दन ही नहीं किया ॥ १३ ॥

तव पुत्रं तथा हत्वा कत्थमानं वृकोदरम् ।
नृत्यमानं च बहुशो धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ १४ ॥

अनन्तर तुम्हारे पुत्रको मारकर बहुत बातें करते और बार बार नाचते हुए भीमसेनसे धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार बोले ॥ १४ ॥

मा शिरोऽस्य पदा मर्दीर्मा धर्मस्तेऽत्यगान्महान् ।
राजा ज्ञातिर्हतश्चायं नैतन्न्याय्यं तवानघ ॥ १५ ॥

हे पापरहित भीम ! तुम इसके शिरको पैरसे मत ठुकराओ ! तुमसे महान् धर्मका अतिक्रमण नहीं होना चाहिये। यह राजा और अपने वंशका मनुष्य है, यह मारा गया है अब तुम्हें इसके साथ ऐसा अन्याय करना योग्य नहीं है ॥ १५ ॥

विध्वस्तोऽयं हतामात्यो हतभ्राता हतप्रजः ।
उत्सन्नपिण्डो भ्राता च नैतन्न्याय्यं कृतं त्वया ॥ १६ ॥

इसका सब तरहसे नाश हो गया है, इसके आमात्य, भाई और पुत्र भी सब मारे गये। इसको पिण्ड देनेवाला कोई नहीं रह गया है। यह हमारा साक्षात् भाई ही है। तुमने इसके साथ न्याय्यवर्तन नहीं किया है ॥ १६ ॥

धार्मिको भीमसेनोऽसावित्याहुस्त्वां पुरा जनाः ।
स कस्माद्भीमसेन त्वं राजानमधितिष्ठसि ॥ १७ ॥

पहिले तुम्हारे बारेमें सब मनुष्य कहते थे कि भीमसेन धर्मात्मा हैं। भीमसेन ! सो वही तुम आज राजा दुर्योधनको क्यों पैरसे ठुकराते हो ? ॥ १७ ॥

+

दृष्ट्वा दुर्योधनं राजा कुन्तीपुत्रस्तथागतम् ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥

इस प्रकार शोचनीय दशामें पडे हुए दुर्योधनको देख, कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर आंसू भरी आंखोंसे यह वचन बोले ॥ १८ ॥

नूनमेतद्बलवता धात्रादिष्टं महात्मना ।
यद्वयं त्वां जिघांसामस्त्वं चास्मान्कुरुसत्तम ॥ १९ ॥

हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! जो हम लोग तुम्हें और तुम हमें मार डालना चाहते थे, यह सचमुच ही महात्मा बलवान् प्रारब्धने ही निश्चित किया था ॥ १९ ॥

आत्मनो ह्यपराधेन महद्व्यसनमीदृशम् ।
प्राप्तवानसि यल्लोभान्मदाद्बाल्याच्च भारत ॥ २० ॥

हे भारत ! तुम अपने ही अपराधसे, लोभ, मद और बालबुद्धिके कारण इस घोर आपत्तिमें पडे ॥ २० ॥

घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितॄंस्तथा ।
पुत्रान्पौत्रांस्तथाचार्यांस्ततोऽसि निधनं गतः ॥ २१ ॥

तुम अपने मित्र, भाई, पिता समान श्रेष्ठ मनुष्य, पुत्र और पोते आदियोंका नाश कराके अब फिर स्वयं मारे गये ॥ २१ ॥

तवापराधादस्माभिर्भ्रातरस्ते महारथाः ।
निहता ज्ञातयश्चान्ये दिष्टं मन्ये दुरत्ययम् ॥ २२ ॥

तुम्हारे अपराधसे ही हम लोगोंने तुम्हारे महारथी भाई और जातिके सब लोगोंका वध किया है, हम इसे प्रारब्धका दुर्लंघ्य उद्देश्य मानता हूं ॥ २२ ॥

स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य विह्वलाः ।
गर्हयिष्यन्ति नो नूनं विधवाः शोककर्शिताः ॥ २३ ॥

राजा धृतराष्ट्रके पुत्र और पोतोंकी विधवा स्त्रियां शोकसे व्याकुल होकर निश्चय ही हमारी निन्दा करेंगी ॥ २३ ॥

एवमुक्त्वा सुदुःखार्तो निशश्वास स पार्थिवः ।
विललाप चिरं चापि धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ॥ ३००७ ॥

ऐसा कहकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर दुःखसे व्याकुल होकर ऊंचे सांस लेकर बहुत समयतक विलाप करते रहे ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें अट्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥ ॥ ३००७ ॥

: ५९ :

धृतराष्ट्र उवाच

अधर्मेण हतं दृष्ट्वा राजानं माधवोत्तमः ।
किमब्रवीत्तदा सूत बलदेवो महाबलः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे सूत! हमारे पुत्र राजा दुर्योधनको अधर्मसे मारा गया देख, महाबलवान् मधुकुलश्रेष्ठ बलदेवने क्या कहा? ॥ १ ॥

गदायुद्धविशेषज्ञो गदायुद्धविशारदः ।
कृतवान्रौहिणेयो यत्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

सञ्जय! गदायुद्धको विशेष रूपसे जाननेवाले और गदायुद्धमें कुशल रोहिणीपुत्र बलदेवने वहां क्या किया? सो हमसे कहो ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच

शिरस्यभिहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन ते सुतम् ।
रामः प्रहरतां श्रेष्ठश्चुक्रोध बलवद्बली ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले– तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनके शिरपर भीमसेनको पैरका प्रहार करते देख शस्त्र चलानेवालोंमें श्रेष्ठ बलवान् बलरामको महा क्रोध हुआ ॥ ३ ॥

ततो मध्ये नरेन्द्राणामूर्ध्वबाहुर्हलायुधः ।
कुर्वन्नार्तस्वरं घोरं धिग्धिग्भीमेत्युवाच ह ॥ ४ ॥

फिर हलधारी बलदेव राजाओंके बीचमें हाथ ऊपर उठाकर घोर आर्तनाद करते हुए बोले। भीमसेन! तुम्हें धिक्कार है, धिक्कार है ॥ ४ ॥

अहो धिग्यदधो नाभेः प्रहृतं शुद्धविक्रमे ।
नैतद्दृष्टं गदायुद्धे कृतवान्यद्वृकोदरः ॥ ५ ॥

भीमसेनको बार बार धिक्कार है, हमने गदायुद्धके शास्त्रमें कहीं ऐसा नहीं देखा, जैसा अधर्म इस पवित्र गदायुद्धमें भीमसेनने नाभिसे नीचे प्रहार किया है ॥ ५ ॥

अधो नाभ्या न हन्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः ।
अयं त्वशास्त्रविन्मूढः स्वच्छन्दात्संप्रवर्तते ॥ ६ ॥

नाभिके नीचे शस्त्रका आघात न करे, यह गदायुद्धके शास्त्रका निश्चय है, परन्तु यह शास्त्र ज्ञानसे अज्ञानी मूर्ख भीमसेन यहां इच्छानुसार जो चाहता है सो कर बैठ रहा है ॥ ६ ॥

तस्य तत्तद्ब्रुवाणस्य रोषः समभवन्महान् ।
ततो लाङ्गलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद्बली ॥ ७ ॥

ऐसी सब बात कहते कहते बलरामका क्रोध बहुत बढ गया। फिर ऐसा कहकर बलवान् बलदेव अपना हल उठाकर भीमसेनकी ओर दौडे ॥ ७ ॥

तस्योर्ध्वबाहोः सदृशं रूपमासीन्महात्मनः ।
बहुधातुविचित्रस्य श्वेतस्येव महागिरेः ॥ ८ ॥

उस समय ऊपरको हाथ उठाये हल लिये महात्मा बलदेवका ऐसा रूप दीखने लगा, जैसे अनेक धातुयुक्त विचित्र श्वेत पर्वतका ॥ ८ ॥

तमुत्पतन्तं जग्राह केशवो विनयानतः ।
बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद्बलवद्बली ॥ ९ ॥

बलदेवको भीमसेनकी ओर वेगसे जाते हुए देख विनयशील बलवान् श्रीकृष्णने दौडकर अपने लम्बे और मोटे हाथोंसे प्रयत्नपूर्वक पकड लिया ॥ ९ ॥

सितासितौ यदुवरौ शुशुभातेऽधिकं ततः ।
नभोगतौ यथा राजंश्चन्द्रसूर्यौ दिनक्षये ॥ १० ॥

राजन् ! उस समय इन दोनों श्याम और गौर यदुकुलश्रेष्ठ वीरोंकी ऐसी शोभा दीखती थी, जैसे सन्ध्या समय आकाशमें उदय हुये सूर्य और चन्द्रमाकी ॥ १० ॥

उवाच चैनं संरब्धं शमयन्निव केशवः ।
आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिर्मित्रमित्रोदयस्तथा ।
विपरीतं द्विषत्स्वेतत्षड्विधा वृद्धिरात्मनः ॥ ११ ॥

क्रुद्ध हुए बलरामको शान्त करते हुए श्रीकृष्ण बोले, हे पुरुषसिंह ! अपनी वृद्धि, मित्रकी वृद्धि, मित्रके मित्रकी वृद्धि और इसके विपरीत शत्रुके ओरकी स्थिति अर्थात् शत्रुकी हानि, शत्रुके मित्रकी हानि और शत्रुके मित्रके मित्रकी हानि ये छः प्रकारकी अपनी वृद्धि समझी जाती हैं ॥ ११ ॥

आत्मन्यपि च मित्रेषु विपरीतं यदा भवेत् ।
तदा विद्यान्मनोज्यानिमाशु शान्तिकरो भवेत् ॥ १२ ॥

यदि इन छः वृद्धियोंमेंसे अपने और अपने मित्रके लिये उलटे फल हो अर्थात् अपनी, अपने मित्रकी और अपने मित्रके मित्रकी हानि हो, और शत्रुकी वृद्धि, शत्रुके मित्रकी वृद्धि या शत्रुके मित्रके मित्रकी वृद्धि हो, तो मनको कुछ दुःख होना चाहिये और उस हानिके निवारणके लिये शीघ्र उपाय करना चाहिये ॥ १२ ॥

अस्माकं सहजं मित्रं पाण्डवाः शुद्धपौरुषाः ।
स्वकाः पितृष्वसुः पुत्रास्ते परैर्निकृता भृशम् ॥ १३ ॥

शुद्ध पुरुषार्थका आश्रय करनेवाले पराक्रमी पाण्डव हमारे स्वभावहीसे मित्र हैं, हमारी फूफीके पुत्र होनेसे हमारे ही हैं। इनको शत्रुओंने बहुत छल लिया था ॥ १३ ॥

प्रतिज्ञापारणं धर्मः क्षत्रियस्येति वेत्थ ह ।
सुयोधनस्य गदया भङ्क्तास्म्यूरू महाहवे ।
इति पूर्वं प्रतिज्ञातं भीमेन हि सभातले ॥ १४ ॥

और हम यह भी जानते हैं कि अपनी प्रतिज्ञा सिद्ध करना ही क्षत्रियोंका धर्म है । भीमसेनने पहिले ही सभामें यह प्रतिज्ञा की थी, कि हम महायुद्धमें अपनी गदासे दुर्योधनकी जाङ्घें तोडेंगे ॥ १४ ॥

मैत्रेयेणाभिशप्तश्च पूर्वमेव महर्षिणा ।
उरू भेत्स्यति ते भीमो गदयेति परन्तप ।
अतो दोषं न पश्यामि मा क्रुधस्त्वं प्रलम्बहन् ॥ १५ ॥

हे शत्रुतापन ! महामुनि मैत्रेयने भी पहिले ही दुर्योधनको शाप दिया था कि तेरी दोनों जाङ्घें भीमसेन अपनी गदासे तोडेंगे। हे प्रलम्बनाशन ! इसलिये आप क्रोध न कीजिये । हम इसमें भीमका कुछ दोष नहीं देखते ॥ १५ ॥

यौनैर्हार्दैश्च संबन्धैः संबद्धाः स्नेह पाण्डवैः ।
तेषां वृद्ध्याभिवृद्धिर्नो मा क्रुधः पुरुषर्षभ ॥ १६ ॥

यौन और परस्पर सुख देनेवाले प्रेमसे यहां हम पाण्डवोंसे बंधे हुए हैं । हे पुरुषश्रेष्ठ ! उनकी वृद्धिसे हमारी वृद्धि है । इसलिये आप क्षमा कीजिये, क्रोध मत कीजिये ॥ १६ ॥

राम उवाच

धर्मः सुचरितः सद्भिः सह द्वाभ्यां नियच्छति ।
अर्थश्चात्यर्थलुब्धस्य कामश्चातिप्रसङ्गिनः ॥ १७ ॥

बलराम बोले– सत्पुरुषोंने धर्मका अच्छी तरह पालन किया है, परन्तु वह अर्थ और काम इन दोनोंसे प्रतिबंधित होता है । अत्यन्त लोभीका अर्थ नाश करता है, और अत्यन्त कामीका काम नाश कर देता है, ये दोनों धर्मकी हानि करते हैं ॥ १७ ॥

धर्मार्थौ धर्मकामौ च कामार्थौ चाप्यपीडयन् ।
धर्मार्थकामान्योऽभ्येति सोऽत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ १८ ॥

जो मनुष्य धर्मसे अर्थको, धर्मसे कामको और कामसे अर्थको नाश नहीं करता, अर्थात् धर्मके आश्रयसे अर्थ, अर्थके आश्रयसे धर्म और अर्थधर्मके आश्रयसे काम करता है, वही अत्यन्त सुख भोगता है ॥ १८ ॥

तदिदं व्याकुलं सर्वं कृतं धर्मस्य पीडनात् ।
भीमसेनेन गोविन्द कामं त्वं तु यथात्थ माम् ॥ १९ ॥

गोविंद ! यहां भीमसेनने धर्मको हानि पहुंचाई है, इसलिये सब नाश हो गया। तुम मुझे यह धर्मयुक्त बता रहे हैं, परंतु यह सब तुम्हारे मनकी ही कल्पना है ॥ १९ ॥

वासुदेव उवाच

अरोषणो हि धर्मात्मा सततं धर्मवत्सलः ।
भवान्प्रख्यायते लोके तस्मात्संशाम्य मा क्रुधः ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण बोले— आप जगत्में सब लोक आपको क्रोधरहित, धर्मात्मा और निरन्तर धर्मका प्यारा इस रूपमें विख्यात करके जानते हैं। इसलिये आप शान्त हो जाईये, क्रोध न कीजिये ॥२०॥

प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञां पाण्डवस्य च ।
आनृण्यं यातु वैरस्य प्रतिज्ञायाश्च पाण्डवः ॥ २१ ॥

आप यह जान लीजिये कि कलियुग आ गया, पाण्डुपुत्र भीमसेनकी प्रतिज्ञा भी ध्यानमें लीजिए। और पाण्डुकुमार भीमको वैर और प्रतिज्ञाके ऋणसे पूरा होने दीजिये ॥ २१ ॥

सञ्जय उवाच

धर्मच्छलमपि श्रुत्वा केशवात्स विशां पते ।
नैव प्रीतमना रामो वचनं प्राह संसदि ॥ २२ ॥

सञ्जय बोले— पृथ्वीपते ! श्रीकृष्णके धर्मरूपी छलसे भरे वचन सुनके बलराम प्रसन्नचित्त नहीं हुए और राजाओंकी सभामें बोले— ॥ २२ ॥

हत्वाधर्मेण राजानं धर्मात्मानं सुयोधनम् ।
जिह्मयोधीति लोकेऽस्मिन्ख्यातिं यास्यति पाण्डवः ॥ २३ ॥

धर्मात्मा राजा दुर्योधनको पाण्डुपुत्र भीमसेनने अधर्मसे मारा है, इसलिये इस जगत्में ये छली योद्धाके रूपमें विख्यात हो जायेंगे ॥ २३ ॥

दुर्योधनोऽपि धर्मात्मा गतिं यास्यति शाश्वतीम् ।
ऋजुयोधी हतो राजा धार्तराष्ट्रो नराधिपः ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन सरलतापूर्वक धर्मसे युद्ध करते मारे गये, इसलिये धर्मात्मा दुर्योधन शाश्वत गतिको प्राप्त करेंगे ॥ २४ ॥

युद्धदीक्षां प्रविश्याजौ रणयज्ञं वितत्य च ।
हुत्वात्मानममित्राग्नौ प्राप चावभृथं यशः ॥ २५ ॥

युद्धकी दीक्षा लेकर, युद्धमें प्रविष्ट होकर, रणयज्ञका विस्तार करके, शत्रुरूपी अग्निमें अपना शरीर जलाकर, इन्होंने यज्ञरूपी अवभृत स्नानका समय प्राप्त किया है ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा रथमास्थाय रौहिणेयः प्रतापवान् ।
श्वेताभ्रशिखराकारः प्रययौ द्वारकां प्रति ॥ २६ ॥

ऐसा कहकर सफेद मेघके अग्रभागके समान सुन्दर शरीरवाले रोहिणी पुत्र प्रतापी बलदेव रथपर चढकर द्वारिकाको चले गये ॥ २६ ॥

पाञ्चालाश्च सवार्ष्णेयाः पाण्डवाश्च विशां पते ।
रामे द्वारवतीं याते नातिप्रमनसोऽभवन् ॥ २७ ॥

हे पृथ्वीपते ! जब बलदेव द्वारिकाको चले गये, तब पाञ्चाल, वृष्णिवंशी और पाण्डव अत्यन्त दुःखी हो गये ॥ २७ ॥

ततो युधिष्ठिरं दीनं चिन्तापरमधोमुखम् ।
शोकोपहतसंकल्पं वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ॥ २८ ॥

अनन्तर शोकसे व्याकुल, चिन्तासे नीचा मुख किये, शोकसे सङ्कल्प त्यागे एकान्तमें बैठे, दुःखी युधिष्ठिरके पास जाकर श्रीकृष्ण बोले ॥ २८ ॥

धर्मराज किमर्थं त्वमधर्ममनुमन्यसे ।
हतबन्धोर्यदेतस्य पतितस्य विचेतसः ॥ २९ ॥

हे धर्मराज ! आप अधर्मको किस लिये मान्यता दे रहे हैं ? दुर्योधनके सब बन्धु–बान्धव मारे गये, यह पृथ्वीमें अचेत हो गिरे है ॥ २९ ॥

दुर्योधनस्य भीमेन मृद्यमानं शिरः पदा ।
उपप्रेक्षसि कस्मात्त्वं धर्मज्ञः सन्नराधिप ॥ ३० ॥

भीमसेन दुर्योधनके शिरपर पैर रखकर उसको कुचल रहे हैं, राजन् ! आप धर्मज्ञ होनेपर भी यह नजीकसे कैसे देख रहे हैं ? ॥ ३० ॥

युधिष्ठिर उवाच

न ममैतत्प्रियं कृष्ण यद्राजानं वृकोदरः ।
पदा मूर्ध्न्यस्पृशत्क्रोधान्न च हृष्ये कुलक्षये ॥ ३१ ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले– हे कृष्ण ! इस समयमें जो भीमसेनने क्रोध करके राजाके शिरमें पैर मारा, सो हमें अच्छा नहीं जान पडा, इस कुलनाशसे हम प्रसन्न नहीं हैं ॥ ३१ ॥

निकृत्या निकृता नित्यं धृतराष्ट्रसुतैर्वयम् ।
बहूनि परुषाण्युक्त्वा वनं प्रस्थापिताः स्म ह ॥ ३२ ॥

धृतराष्ट्रके पुत्रोंने हमारे सङ्ग बहुत ही कपट करके हमें सताया और अनेक कठोर वचन कहके हमें वनको निकाला था ॥ ३२ ॥

भीमसेनस्य तद्दुःखमतीव हृदि वर्तते ।
इति संचिन्त्य वार्ष्णेय मयैतत्समुपेक्षितम् ॥ ३३ ॥

वृष्णिनन्दन ! वही महादुःख भीमसेनके हृदयमें भरा था । यही विचारकर हमने इस समय उनके इसकी उपेक्षा की है ॥ ३३ ॥

तस्माद्धत्वाकृतप्रज्ञं लुब्धं कामवशानुगम् ।
लभतां पाण्डवः कामं धर्मेऽधर्मेऽपि वा कृते ॥ ३४ ॥

अब इस छली, लोभी और कामवशीको धर्म अथवा अधर्मसे मारकर पाण्डुपुत्र भीमसेन अपनी इच्छा पूरी करें ॥ ३४ ॥

सञ्जय उवाच

इत्युक्ते धर्मराजेन वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ।
काममस्त्वेवमिति वै कृच्छ्राद्यदुकुलोद्वहः ॥ ३५ ॥

सञ्जय बोले—धर्मराजके ऐसे वचन सुन यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्ण बडे दुःखसे बोले, अब ऐसा ही ठीक है, इस समय हम सब लोगोंकी यही प्रार्थना है, कि आप भीमसेनपर कृपा कीजिये ॥ ३५॥

इत्युक्तो वासुदेवेन भीमप्रियहितैषिणा ।
अन्वमोदत तत्सर्वं यद्भीमेन कृतं युधि ॥ ३६ ॥

भीमसेनका प्रिय और कल्याण चाहनेवाले श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन, महाराज युधिष्ठिरने भीमने युद्धभूमिमें जो कुछ किया था उस सबको अनुमोदन दिया ॥ ३६ ॥

भीमसेनोऽपि हत्वाजौ तव पुत्रममर्षणः ।
अभिवाद्याग्रतः स्थित्वा संप्रहृष्टः कृताञ्जलिः ॥ ३७ ॥

अनन्तर क्रोधी भीमसेन भी युद्धमें तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको मारकर बहुत प्रसन्न हुए और अपने बडे भाईको प्रणाम करके उनके आगे हाथ जोडकर खडे हो गये ॥ ३७ ॥

प्रोवाच सुमहातेजा धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
हर्षादुत्फुल्लनयनो जितकाशी विशां पते ॥ ३८ ॥

पृथ्वीपते ! उस समय महातेजस्वी अपनी विजयसे प्रकाशमान्, हर्षसे प्रसन्न नयन भीमसेन धर्मराज युधिष्ठिरको बोले ॥ ३८ ॥

तवाद्य पृथिवी राजन्क्षेमा निहतकण्टका ।
तां प्रशाधि महाराज स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ३९ ॥

हे महाराज ! आज यह पृथ्वी आपके शत्रुरूपी कंटकोंसे शून्य होकर सुखावह होकर, आपकी हो गयी है । अब आप इसका राज्य कीजिये और अपने धर्मका पालन कीजिये ॥ ३९ ॥

यस्तु कर्तास्य वैरस्य निकृत्या निकृतिप्रियः ।
सोऽयं विनिहतः शेते पृथिव्यां पृथिवीपते ॥ ४० ॥

हे पृथ्वीनाथ ! जिसको छल और कपट प्रिय था, जो इस वैरका मूल कपट कर्ता था, वह वैरका मूल छली दुर्योधन मारा जाकर पृथ्वीमें सोता है ॥ ४० ॥

दुःशासनप्रभृतयः सर्वे ते चोग्रवादिनः ।
राधेयः शकुनिश्चापि निहतास्तव शात्रवः ॥ ४१ ॥

कठोर वचन कहनेवाले दुःशासन आदि धृतराष्ट्रपुत्र, राधापुत्र कर्ण और शकुनि आदि सब आपके शत्रु मारे गये ॥ ४१ ॥

सेयं रत्नसमाकीर्णा मही सवनपर्वता ।
उपावृत्ता महाराज त्वामद्य निहतद्विषम् ॥ ४२ ॥

महाराज ! अब यह रत्नोंसे भरी, वन और पर्वतोंके सहित सब पृथ्वी आपको शत्रुहीन महाराज जानके आपके आधीन हैं ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गतं वैरस्य निधनं हतो राजा सुयोधनः ।
कृष्णस्य मतमास्थाय विजितेयं वसुन्धरा ॥ ४३ ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले– हे महावीर ! वैर समाप्त हो गया, राजा दुर्योधन मारा गया, यह सब काम श्रीकृष्णके मतका स्वीकार करके हुआ, हमने यह पृथ्वी जीती ॥ ४३ ॥

दिष्ट्या गतस्त्वमानृण्यं मातुः कोपस्य चोभयोः ।
दिष्ट्या जयसि दुर्धर्ष दिष्ट्या शत्रुर्निपातितः ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ ३०५१ ॥

तुम प्रारब्धहीसे माता और क्रोधके ऋणसे उऋण हो गये; हे दुर्धर्ष ! प्रारब्धहीसे तुम्हारी विजय हुई और प्रारब्धहीसे तुमने अपने शत्रुको मारा ॥ ४४ ॥

महाभारतके शल्यपर्वमें उनसठवां अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ ३०५१ ॥

: ६० :

धृतराष्ट्र उवाच

हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ।
पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! भीमसेनसे दुर्योधनको युद्धमें मारा गया देख, पाण्डव और सृञ्जयोंने क्या किया ? सो हमसे कहो ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ।
सिंहेनेव महाराज मत्तं वनगजं वने ॥ २ ॥

सञ्जय बोले– महाराज ! जैसे सिंहसे मरकर मतवाला जंगली हाथी पृथ्वीमें गिर जाता है, वैसे ही भीमसेनके हाथसे युद्धमें मारा हुआ दुर्योधनको देखे ॥ २ ॥

प्रहृष्टमनसस्तत्र कृष्णेन सह पाण्डवाः ।
पाञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव निहते कुरुनन्दने ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण सहित पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जय कुरुनन्दन दुर्योधनके मारे जानेपर बहुत प्रसन्न हुवे ॥ ३ ॥

आविध्यन्नुत्तरीयाणि सिंहनादांश्च नेदिरे ।
नैतान्हर्षसमाविष्टानियं सेहे वसुंधरा ॥ ४ ॥

कोई अपना दुपट्टा घुमाने लगा, कोई सिंहके समान गर्जने लगा । यह पृथ्वी आनन्दसे भरे हुए पाण्डव वीरोंका भार न सह सकी ॥ ४ ॥

धनूंष्यन्ये व्याक्षिपन्त ज्याश्चाप्यन्ये तथाक्षिपन् ।
दध्मुरन्ये महाशङ्खानन्ये जघ्नुश्च दुन्दुभीः ॥ ५ ॥

कोई धनुष टङ्कारने लगा, कोई रोदा लगाने लगा, कोई बडे बडे शङ्ख बजाने लगे, कोई नगारे भी बजाने लगे ॥ ५ ॥

चिक्रीडुश्च तथैवान्ये जहसुश्च तवाहिताः ।
अब्रुवंश्चासकृद्वीरा भीमसेनमिदं वचः ॥ ६ ॥

आपके शत्रु कूदने लगे, कोई उछलने लगे और कोई हंसने लगे । अनन्तर कितने ही वीर भीमसेनके पास आकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥

दुष्करं भवता कर्म रणेऽद्य सुमहत्कृतम् ।
कौरवेन्द्रं रणे हत्वा गदयातिकृतश्रमम् ॥ ७ ॥

कौरवराज दुर्योधनने बहुत दिनतक गदायुद्धमें परिश्रम किया था, आज युद्धमें उसका वध करके आपने बडा और दुष्कर कर्म किया है ॥ ७ ॥

इन्द्रेणेव हि वृत्रस्य वधं परमसंयुगे ।
त्वया कृतममन्यन्त शत्रोर्वधमिमं जनाः ॥ ८ ॥

हम लोग इस कर्मको ऐसा समझते हैं, जैसे महासंग्राममें इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था, तुमने किया हुआ यह शत्रुका वध उसके समान ही है ॥ ८ ॥

चरन्तं विविधान्मार्गान्मण्डलानि च सर्वशः ।
दुर्योधनमिमं शूरं कोऽन्यो हन्याद्वृकोदरात् ॥ ९ ॥

अनेक मार्ग चलते और सब तरहके मण्डलोंमें घूमते हुए इस शूरवीर दुर्योधनको भीमसेनके सिवाय और दूसरा कौन मार सकता था ? ॥ ९ ॥

वैरस्य च गतः पारं त्वमिहान्यैः सुदुर्गमम् ।
अशक्यमेतदन्येन संपादयितुमीदृशम् ॥ १० ॥

आप वैरके पार हो गये, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है। ऐसा अशक्य कर्म दूसरा और कोई क्षत्रिय नहीं कर सकता ॥ १० ॥

कुञ्जरेणेव मत्तेन वीर संग्राममूर्धनि ।
दुर्योधनशिरो दिष्ट्या पादेन मृदितं त्वया ॥ ११ ॥

हे वीर ! आपने प्रारब्धहीसे युद्धमें मतवाले हाथीके समान दुर्योधनके शिरको पैरसे कुचल दिया ॥ ११ ॥

सिंहेन महिषस्येव कृत्वा संगरमद्भुतम् ।
दुःशासनस्य रुधिरं दिष्ट्या पीतं त्वयानघ ॥ १२ ॥

हे पापरहित ! प्रारब्धहीसे आपने अद्भुत युद्ध करके दुःशासनका रुधिर इस प्रकार पिया, जैसे भैंसेको मारकर सिंह रुधिर पीता है ॥ १२ ॥

ये विप्रकुर्वन्राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
मूर्ध्नि तेषां कृतः पादो दिष्ट्या ते स्वेन कर्मणा ॥ १३ ॥

जो धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको दुःख देते थे, आपने अपने विक्रमसे प्रारब्धहीसे उनके शिरपर पैर रख दिया ॥ १३ ॥

अमित्राणामधिष्ठानाद्वधाद्दुर्योधनस्य च ।
भीम दिष्ट्या पृथिव्यां ते प्रथितं सुमहद्यशः ॥ १४ ॥

भीम ! शत्रुओंपर प्रभुत्व स्थापित करके और दुर्योधनको मारनेसे आपका महान् यश पृथ्वीमें प्रारब्धसे फैल गया ॥ १४ ॥

एवं नूनं हते वृत्रे शक्रं नन्दन्ति बन्दिनः ।
तथा त्वां निहतामित्रं वयं नन्दाम भारत ॥ १५ ॥

भारत ! जैसे वृत्रासुरके मारे जानेसे इन्द्रकी प्रशंसा बन्दीजनोंने निश्चय ही की थी, वैसे ही हम लोग शत्रुको वध करनेवाले आपकी प्रशंसा करते हैं ॥ १५ ॥

दुर्योधनवधे यानि रोमाणि हृषितानि नः ।
अद्यापि न विहृष्यन्ति तानि तद्विद्धि भारत ।
इत्यब्रुवन्भीमसेनं वातिकास्तत्र संगताः ॥ १६ ॥

भारत ! दुर्योधनके मरनेसे जो हम लोगोंके रोंये खडे हुए हैं, सो अबतक नहीं बैठते हैं, यह आप जान लीजिये । भीमसेनके पास वहां एकत्र खडे हुए वे प्रशंसक वीर ऐसे वचन कह रहे थे ॥ १६ ॥

तान्हृष्टान्पुरुषव्याघ्रान्पाञ्चालान्पाण्डवैः सह ।
ब्रुवतः सदृशं तत्र प्रोवाच मधुसूदनः ॥ १७ ॥

मधुसूदन ! श्रीकृष्ण उस प्रकार वहां बात करते हुए आनन्द प्रसन्न पुरुषसिंह पाञ्चाल और पाण्डवोंसे बोले ॥ १७ ॥

न न्याय्यं निहतः शत्रुर्भूयो हन्तुं जनाधिपाः ।
असकृद्वाग्भिरुग्राभिर्निहतो ह्येष मन्दधीः ॥ १८ ॥

राजाओं ! मरे हुए शत्रुको पुनः मारना उचित नहीं । तुमने इस मूर्ख दुर्योधनको बार बार कठोर वचनोंसे व्याकुल किया है ॥ १८ ॥

तदैवैष हतः पापो यदैव निरपत्रपः ।
लुब्धः पापसहायश्च सुहृदां शासनातिगः ॥ १९ ॥

यह पापी उसी समय मारा गया था, जिस समय इसने लज्जा छोड दी थी, अब इस मूर्खको कठोर वचन सुनानेसे क्या होगा ? इस लोभीके सब पापी ही सहायक थे, ये मित्रोंके वचन नहीं मानता था ॥ १९ ॥

बहुशो विदुरद्रोणकृपगाङ्गेयसृञ्जयैः ।
पाण्डुभ्यः प्रोच्यमानोऽपि पित्र्यमंशं न दत्तवान् ॥ २० ॥

विदुर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म और सृञ्जयोंके अनेक बार प्रार्थना करके समझाते भी इसने पाण्डवोंको उनका पिताका राज्यभाग नहीं दिया ॥ २० ॥

नैष योग्योऽद्य मित्रं वा शत्रुर्वा पुरुषाधमः ।
किमनेनातितुन्नेन वाग्भिः काष्ठसधर्मणा ॥ २१ ॥

अब यह नराधम किसी योग्य नहीं है । यह किसीका मित्र वा शत्रु नहीं है । यह तो सूखे काष्ठके समान पडा है, इसे कठोर वनच सुनाकर अधिक कष्ट देनेसे क्या होगा ? ॥ २१ ॥

रथेष्वारोहत क्षिप्रं गच्छामो वसुधाधिपाः ।
दिष्ट्या हतोऽयं पापात्मा सामात्यज्ञातिबान्धवः ॥ २२ ॥

अब आप सब राजालोग शीघ्र अपने रथोंपर बैठो, हम सब डेरोंको चलेंगे । यह पापात्मा प्रारब्धहीसे अपने आमात्य, जाति और भाई-मित्रों सहित मारा गया ॥ २२ ॥

इति श्रुत्वा त्वधिक्षेपं कृष्णाद्दुर्योधनो नृपः ।
अमर्षवशमापन्न उदतिष्ठद्विशां पते ॥ २३ ॥

विशाम्पते ! श्रीकृष्णके ऐसे निन्दायुक्त वचन सुन, राजा दुर्योधनको महाक्रोध आया और वह उठा ॥ २३ ॥

स्फिग्देशेनोपविष्टः स दोर्भ्यां विष्टभ्य मेदिनीम् ।
दृष्टिं भ्रूसंकटां कृत्वा वासुदेवे न्यपातयत् ॥ २४ ॥

और पृथ्वीमें कुहनी टेककर श्रोणीपर बैठ गया । फिर भौंहें टेढी करके श्रीकृष्णकी ओर देखा ॥ २४ ॥

अर्धोन्नतशरीरस्य रूपमासीन्नृपस्य तत् ।
क्रुद्धस्याशीविषस्येव छिन्नपुच्छस्य भारत ॥ २५ ॥

भारत ! उस समय राजाका आधा शरीर उठा हुआ था । राजा दुर्योधनका रूप उस समय ऐसा दिखायी देता था, जैसे क्रोध भरे पूंछ कटे विषीले सांपका ॥ २५ ॥

प्राणान्तकरणीं घोरां वेदनामविचिन्तयन् ।
दुर्योधनो वासुदेवं वाग्भिरुग्राभिरार्दयत् ॥ २६ ॥

उस समय दुर्योधन अपने प्राणान्त करनेवाली भयंकर पीडाकी चिन्ता न करते हुए, वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णको अपने बहुत कठोर वचनोंसे दुःख देते हुए बोले ॥ २६ ॥

कंसदासस्य दायाद न ते लज्जास्त्यनेन वै ।
अधर्मेण गदायुद्धे यदहं विनिपातितः ॥ २७ ॥

अरे, कंसके दासके बेटे ! मैं अधर्मसे गदायुद्धमें मारा गया हूं, इस कृत्यके कारण तुम्हें कुछ भी लज्जा नहीं होती ॥ २७ ॥

ऊरू भिन्धीति भीमस्य स्मृतिं मिथ्या प्रयच्छता ।
किं न विज्ञातमेतन्मे यदर्जुनमवोचथाः ॥ २८ ॥

तुमने ही भीमसेनको मिथ्या याद दिला दी कि इसकी जांघे तोड । इस समय तुमने अर्जुनसे जो कुछ कहा था, क्या मैं वह नहीं जानता ? ॥ २८ ॥

घातयित्वा महीपालानृजुयुद्धान्सहस्रशः ।
जिह्मैरुपायैर्बहुभिर्न ते लज्जा न ते घृणा ॥ २९ ॥

सरलतापूर्वक धर्मसे युद्ध करते हुए सहस्रों राजाओंको तुमने बहुत कुटिल उपायोंसे अधर्मसे मरवा दिया, इस कारण तुम्हें लज्जा नहीं आती और घृणा भी नहीं होती ॥ २९ ॥

अहन्यहनि शूराणां कुर्वाणः कदनं महत् ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य घातितस्ते पितामहः ॥ ३० ॥

प्रतिदिन शूरवीरोंका जो महान् नाश कर रहे थे, उन पितामह भीष्मका तुमने शिखण्डीको आगे करके वध कराया ॥ ३० ॥

अश्वत्थाम्नः सनामानं हत्वा नागं सुदुर्मते ।
आचार्यो न्यासितः शस्त्रं किं तन्न विदितं मम ॥ ३१ ॥

अरे, दुर्बुद्धे ! अश्वत्थामाके सदृश नामके हाथीको मारकर बलवान् गुरुजीसे शस्त्र नीचे रखवा लिये, क्या वह मैं नहीं जानता? ॥ ३१ ॥

स चानेन नृशंसेन धृष्टद्युम्नेन वीर्यवान् ।
पात्यमानस्त्वया दृष्टो न चैनं त्वमवारयः ॥ ३२ ॥

और इस दुष्ट धृष्टद्युम्नने वीर्यवान् आचार्यको उस स्थितिमें मार डाला; जिसे तुम देखते रहे, परंतु तुमने इसे नहीं रोका ॥ ३२ ॥

वधार्थं पाण्डुपुत्रस्य याचितां शक्तिमेव च ।
घटोत्कचे व्यंसयथाः कस्त्वत्तः पापकृत्तमः ॥ ३३ ॥

क्या मैंने यह नहीं सुना कि पाण्डुपुत्र अर्जुनको मारनेके लिये जो इन्द्रसे कर्णने शक्ति मांगी थी, वह तुमने घटोत्कचके ऊपर छुडवा दी ? तुम्हारे समान जगत्में और कौन महापापी होगा? ॥ ३३ ॥

छिन्नबाहुः प्रायगतस्तथा भूरिश्रवा बली ।
त्वया निसृष्टेन हतः शैनेयेन दुरात्मना ॥ ३४ ॥

हाथ कटे आमरण अनशनका व्रत लेकर बैठे हुए, बलवान् भूरिश्रवाको उसी अवस्थामें तुम्हारी सम्मतिसे दुरात्मा सात्यकीने मारा ॥ ३४ ॥

कुर्वाणश्चोत्तमं कर्म कर्णः पार्थजिगीषया ।
व्यंसनेनाश्वसेनस्य पन्नगेन्द्रसुतस्य वै ॥ ३५ ॥

अर्जुनको जीतनेकी इच्छासे कर्ण उत्तम पराक्रम कर रहा था। नागराजपुत्र अश्वसेनको तुमने विफल कर दिया ॥ ३५ ॥

पुनश्च पतिते चक्रे व्यसनार्तः पराजितः ।
पातितः समरे कर्णश्चक्रव्यग्रोऽग्रणीर्नृणाम् ॥ ३६ ॥

फिर कर्णके रथका पहिया जब गढ्ढेमें गिर गया और वह उसे उठानेमें व्यग्र था, तब युद्धमें उसे संकटसे व्याकुल और पराजित मानकर उस मनुष्याग्रणी कर्णको मरवा दिया ॥ ३६ ॥

यदि मां चापि कर्णं च भीष्मद्रोणौ च संयुगे ।
ऋजुना प्रतियुध्येथा न ते स्याद्विजयो ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

यदि मेरे, कर्ण, भीष्म और द्रोणाचार्यके साथ सरलतापूर्वक तुम धर्मसे युद्ध करने पाते, तो तुम्हारी कदापि विजय नहीं होती ॥ ३७ ॥

त्वया पुनरनार्येण जिह्ममार्गेण पार्थिवाः ।
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो वयं चान्ये च घातिताः　　　　॥ ३८ ॥

परन्तु तुम जैसे अनार्यने छल कपट करके कुटिल मार्गसे स्वधर्म पालन करनेवाले हम लोगोंका और दूसरे राजाओंका भी नष्ट करवाया ॥ ३८ ॥

वासुदेव उवाच

हतस्त्वमसि गान्धारे सभ्रातृसुतबान्धवः ।
सगणः ससुहृच्चैव पापमार्गमनुष्ठितः　　　　॥ ३९ ॥

श्रीकृष्ण बोले— हे दुष्टात्मा गान्धारीपुत्र ! अब तू भाई, पुत्र, बान्धव, सेना और मित्रोंके सहित पाप मार्गपर चलते चलते मर गया ॥ ३९ ॥

तवैव दुष्कृतैर्वीरौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ ।
कर्णश्च निहतः संख्ये तव शीलानुवर्तकः　　　　॥ ४० ॥

तेरे ही दुष्ट कर्मोंसे वीर भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये, तेरे स्वभावका अनुसरण करनेवाला कर्ण भी युद्धमें मारा गया ॥ ४० ॥

याच्यमानो मया मूढ पित्र्यमंशं न दित्ससि ।
पाण्डवेभ्यः स्वराज्यार्धं लोभाच्छकुनिनिश्चयात्　　　　॥ ४१ ॥

अरे मूर्ख ! हमने बार बार पाण्डवोंको उनकी पैतृक सम्पत्ति और आधा राज्य मांगा, पर तुमने शकुनिकी सलाह मानकर और लोभके कारण नहीं दिया ॥ ४१ ॥

विषं ते भीमसेनाय दत्तं सर्वे च पाण्डवाः ।
प्रदीपिता जतुगृहे मात्रा सह सुदुर्मते　　　　॥ ४२ ॥

अरे दुर्बुद्धे ! तुमने भीमसेनको विष दिया, माताके सहित सब पाण्डवोंको लाक्षागृहमें जला डालनेका प्रयत्न किया ॥ ४२ ॥

सभायां याज्ञसेनी च कृष्टा द्यूते रजस्वला ।
तदैव तावद्दुष्टात्मन्वध्यस्त्वं निरपत्रपः　　　　॥ ४३ ॥

निर्लज्ज ! दुष्टात्मन् ! जुवेके समय भरी सभामें रजस्वला द्रौपदीको तुम लोगोंने खींचकर लाया, उसी समय तुम वधके लिये योग्य हो गये थे ॥ ४३ ॥

अनक्षज्ञं च धर्मज्ञं सौबलेनाक्षवेदिना ।
निकृत्या यत्पराजैषीस्तस्मादसि हतो रणे　　　　॥ ४४ ॥

जुवा न जाननेवाले महात्मा धर्मज्ञ युधिष्ठिरको, जुवा जाननेवाले सुबलपुत्र शकुनिने छलसे पराजित किया था, इसी पापके लिये तुम इस प्रकार युद्धमें मारा गया है ॥ ४४ ॥

जयद्रथेन पापेन यत्कृष्णा क्लेशिता वने ।
यातेषु मृगयां तेषु तृणबिन्दोरथाश्रमे ॥ ४५ ॥

जिस समय तृणबिन्दु मुनिके आश्रममें रहते हुये पाण्डव आखेटको गये थे, तब पापी जयद्रथने वनमें द्रौपदीको जो क्लेश दिया था ॥ ४५ ॥

अभिमन्युश्च यद्बाल एको बहुभिराहवे ।
त्वद्दोषैर्निहतः पाप तस्मादसि हतो रणे ॥ ४६ ॥

हे पापी ! तुम्हारे ही दोषोंके कारण अनेक वीरोंने मिलकर अकेले बालक अभिमन्युको युद्धमें मारा । इसी लिये तुम इस प्रकार युद्धमें मारा गया है ॥ ४६ ॥

दुर्योधन उवाच

अधीतं विधिवद्दत्तं भूः प्रशास्ता ससागरा ।
मूर्ध्नि स्थितममित्राणां को नु स्वन्ततरो मया ॥ ४७ ॥

दुर्योधन बोले– हे कृष्ण ! हमने विधिपूर्वक अध्ययन किया, दान दिये, समुद्र पर्यन्त पृथ्वीका राज्य किया, शत्रुओंके शिरपर पैर रखकर खडे रहें, हमारे समान उत्तम अन्त किसका हुआ है ? ॥ ४७ ॥

यदिष्टं क्षत्रबन्धूनां स्वधर्ममनुपश्यताम् ।
तदिदं निधनं प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ॥ ४८ ॥

महात्मा अपने धर्मपर दृष्टि रखनेवाले क्षत्रिय बन्धु जिस योग्य प्रकारकी इच्छा करते हैं, उसी प्रकार यह मृत्यु मुझे प्राप्त हुई है, फिर मुझसे अच्छा अन्त और किसका हुआ है ? ॥ ४८ ॥

देवार्हा मानुषा भोगाः प्राप्ता असुलभा नृपैः ।
ऐश्वर्यं चोत्तमं प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ॥ ४९ ॥

जिन भोगोंको दूसरे राजा नहीं भोग सकते, जो उनके लिये दुर्लभ हैं, ऐसे देवताओंके योग्य मानव भोग हमने प्राप्त करके भोगे, मैंने उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त किया, फिर हमसे अच्छा अन्त और किसका हुआ है ? ॥ ४९ ॥

ससुहृत्सानुबन्धश्च स्वर्गं गन्ताहमच्युत ।
यूयं विहतसंकल्पाः शोचन्तो वर्तयिष्यथ ॥ ५० ॥

अच्युत ! अब हम अपने मित्र और भाइयों सहित स्वर्गमें जायेंगे, तुम लोग अपने सब सङ्कल्प नष्ट होकर शोकसे व्याकुल होकर जगत्में रहोगे ॥ ५० ॥

संजय उवाच

अस्य वाक्यस्य निधने कुरुराजस्य भारत ।
अपतत्सुमहद्वर्षं पुष्पाणां पुण्यगन्धिनाम् ॥ ५१ ॥

सञ्जय बोले– भारत ! इस वचनके पूरे होते ही बुद्धिमान् कुरुराज दुर्योधनके ऊपर पवित्र सुगन्धि भरे फूलोंकी बडी वर्षा होने लगी ॥ ५१ ॥

अवादयन्त गन्धर्वा जगुश्चाप्सरसां गणाः ।
सिद्धाश्च मुमुचुर्वाचः साधु साध्विति भारत ॥ ५२ ॥
भारत ! गन्धर्व मनोहर बाजे बजाने लगे, अप्सराएँ उनका यश गाने लगीं, सिद्ध दुर्योधनको धन्य धन्य कहने लगे ॥ ५२ ॥

ववौ च सुरभिर्वायुः पुण्यगन्धो मृदुः सुखः ।
व्यराजतामलं चैव नभो वैडूर्यसंनिभम् ॥ ५३ ॥
उत्तम सुगन्धि भरी मनोहर, मृदु और सुखकारक वायु चलने लगी, आकाश निर्मल वैडूर्य मणिके समान दीखने लगा; और दिशा भी निर्मल हो गयीं ॥ ५३ ॥

अत्यद्भुतानि ते दृष्ट्वा वासुदेवपुरोगमाः ।
दुर्योधनस्य पूजां च दृष्ट्वा व्रीडामुपागमन् ॥ ५४ ॥
इन अद्भुत शकुनोंको और दुर्योधनकी यह पूजा देख, श्रीकृष्णादिक सब लज्जित हो गये ॥ ५४ ॥

हतांश्चाधर्मतः श्रुत्वा शोकार्ताः शुशुचुर्हि ते ।
भीष्मं द्रोणं तथा कर्णं भूरिश्रवसमेव च ॥ ५५ ॥
भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण और भूरिश्रवाको अधर्मसे मारा हुआ सुन सब लोग शोकसे व्याकुल होकर दुःख करने लगे ॥ ५५ ॥

तांस्तु चिन्तापरान्दृष्ट्वा पाण्डवान्दीनचेतसः ।
प्रोवाचेदं वचः कृष्णो मेघदुन्दुभिनिस्वनः ॥ ५६ ॥
पाण्डवोंको दीन चित्त और चिन्ता करते देखकर श्रीकृष्ण मेघ और नगाडेके समान गम्भीर शब्दसे इस प्रकार बोले— ॥ ५६ ॥

नैष शक्योऽतिशीघ्रास्त्रस्ते च सर्वे महारथाः ।
ऋजुयुद्धेन विक्रान्ता हन्तुं युष्माभिराहवे ॥ ५७ ॥
और केवल सरलतापूर्ण धर्मयुद्धसे आप लोग भीष्मादिक महारथी पराक्रमी वीरोंको युद्धमें नहीं मार सकते थे ॥ ५७ ॥

उपाया विहिता ह्येते मया तस्मान्नराधिपाः ।
अन्यथा पाण्डवेयानां नाभविष्यज्जयः क्वचित् ॥ ५८ ॥
इस शीघ्र शस्त्र चलानेवाले दुर्योधनको कोई जीत नहीं सकता था । हे राजाओ ! इस लिए मैंने इन उपायोंके योजना की थी, अन्यथा कदापि पाण्डवोंकी जय नहीं होती ॥ ५८ ॥

+

ते हि सर्वे महात्मानश्चत्वारोऽतिरथा भुवि ।

न शक्या धर्मतो हन्तुं लोकपालैरपि स्वयम् ॥ ५९ ॥

भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण और भूरिश्रवा ये चारों पृथ्वीपर अति रथी और महात्मा करके प्रख्यात थे, इनको धर्मयुद्ध करके साक्षात् लोकपाल भी नहीं मार सकते थे ॥ ५९ ॥

तथैवायं गदापाणिर्धार्तराष्ट्रो गतक्लमः ।

न शक्यो धर्मतो हन्तुं कालेनापीह दण्डिना ॥ ६० ॥

और इस परिश्रमरहित गदाधारी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको भी धर्मयुद्धमें साक्षात् दण्डधारी यमराज भी नहीं मार सकते थे ॥ ६० ॥

न च वो हृदि कर्तव्यं यदयं घातितो नृपः ।

मिथ्यावध्यास्तथोपायैर्बहवः शत्रवोऽधिकाः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार जो यह राजा मारा गया है, इसके लिये आप लोग इसका अपने मनमें कुछ विचार न कीजिये । अनेक अधिक बलवान् शत्रु नानाविध उपायों और कपट नीतिसे मारने योग्य होते हैं ॥ ६१ ॥

पूर्वैरनुगतो मार्गो देवैरसुरघातिभिः ।

सद्भिश्चानुगतः पन्थाः स सर्वैरनुगम्यते ॥ ६२ ॥

पहिले दैत्यनाशक देवताओंने इस मार्गका अनुसरण किया है । जिस मार्गसे महात्मा लोग चले हैं उसीसे सब लोग चलते हैं ॥ ६२ ॥

कृतकृत्याः स्म सायाह्ने निवासं रोचयामहे ।

साश्वनागरथाः सर्वे विश्रमामो नराधिपाः ॥ ६३ ॥

अब हम लोग कृतकृत्य हो गये, सन्ध्या हो गई विश्राम करनेकी इच्छा होती है । राजाओ ! अब सब लोग सब घोडे, हाथी और रथ सहित डेरोंको चले और विश्राम करें ॥ ६३ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा तदानीं पाण्डवैः सह ।

पाञ्चाला भृशसंहृष्टा विनेदुः सिंहसंघवत् ॥ ६४ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन पाण्डवों सहित सब पाञ्चाल बहुत प्रसन्न होकर, सिंह समूहके समान गर्जने लगे ॥ ६४ ॥

ततः प्राध्मापयञ्शङ्खान्पाञ्चजन्यं च माधवः ।

हृष्टा दुर्योधनं दृष्ट्वा निहतं पुरुषर्षभाः ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ३११६ ॥

फिर श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया । अनन्तर श्रीकृष्ण और सब वीर दुर्योधनको मारा हुआ देखकर बहुत प्रसन्न हुए और अपने अपने शङ्ख बजाने लगे ॥ ६५ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें साठवां अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥ ३११६ ॥

: ६१ :

सञ्जय उवाच

ततस्ते प्रययुः सर्वे निवासाय महीक्षितः ।
शङ्खान्प्रध्मापयन्तो वै हृष्टाः परिघबाहवः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— राजन् ! अनन्तर परिघके समान हाथवाले सब राजाओंने अपने अपने शङ्ख बजाए और प्रसन्न होकर अपने डेरोंको विश्राम करनेके लिये चले ॥ १ ॥

पाण्डवान्गच्छतश्चापि शिबिरं नो विशां पते ।
महेष्वासोऽन्वगात्पश्चाद्युयुत्सुः सात्यकिस्तथा ॥ २ ॥

प्रजापते ! हमारे शिविरकी ओर जाते हुए उन पाण्डवोंके पीछे महा धनुषधारी युयुत्सु, सात्यकि ॥ २ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
सर्वे चान्ये महेष्वासा ययुः स्वशिबिराण्युत ॥ ३ ॥

सेनापति धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदीके पांचों पुत्र और अन्य सब महाधनुषधारी वीर भी उन शिविरोंमें गये ॥ ३ ॥

ततस्ते प्राविशन्पार्था हतत्विट्कं हतेश्वरम् ।
दुर्योधनस्य शिबिरं रङ्गवद्विसृते जने ॥ ४ ॥

अनन्तर सब कुन्तीपुत्र पाण्डवोंने जिसका स्वामी मारा गया और दर्शकोंके चले जानेपर सूना होनेवाले रंगमण्डपके समान शोभाहीन दुर्योधनके शिविरमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥

गतोत्सवं पुरमिव हृतनागमिव ह्रदम् ।
स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठं वृद्धामात्यैरधिष्ठितम् ॥ ५ ॥

उस समय उन डेरोंमें विशेष करके स्त्रियां, नपुंसक और बूढे मन्त्रियोंके सिवाय और कोई न था । उस डेरेकी शोभा ऐसी दीखती थी जैसे उत्सव रहित भूमि और हाथी रहित तलावकी ॥ ५ ॥

तत्रैतान्पर्युपातिष्ठन्दुर्योधनपुरःसराः ।
कृताञ्जलिपुटा राजन्काषायमलिनाम्बराः ॥ ६ ॥

राजन् ! तब दुर्योधनके आगे चलनेवाले सब सेवक मैले और गेरूके कपडे पहनकर हाथ जोडे हुए पाण्डवोंके आगे आ खडे हुए ॥ ६ ॥

शिबिरं समनुप्राप्य कुरुराजस्य पाण्डवाः ।
अवतेरुर्महाराज रथेभ्यो रथसत्तमाः ॥ ७ ॥

महाराज ! कुरुराजके डेरोंमें पहुंचकर पाण्डव आदि महारथी अपने अपने रथोंसे उतरे ॥ ७ ॥

ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः ।
स्थितः प्रियहिते नित्यमतीव भरतर्षभ ॥ ८ ॥

भरतर्षभ ! अनन्तर अर्जुनका सदा प्रिय और कल्याण चाहनेवाले श्रीकृष्ण गाण्डीवधारी अर्जुनसे बोले ॥ ८ ॥

अवरोपय गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी ।
अथाहमवरोक्ष्यामि पश्चाद्भरतसत्तम ॥ ९ ॥

भरतसत्तम ! तुम स्वयं बहुत शीघ्र अपना गाण्डीव धनुष और दोनो बाणोंसे भरें अक्षय तूणीर लेकर रथसे उतर जाओ । तब मैं पीछे रथसे उतरूंगा ॥ ९ ॥

स्वयं चैवावरोह त्वमेतच्छ्रेयस्तवानघ ।
तच्चाकरोत्तथा वीरः पाण्डुपुत्रो धनंजयः ॥ १० ॥

हे पापरहित ! तुम स्वयं उतर जाओ, तुम्हारा इसहीमें कल्याण है । श्रीकृष्णके वचन सुन वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनने वैसा ही किया ॥ १० ॥

अथ पश्चात्ततः कृष्णो रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम् ।
अवारोहत मेधावी रथाद्गाण्डीवधन्वनः ॥ ११ ॥

अनन्तर बुद्धिमान् श्रीकृष्ण भी घोडेकी लगाम छोडकर गाण्डीवधारी अर्जुनके रथसे स्वयं उतर पडे ॥ ११ ॥

अथावतीर्णे भूतानामीश्वरे सुमहात्मनि ।
कपिरन्तर्दधे दिव्यो ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ॥ १२ ॥

जगत् स्वामी महात्मा श्रीकृष्णके उतरते ही गाण्डीवधारी अर्जुनका ध्वजस्वरूप दिव्य कपि रथसे अन्तर्द्धान हो गया ॥ १२ ॥

स दग्धो द्रोणकर्णाभ्यां दिव्यैरस्त्रैर्महारथः ।
अथ दीप्तोऽग्निना ह्याशु प्रजज्वाल महीपते ॥ १३ ॥

महीपते ! अनन्तर वह महारथ, जो पहले ही द्रोण और कर्णके दिव्य अस्त्रोंसे दग्धप्राय हुआ था, शीघ्र ही विना लगाये अग्निसे आप ही आप जल उठा ॥ १३ ॥

सोपासङ्गः सरश्मिश्च साश्वः सयुगबन्धुरः ।
भस्मीभूतोऽपतद्भूमौ रथो गाण्डीवधन्वनः ॥ १४ ॥

थोडे ही समयमें आसन, लगाम, घोडे, धूर और पहियोंके समेत गाण्डीवधारीका वह रथ भस्म होकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ १४ ॥

तं तथा भस्मभूतं तु दृष्ट्वा पाण्डुसुताः प्रभो ।
अभवन्विस्मिता राजन्नर्जुनश्चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥
कृताञ्जलिः सप्रणयं प्रणिपत्याभिवाद्य च ।
गोविन्द कस्माद्भगवन्रथो दग्धोऽयमग्निना ॥ १६ ॥

प्रभो ! राजन् ! अर्जुनके उस रथको भस्म हुआ देख सब पाण्डुपुत्र आश्चर्य करने लगे । अनन्तर हाथ जोडकर और चरणोंमें प्रणाम करके प्रेमसे अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले— हे भगवन् ! हे गोविन्द ! यह रथ अग्निसे क्यों जल गया ॥ १५—१६ ॥

किमेतन्महदाश्चर्यमभवद्यदुनन्दन ।
तन्मे ब्रूहि महाबाहो श्रोतव्यं यदि मन्यसे ॥ १७ ॥

हे यदुनन्दन ! हे महाबाहो ! यह क्या महान् आश्चर्य हुआ ? यदि आप हमें सुनाने योग्य समझें तो मुझसे कहिये ? ॥ १७ ॥

वासुदेव उवाच

अस्त्रैर्बहुविधैर्दग्धः पूर्वमेवायमर्जुन ।
मदधिष्ठितत्वात्समरे न विशीर्णः परंतप ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण बोले— हे परंतप अर्जुन ! यह रथ नाना प्रकारके अस्त्रोंसे पहिले ही जल चुका था, परन्तु मैं बैठा था, इसलिये समरमें भस्म होकर गिर न सका ॥ १८ ॥

इदानीं तु विशीर्णोऽयं दग्धो ब्रह्मास्त्रतेजसा ।
मया विमुक्तः कौन्तेय त्वय्यद्य कृतकर्मणि ॥ १९ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! अब आज तुम्हारा सब काम पूर्ण हो चुका, इसलिये मैंने भी इसे छोड दिया; इसलिये पहिले ही ब्रह्मास्त्रके तेजसे दग्ध हुआ यह रथ अब भस्म होकर गिर पडा ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच

ईषदुत्स्मयमानश्च भगवान्केशवोऽरिहा ।
परिष्वज्य च राजानं युधिष्ठिरमभाषत ॥ २० ॥

संजय बोले— अनन्तर शत्रुनाशन भगवान् श्रीकृष्ण किंचित् हंसकर और महाराज युधिष्ठिरको आलिंगन देकर इस प्रकार बोले ॥ २० ॥

दिष्ट्या जयसि कौन्तेय दिष्ट्या ते शत्रवो जिताः ।
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ २१ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! प्रारब्धहीसे आपकी विजय हो गई है और प्रारब्धहीसे आपका शत्रु परास्त हो गया, प्रारब्धहीसे गाण्डीवधारी अर्जुन, पाण्डुपुत्र भीमसेन ॥ २१ ॥

त्वं चापि कुशली राजन्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
मुक्ता वीरक्षयादस्मात्संग्रामान्निहतद्विषः ।
क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि भारत ॥ २२ ॥

राजन् ! आप, माद्रीपुत्र पाण्डुकुमार नकुल और सहदेव ये सबके सब इस घोर वीर क्षय करनेवाले संग्रामसे कुशलपूर्वक बचे और आपके शत्रु मारे गये । भारत ! अब आगे आपको जो कुछ समयानुसार करना हो सो शीघ्रतासे कीजिये ॥ २२ ॥

उपयातमुपप्लव्यं सह गाण्डीवधन्वना ।
आनीय मधुपर्कं मां यत्पुरा त्वमवोचथाः ॥ २३ ॥

मेरे लिये मधुपर्क अर्पित करके पहिलेके समय गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ जब मैं उपप्लव्यमें आया था, तब आपने जो हमसे कहा था ॥ २३ ॥

एष भ्राता सखा चैव तव कृष्ण धनञ्जयः ।
रक्षितव्यो महाबाहो सर्वास्वापत्स्विति प्रभो ।
तव चैवं ब्रुवाणस्य तथेत्येवाहमब्रुवम् ॥ २४ ॥

श्रीकृष्ण ! यह अर्जुन आपका भाई और मित्र है, महाबाहो ! प्रभो ! आप सब आपत्तियोंमें इसकी रक्षा कीजियेगा । आपने जब ऐसा कहा तब 'ऐसा ही होगा' कहकर मैंने भी आपके वचन स्वीकार किये थे ॥ २४ ॥

स सव्यसाची गुप्तस्ते विजयी च नरेश्वर ।
भ्रातृभिः सह राजेन्द्र शूरः सत्यपराक्रमः ।
मुक्तो वीरक्षयादस्मात्संग्रामाल्लोमहर्षणात् ॥ २५ ॥

नरेश्वर ! राजेन्द्र ! सो यह शूरवीर सत्यपराक्रमी सव्यसाची भाई अर्जुन अपने भाइयोंके सहित इस वीरक्षय करनेवाले, रोमांचकारी घोर युद्धसे बचे और विजयी हुए हैं; हमने भी आपकी आज्ञानुसार ही इनकी रक्षा की ॥ २५ ॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
हृष्टरोमा महाराज प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥ २६ ॥

हे महाराज ! श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन धर्मराज युधिष्ठिरके रोयें रोयें प्रसन्न हो गये और वे श्रीकृष्णसे बोले ॥ २६ ॥

प्रमुक्तं द्रोणकर्णाभ्यां ब्रह्मास्त्रमरिमर्दन ।
कस्त्वदन्यः सहेत्साक्षादपि वज्री पुरंदरः ॥ २७ ॥

हे शत्रुमर्दन ! द्रोणाचार्य और कर्णके छोडे हुए ब्रह्मास्त्रको आपके सिवा दूसरा कौन सह सकता था ? साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी उसका आघात नहीं सह सकेंगे ॥ २७ ॥

भवतस्तु प्रसादेन संग्रामे बहवो जिताः ।
महारणगतः पार्थो यच्च नासीत्पराङ्मुखः ॥ २८ ॥

आपहीकी कृपासे अर्जुनने युद्धमें अनेक वीरोंको परास्त किया है और कुन्तीकुमार अर्जुन उस घोर युद्धसे नहीं हटा ॥ २८ ॥

तथैव च महाबाहो पर्यायैर्बहुभिर्मया ।
कर्मणामनुसंतानं तेजसश्च गतिः शुभा ॥ २९ ॥

महाबाहो ! आपहीकी कृपासे हमको अनेक प्रकारके कार्योंमें सिद्धि प्राप्त हुई और हमें तेजकी उत्तम गति प्राप्त हुई ॥ २९ ॥

उपप्लव्ये महर्षिर्मे कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ ३० ॥

हमसे उपप्लव्य नगरमें पहिले ही महर्षि वेदव्यास मुनिने कहा था, कि जहां धर्म है वहां श्रीकृष्ण हैं और जहां श्रीकृष्ण हैं वहीं विजय होगी ॥ ३० ॥

इत्येवमुक्ते ते वीराः शिबिरं तव भारत ।
प्रविश्य प्रत्यपद्यन्त कोशरत्नर्द्धिसंचयान् ॥ ३१ ॥

हे भारत ! युधिष्ठिरके इन सब बातोंको सुन करके सब वीरोंने आपके डेरोंमें प्रवेश किया; वहां उनके कोश (खजाना) रत्न आदि ऋषियोंके ढेर और भण्डार घरपर अधिकार कर लिया ॥ ३१ ॥

रजतं जातरूपं च मणीनथ च मौक्तिकान्
भूषणान्यथ मुख्यानि कम्बलान्यजिनानि च ।
दासीदासमसंख्येयं राज्योपकरणानि च ॥ ३२ ॥

चांदी, सोना, मोती, मणि, उत्तम उत्तम आभूषण, कश्मीरी दुशाले, मृगचर्म, असंख्य दासी दास और राज्यकी सब सामग्री उनको मिली ॥ ३२ ॥

ते प्राप्य धनमक्षय्यं त्वदीयं भरतर्षभ ।
उदक्रोशन्महेष्वासा नरेन्द्र विजितारयः ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! नरेन्द्र ! उस आपके अक्षय धनको प्राप्त करके शत्रुविजयी महाधनुर्धर पाण्डव बहुत प्रसन्न होकर जोरसे गर्जने लगे ॥ ३३ ॥

ते तु वीराः समाश्वस्य वाहनान्यवमुच्य च ।
अतिष्ठन्त मुहुः सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा ॥ ३४ ॥

अनन्तर ये सब वीर रथोंसे उतरकर, अपने वाहनोंको छोडकर वहीं विश्राम करने लगे। सब पाण्डव और सात्यकि थोडे समयतक वहांपर बैठे रहे ॥ ३४ ॥

अथाब्रवीन्महाराज वासुदेवो महायशाः ।
अस्माभिर्मङ्गलार्थाय वस्तव्यं शिबिराद्बहिः ॥ ३५ ॥

महाराज! तब महायशस्वी वासुदेवसुत श्रीकृष्ण बोले, हम लोगोंको अपने मङ्गलके लिये डेरोंसे बाहर ही रहना चाहिये ॥ ३५ ॥

तथेत्युक्त्वा च ते सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा ।
वासुदेवेन सहिता मङ्गलार्थं ययुर्बहिः ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्णके वचन बहुत अच्छा करके सबने स्वीकार किये और सब पाण्डव और सात्यकि श्रीकृष्णके साथ अपने मङ्गलके लिए डेरोंसे निकलकर बाहर चले गये ॥ ३६ ॥

ते समासाद्य सरितं पुण्यामोघवतीं नृप ।
न्यवसन्नथ तां रात्रिं पाण्डवा हतशत्रवः ॥ ३७ ॥

हे राजन्! जिनके शत्रु मारे गये हैं ऐसे पाण्डवोंने उस रातमें पुण्यप्रद जलवाली ओघवती नदीके तटपर जाकर निवास किया ॥ ३७ ॥

ततः संप्रेषयामासुर्यादवं नागसाह्वयम् ।
स च प्रायाज्जवेनाशु वासुदेवः प्रतापवान् ।
दारुकं रथमारोप्य येन राजाम्बिकासुतः ॥ ३८ ॥

फिर पाण्डवोंने यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्णको हस्तिनापुर भेजा । प्रतापी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण दारुक सारथीको साथ लेकर जहां अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्र थे, वहां जानेके लिये स्वयं भी रथपर बैठकर वेगसे चल दिये ॥ ३८ ॥

तमूचुः संप्रयास्यन्तं शैन्यसुग्रीववाहनम् ।
प्रत्याश्वासय गान्धारीं हतपुत्रां यशस्विनीम् ॥ ३९ ॥

शैन्य और सुग्रीव नामक शीघ्र चलनेवाले घोडे जिनके वाहन हैं, उन श्रीकृष्णको जाते देख सब पाण्डव उनसे बोले, आप पुत्ररहित यशस्विनी गान्धारीको जाकर धीरज देकर समझाइये ॥ ३९ ॥

स प्रायात्पाण्डवैरुक्तस्तत्पुरं सात्वतां वरः ।
आससादयिषुः क्षिप्रं गान्धारीं निहतात्मजाम् ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ३१५६ ॥

पाण्डवोंके ऐसा कहनेपर सात्वतवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण हस्तिनापुरको चल दिये और जिनके पुत्र मारे गये हैं, उस गान्धारीके पास शीघ्र जा पहुंचा ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें इकसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥ ३१५६ ॥

: ६२ :

जनमेजय उवाच

किमर्थं राजशार्दूलो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
गान्धार्याः प्रेषयामास वासुदेवं परंतपम् ॥ १ ॥

महाराज जनमेजय बोले– हे ब्राह्मणश्रेष्ठ वैशम्पायन मुने ! धर्मराज युधिष्ठिरने शत्रुतापन श्रीकृष्णको गान्धारीके पास क्यों भेजे ? ॥ १ ॥

यदा पूर्वं गतः कृष्णः शमार्थं कौरवान्प्रति ।
न च तं लब्धवान्कामं ततो युद्धमभूदिदम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण इस युद्धसे पहिले ही एक बार शान्ति करानेके लिये हस्तिनापुर कौरवोंके पास गये थे, परन्तु उस समय वह उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई इसलिये यह युद्ध हुआ ॥ २ ॥

निहतेषु तु योधेषु हते दुर्योधने तथा ।
पृथिव्यां पाण्डवेयस्य निःसपत्ने कृते युधि ॥ ३ ॥

विशेषकर जब युद्धमें सब योद्धा मारे गये, दुर्योधन भी मारे गये, जगत्में पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरका कोई शत्रु न रहा ॥ ३ ॥

विद्रुते शिबिरे शून्ये प्राप्ते यशसि चोत्तमे ।
किं नु तत्कारणं ब्रह्मन्येन कृष्णो गतः पुनः ॥ ४ ॥

भाग जानेसे शत्रुओंके डेरे शून्य हो गये और पाण्डवोंको उत्तम यश भी प्राप्त हो चूका; ब्रह्मन् ! तब फिर ऐसा कौनसा कारण है कि जिससे स्वयं श्रीकृष्ण पुनः हस्तिनापुर गये ? ॥ ४ ॥

न चैतत्कारणं ब्रह्मन्नल्पं वै प्रतिभाति मे ।
यत्रागमदमेयात्मा स्वयमेव जनार्दनः ॥ ५ ॥

ब्रह्मन् ! इसमें मुझे कोई अल्प कारण नहीं जान पडता, जिससे अमेयात्मा साक्षात् जनार्दनको ही जाना पडा ॥ ५ ॥

तत्त्वतो वै समाचक्ष्व सर्वमध्वर्युसत्तम ।
यच्चात्र कारणं ब्रह्मन्कार्यस्यास्य विनिश्चये ॥ ६ ॥

अध्वर्युसत्तम ! ब्रह्मन् ! आप हमसे सब वर्णन यथार्थ कीजिये, इस कार्यका जो निश्चित कारण हो सो भी आप हमसे कहिये ॥ ६ ॥

वैशंपायन उवाच

त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो यन्मां पृच्छसि पार्थिव ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथावद्भरतर्षभ ॥ ७ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे भरतकुलश्रेष्ठ महाराज ! आपने जो प्रश्न किया, वह आपहीके योग्य है। अब आप मुझसे जो पूछ रहे हैं, हम उसका कारण यथावत् कहते हैं, आप सुनिये ॥ ७ ॥

हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ।
व्युत्क्रम्य समयं राजन्धार्तराष्ट्रं महाबलम् ॥ ८ ॥
महाराज ! धृतराष्ट्रपुत्र महाबलवान् दुर्योधनको भीमसेनने युद्धमें नियमका अतिक्रमण करके मारा है ॥ ८ ॥

अन्यायेन हतं दृष्ट्वा गदायुद्धेन भारत ।
युधिष्ठिरं महाराज महद्भयमथाविशत् ॥ ९ ॥
भारत ! महाराज ! और वह गदायुद्धमें अन्यायसे मारा गया है, यह सब देखकर युधिष्ठिरको बहुत बडा भय उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥

चिन्तयानो महाभागां गान्धारीं तपसान्विताम् ।
घोरेण तपसा युक्तां त्रैलोक्यमपि सा दहेत् ॥ १० ॥
उन्होंने यह सोचा कि महाभाग्यवती तपस्विनी गान्धारी घोर तपसे संपन्न है । यह अपने तपसे तीनों लोकोंको भस्म कर सकती है ॥ १० ॥

तस्य चिन्तयमानस्य बुद्धिः समभवत्तदा ।
गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः पूर्वं प्रशमनं भवेत् ॥ ११ ॥
ऐसी चिन्ता करते हुए युधिष्ठिरके मनमें, पहले क्रोधसे प्रदीप्त हुई गांधारीको शान्त कर देना आवश्यक है, ऐसा विचार आया ॥ ११ ॥

सा हि पुत्रवधं श्रुत्वा कृतमस्माभिरीदृशम् ।
मानसेनाग्निना क्रुद्धा भस्मसान्नः करिष्यति ॥ १२ ॥
वह जब सुनेगी कि उसके पुत्रको पाण्डवोंने इस तरह छलसे मारा है, तब क्रोध करके अपने मनकी अग्निसे हमें भस्म कर देंगी ॥ १२ ॥

कथं दुःखमिदं तीव्रं गान्धारी प्रसहिष्यति ।
श्रुत्वा विनिहतं पुत्रं छलेनाजिह्मयोधिनम् ॥ १३ ॥
उसका पुत्र सरलतासे धर्मपूर्वक युद्ध करता था, परंतु छलसे मारा गया । यह सुनकर इस तीव्र दुःखको गांधारी कैसे सह सकेगी ? ॥ १३ ॥

एवं विचिन्त्य बहुधा भयशोकसमन्वितः ।
वासुदेवमिदं वाक्यं धर्मराजोऽभ्यभाषत ॥ १४ ॥
ऐसा अनेक प्रकारसे विचार करते करते महाराजकी बुद्धि भय और शोकसे व्याकुल हो गई, तब बहुत शोच विचारकर धर्मराज युधिष्ठिर वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णसे बोले– ॥ १४ ॥

तव प्रसादाद्गोविन्द राज्यं निहतकण्टकम् ।
अप्राप्यं मनसापीह प्राप्तमस्माभिरच्युत ॥ १५ ॥

हे गोविंद ! अच्युत ! आपकी कृपासे हमने यह निष्कण्टक राज्य पाया, हम इस राज्यको मनसे भी नहीं पा सकते थे ॥ १५ ॥

प्रत्यक्षं मे महाबाहो संग्रामे लोमहर्षणे ।
विमर्दः सुमहान्प्राप्तस्त्वया यादवनन्दन ॥ १६ ॥

हे महाबाहो ! यादवनन्दन ! आपने हमारे देखते देखते इस रोमांचकारी युद्धमें इन सब शत्रुओंका नाश कर दिया ॥ १६ ॥

त्वया देवासुरे युद्धे वधार्थममरद्विषाम् ।
यथा साह्यं पुरा दत्तं हताश्च विबुधद्विषः ॥ १७ ॥

पूर्वकालमें आपने देवासुर–संग्राममें देवद्वेषी दानवोंको मारनेके लिये देवताओंको सहायता देकर, देवशत्रु दानवोंका नाश किया था ॥ १७ ॥

साह्यं तथा महाबाहो दत्तमस्माकमच्युत ।
सारथ्येन च वार्ष्णेय भवता यद्धृता वयम् ॥ १८ ॥

महाबाहो ! अच्युत ! वार्ष्णेय ! ऐसी ही हमें सहायता देकर, आपने सारथिका कार्य करके हमको बचाया है ॥ १८ ॥

यदि न त्वं भवेन्नाथः फल्गुनस्य महारणे ।
कथं शक्यो रणे जेतुं भवेदेष बलार्णवः ॥ १९ ॥

आप यदि इस महायुद्धमें अर्जुनके सारथि और स्वामी न होते तो युद्धमें इस शत्रु सेनारूपी समुद्रपर विजय पाना कैसे शक्य होता ? ॥ १९ ॥

गदाप्रहारा विपुलाः परिघैश्चापि ताडनम् ।
शक्तिभिर्भिण्डिपालैश्च तोमरैः सपरश्वधैः ॥ २० ॥

आपने हमारे लिये गदाओंके विपुल आघात, परिघोंका ताडन, शक्ति, भिण्डिपाल, तोमर और फरसों आदि वज्रके समान आयुधोंकी चोटे सहन की ॥ २० ॥

वाचश्च परुषाः प्राप्तास्त्वया ह्यस्मद्धितैषिणा ।
ताश्च ते सफलाः सर्वा हते दुर्योधनेऽच्युत ॥ २१ ॥

हमारे हित चाहनेवाले आपको कठोर वचन भी सुनने पडे। अच्युत ! दुर्योधनके मारे जाने-पर सब आघात सफल हुए ॥ २१ ॥

गान्धार्या हि महाबाहो क्रोधं बुध्यस्व माधव ।
सा हि नित्यं महाभागा तपसोग्रेण कर्शिता ॥ २२ ॥

महाबाहु माधव ! आप गान्धारीके क्रोधको तो जान लीजिये । भागिनी गान्धारी सदा घोर तप करती रहती हैं और वह अपने शरीरको कृश कर रही हैं ॥ २२ ॥

पुत्रपौत्रवधं श्रुत्वा ध्रुवं नः संप्रधक्ष्यति ।
तस्याः प्रसादनं वीर प्राप्तकालं मतं मम ॥ २३ ॥

वे अपने पुत्र और पोतोंका वध हुआ सुन हमें अवश्य ही भस्म कर देंगी । वीर ! इसलिये उन्हें इस समय प्रसन्न करना, हमारी सम्मतिसे हमें उचित लगता है ॥ २३ ॥

कश्च तां क्रोधदीप्ताक्षीं पुत्रव्यसनकर्शिताम् ।
वीक्षितुं पुरुषः शक्तस्त्वामृते पुरुषोत्तम ॥ २४ ॥

हे पुरुषोत्तम ! क्रोधसे लाल नेत्रवाली और पुत्र शोकसे व्याकुल गान्धारीको आपके सिवाय कौन दूसरा मनुष्य देख सकता है ? ॥ २४ ॥

तत्र मे गमनं प्राप्तं रोचते तव माधव ।
गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः प्रशमार्थमरिंदम ॥ २५ ॥

शत्रुदमन माधव ! इसलिये हमारी सम्मतिमें आता है कि आप क्रोधसे जलती हुई गान्धारीको शान्त करनेके लिये वहां जाइये; यह मुझे उचित लगता है ॥ २५ ॥

त्वं हि कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवाप्ययः ।
हेतुकारणसंयुक्तैर्वाक्यैः कालसमीरितैः ॥ २६ ॥

आप सब लोगोंके कर्ता और नाशक हैं, आप ही सबकी उत्पत्ति और प्रलय हैं । इसलिये क्रोधभरी गान्धारीको शान्त कीजिये । आप समयके अनुसार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कारणोंसे भरे वचन सुनाकर ॥ २६ ॥

क्षिप्रमेव महाप्राज्ञ गान्धारीं शमयिष्यसि ।
पितामहश्च भगवान्कृष्णस्तत्र भविष्यति ॥ २७ ॥

हे महाप्राज्ञ ! आप गान्धारीको अवश्य शीघ्र ही शान्त करेंगे । हमारे पितामह भगवान् व्यास भी वहीं होंगे ॥ २७ ॥

सर्वथा ते महाबाहो गान्धार्याः क्रोधनाशनम् ।
कर्तव्यं सात्वतश्रेष्ठ पाण्डवानां हितैषिणा ॥ २८ ॥

महाबाहो ! सात्वतश्रेष्ठ ! आप सदा पाण्डवोंका कल्याण चाहते हैं, इसलिये आप सब प्रकारसे गान्धारीका क्रोध शान्त कीजियेगा ॥ २८ ॥

धर्मराजस्य वचनं श्रुत्वा यदुकुलोद्वहः ।
आमन्त्र्य दारुकं प्राह रथः सज्जो विधीयताम् ॥ २९ ॥

धर्मराजके ऐसे वचन सुन, यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्णने दारुकको बुलाकर कहा कि हमारा रथ तैयार करो ॥ २९ ॥

केशवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणोऽथ दारुकः ।
न्यवेदयद्रथं सज्जं केशवाय महात्मने ॥ ३० ॥

दारुकने श्रीकृष्णके वचन सुन, शीघ्र ही रथ तैयार करके महात्मा श्रीकृष्णसे कहा कि रथ सज है ॥ ३० ॥

तं रथं यादवश्रेष्ठः समारुह्य परंतपः ।
जगाम हास्तिनपुरं त्वरितः केशवो विभुः ॥ ३१ ॥

अनन्तर यदुकुलश्रेष्ठ शत्रुनाशन भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र ही रथपर बैठकर हस्तिनापुरकी ओर चल दिये ॥ ३१ ॥

ततः प्रायान्महाराज माधवो भगवान्रथी ।
नागसाह्वयमासाद्य प्रविवेश च वीर्यवान् ॥ ३२ ॥

महाराज ! और थोडे ही समयमें वीर्यशाली भगवान् माधव रथपर बैठकर हस्तिनापुर पहुंचे और वहां पहुंचकर उन्होंने नगरमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥

प्रविश्य नगरं वीरो रथघोषेण नादयन् ।
विदितो धृतराष्ट्रस्य सोऽवतीर्य रथोत्तमात् ॥ ३३ ॥

नगरमें प्रवेश करके वीर श्रीकृष्ण अपने रथके शब्दसे दिशाओंको पूरित करने लगे । महाराज धृतराष्ट्रको उनके आगमनका समाचार दिया गया और वे अपने उत्तम रथसे उतरकर ॥ ३३ ॥

अभ्यगच्छददीनात्मा धृतराष्ट्रनिवेशनम् ।
पूर्वं चाभिगतं तत्र सोऽपश्यदृषिसत्तमम् ॥ ३४ ॥

मनमें दीनभाव न लाते हुए धृतराष्ट्रके प्रासादमें गये । वहां उन्होंने पहिलेहीसे बैठे मुनिश्रेष्ठ व्यासको देखा ॥ ३४ ॥

पादौ प्रपीड्य कृष्णस्य राज्ञश्चापि जनार्दनः ।
अभ्यवादयदव्यग्रो गान्धारीं चापि केशवः ॥ ३५ ॥

अनन्तर श्रीकृष्णने वेदव्यास और राजाके चरणोंमें प्रणाम करके अव्यग्र चित्तके श्रीकृष्णने गान्धारीको प्रणाम किया ॥ ३५ ॥

ततस्तु यादवश्रेष्ठो धृतराष्ट्रमधोक्षजः ।
पाणिमालम्ब्य राज्ञः स सस्वरं प्ररुरोद ह ॥ ३६ ॥

राजेन्द्र ! फिर यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्रका हाथ पकडकर ऊंचे स्वरसे बहुत समयतक रोते रहे ॥ ३६ ॥

स मुहूर्तमिवोत्सृज्य बाष्पं शोकसमुद्भवम् ।
प्रक्षाल्य वारिणा नेत्रे आचम्य च यथाविधि ।
उवाच प्रश्रितं वाक्यं धृतराष्ट्रमरिंदमः ॥ ३७ ॥

उन्होंने दो क्षणतक शोकके आंसू बहाकर जलसे आंखें धोयी और विधिपूर्वक आचमन किया । फिर शत्रुदमन श्रीकृष्ण धृतराष्ट्रसे सुयोग्य रीतिसे बोले- ॥ ३७ ॥

न तेऽस्त्यविदितं किंचिद्भूतभव्यस्य भारत ।
कालस्य च यथा वृत्तं तत्ते सुविदितं प्रभो ॥ ३८ ॥

भारत ! समयके अनुसार जो कुछ हुआ और हो रहा है, वह सब आपसे अज्ञात नहीं है । प्रभो ! आपको सबकुछ विदित ही है ॥ ३८ ॥

यदिदं पाण्डवैः सर्वैस्तव चित्तानुरोधिभिः ।
कथं कुलक्षयो न स्यात्तथा क्षत्रस्य भारत ॥ ३९ ॥

भारत ! सब पाण्डवोंने आपकी इच्छानुसार नित्य वर्तन किया है । उन्होंने हमारे कुलका और क्षत्रियोंका नाश किसी ही प्रकार न होवे, ऐसा प्रयत्न किया ॥ ३९ ॥

भ्रातृभिः समयं कृत्वा क्षान्तवान्धर्मवत्सलः ।
द्यूतच्छलजितैः शक्तैर्वनवासोऽभ्युपागतः ॥ ४० ॥

धर्मात्मा युधिष्ठिरने अपने सब भाइयोंके साथ संकेत करके कष्ट सहन किये, शुद्ध भावके पाण्डवोंको आपने कपटपूर्वक जुएमें जीतकर उनको वनवास दिया ॥ ४० ॥

अज्ञातवासचर्या च नानावेशसमावृतैः ।
अन्ये च बहवः क्लेशास्त्वशक्तैरिव नित्यदा ॥ ४१ ॥

वह भी उन्होंने स्वीकार किया, फिर एक वर्षतक अनेक प्रकारके वेषोंमें अपनेको छिपाकर विराट् नगरमें अज्ञातवासका कष्ट सहन किया, इत्यादि और भी अनेक क्लेश पाण्डवोंने सदा समर्थ होनेपर भी असमर्थके समान सहे ॥ ४१ ॥

मया च स्वयमागम्य युद्धकाल उपस्थिते ।
सर्वलोकस्य सांनिध्ये ग्रामांस्त्वं पञ्च याचितः ॥ ४२ ॥

आगे जब युद्ध होनेको उपस्थित हो गया, तब स्वयं मैंने आकर शान्तिके लिये सब लोगोंके सामने आपसे पांच गांव मांगे ॥ ४२ ॥

त्वया कालोपसृष्टेन लोभतो नापवर्जिताः ।
तवापराधान्नृपते सर्वं क्षत्रं क्षयं गतम् ॥ ४३ ॥

परन्तु आपने समयके फिरसे लोभके वश होकर वे भी न दिये। राजन्! आपहीके अपराधसे यह सब क्षत्रियवंश नष्ट हो गया ॥ ४३ ॥

भीष्मेण सोमदत्तेन बाह्लिकेन कृपेण च ।
द्रोणेन च सपुत्रेण विदुरेण च धीमता ।
याचितस्त्वं शमं नित्यं न च तत्कृतवानसि ॥ ४४ ॥

भीष्म, सोमदत्त, बाह्लिक, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान् विदुरने भी नित्य आपसे शान्ति करनेके लिये याचना की, परन्तु आपने उनके उस कार्यको भी नहीं किया ॥ ४४ ॥

कालोपहतचित्तो हि सर्वो मुह्यति भारत ।
यथा मूढो भवान्पूर्वमस्मिन्नर्थे समुद्यते ॥ ४५ ॥

हे भारत! आपका इसमें कुछ भी दोष नहीं है, कालके प्रभावसे चित्त बिगडनेसे सबकी बुद्धि ऐसी मोहित हो जाती है; पहले युद्धकी तैयारीके समय आपकी बुद्धि सम्भ्रान्त हो गयी थी ॥ ४५ ॥

किमन्यत्कालयोगाद्धि दिष्टमेव परायणम् ।
मा च दोषं महाराज पाण्डवेषु निवेशय ॥ ४६ ॥

इसमें कालयोगके सिवा और किसको दोष देवें ? प्रारब्धहीके अधीन सब है। हे महाराज! आप पाण्डवोंको कुछ दोष न दीजिये ॥ ४६ ॥

अल्पोऽप्यतिक्रमो नास्ति पाण्डवानां महात्मनाम् ।
धर्मतो न्यायतश्चैव स्नेहतश्च परंतप ॥ ४७ ॥

परन्तप! क्योंकि इस विषयमें महात्मा पाण्डवोंका कुछ भी दोष नहीं है, आप धर्म, न्याय और स्नेहसे विचार कीजिये ॥ ४७ ॥

एतत्सर्वं तु विज्ञाय आत्मदोषकृतं फलम् ।
असूयां पाण्डुपुत्रेषु न भवान्कर्तुमर्हति ॥ ४८ ॥

तो यह सब आपहीके किये दोषोंका फल है ऐसा आपको जान पडेगा। आप पाण्डवोंको किसी प्रकार दोष मत दीजिये ॥ ४८ ॥

कुलं वंशश्च पिण्डश्च यच्च पुत्रकृतं फलम् ।
गान्धार्यास्तव चैवाद्य पाण्डवेषु प्रतिष्ठितम् ॥ ४९ ॥

क्योंकि आपका कुल और वंश पाण्डवोंसे ही चलनेवाला है। नाथ! आपको और गान्धारीको पिण्ड देनेवाले और पुत्रसे मिलनेवाला फल, यह सब कुछ पाण्डवोंपर ही अवलम्बित है ॥४९॥

एतत्सर्वमनुध्यात्वा आत्मनश्च व्यतिक्रमम् ।
शिवेन पाण्डवान्ध्याहि नमस्ते भरतर्षभ ॥ ५० ॥

भरतर्षभ! इन सब बातोंका और अपने दोषोंका स्मरण करके, आप पाण्डवोंपर कृपादृष्टि रखकर, उनकी रक्षा कीजिये। हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

जानासि च महाबाहो धर्मराजस्य या त्वयि ।
भक्तिर्भरतशार्दूल स्नेहश्चापि स्वभावतः ॥ ५१ ॥

हे महाबाहो! भरतशार्दूल! धर्मराज युधिष्ठिरको आपके लिये कैसी भक्ति और स्वाभाविक प्रीति है, सो आप जानते हैं ॥ ५१ ॥

एतच्च कदनं कृत्वा शत्रूणामपकारिणाम् ।
दह्यते स्म दिवारात्रं न च शर्माधिगच्छति ॥ ५२ ॥

सब अहितकारी शत्रुओंका यह नाश करके भी वे रात दिन शोककी अग्निमें जलते हैं; हमने उन्हें कभी भी शान्त नहीं देखा ॥ ५२ ॥

त्वां चैव नरशार्दूल गान्धारीं च यशस्विनीम् ।
स शोचन्भरतश्रेष्ठ न शान्तिमधिगच्छति ॥ ५३ ॥

पुरुषसिंह! भरतश्रेष्ठ! आपके और यशस्विनी गान्धारीके लिये शोक करते हुए उनको शान्ति नहीं मिलती है ॥ ५३ ॥

ह्रिया च परयाविष्टो भवन्तं नाधिगच्छति ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं बुद्धिव्याकुलितेन्द्रियम् ॥ ५४ ॥

आप पुत्रोंके शोकसे संतप्त हो रहे हैं, आपकी बुद्धि और इन्द्रियां शोकसे व्याकुल हैं। ऐसी स्थितिमें अत्यंत लज्जित होनेके कारण महाराज स्वयं आपके पास नहीं आए ॥ ५४ ॥

एवमुक्त्वा महाराज धृतराष्ट्रं यदूत्तमः ।
उवाच परमं वाक्यं गान्धारीं शोककर्शिताम् ॥ ५५ ॥

महाराज! यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्ण धृतराष्ट्रको ऐसा कहकर शोकसे दुर्बल हो गई, गान्धारीसे यह उत्तम वचन बोले ॥ ५५ ॥

सौबलेयि निबोध त्वं यत्त्वां वक्ष्यामि सुव्रते ।
त्वत्समा नास्ति लोकेऽस्मिन्नद्य सीमन्तिनी शुभे ॥ ५६ ॥

हे सुबलपुत्री ! सुव्रते ! मैं तुमसे जो कहता हूं सो सुनो । शुभे ! इस समय पीडित जगत्में तुम्हारे समान सौभाग्यवती स्त्री कोई नहीं है ॥ ५६ ॥

जानासि च यथा राज्ञि सभायां मम संनिधौ ।
धर्मार्थसहितं वाक्यमुभयोः पक्षयोर्हितम् ।
उक्तवत्यसि कल्याणि न च ते तनयैः श्रुतम् ॥ ५७ ॥

रानी ! तुम्हें याद होगा कि, तुमने हमारे आगे सभामें धर्म और अर्थसे भरे दोनों ओरके कल्याण करनेवाले वचन कहे; परन्तु कल्याणि ! तुम्हारे पुत्रोंने नहीं माना ॥ ५७ ॥

दुर्योधनस्त्वया चोक्तो जयार्थी परुषं वचः ।
शृणु मूढ वचो मह्यं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ५८ ॥

युद्धको जाते समय भी तुमने विजयकी इच्छावाले दुर्योधनको कठोर वचन कहे कि, रे मूर्ख ! मेरा कहना सुन लो, जहां धर्म है वहीं ही विजय होती है, परन्तु उसने उनको भी नहीं माना ॥ ५८ ॥

तदिदं समनुप्राप्तं तव वाक्यं नृपात्मजे ।
एवं विदित्वा कल्याणि मा स्म शोके मनः कृथाः ।
पाण्डवानां विनाशाय मा ते बुद्धिः कदाचन ॥ ५९ ॥

हे राजपुत्री ! तुम्हारे वे सब वचन आज सत्य हो गये, कल्याणि ! इसलिये यह जानकर तुम अपने मनमें कुछ शोक न करो । पहिले सब कारण विचारकर पाण्डवोंके नाशका विचार तुम मनमें भी कभी मत करो ॥ ५९ ॥

शक्ता चासि महाभागे पृथिवीं सचराचराम् ।
चक्षुषा क्रोधदीप्तेन निर्दग्धुं तपसो बलात् ॥ ६० ॥

महाभागे ! तुम अपनी तपस्याके बलसे अपने क्रोध भरे नेत्रोंसे चर और अचर जगत् तथा पृथ्वीको भस्म करनेकी शक्ति रखती हो ॥ ६० ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा गान्धारी वाक्यमब्रवीत् ।
एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि केशव ॥ ६१ ॥

श्रीकृष्णके वचन सुन गान्धारी इस प्रकार बोली, हे महाबाहो कृष्ण ! तुम जैसा कहते हो, वह अच्छा ही है ॥ ६१ ॥

आधिभिर्दह्यमानाया मतिः संचलिता मम ।
सा मे व्यवस्थिता श्रुत्वा तव वाक्यं जनार्दन ॥ ६२ ॥

शोकोंकी आगसे जलनेके कारण मेरी बुद्धि विचलित हो गई थी, परंतु जनार्दन ! इस समय आपके वचन सुनकर मेरी बुद्धि स्थिर हो गई है ॥ ६२ ॥

राज्ञस्त्वन्धस्य वृद्धस्य हतपुत्रस्य केशव ।
त्वं गतिः सह तैर्वीरैः पाण्डवैर्द्विपदां वर ॥ ६३ ॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ केशव ! ये पुत्ररहित अन्धे और बूढे राजाको अब वीर पाण्डवोंके साथ आप इनके आश्रयस्थान हैं ॥ ६३ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं मुखं प्रच्छाद्य वाससा ।
पुत्रशोकाभिसंतप्ता गान्धारी प्ररुरोद ह ॥ ६४ ॥

ऐसा कहकर पुत्रोंके शोकसे पीडित गान्धारी कपडेसे अपना मुंह ढककर फूट फूटकर रोने लगी ॥ ६४ ॥

तत एनां महाबाहुः केशवः शोककर्शिताम् ।
हेतुकारणसंयुक्तैर्वाक्यैराश्वासयत्प्रभुः ॥ ६५ ॥

तब फिर शोकसे दुर्बल हुई गान्धारीको महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण अनेक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कारणोंसे भरे वचनोंसे आश्वासित करने लगे ॥ ६५ ॥

समाश्वास्य च गान्धारीं धृतराष्ट्रं च माधवः ।
द्रौणे संकल्पितं भावमन्वबुध्यत केशवः ॥ ६६ ॥

गान्धारी और धृतराष्ट्रको सान्त्वना देनेके बाद उसी समय श्रीकृष्णको अश्वत्थामाकी प्रतिज्ञाका स्मरण आ गया ॥ ६६ ॥

ततस्त्वरित उत्थाय पादौ मूर्ध्ना प्रणम्य च ।
द्वैपायनस्य राजेन्द्र ततः कौरवमब्रवीत् ॥ ६७ ॥

राजेन्द्र ! तब बहुत शीघ्रतासे उठे और वेदव्यासके चरणोंमें शिर झुकाकर प्रणाम करके कुरुवंशी धृतराष्ट्रको कहने लगे ॥ ६७ ॥

आपृच्छे त्वां कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ।
द्रौणेः पापोऽस्त्यभिप्रायस्तेनास्मि सहसोत्थितः ।
पाण्डवानां वधे रात्रौ बुद्धिस्तेन प्रदर्शिता ॥ ६८ ॥

हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! अब मैं आपसे जानेकी आज्ञा मांगता हूं । आप किसी प्रकारका शोक मनमें न कीजिये । द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पापपूर्ण संकल्प किया है, इसलिये मैं एकाएक ऊठ गया हूं । आज रात्रिको सोते समय अश्वत्थामाने पाण्डवोंको मारनेका विचार किया है ॥ ६८ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं गान्धार्या सहितोऽब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रो महाबाहुः केशवं केशिसूदनम् ॥ ६९ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन गान्धारी सहित महाबाहु धृतराष्ट्र केशिनाशन केशवसे शीघ्रतासे बोले– ॥ ६९ ॥

शीघ्रं गच्छ महाबाहो पाण्डवान्परिपालय ।
भूयस्त्वया समेष्यामि क्षिप्रमेव जनार्दन ।
प्रायात्ततस्तु त्वरितो दारुकेण सहाच्युतः ॥ ७० ॥

हे महाबाहो ! जनार्दन ! अब तुम शीघ्र जाओ और पाण्डवोंकी रक्षा करो । हम तुमसे फिर शीघ्र ही मिलेंगे, फिर महाराजके वचन सुन श्रीकृष्ण दारुकके सहित वहांसे शीघ्र चले गये ॥ ७० ॥

वासुदेवे गते राजन्धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
आश्वासयदमेयात्मा व्यासो लोकनमस्कृतः ॥ ७१ ॥

राजन् ! श्रीकृष्णके जानेके बाद अमेयात्मा विश्ववन्द्य व्यास राजा धृतराष्ट्रको समझाते रहे ॥७१॥

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा कृतकृत्यो जगाम ह ।
शिबिरं हास्तिनपुराद्दिदृक्षुः पाण्डवान्नृप ॥ ७२ ॥

नृप ! धर्मात्मा वसुदेवपुत्र कृष्ण भी कृतकृत्य होकर हस्तिनापुरसे चलकर पाण्डवोंको देखनेके लिये डेरोंमें पहुंचे ॥ ७२ ॥

आगम्य शिबिरं रात्रौ सोऽभ्यगच्छत पाण्डवान् ।
तच्च तेभ्यः समाख्याय सहितस्तैः समाविशत् ॥ ७३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ॥ ३२२९ ॥

और शिविरमें आकर रातमें वे पाण्डवोंसे मिले और उनसे प्रसन्नतापूर्वक सब समाचार कह सुनाये और उन्हींके साथ सावधान होकर रहे ॥ ७३ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें बयासठवां अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ ॥ ३२२९ ॥

: ६३ :

धृतराष्ट्र उवाच

अधिष्ठितः पदा मूर्ध्नि भग्नसक्थो महीं गतः ।
शौटीरमानी पुत्रो मे कान्यभाषत संजय ॥ १ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले– हे सञ्जय ! जांघें टूटनेके कारण पृथ्वीमें गिरा हुआ और भीमसेनने उसके शिरपर पैर रखा था, तब अपने बलके अभिमानी हमारे पुत्रने क्या कहा ? ॥ १ ॥

अत्यर्थं कोपनो राजा जातवैरश्च पाण्डुषु ।
व्यसनं परमं प्राप्तः किमाह परमाहवे ॥ २ ॥

वह हमारा पुत्र सदासे अत्यंत क्रोधी और पाण्डवोंका वैरी था, तब भयंकर युद्धमें इस भारी आपत्तिमें पडकर उसने क्या कहा ? ॥ २ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तं नराधिप ।
राज्ञा यदुक्तं भग्नेन तस्मिन्व्यसन आगते ॥ ३ ॥

सञ्जय बोले–हे महाराज ! नराधिप ! उस आपत्तिमें पडकर टूटी जांघवाले राजाने जो कहा सो सुनिये, मैं वह वृत्तान्त यथार्थ कहता हूं ॥ ३ ॥

भग्नसक्थो नृपो राजन्पांसुना सोऽवगुण्ठितः ।
यमयन्मूर्धजांस्तत्र वीक्ष्य चैव दिशो दश ॥ ४ ॥

राजन् ! राजाकी जांघें टूट गयीं और वह पृथ्वीमें गिर गये, तब उनका सब शरीर धूलिसे भर रहा था । इधर उधर बिखरे हुए बालोंको एकत्रित करते हुए वहां दसों दिशाओंकी ओर देखने लगे ॥ ४ ॥

केशान्नियम्य यत्नेन निःश्वसन्नुरगो यथा ।
संरम्भाश्रुपरीताभ्यां नेत्राभ्यामभिवीक्ष्य माम् ॥ ५ ॥

प्रयत्नसे अपने बालोंको बांधकर सांपके समान फूत्कारते, उन्होंने क्रोध और आंसूभरे नेत्रोंसे मेरी ओर देखा ॥ ५ ॥

बाहू धरण्यां निष्पिष्य मुहुर्मत्त इव द्विपः ।
प्रकीर्णान्मूर्धजान्धुन्वन्दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ।
गर्हयन्पाण्डवं ज्येष्ठं निःश्वस्येदमथाब्रवीत् ॥ ६ ॥

अनन्तर अपने हाथ पृथ्वीमें टेककर, मतवाले हाथीके समान अपने बिखरे बालोंको हिलाते, दांतोंसे दांतोंको पीसकर, ज्येष्ठ पाण्डव धर्मराजकी निर्भत्सना करके, लम्बी सांस लेकर इस प्रकार बोले– ॥ ६ ॥

भीष्मे शान्तनवे नाथे कर्णे चास्त्रभृतां वरे ।
गौतमे शकुनौ चापि द्रोणे चास्त्रभृतां वरे ॥ ७ ॥

हे सञ्जय ! किसी समय शान्तनुपुत्र भीष्म, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण, कृपाचार्य शकुनि, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोण ॥ ७ ॥

अश्वत्थाम्नि तथा शल्ये शूरे च कृतवर्मणि ।
इमामवस्थां प्राप्तोऽस्मि कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ८ ॥

अश्वत्थामा, शूरवीर शल्य और कृतवर्मादि मेरे सङ्ग थे, तो भी मैं इस दुर्दशामें आ पहुंचा हूं, कालकी गति बडी कठोर है । कालको कोई नांघ नहीं सकता ॥ ८ ॥

एकादशचमूभर्ता सोऽहमेतां दशां गतः ।
कालं प्राप्य महाबाहो न कश्चिदतिवर्तते ॥ ९ ॥
महाबाहो ! मैं ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था, वह मैं आज इस दशामें पडा हूं । कालको प्राप्त करके कोई इसका उल्लंघन नहीं कर सकता ॥ ९ ॥

आख्यातव्यं मदीयानां येऽस्मिञ्जीवन्ति संगरे ।
यथाहं भीमसेनेन व्युत्क्रम्य समयं हतः ॥ १० ॥
हे महाबाहो ! यदि कोई हमारे वीरोंमेंसे इस युद्धमें जीवित बचे होंगे तो उन्हें यह कहना कि भीमसेनने किस तरह नियमोंका उल्लंघन करके मुझे अन्यायसे मारा ॥ १० ॥

बहूनि सुनृशंसानि कृतानि खलु पाण्डवैः ।
भूरिश्रवसि कर्णे च भीष्मे द्रोणे च श्रीमति ॥ ११ ॥
पापी पाण्डवोंने भूरिश्रवा, कर्ण, भीष्म और श्रीमान् द्रोणाचार्यके सङ्ग भी ऐसे ही अधर्मके कार्य किये हैं ॥ ११ ॥

इदं चाकीर्तिजं कर्म नृशंसैः पाण्डवैः कृतम् ।
येन ते सत्सु निर्वेदं गमिष्यन्तीति मे मतिः ॥ १२ ॥
दुष्ट पाण्डवोंने यह अपनी अपकीर्ति फैलानेवाला कर्म किया है । जिसके कारण वे सत्पुरुषोंकी सभामें लज्जान्वित होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १२ ॥

का प्रीतिः सत्त्वयुक्तस्य कृत्वोपधिकृतं जयम् ।
को वा समयभेत्तारं बुधः संमन्तुमर्हति ॥ १३ ॥
इस पाण्डवोंकी छलयुक्त विजयकी प्राप्तिपर कौन सत्वगुणी महात्मा प्रसन्न होंगे ? नियमका भंग करके अन्यायसे युद्ध करनेवालेकी कौन विद्वान् प्रशंसा करेगा ? ॥ १३ ॥

अधर्मेण जयं लब्ध्वा को नु हृष्येत पण्डितः ।
यथा संहृष्यते पापः पाण्डुपुत्रो वृकोदरः ॥ १४ ॥
अधर्मसे विजय प्राप्त करके किस विद्वान्को आनन्द होगा ? जैसा पापी पाण्डुपुत्र भीमसेनको हो रहा है ॥ १४ ॥

किं नु चित्रमतस्त्वद्य भग्नसक्थस्य यन्मम ।
क्रुद्धेन भीमसेनेन पादेन मृदितं शिरः ॥ १५ ॥
हे सञ्जय ! आज मेरी जांघें टूट गयी हैं, इस अवस्थामें क्रोधी भीमसेनने मेरे शिरपर जो पैर धर दिया, इससे और दूसरी आश्चर्यकी बात क्या हो सकती है ? ॥ १५ ॥

प्रतपन्तं श्रिया जुष्टं वर्तमानं च बन्धुषु ।
एवं कुर्यान्नरो यो हि स वै संजय पूजितः ॥ १६ ॥

हे सञ्जय ! तेजसे युक्त और लक्ष्मीसे भरे राज्यपर बैठा है, अपने बन्धुओंसे युक्त है ऐसे शत्रुके साथ उपर्युक्त वर्तन करे, तो वही वीर प्रशंसा करने योग्य होता है ॥ १६ ॥

अभिज्ञौ क्षत्रधर्मस्य मम माता पिता च मे ।
तौ हि संजय दुःखार्तौ विज्ञाप्यौ वचनान्मम ॥ १७ ॥

संजय ! मेरे माता और पिता दोनों ही क्षत्रियधर्मको पूर्णरीतिसे जानते हैं । आज वे मेरी मृत्युका समाचार सुनकर दुःखसे व्याकुल होंगे । तुम उनसे कहना कि तुम्हारे पुत्रने ऐसा कहा है ॥ १७ ॥

इष्टं भृत्या भृताः सम्यग्भूः प्रशास्ता ससागरा ।
मूर्ध्नि स्थितममित्राणां जीवतामेव संजय ॥ १८ ॥

हमने अपने जीवनमें अनेक यज्ञ किये, सेवकोंको अच्छी तरहसे सन्तुष्ट किया, समुद्र सहित पृथ्वीको अपनी आज्ञामें चलाया, संजय ! जीते हुए ही शत्रुओंके शिरपर पैर रक्खा ॥१८॥

दत्ता दाया यथाशक्ति मित्राणां च प्रियं कृतम् ।
अमित्रा बाधिताः सर्वे को नु स्वन्ततरो मया ॥ १९ ॥

शक्तिके अनुसार धनके दान किये, मित्रोंको प्रिय किया और सर्व शत्रुओंको दबाया, हमारे समान और महात्मा कौन होगा, जिसका अन्त मेरे समान सुंदर हुआ हो ? ॥ १९ ॥

यातानि परराष्ट्राणि नृपा भुक्ताश्च दासवत् ।
प्रियेभ्यः प्रकृतं साधु को नु स्वन्ततरो मया ॥ २० ॥

दूसरोंके राज्योंपर आक्रमण किया, राजाओंसे दासोंके समान सेवाएं लीं, जो प्रिय व्यक्ति थे उनकी भलाई की, फिर मुझसे अच्छा अन्त किसका हुआ होगा ? ॥ २० ॥

मानिता बान्धवाः सर्वे मान्यः संपूजितो जनः ।
त्रितयं सेवितं सर्वं को नु स्वन्ततरो मया ॥ २१ ॥

सब बन्धु-बान्धुओंका संमान किया, आज्ञाधारी लोगोंका सत्कार किया और धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंका सेवन किया । मेरे समान सुंदर अन्त किसका हुआ होगा ? ॥ २१ ॥

आज्ञप्तं नृपमुख्येषु मानः प्राप्तः सुदुर्लभः ।
आजानेयैस्तथा यातं को नु स्वन्ततरो मया ॥ २२ ॥

राजाओंमें मुख्य महाराजाओंके ऊपर आज्ञा चलाई, अत्यंत दुर्लभ मान प्राप्त किया । आजानेय (अच्छे) घोडोंपर सवार हुआ, फिर मुझसे अच्छा अन्त किसका हुआ होगा ? ॥ २२ ॥

अधीतं विधिवद्दत्तं प्राप्तमायुर्निरामयम् ।
स्वधर्मेण जिता लोकाः को नु स्वन्ततरो मया ॥ २३ ॥
विधिके अनुसार सब वेद पढे, अनेक दान दिये, रोगरहित अवस्था पाई और अपने धर्मसे पुण्यलोकोंपर विजय पाकर स्वर्गको जा रहा हूं। मेरे समान और महात्मा कौन होगा ? ॥२३॥

दिष्ट्या नाहं जितः संख्ये परान्प्रेष्यवदाश्रितः ।
दिष्ट्या मे विपुला लक्ष्मीर्मृते त्वन्यं गता विभो ॥ २४ ॥
विभो ! मुझे प्रारब्धहीसे युद्धमें शत्रुओंने जीतकर अपना दास नहीं बनाया, प्रारब्धहीसे मेरी अपरिमित लक्ष्मी मेरे मरनेके पश्चात् शत्रुओंके हाथमें गई ॥ २४ ॥

यदिष्टं क्षत्रबन्धूनां स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ।
निधनं तन्मया प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ॥ २५ ॥
अपना धर्म पालन करनेवाले महात्मा क्षत्रियबन्धु जिस रीतिसे मरना चाहते हैं, आज मैंने वैसा ही मृत्यु प्राप्त की है, मेरे समान और महात्मा कौन होगा ? ॥ २५ ॥

दिष्ट्या नाहं परावृत्तो वैरात्प्राकृतवज्जितः ।
दिष्ट्या न विमतिं कांचिद्भजित्वा तु पराजितः ॥ २६ ॥
अच्छा हुआ है कि मैं युद्धमें कभी पराङ्मुख नहीं हुआ, साधारण मनुष्यके समान हार मानकर अपना वैर नहीं छोडा और अधर्मका स्वीकार कर पराजित नहीं हुआ ॥ २६ ॥

सुप्तं वाथ प्रमत्तं वा यथा हन्याद्विषेण वा ।
एवं व्युत्क्रान्तधर्मेण व्युत्क्रम्य समयं हतः ॥ २७ ॥
जैसे कोई सोतेको, उन्मत्त हुएको मारता है, अथवा विष देकर मारता है, ऐसे ही धर्मका उल्लंघन करनेवालेने युद्धमें नियमोंकी मर्यादा छोडकर मुझे मारा है ॥ २७ ॥

अश्वत्थामा महाभागः कृतवर्मा च सात्वतः ।
कृपः शारद्वतश्चैव वक्तव्या वचनान्मम ॥ २८ ॥
हे सञ्जय ! तुम महाभाग अश्वत्थामा, सात्वतवंशी कृतवर्मा और शारद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यसे हमारी ओरसे यह सब कहना ॥ २८ ॥

अधर्मेण प्रवृत्तानां पाण्डवानामनेकशः ।
विश्वासं समयघ्नानां न यूयं गन्तुमर्हथ ॥ २९ ॥
पाण्डवोंने अधर्ममें प्रवृत्त होकर अनेक बार नियमोंका उल्लंघन किया है, इसलिये तुम लोग अधर्मी, विश्वासघाती पाण्डवोंका विश्वास कभी न करना ॥ २९ ॥

वार्तिकांश्चाब्रवीद्राजा पुत्रस्ते सत्यविक्रमः ।
अधर्माद्भीमसेनेन निहतोऽहं यथा रणे ॥ ३० ॥

मुझसे ऐसा कहकर, सत्य पराक्रमी तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन वार्तावह लोगोंसे बोले, पापी भीमसेनने युद्धमें हमें अधर्मसे मारा है ॥ ३० ॥

सोऽहं द्रोणं स्वर्गगतं शल्यकर्णावुभौ तथा ।
वृषसेनं महावीर्यं शकुनिं चापि सौबलम् ॥ ३१ ॥

अब हम स्वर्गमें गये हुए द्रोणाचार्य, शल्य, कर्ण, महापराक्रमी वृषसेन, सुबलपुत्र शकुनि ॥ ३१ ॥

जलसंधं महावीर्यं भगदत्तं च पार्थिवम् ।
सौमदत्तिं महेष्वासं सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ ३२ ॥

महावीर जलसन्ध, राजा भगदत्त, महाधनुषधारी सोमदत्ति, सिन्धुराज जयद्रथ ॥ ३२ ॥

दुःशासनपुरोगांश्च भ्रातॄनात्मसमांस्तथा ।
दौःशासनिं च विक्रान्तं लक्ष्मणं चात्मजावुभौ ॥ ३३ ॥

हमारे समान वीर्यशाली दुःशासन आदि सौ भाई महाबलवान् दुःशासन पुत्र और हमारे पुत्र लक्ष्मण ॥ ३३ ॥

एतांश्चान्यांश्च सुबहून्मदीयांश्च सहस्रशः ।
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सार्थहीन इवाध्वगः ॥ ३४ ॥

इन सब और भी अनेक हमारे सहस्रों बन्धुओंसे मिलेंगे, मैं उनके पीछे इस प्रकार स्वर्गको जाता हूं जैसे सामग्री रहित बटोही ॥ ३४ ॥

कथं भ्रातॄन्हताञ्श्रुत्वा भर्तारं च स्वसा मम ।
रोरूयमाणा दुःखार्ता दुःशला सा भविष्यति ॥ ३५ ॥

हाय ! हमारी बहिन दुःशला अपने सौ भाई और पतिको मारा हुआ सुन, दुःखसे व्याकुल होकर रोदन करती हुई क्या करेगी ? ॥ ३५ ॥

स्नुषाभिः प्रस्नुषाभिश्च वृद्धो राजा पिता मम ।
गान्धारीसहितः क्रोशन्कां गतिं प्रतिपत्स्यते ॥ ३६ ॥

हमारे पिता बूढे राजा धृतराष्ट्र बहू, पोतोंकी बहू और माता गान्धारीके सहित आक्रोश करते हुए किस दुर्दशामें पडेंगे ? ॥ ३६ ॥

नूनं लक्ष्मणमातापि हतपुत्रा हतेश्वरा ।
विनाशं यास्यति क्षिप्रं कल्याणी पृथुलोचना ॥ ३७ ॥

हमें यह निश्चय है कि, कल्याणी विशालनयनी लक्ष्मणकी माता पुत्र और पतिको मारा हुआ सुन, शीघ्र ही मर जायगी ॥ ३७ ॥

यदि जानाति चार्वाकः परिव्राड्वाग्विशारदः ।
करिष्यति महाभागो ध्रुवं सोऽपचितिं मम ॥ ३८ ॥

यदि कहीं महापण्डित, सब स्थानोंमें घूमनेवाले यति, महाभाग चार्वाक मेरी इस दशाको सुन लें, तो अवश्य ही मेरे वैरका पाण्डवोंसे बदला लेंगे ॥ ३८ ॥

समन्तपञ्चके पुण्ये त्रिषु लोकेषु विश्रुते ।
अहं निधनमासाद्य लोकान्प्राप्स्यामि शाश्वतान् ॥ ३९ ॥

मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध पुण्यमय समन्तपञ्चक तीर्थपर मरकर शाश्वत स्वर्गको जाऊंगा ॥ ३९ ॥

ततो जनसहस्राणि बाष्पपूर्णानि मारिष ।
प्रलापं नृपतेः श्रुत्वा विद्रवन्ति दिशो दश ॥ ४० ॥

हे मारिष ! राजाका ऐसा विलाप सुन हजारों जनोंकी आंखोंमें आंसू भर आये और वे वहांसे दसों दिशाओंमें भाग चले गये ॥ ४० ॥

ससागरवना घोरा पृथिवी सचराचरा ।
चचालाथ सनिर्ह्रादा दिशश्चैवाविलाभवन् ॥ ४१ ॥

राजाका रोना सुनकर सब पशु पक्षी भी भाग गये, चर और अचर वन और समुद्रके सहित सब पृथ्वी घोर रूपसे हिलने लगी । आकाशमें वज्रके समान बिजली गिरी और सब दिशाएं मलिन हो गयीं ॥ ४१ ॥

ते द्रोणपुत्रमासाद्य यथावृत्तं न्यवेदयन् ।
व्यवहारं गदायुद्धे पार्थिवस्य च घातनम् ॥ ४२ ॥

ये वार्तावह द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके पास पहुंचे और उन्होंने गदायुद्धमें भीमसेनका जैसा व्यवहार हुआ और राजाको जिस प्रकार मारा गया, वह समाचार सब कह दिया ॥ ४२ ॥

तदाख्याय ततः सर्वे द्रोणपुत्रस्य भारत ।
ध्यात्वा च सुचिरं कालं जग्मुरार्ता यथागतम् ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शैल्यपर्वणि त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ३२७२ ॥

भारत ! वह सब वृत्तान्त द्रोणपुत्रको कहकर वे सब बहुत समयतक विचार करते रहें । फिर सब जैसे आये थे वैसे इधर उधरको चले गये ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें तिरसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ ३२७२ ॥

: ६४ :

सञ्जय उवाच

वार्तिकानां सकाशात्तु श्रुत्वा दुर्योधनं हतम् ।
हतशिष्टास्ततो राजन्कौरवाणां महारथाः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! वार्तावहोंसे दुर्योधनको मारा हुआ सुन, मरनेसे बचे हुए कौरवोंके महारथी ॥ १ ॥

विनिर्भिन्नाः शितैर्बाणैर्गदातोमरशक्तिभिः ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः
त्वरिता जवनैरश्वैरायोधनमुपागमन् ॥ २ ॥

जो स्वयं तेजवान् बाणशक्ति, गदा और तोमरादि शस्त्रोंके घावोंसे व्याकुल हो गये थे, वे अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा तेज जानेवाले घोडोंके रथोंपर बैठकर शीघ्र ही समरमें राजाके पास आये ॥ २ ॥

तत्रापश्यन्महात्मानं धार्तराष्ट्रं निपातितम् ।
प्रभग्नं वायुवेगेन महाशालं यथा वने ॥ ३ ॥

उन्होंने वहां आकर महात्मा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको, वायुके वेगसे टूटे हुए वनमें पडे विशाल शालवृक्षके समान मार गिराया गया देखा ॥ ३ ॥

भूमौ विचेष्टमानं तं रुधिरेण समुक्षितम् ।
महागजमिवारण्ये व्याधेन विनिपातितम् ॥ ४ ॥

उस समय रुधिरमें भीगे, पृथ्वीपर तडफते हुए महाराजकी ऐसी स्थिति दीखती थी, जैसे जंगलमें व्याधके बाणसे मार गिराये हुए बडे हाथीकी ॥ ४ ॥

विवर्तमानं बहुशो रुधिरौघपरिप्लुतम् ।
यदृच्छया निपतितं चक्रमादित्यगोचरम् ॥ ५ ॥

रुधिरकी धारामें भीगे तडफते हुए और अनेक बार करवटें बदलते हुए, महाराजकी ऐसी दशा दीखती थी, जैसे दैवेच्छासे आकाशमें गिरे सूर्यचक्रकी ॥ ५ ॥

महावातसमुत्थेन संशुष्कमिव सागरम् ।
पूर्णचन्द्रमिव व्योम्नि तुषारावृतमण्डलम् ॥ ६ ॥

महावायुके चलनेसे सूखे समुद्रकी और आकाशमें स्थित तेजसे भरे हिमाच्छादित पूर्ण चन्द्रमाके मण्डलकी ॥ ६ ॥

रेणुध्वस्तं दीर्घभुजं मातङ्गसमविक्रमम् ।
वृतं भूतगणैर्घोरैः क्रव्यादैश्च समन्ततः ।
यथा धनं लिप्समानैर्भृत्यैर्नृपतिसत्तमम् ॥ ७ ॥

मतवाले हाथीके समान पराक्रमी, धूलसे भरे, महाबाहु महाराजको, उस समय घोर मांस खानेवाले भूतगण चारों ओरसे इस प्रकार घेर रहे थे, जैसे धनलोभी सेवक श्रेष्ठ राजाको घेरे रहते हैं ॥ ७ ॥

भ्रुकुटीकृतवक्त्रान्तं क्रोधादुद्वृत्तचक्षुषम् ।
सामर्षं तं नरव्याघ्रं व्याघ्रं निपतितं यथा ॥ ८ ॥

मुंहपर भौंहें टेढी किये, क्रोधसे आंखें फैलाये गिरे हुए सिंहके समान वह पुरुषसिंह क्रोधमें भरा हुआ दिखाई देता था ॥ ८ ॥

ते तु दृष्ट्वा महेष्वासा भूतले पतितं नृपम् ।
मोहमभ्यागमन्सर्वे कृपप्रभृतयो रथाः ॥ ९ ॥

राजा दुर्योधनको पृथ्वीमें पडा हुआ देख, महाधनुषधारी रथी कृपाचार्य आदि सभी वीरोंको मूर्च्छा आ गयी ॥ ९ ॥

अवतीर्य रथेभ्यस्तु प्राद्रवन्राजसंनिधौ ।
दुर्योधनं च संप्रेक्ष्य सर्वे भूमावुपाविशन् ॥ १० ॥

अनन्तर वे अपने रथोंसे उतरकर सब राजाके पास दौडते गए और दुर्योधनको देखकर सब उसके पास जमीनपर बैठ गये ॥ १० ॥

ततो द्रौणिर्महाराज बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन् ।
उवाच भरतश्रेष्ठं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् ॥ ११ ॥

महाराज ! अनन्तर आंखोंमें आंसू भरकर ऊंचे सांस लेकर भरतकुलश्रेष्ठ सब लोकोंके राजाओंके महाराज दुर्योधनसे अश्वत्थामा बोले ॥ ११ ॥

न नूनं विद्यतेऽसह्यं मानुष्ये किंचिदेव हि ।
यत्र त्वं पुरुषव्याघ्र शेषे पांसुषु रूषितः ॥ १२ ॥

हे पुरुषसिंह ! आप आज इस प्रकार धूलमें पडे लौटते हैं । इससे हमें निश्चय होता है, कि मनुष्यमें कुछ भी असह्य नहीं है ॥ १२ ॥

भूत्वा हि नृपतिः पूर्वं समाज्ञाप्य च मेदिनीम् ।
कथमेकोऽद्य राजेन्द्र तिष्ठसे निर्जने वने ॥ १३ ॥

हे राजेन्द्र ! आप पहले राजाओंके महाराज और पृथ्वीके स्वामी होकर शासन करते थे, तो भी आज इस निर्जन जंगलमें अकेले कैसे पडे हैं ? ॥ १३ ॥

दुःशासनं न पश्यामि नापि कर्णं महारथम् ।
नापि तान्सुहृदः सर्वान्किमिदं भरतर्षभ ॥ १४ ॥

हे भरतकुलसिंह ! आज यह क्या है, जो आपके पास मैं दुःशासन और महारथी कर्ण आदि अन्य सब मित्रोंको नहीं देखता हूं ॥ १४ ॥

दुःखं नूनं कृतान्तस्य गतिं ज्ञातुं कथंचन ।
लोकानां च भवान्यत्र शेषे पांसुषु रूषितः ॥ १५ ॥

हे महाराज ! आप भी आज धूलमें सोते हैं, इससे हमें निश्चय होता है, कि कालकी और लोकोंकी गतिको कोई नहीं जान सकता है यह जानना दुष्कर है ॥ १५ ॥

एष मूर्धावसिक्तानामग्रे गत्वा परंतपः ।
सतृणं ग्रसते पांसुं पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ १६ ॥

यही शत्रुतापन महाराज पहिले मूर्धाभिषिक्त क्षत्रियराजाओंके आगे चलते थे, सो ही आज धूल और तिन खा रहे हैं यह कालका विपर्यय देखो ॥ १६ ॥

क्व ते तदमलं छत्रं व्यजनं क्व च पार्थिव ।
सा च ते महती सेना क्व गता पार्थिवोत्तम ॥ १७ ॥

हे राजाओंमें श्रेष्ठ महाराज ! आपका वह निर्मल छत्र और पङ्खा कहां गया ? आपकी वह महासेना आज कहां गई ? ॥ १७ ॥

दुर्विज्ञेया गतिर्नूनं कार्याणां कारणान्तरे ।
यद्वै लोकगुरुर्भूत्वा भवानेतां दशां गतः ॥ १८ ॥

किस कारणोंसे कौनसा कार्य उत्पन्न होगा इसकी गति जानना निश्चय ही बडा कठिन है, आप लोक पूज्य होकर भी इस दुर्दशाको पहुंच गये ॥ १८ ॥

अध्रुवा सर्वमर्त्येषु ध्रुवं श्रीरुपलक्ष्यते ।
भवतो व्यसनं दृष्ट्वा शक्रविस्पर्धिनो भृशम् ॥ १९ ॥

आप सदा इन्द्रकी समानता करते थे, सो आज इस दुर्दशामें पडे हैं, यह देख इससे निश्चय होता है कि किसी भी मनुष्यकी लक्ष्मी सदा स्थिर नहीं देखी जा सकती ॥ १९ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दुःखितस्य विशेषतः ।
उवाच राजन्पुत्रस्ते प्राप्तकालमिदं वचः ॥ २० ॥

हे महाराज ! अत्यन्त दुःख भरे अश्वत्थामाके ऐसे वचन सुन, तुम्हारे पुत्रने समयके अनुसार ऐसे वचन बोले ॥ २० ॥

विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां शोकजं बाष्पमुत्सृजन् ।
कृपादीन्स तदा वीरान्सर्वानेव नराधिपः ॥ २१ ॥

राजा दुर्योधनके आंखोंसे शोकके आंसू बहने लगे । उसने अपने दोनों हाथोंसे आंखोंको पोछकर, कृपाचार्यादिक सब वीरोंको देखकर कहा ॥ २१ ॥

ईदृशो मर्त्यधर्मोऽयं धात्रा निर्दिष्ट उच्यते ।
विनाशः सर्वभूतानां कालपर्यायकारितः ॥ २२ ॥

हे वीरों ! इस जगत्का ऐसा ही नियम है, विधाता ब्रह्माने जगत्की ऐसी ही गति बनाई है, ऐसा कहते हैं । इसलिये काल क्रमानुसार एक दिन सब प्राणियोंको मरना ही है ॥ २२ ॥

सोऽयं मां समनुप्राप्तः प्रत्यक्षं भवतां हि यः ।
पृथिवीं पालयित्वाहमेतां निष्ठामुपागतः ॥ २३ ॥

आप लोगोंके प्रत्यक्ष देखते देखते, मुझे भी यह विनाशकी गतिका समय प्राप्त हुआ है । मैं किसी समय पृथ्वीका पालन करनेवाला था और आज इस दशाको प्राप्त हुआ हूं ॥ २३ ॥

दिष्ट्या नाहं परावृत्तो युद्धे कस्यांचिदापदि ।
दिष्ट्याहं निहतः पापैश्छलेनैव विशेषतः ॥ २४ ॥

अच्छा हुआ कि मैं युद्धमें किसी भी आपत्तिमें युद्धसे पराङ्मुख नहीं हुआ । अच्छा हुआ जो पापियोंने मुझे छलसे मारा ॥ २४ ॥

उत्साहश्च कृतो नित्यं मया दिष्ट्या युयुत्सता ।
दिष्ट्या चास्मि हतो युद्धे निहतज्ञातिबान्धवः ॥ २५ ॥

अच्छा हुआ जो मैं युद्धके लिये सदा उत्साह करता रहा । आज मैं जाति और बान्धवोंसे रहित होकर प्रारब्धहीसे स्वयं भी युद्धमें प्राण छोड रहा हूं ॥ २५ ॥

दिष्ट्या च वोऽहं पश्यामि मुक्तानस्माज्जनक्षयात् ।
स्वस्तियुक्तांश्च कल्यांश्च तन्मे प्रियमनुत्तमम् ॥ २६ ॥

इस घोर जनक्षयी युद्धसे बचे हुए कुशल सहित आप लोगोंको मैं देख रहा हूं, यह सुदैवकी बात हैं । आप सुहृद भी हैं, मैं इससे बहुत प्रसन्न हुआ हूं ॥ २६ ॥

मा भवन्तोऽनुतप्यन्तां सौहृदान्निधनेन मे ।
यदि वेदाः प्रमाणं वो जिता लोका मयाक्षयाः ॥ २७ ॥

आप लोग मेरे मित्र हैं, इसलिये मुझपरके स्नेहके कारण मेरे मरनेका कुछ शोक मत कीजिये, यदि आप लोग वेदोंको प्रमाण मानते हों, तो मैंने अपने सत्यसे सनातन स्वर्गको प्राप्त कर लिया है ॥ २७ ॥

मन्यमानः प्रभावं च कृष्णस्यामिततेजसः ।
तेन न च्यावितश्चाहं क्षत्रधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥ २८ ॥

मैं अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके प्रभावको मानता हूं, तो भी उनकी उत्तेजनासे मैं उत्तम तरहसे पालन किये हुए सनातन क्षत्रिय धर्मसे नहीं विचलित हुआ ॥ २८ ॥

स मया समनुप्राप्तो नास्मि शोच्यः कथंचन ।
कृतं भवद्भिः सदृशमनुरूपमिवात्मनः ।
यतितं विजये नित्यं दैवं तु दुरतिक्रमम् ॥ २९ ॥

मैनें उसका फल प्राप्त किया है, इसलिये आप लोग मेरे लिये कुछ शोक न कीजिये । आप लोगोंने अपने करने योग्य पराक्रम किये और सदा हमारी विजयके लिये प्रयत्न भी किये, वे आप ही लोगोंके योग्य थे । परंतु प्रारब्धका उल्लंघन करना कठिन है ॥ २९ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं बाष्पव्याकुललोचनः ।
तूष्णीं बभूव राजेन्द्र रुजासौ विह्वलो भृशम् ॥ ३० ॥

हे राजेन्द्र! ऐसा कहकर दुर्योधनकी आंखें आंसुओंसे भर गईं और पीडासे अत्यन्त व्याकुल होकर चुप हो गए ॥ ३० ॥

तथा तु दृष्ट्वा राजानं बाष्पशोकसमन्वितम् ।
द्रौणिः क्रोधेन जज्वाल यथा वह्निर्जगत्क्षये ॥ ३१ ॥

राजा दुर्योधनको शोकसे व्याकुल होकर आंसू बहाते देख, अश्वत्थामाको क्रोध आया और प्रलयकालकी जलती हुई अग्निके समान उनका रूप हो गया ॥ ३१ ॥

स तु क्रोधसमाविष्टः पाणौ पाणिं निपीड्य च ।
बाष्पविह्वलया वाचा राजानमिदमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

अनन्तर क्रोधमें भरकर हाथसे हाथ मलकर, आंखोंमें आंसू भरे गद्गद वाणी राजासे इस प्रकार बोले ॥ ३२ ॥

पिता मे निहतः क्षुद्रैः सुनृशंसेन कर्मणा ।
न तथा तेन तप्यामि यथा राजंस्त्वयाद्य वै ॥ ३३ ॥

हे महाराज! क्षुद्र पाञ्चालोंने मेरे पिताको भी अत्यंत क्रूर कर्मसे मारे, परन्तु मुझे इतना उनका संताप नहीं है, जितना शोक आज आपके वधके कारण हो गया है ॥ ३३ ॥

शृणु चेदं वचो मह्यं सत्येन वदतः प्रभो ।
इष्टापूर्तेन दानेन धर्मेण सुकृतेन च ॥ ३४ ॥

हे प्रभो! मैं आपमे सत्यकी शपथ खाकर कहता हूं, मेरी इस बातको सुनिये । मैं अपने इष्टापूर्ति, दान, धर्म और सुकृत ॥ ३४ ॥

अद्याहं सर्वपाञ्चालान्वासुदेवस्य पश्यतः ।
सर्वोपायैर्हि नेष्यामि प्रेतराजनिवेशनम् ।
अनुज्ञां तु महाराज भवान्मे दातुमर्हति ॥ ३५ ॥

इन सबकी शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूं कि आजकी रात्रिमें श्रीकृष्णके देखते देखते सब पाञ्चालोंको सभी उपायोंसे यमराजके लोकमें भेजूंगा । हे महाराज! अब आप मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ३५ ॥

इति श्रुत्वा तु वचनं द्रोणपुत्रस्य कौरवः ।
मनसः प्रीतिजननं कृपं वचनमब्रवीत् ।
आचार्य शीघ्रं कलशं जलपूर्णं समानय ॥ ३६ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके मनको बहुत प्रसन्न करनेवाले ऐसे वचन सुन कुरुराज दुर्योधन कृपाचार्यसे बोले । हे आचार्य ! आप बहुत शीघ्र एक जलसे भरा हुआ कलश लाइए ॥ ३६ ॥

स तद्वचनमाज्ञाय राज्ञो ब्राह्मणसत्तमः ।
कलशं पूर्णमादाय राज्ञोऽन्तिकमुपागमत् ॥ ३७ ॥

राजाके वचन मानकर ब्राह्मणश्रेष्ठ कृपाचार्य बहुत शीघ्र जलसे भरा एक कलश लाकर, उनके निकट गये ॥ ३७ ॥

तमब्रवीन्महाराज पुत्रस्तव विशां पते ।
ममाज्ञया द्विजश्रेष्ठ द्रोणपुत्रोऽभिषिच्यताम् ।
सेनापत्येन भद्रं ते मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ ३८ ॥

महाराज ! पृथ्वीपते ! तब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने फिर कृपाचार्यसे कहा, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आपका कल्याण हो ! यदि आप हमारा प्रिय करना चाहते हैं, तो मेरी आज्ञासे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका सेनापतिके पदपर अभिषेक कीजिये ॥ ३८ ॥

राज्ञो नियोगाद्योद्धव्यं ब्राह्मणेन विशेषतः ।
वर्तता क्षत्रधर्मेण ह्येवं धर्मविदो विदुः ॥ ३९ ॥

धर्म जाननेवालोंने ऐसा कहा है कि, विशेषतः राजाकी आज्ञासे ब्राह्मण भी क्षत्रिय धर्मके अनुसार वर्तन करते हुए युद्ध करे ॥ ३९ ॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा कृपः शारद्वतस्ततः ।
द्रौणिं राज्ञो नियोगेन सेनापत्येऽभ्यषेचयत् ॥ ४० ॥

राजाके वह वचन सुन शरद्वानके पुत्र कृपाचार्यने उसकी आज्ञाके अनुसार अश्वत्थामाका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया ॥ ४० ॥

सोऽभिषिक्तो महाराज परिष्वज्य नृपोत्तमम् ।
प्रययौ सिंहनादेन दिशः सर्वा विनादयन् ॥ ४१ ॥

महाराज ! अश्वत्थामाने भी सेनापति पदपर अभिषेक हो जानेपर नृपश्रेष्ठ दुर्योधनको आलिंगन दिया और सिंहके समान गर्जना करते हुए सब दिशाओंको पूरित करके वहांसे चल दिये ॥ ४१ ॥

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र शोणितौघपरिप्लुतः ।
तां निशां प्रतिपेदेऽथ सर्वभूतभयावहाम् ॥ ४२ ॥

राजेन्द्र ! रुधिरमें भरे हुए दुर्योधन भी उस सब भूतोंको भय उत्पन्न करनेवाली रात्रिको व्यतीत किया ॥ ४२ ॥

अपक्रम्य तु ते तूर्णं तस्मादायोधनान्नृप ।
शोकसंविग्नमनसश्चिन्ताध्यानपरा भवन् ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ समाप्तं गदायुद्धपर्व ॥ ३३१५

॥ समाप्तं शल्यपर्व ॥

हे राजेन्द्र ! यह तीनों वीर भी शोकसे व्याकुल चित्त होकर उस युद्ध भूमिसे शीघ्र ही वा जाकर, चिन्ता और कर्तव्यके विचारमें मग्न हो गये ॥ ४३ ॥

॥ महाभारतके शल्यपर्वमें चौसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ गदायुद्धपर्व समाप्त ॥ ३३१५ ॥

॥ शल्यपर्व समाप्त ॥